

122

P. K. MATHE HASTA

E. 42

(3)



ॐ श्रीम् ॐ

पुस्तक की संख्या ... ६६६२

पुस्तकालय-पंजिका-संख्या २१७४.२६

पुस्तक पर सर्व प्रकार की निशानियां लगाना वर्जित है। कोई महाशय १५ दिन से अधिक देर तक पुस्तक अपने पास नहीं रख सकता। अधिक देर तक रखने के लिये पुनः आज्ञा प्राप्त करनी चाहिये।

P. LOKNATHSHASTRI.



## पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या.....६६२  
२ (३)

आगत संख्या.....17426

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३० वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा ।



४(३)  
४६४  
12479  
Gurukula Library  
Kangri

.P.LOKNATHCHASTI.

DINA

स्वाक प्रमाणीकरण ११८४-११८५

662.2(3)



17426







P. LOKNATH CHASTRI.  
DINANATH







P. LOKNATH CHASTRI...

DINANATH







THE  
NYÁYA DARSHANA  
OF  
GOTAMA  
WITH THE  
COMMENTARY OF VATSYAYANA  
AND THE  
GLOSS OF VISHWANATHA  
EDITED BY  
PANDIT JIBANUNDA VIDYASAGARA B. A.  
*Superintendent Free Sanskrit College.*



Calcutta.

PRINTED AT THE SUCHARU PRESS.

1874.

*To be had from Pandit Jibananda Vidyasagara B. A.  
Superintendent, Free Sanskrit College of Calcutta.*



प्रणित-कुल-तिलक-पूज्यपाद श्रीमत् तर्कवाचस्पति  
पाद-प्रणीत-प्रकाशित-पुस्तकान्येतानि

|    |                                      |       |     |
|----|--------------------------------------|-------|-----|
| १  | आशुनीध व्याकरणम्                     | ...   | ३१० |
| २  | धातुरूपादर्शः                        | ...   | २   |
| ३  | शब्दस्तोम-महानिधि [ संस्कृत अभिधान ] | ...   | १०  |
| ४  | सिद्धान्तकौमुदी—सरलाटीकासहितः        | ...   | ११  |
| ५  | सिद्धान्तविन्दुसार [ वेदान्त ]       | ...   | ॥०  |
| ६  | तुलादानादि पद्धति [ वङ्गाक्षरैः ]    | ...   | ४   |
| ७  | गयाश्राद्धादि पद्धति                 | ..    | १   |
| ८  | शब्दार्थ रत्न                        | ...   | ॥॥  |
| ९  | वाक्यमञ्जरी [ वङ्गाक्षरैः ]          | ...   | २१० |
| १० | कन्दोमञ्जरी तथा उत्तररत्नाकर —सटीक   | ..... | ॥   |
| ११ | वेणीसंहार नाटक—सटीक                  | ...   | १   |
| १२ | मुद्राराक्षस नाटक—सटीक               | ...   | ११० |
| १३ | रत्नावली                             | ...   | ॥॥  |
| १४ | मालविकाग्निमित्र—सटीक                | ...   | ११० |
| १५ | धनञ्जय विजय—सटीक                     | ...   | १०  |
| १६ | महावीरचरित                           | ...   | ११० |
| १७ | साह्यतत्त्व कौमुदी—सटीक              | ...   | २   |
| १८ | वैयाकरणभूषणसार                       | ...   | ॥०  |
| १९ | लीलावती                              | ...   | ॥०  |
| २० | बीजगणित                              | ...   | १   |
| २१ | शिशुपालबध—सटीक [ माघ ]               | ...   | ६   |
| २२ | किरातार्जुनीय—सटीक [ भारवि ]         | ...   | २॥  |
| २३ | कुमारसम्भव—पूर्वखण्ड सटीक            | ...   | १   |
| २४ | कुमारसम्भव—उत्तरखण्ड                 | ...   | ॥०  |
| २५ | अष्टकम् पाणिनीयम्                    | ...   | ॥॥  |
| २६ | वाचस्पत्यम् [ संस्कृत वृहदभिधान ]    | ...   | ६०  |
| २७ | कादम्बरी—सटीक                        | ..    | ४   |
| २८ | राजप्रशस्ति                          | ..    | =   |
| २९ | अनुमानचिन्तामणि तथा अनुमानदीधिति     | ...   | ४   |
| ३० | सर्वदर्शनसंग्रह                      | ...   | १   |
| ३१ | भामिनीविलास—सटीक                     | ...   | १   |
| ३२ | द्वितीयदेश—सटीक                      | ..... | १   |

• P. LOKNATHSHASTRI



वात्स्यायनमुनि कृत-भाष्य सहितम् ।

विश्वनाथ कृतटिप्पणि समेतम् ।

वि, ए, उपाधिवारिणा ।

श्रीजीवानन्द विद्यासागर-भट्टाचार्य्येण

संस्कृतम् ।

१६८२६  
 १५.८.५४

६६२  
 २९३६८१

कलिकातानगरे

662.2(3)



17426

सुप्रार-यन्त्रे मुद्रितम् ।

इं १५७४ ।



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

— ००० —

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

— ००० —

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

# न्यायदर्शनस्य सूचीपत्रम् ।

पृष्ठाङ्कः पङ्क्त्यङ्कः ।

|   |   |    |    |
|---|---|----|----|
| लोचरूपशास्त्रप्रयोजनकथनम्<br>पदार्थानामुद्देशश्च, | } | २  | १  |
| तत्त्वज्ञानाधीनक्रमसुक्तिस्वरूपम्,                |   | ४  | २५ |
| प्रमाणलक्षणं तद्विभागश्च,                         |   | ६  | १५ |
| प्रत्यक्षलक्षणम्                                  |   | ७  | ११ |
| अनुमानस्य लक्षणम् विभागश्च,                       |   | ८  | २५ |
| उपमानलक्षणम्                                      |   | ९  | २३ |
| शब्दलक्षणम्,                                      |   | १० | ६  |
| शब्दस्य विभागः,                                   |   | १० | ११ |
| प्रमेयस्य लक्षणम् विभागश्च,                       |   | १० | १७ |
| आत्मनिरूपणम्,                                     |   | ११ | ८  |
| शरीरनिरूपणम्,                                     |   | १२ | ७  |
| इन्द्रियविभागः                                    |   | १२ | ८  |
| भूतविभागः,  |   | १२ | १७ |
| अर्थस्य विभागः,                                   |   | १२ | २२ |
| बुद्धिलक्षणम्,                                    |   | १३ | १  |
| मनोनिरूपणम्,                                      |   | १३ | ७  |
| प्रवृत्तिलक्षणं तद्विभागश्च,                      |   | १३ | १४ |



# न्यायदर्शनस्य सूचीपत्रम् ।

पृष्ठाङ्कः मङ्गाङ्कः ।

|                              |    |    |
|------------------------------|----|----|
| दीपलक्षणम्,                  | १२ | १८ |
| प्रत्येकभावलक्षणम्,          | १४ | १  |
| फललक्षणम्,                   | १४ | ८  |
| दुःखलक्षणम्,                 | १४ | १४ |
| अपवर्गलक्षणम्,               | १४ | १८ |
| संशयस्य लक्षणं विभागश्च,     | १६ | १८ |
| प्रयोजनलक्षणम्,              | १७ | २० |
| दृष्टान्तलक्षणम्,            | १७ | २४ |
| सिद्धान्तलक्षणम्,            | १८ | ८  |
| सिद्धान्तविभागः,             | १८ | १२ |
| सर्वतन्त्रसिद्धान्तलक्षणम्,  | १८ | १६ |
| प्रतितन्त्रसिद्धान्तलक्षणम्, | १८ | २० |
| अधिकरणसिद्धान्तलक्षणम्,      | १८ | २  |
| अन्युपगमसिद्धान्तलक्षणम्,    | १८ | ११ |
| अवयवविभागः,                  | १८ | १७ |
| प्रतिज्ञालक्षणम्,            | २० | ८  |
| हेतुलक्षणम्,                 | २० | १२ |
| व्यतिरेकिहेतुलक्षणम्,        | २० | १७ |
| उदाहरणलक्षणम्,               | २० | २० |
| व्यतिरेकुदाहरणलक्षणम्,       | २१ | १० |
| उपनयलक्षणम्,                 | २१ | १४ |
| निगमनलक्षणम्,                | २२ | ८  |
| तर्कनिरूपणम्,                | २२ | १७ |

## न्यायदर्शनस्य सूचीपत्रम् ।

३

|                     | पृ० | प० |
|---------------------|-----|----|
| निर्णयनिरूपणम्,     | २४  | ३६ |
| वादलक्षणम्,         | २५  | ३६ |
| जल्पलक्षणम्,        | २६  | ३५ |
| वितण्डालक्षणम्,     | २७  | २  |
| हेत्वाभासविभागः,    | २७  | ३६ |
| सव्यभिचारलक्षणम्,   | २७  | ३८ |
| विरुद्धलक्षणम्,     | २८  | ६  |
| प्रकरणसमलक्षणम्,    | २८  | ३७ |
| बाध्यसमलक्षणम्,     | ३८  | ४  |
| अतीतकाललक्षणम्,     | २८  | ३१ |
| कललक्षणम्,          | ३०  | ३  |
| कलविभागः,           | ३०  | ६  |
| वाक्कललक्षणम्,      | ३०  | ८  |
| सामान्यकलनिरूपणम्,  | ३१  | ७  |
| उपचारकललक्षणम्,     | ३२  | १  |
| कलपूर्वपक्षः,       | ३२  | ३६ |
| तत्त्वमाधानम्,      | ३२  | २० |
| जातिलक्षणम्,        | ३३  | ६  |
| निग्रहस्थानलक्षणम्, | ३३  | ३२ |
| प्रथमाध्यायसमाप्तिः | ३३  | २४ |
| संशयपूर्वपक्षः,     | ३४  | ३  |
| संशयसिद्धान्तः,     | ३५  | ८  |
| प्रमाणपूर्वपक्षः,   | ३७  | ५  |



## ४ न्यायदर्शनस्य सूचीपत्रम् ।

|                              | पृ० | प० |
|------------------------------|-----|----|
| तत्समाधानम्,                 | ३८  | २३ |
| समाधानान्तरम्,               | ३८  | ३५ |
| पूर्वपक्षान्तरम्,            | ४१  | ६  |
| तत्समाधानम्,                 | ४१  | १६ |
| प्रत्यक्षलक्षणाक्षेपः,       | ४३  | ११ |
| तत्समाधानम्,                 | ४३  | ३८ |
| आक्षेपान्तरम्,               | ४३  | २३ |
| समाधानान्तरम्,               | ४४  | ५  |
| मनःसिद्धौ युक्तिः            | ४४  | ८  |
| प्रत्यक्षसिद्धान्तसूत्रम्,   | ४५  | ९  |
| सन्निकर्षाहेतुत्वशङ्का,      | ४५  | ८  |
| तत्समाधानम्,                 | ४५  | १६ |
| प्रत्यक्षस्यानुमितित्वशङ्का, | ४६  | ५  |
| तत्समाधानम्,                 | ४६  | १८ |
| अवयविपूर्वपक्षसूत्रम्,       | ४७  | २४ |
| तत्समाधानम्,                 | ४८  | १  |
| अवयवसिद्धान्तसूत्रम्,        | ४८  | २० |
| अनुमानपूर्वपक्षसूत्रम्,      | ५१  | ८  |
| तत्समाधानम्,                 | ५२  | ३५ |
| वर्तमानाक्षेपः,              | ५२  | १  |
| तत्समाधानम्,                 | ५३  | ३  |
| उपमानपूर्वपक्षसूत्रम्,       | ५४  | १  |
| तत्समाधानम्,                 | ५४  | ६  |

## न्यायदर्शनस्य सूचीपत्रम् ।

५

|                              | पृ० | प० |
|------------------------------|-----|----|
| उपमानस्यानुमानान्तर्भावमतम्, | ५४  | १२ |
| तत्त्वखण्डनम्,               | ५५  | ३  |
| शब्दपूर्वपक्षस्त्वम्,        | ५५  | ४  |
| तत्त्वसाधनम्,                | ५५  | १७ |
| वेदप्रामाण्याक्षेपः,         | ५७  | १४ |
| तत्त्वज्ञानतः                | ५८  | ३  |
| वेदवाक्यविभागः,              | ५८  | ३  |
| विधिलक्षणम्;                 | ५८  | ६  |
| अर्थवादविभागः,               | ५८  | ८  |
| अनुवादलक्षणम्,               | ५८  | २३ |
| वेदप्रामाण्ये युक्तिः,       | ६१  | ३  |
| प्रमाणचतुष्टयक्षेपः,         | ६२  | ११ |
| तत्त्वसाधनम्,                | ६३  | १  |
| शब्दानित्यसाधनम्,            | ६५  | २० |
| शब्दपरिणामसंशयः,             | ७४  | १७ |
| शब्दविकारनिराकरणम्,          | ७५  | १७ |
| शब्दविकारव्यवहारः,           | ७६  | ४  |
| पदनिरूपणम्,                  | ७७  | २० |
| पदार्थसंशयः,                 | ८०  | ११ |
| केवलव्यक्तिशक्तिखण्डनम्,     | ८१  | ३  |
| केवलजातिशक्तिमतखण्डनम्,      | ८१  | २० |
| केवलजातिशक्तिखण्डनम्,        | ८२  | १० |
| पदार्थनिरूपणम्,              | ८२  | १४ |



६

## न्यायदर्शनस्य सूचीपत्रम् ।

|                                   | पृ० | प० |
|-----------------------------------|-----|----|
| व्यक्तिलक्षणम्,                   | ८२  | २३ |
| आकृतिलक्षणम्,                     | ८३  | १  |
| जातिलक्षणम्,                      | ८३  | ८  |
| द्वितीयाध्यायसमाप्तिः             | ८३  | १२ |
| प्रमेयपरीक्षारम्भः,               | ८३  | १५ |
| तत्रापि इन्द्रियचैतन्यवाददूषणम्;  | ८४  | १  |
| शरीरात्मवाददूषणम्,                | ८५  | १४ |
| आक्षेपान्तरम्;                    | ८६  | १  |
| तत्समाधानम्;                      | ८६  | ६  |
| चक्षुरद्वैतप्रकरणम्,              | ८७  | ४  |
| तत्खण्डनम्,                       | ८७  | ७  |
| मनस आत्मत्वशङ्का,                 | ८८  | १८ |
| तत्खण्डनम्;                       | ८८  | २३ |
| आत्मनित्यत्वप्रतिपादनम्,          | ९०  | २१ |
| शरीरस्यैकभौतिकत्वकथनम्,           | ९४  | ३  |
| पार्थिवत्वे युक्तान्तरकथनम्;      | ९४  | १५ |
| इन्द्रियभौतिकत्वपरीक्षणम्;        | ९४  | २२ |
| इन्द्रियनानात्वपरीक्षणम्,         | १०० | १३ |
| अर्धपरीक्षणम्;                    | १०४ | २२ |
| बुद्धिप्रतियोगितासंशयः;           | १०८ | १८ |
| बुद्धिप्रतियोगितावादिसाङ्ख्यमतम्; | १०८ | ८  |
| तत्खण्डनम्;                       | १०८ | १४ |
| साङ्ख्यमतान्तरदूषणम्;             | ११० | ७  |

## न्यायदर्शनस्य सूचीपत्रम् ।

७

|  | पृ० | प० |
|--|-----|----|
| अयुगपद्व्यवहृणव्युत्पादनादि,                 | ११० | २२ |
| क्षणिकवादिभौगतशङ्काकथनम्;                    | ११२ | ५  |
| सौगतशङ्काससाधानम्;                           | ११२ | १६ |
| सौगतमतो साङ्ख्यद्रूपणम्;                     | ११३ | १६ |
| तन्त्रिराकरणादि;                             | ११३ | २२ |
| बुद्धेरात्मगुणत्वप्रकरणम्;                   | ११४ | २५ |
| बुद्धेरुत्पन्नापवर्गित्वकथनम्                | १२४ | २४ |
| बुद्धौ शरीरगुणत्वाभावस्य विशिष्यकथनम्;       | १२७ | १३ |
| मनःपरीक्षाप्रकरणम्;                          | १२८ | ४  |
| शरीरस्य तत्तत्पुरुषादृष्टनिष्पाद्यताप्रकरणम् | १३० | १५ |
| तृतीयाध्यायसमाप्तिः                          | १३६ | ८  |
| प्रवृत्तिपरीक्षा,                            | १३६ | १२ |
| दोषपरीक्षणम्,                                | १३६ | १५ |
| दोषाणां पक्षत्वयकथनम्,                       | १२७ | ३  |
| प्रेत्यभावसिद्धान्तः,                        | १३८ | १४ |
| उत्पत्तिप्रकारप्रदर्शनम्                     | १३८ | २१ |
| मून्यतोपादानप्रकरणम्;                        | १३८ | १६ |
| ब्रह्मपरिणामवादः,                            | १४० | २० |
| आकस्मिकत्वनिराकरणप्रकरणम्,                   | १४१ | १८ |
| प्रकरणं सर्वानित्यत्वनिराकरणप्रकरणम्,        | १४२ | ८  |
| सर्वानित्यत्वनिराकरणम्                       | १४३ | ४  |
| सर्वप्रथक्त्वनिराकरणप्रकरणम्,                | १४४ | १६ |
| सर्वमून्यतानिराकरणप्रकरणम्,                  | १४५ | १३ |



# ८ न्यायदर्शनस्य सूचीपत्रम् ।

|                                  | पृ० | प० |
|----------------------------------|-----|----|
| सङ्क्षेपकान्तवादनिराकरणप्रकरणम्  | १४७ | १५ |
| फलपरीक्षाप्रकरणम्,               | १४८ | ७  |
| दुःखपरीक्षा,                     | १५० | १३ |
| अप्रवर्गपरीक्षाप्रकरणम्,         | १५२ | ४  |
| तत्त्वज्ञानोत्पत्तिप्रकरणम्,     | १५८ | ४  |
| अवयविप्रकरणम्,                   | १५८ | ६  |
| निरवयवप्रकरणम्                   | १६२ | ११ |
| वाह्यार्थभङ्गनिराकरणप्रकरणम्     | १६४ | २० |
| तत्त्वज्ञानविष्टुडिप्रकरणम्,     | १६८ | ८  |
| चतुर्थीध्यायसमाप्तिः,            | १७१ | ३  |
| जातिविभागसूत्रम्                 | १७१ | ६  |
| साधर्म्यप्रवैधर्म्यसमलक्षणम्     | १७१ | १० |
| साधर्म्यसमादेरसदुत्तरत्वे बीजम्; | १७१ | १७ |
| जातिषट्कनिरूपणम्,                | १७२ | २५ |
| जातिषट्कासदुत्तरत्वबीजम्,        | १७३ | १५ |
| प्राप्तिप्राप्तिसमनिरूपणम्,      | १७३ | २३ |
| तयोरसदुत्तरत्वे बीजम्            | १७४ | ५  |
| प्रसङ्गप्रतिष्ठान्तसमनिरूपणम्    | १७४ | १० |
| प्रसङ्गसमोत्तरकथनम्,             | १७४ | १८ |
| प्रतिष्ठान्तसमोत्तरकथनम्,        | १७५ | ५  |
| अनुत्पत्तिप्रसमलक्षणम्,          | १७५ | ८  |
| तस्योत्तरम्,                     | १७५ | १४ |
| संबन्धसमनिरूपणम्                 | १७५ | १८ |

## नारायदर्शनस्य सूचीपत्रम् ।

८

|                            | पृ० | प० |
|----------------------------|-----|----|
| तत्त्वोत्तरम्,             | १७६ | १  |
| प्रकरणसमनिरूपणम्,          | १७६ | १० |
| प्रकरणसमोत्तरम्,           | १७६ | १७ |
| अहेतुसमप्रकरणम्            | १७७ | १  |
| अर्थापत्तिसमप्रकरणम्,      | १७७ | १५ |
| अविशेषसमप्रकरणम्,          | १७८ | ६  |
| उपपत्तिसमप्रकरणम्,         | १७८ | २४ |
| उपलब्धिसमप्रकरणम्,         | १७८ | ११ |
| अनुपलब्धिसमप्रकरणम्,       | १७८ | २३ |
| अनित्यसमप्रकरणम्,          | १८१ | १  |
| नित्यसमप्रकरणम्,           | १८१ | १८ |
| कार्यसमप्रकरणम्,           | १८२ | ११ |
| कथामासप्रकरणम्,            | १८२ | १६ |
| निग्रहस्थानविभागः,         | १८३ | १४ |
| प्रतिज्ञाहानिलक्षणम्,      | १८६ | ३  |
| प्रतिज्ञानरलक्षणम्,        | १८६ | ११ |
| प्रतिज्ञाविरोलक्षणम्,      | १८६ | २३ |
| प्रतिज्ञासन्नप्रासलक्षणम्, | १८७ | ५  |
| हेतुन्तरलक्षणम्,           | १८७ | १० |
| अर्थान्तरलक्षणम्,          | १८८ | १  |
| निरर्थकलक्षणम्,            | १८८ | ८  |
| अविज्ञातार्थलक्षणम्,       | १८८ | १३ |
| अपार्थक्यलक्षणम्,          | १८८ | १० |



१०

## नारायणदर्शनस्य सूचीपत्रम् ।

|                          | पृ० | प० |
|--------------------------|-----|----|
| अप्राप्तकालक्षणम्,       | १८६ | १  |
| भूगोलक्षणम्,             | १८६ | ४  |
| अधिकलक्षणम्,             | १८६ | ७  |
| पुनरुक्तलक्षणम्,         | १८६ | १० |
| अननुभाषणलक्षणम्,         | १८६ | २० |
| अज्ञानलक्षणम्,           | १८० | ४  |
| अप्रतिभालक्षणम्,         | १८० | ८  |
| विशेषलक्षणम्,            | १८० | ११ |
| भतानुज्ञालक्षणम्,        | १८० | १५ |
| पर्युयोज्यानुयोगलक्षणम्, | १८० | २० |
| निरनुयोज्यानुयोगलक्षणम्, | १८१ | ४  |
| अपसिद्धान्तलक्षणम्,      | १८१ | ८  |
| हेत्वाभाससूत्रम्,        | १८२ | १  |
| पञ्चमाध्यायसमाप्तिः,     | १८२ | ६  |

समाप्तम् ।

## न्यायदर्शनवाक्यायनभाष्यम् ।

ॐ नमः प्रमाणाय ।

प्रमाणतोऽर्थप्रतिपत्तौ प्रवृत्तिसामर्थ्यादर्थवत् प्रमाणम् । प्रमाणमन्तरेण नार्थप्रतिपत्तिः । नार्थप्रतिपत्तिमन्तरेण प्रवृत्तिसामर्थ्यम् । प्रमाणेन मूलत्वं ज्ञाताऽर्थसुपलभ्य तमर्थमभीप्सति जिहासति वा । तस्येप्साजिहासा प्रयुक्तस्य समीहा प्रवृत्तिरित्युच्यते सामर्थ्यं पुनरस्याः फलेनाभिसम्बन्धः । समीहमानस्तमर्थमभीप्सन् जिहासन् वा तमर्थमाप्नोति जिहासति वा । अर्थस्तु सुखं सुखहेतुः दुःखं दुःखहेतुश्च, सोऽयं प्रमाणाद्योऽपरिसङ्क्षेपः प्राणभृद्देस्यापरिसङ्क्षेपयत्वात् । अथेवति च प्रमाणे प्रमाता प्रमेयं प्रमितिरित्यर्थवन्ति भवन्ति, कस्मात् अन्यतमापायेऽर्थस्यानुपपत्तेः । तत्र यस्मिंश्चाजिहासाप्रयुक्तस्य प्रवृत्तिः स प्रमाता । स येनार्थं प्रमिष्येति तत् प्रमाणम् । योऽर्थः प्रतीयते तत् प्रमेयम् । यदर्थविज्ञानं सा प्रमितिः । चतसृषु चैवंविधास्वर्धतत्त्वं परिसमाप्यते । किं पुनस्तत्त्वम् । अतश्च सद्भावोऽसत्तासद्भावः । सत्यदिति गृह्यमाणं यथाभूतमविपरीतं तत्त्वम् भवति, असत्तासदिति गृह्यमाणं यथाभूतमविपरीतं तत्त्वम् भवति । कथमुत्तरस्य प्रमाणेनोपलब्धिरिति सत्यस्युपलभ्यमाने तदनुपलब्धेः प्रक्षेपवत्, यथा दर्शकेन दीपेन दृश्ये गृह्यमाणे तदिव यन्न गृह्यते तच्चास्ति । यद्यभविष्यदिदमिव व्यज्ञास्यत विज्ञानाभावाच्चास्तीति । एवं प्रमाणेन सति गृह्यमाणे तदिव यन्न गृह्यते तच्चास्ति यद्यभविष्यत् इदमिव व्यज्ञास्यत विज्ञानाभावाच्चास्तीति तदेवं सतः प्रकाशकं प्रकाशमसदपि प्रकाशयतीति । सच्च खलु षोडशधा बूदसुपदेक्ष्यते तासां खत्वासां सद्भिधानाम् ॥



प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयव-  
तर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजाति-  
निग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः ॥१॥

निर्द्देशे यथावचनं विग्रहः । चार्थे द्वन्द्वः समासः । प्रमाणादीनान्तत्त्व-  
मिति शैषिकी षष्ठी, तत्त्वस्य ज्ञानम् निःश्रेयससाधिगम इति कर्मणि  
षष्ठ्यौ, एतावन्तो विद्यमानार्थाः । एषामविपरीतज्ञानार्थमिहोपदेशः,  
सोऽयमनवयवेन तन्त्रार्थ उद्दिष्टो वेदितव्यः, आत्मादेः खलु प्रमेयस्य  
तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः । तच्चैतदुत्तररूढेणानूद्यत इति । हेयं  
तस्य निर्वर्तकं हानमात्रान्तिकं तस्योपायोऽधिगन्तव्य इत्येतानि चत्वार्थार्थ-  
पदानि सम्यगवुध्वा निःश्रेयसमधिगच्छति । तत्र संशयादीनां पृथग्-  
वचनमनर्थकम् संशयादयो यथासम्भवं प्रमाणेषु प्रमेयेषु चान्तर्भवन्तो न  
व्यतिरिच्यन्त इति, सत्यमेतत् इमास्तु चतस्रो विद्याः पृथक्प्रस्थानाः  
प्राणभूतामनुपहायोपदिश्यन्ते यासां चतुर्थीयमान्विचिकी न्यायविद्या ।  
तस्याः पृथक् प्रस्थानाः संशयादयः पदार्थाः । तेषां पृथग्वचनमन्तरेणा-  
ध्यातव्यविद्याभावात्तस्य स्यात् यथोपनिषदः । तस्मात् संशयादिभिः प-  
दार्थैः पृथक् प्रस्थाप्यते । तत्र नानुपलब्धे न निर्णीतेऽर्थे न्ययः प्रवर्तते,  
किन्तुर्हि संशयितेऽर्थे, यथोक्तं “विमृश्य पक्षप्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणं  
निर्णय इति,” विमर्शः संशयः । पक्षप्रतिपक्षौ न्यायप्रवृत्तिः । अर्थाव-  
धारणं निर्णयस्तत्त्वज्ञानमिति । स चायं किंस्विदिति वस्तुविमर्शमात्र-  
मनवधारणं ज्ञानं संशयः प्रमेयेऽन्तर्भवन्नेवमर्थमप्युच्यते । अथ प्रयो-  
जनम् । येन प्रयुक्तः प्रवर्तते तत् प्रयोजनम् । यमर्थमभीप्सन् विहा-  
सन् वा कर्मारभते तेनानेन सर्वे प्राणिनः सर्वाणि कर्माणि सर्वाश्च विद्या  
व्याप्ताः, तदाश्रयश्च न्यायः प्रवर्तते, कः पुनरयं न्यायः । प्रमाणैरर्थप्ररी-  
क्षणं न्यायः प्रत्यक्षागमाश्रितमनुमानं सान्वीक्षा प्रत्यक्षागमाभ्यामीचि-  
तस्यान्वीक्षमन्वीक्षा तथा प्रवर्तते इत्यान्वीचिकी न्यायविद्या न्याय-  
शास्त्रम् । यत्पुनरनुमानं प्रत्यक्षागमविरुद्धं न्यायाभासः स इति तत्र



## १ अध्याय १ आङ्गिकम् ।

३

वादजल्पौ सप्रयोजनौ, वितण्डा तु परीक्ष्यते वितण्डया प्रवर्तमानौ  
 वैतण्डिकः । सप्रयोजनमनुयुक्तौ यदि प्रतिपद्यते सोऽस्य पक्षः सोऽस्य  
 सिद्धान्त इति वैतण्डिकत्वं जहाति । अथ न प्रतिपद्यते नायं लौकिको  
 न परीक्षक इत्यापद्यते । अथापि परपक्षप्रतिषेधज्ञापनं प्रयोजनं  
 ब्रवीति, एतदपि तादृगेव । यो ज्ञापयति यो जानाति यच्च ज्ञायते  
 एतच्च प्रतिपद्यते यदि तदा वैतण्डिकत्वं जहाति । अथ न प्रतिपद्यते  
 परपक्षप्रतिषेधज्ञापनं प्रयोजनमित्येतदस्य वाक्यमनर्थकं भवति । वा-  
 क्यसमूहस्य स्थापनाङ्गीनो वितण्डा, तस्य यद्यभिधेयं प्रपिपद्यते सोऽस्य  
 पक्षः स्थापनीयो भवति । अथ न प्रतिपद्यते प्रलापमात्रमनर्थकं भवति  
 वितण्डात्वं निवर्तत इति । अथ दृष्टान्तः । प्रत्यक्षविषयोऽर्थः । यत्  
 लौकिकपरीक्षाकाणां दर्शनं न व्याहन्यते स च प्रमेयं तस्य पृथग्वचनञ्च  
 तदाश्रयावबुमानागमौ । तस्मिन् सति स्थातामनुमानागमावसति च न  
 स्थाताम् । तदाश्रया च न्यायप्रवृत्तिः । दृष्टान्तविरोधेन च परपक्षप्रति-  
 षेधो वचनीयो भवति दृष्टान्तसमाधिना च स्वपक्षः साधनीयो भवति,  
 नास्तिकश्च दृष्टान्तमभ्युपगच्छन्नास्तिकत्वं जहाति अथभ्युपगच्छन् किं  
 साधनः परमुपालभेतेति निरुक्तेन दृष्टान्तेन शक्यमभिधातुम् “साध्यसा-  
 धर्म्यात् तद्वर्त्मभावो दृष्टान्त उदाहरणं तद्विपरीताद्विपरीतमिति”  
 अस्मयमित्यनुज्ञायमानोऽर्थः सिद्धान्तः, स च प्रमेयं, तस्य पृथग्वचनम्,  
 सत्सु सिद्धान्तभेदेषु वादजल्पवितण्डाः प्रवर्तन्ते नातोऽन्यथेति साधनीया-  
 र्थस्य यावति शब्दसमूहे सिद्धिः परिसमाप्यते तस्य पञ्चावयवाः प्रतिज्ञा-  
 दयः समूहमपेक्ष्यावयवा उच्यन्ते । तेषु प्रमाणसमवाय आगमः प्रतिज्ञा,  
 हेतुरनुमानम्, उदाहरणं प्रत्यक्षं, उपनयनमुपमानम्, सर्वेषामेकार्थ-  
 समवाये सामर्थ्यप्रदर्शनं निगमनमिति सोऽयं परमो न्याय इति एतेन  
 वादजल्पवितण्डाः प्रवर्तन्ते नातोऽन्यथेति तदाश्रया च तत्त्वव्यवस्था ।  
 ते चैतेऽवयवाः शुद्धविशेषाः सन्तः प्रमेयेऽन्तर्भूता एवमर्थम् पृथगुच्यन्त  
 इति । तर्को न प्रमाणसङ्गहीतो न प्रमाणान्तरम् प्रमाणानामनुग्राहक-  
 स्तत्त्वज्ञानाय कल्याते, तस्योदाहरणं किमिदं जन्म कृतकेन हेतुना निव-  
 र्त्यते आहोस्विदकृतकेन अथाकाङ्क्षिकमिति एवमविज्ञतेऽर्थे कारणोप-



पक्षा जहः प्रवर्तते यदि कृतकेन हेतुना निवर्त्यते हेतुच्छेदादुप-  
पन्नोऽयं जन्मोच्छेदः । अथाकृतकेन हेतुना ततो हेतुच्छेदस्याशक्यत्वा-  
दनुपपन्नोऽयं जन्मोच्छेदः । अथाकस्मिन्मतोऽकस्मान्निवर्त्यमानं न पुन-  
र्निवर्त्यतीति निवृत्तिकारणं नोपपद्यते तेन जन्मानुच्छेद इति । एत-  
स्मिन्तर्कविषये कर्मनिमित्तं जन्मोति प्रमाणानि वर्तमानानि तर्केणानु-  
गृह्यन्ते तत्त्वज्ञानविषयस्य विभागात्तत्त्वज्ञानाय कल्प्यते तर्क इति ।  
सोऽयमित्यम् भूतस्तर्कः प्रमाणसहितो वादे साधनायोपालम्भाय वाऽयस्य  
भवतीत्येवमर्थमृथगुच्यते प्रमेयान्तर्भूतोऽपीति, निर्णयस्तत्त्वज्ञानम् प्रमा-  
णानां फलम्, तदवसानो वादः, तस्य पालनार्थं जल्पवितण्डे, तावेतौ तर्क-  
निर्णयौ लोकयात्रां बहूत इति सोऽयं निर्णयः प्रमेयान्तर्भूत-एवमर्थम्  
पृथगुद्दिष्ट इति । वादः खलुः नानाप्रवक्तृकः प्रत्यधिकरणसाधनोऽन्य-  
तराधिकरणनिर्णयावसानो वाक्यसमूहः पृथगुद्दिष्ट-उपलक्षणार्थम्, उप-  
लक्षितेन व्यवहारस्तत्त्वज्ञानाय भवतीति तद्विशेषौ जल्पवितण्डे तत्त्वा-  
ध्यवसायसंरक्षणार्थमित्युक्तम् । निग्रहस्यानेक्यः पृथगुद्दिष्टा हेत्वाभासा-  
वादे चोदनीया भविष्यन्तीति, जल्पवितण्डयोस्तु निग्रहस्थानानीति  
छलजातिनिग्रहस्थानानाम् पृथगुपदेश-उपलक्षणार्थ इति । उपलक्षि-  
तानां स्ववाक्ये परिवर्जनम् । छलजातिनिग्रहस्थानानाम् परवाक्ये  
पर्यनुयोगः । जातेषु परेण प्रयुज्यमानायाः सुलभः समाधिः स्वयञ्च सुकरः  
प्रयोग इति । सेयमान्वीक्षिकी प्रमाणादिभिः पदार्थैर्विभज्यमाना  
“प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम् । आश्रयः सर्वधर्माणां  
विद्योद्देशे प्रकीर्त्तिता” तदिदं तत्त्वज्ञानं निःश्रेयसाधिगमार्थं यथाविद्यं  
वेदितव्यम् । इहत्वध्वात्मविद्यायामात्मादितत्त्वज्ञानम्, निःश्रेयसाधि-  
गमोऽपवर्गप्राप्तिः । तत् खलु निःश्रेयसं किन्तत्त्वज्ञानानन्तरमेव भवति  
नेत्युच्यते किन्निर्हि तत्त्वज्ञानात् ॥ १ ॥

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरा-  
पाये तदनन्तरापायादपवर्गः ॥ २ ॥



## १ अध्याये १ अङ्गिकम् ।

५

तत्तात्माद्यपवर्गपर्यन्तप्रमेये मिथ्याज्ञानमनेकप्रकारकं वर्त्तते आ-  
त्मनि तावन्नास्तीति अनात्मन्यात्मेति दुःखे सुखमिति अनित्ये नित्य-  
मिति अत्राणे त्राणमिति सभये निर्भयमिति जुगुप्सितेऽभिमतामिति  
हातव्येऽप्रतिहातव्यमिति प्रवृत्तौ नास्ति कर्म, नास्ति कर्म-फलमिति  
दोषेषु नायं दोषनिमित्तः संसार इति प्रेत्यभावे नास्ति जन्तुर्जीवो वा  
रुक्च आत्मा वा यः प्रेयात् प्रेत्यच भवेदिति । अनिमित्तं जन्म । अनि-  
मित्तो जन्मोपरम इत्यादिमान् प्रेत्यभावोऽनन्तश्चेति नैमित्तिकः सच्च  
कर्मनिमित्तः प्रेत्यभाव इति । देहेन्द्रियबुद्धिवेदनासन्तानोच्छेदप्रतिस-  
न्धानाभ्यां निरात्मकः प्रेत्यभाव इति । अपवर्गो भीष्मः । स खल्वयं सर्व-  
कार्योपरमः सर्वविप्रयोगेऽपवर्गे वृद्ध च भद्रकं लुप्यत इति कथं बुद्धि-  
मान् सर्वसुखोच्छेदमचैतन्यमसुमपवर्गं रोचयेदिति । एतस्मान्मिथ्या-  
ज्ञानादनुकूलेषु रागः प्रतिकूलेषु द्वेषः रागद्वेषाधिकाराच्चासूयेर्ष्यामा-  
यालोभादयो दोषा भवन्ति । दोषैः प्रयुक्तः शरीरेण प्रवर्त्तमानो हिंसा-  
स्तेयप्रतिषिद्धमैथुनान्याचरति वावाऽनृतपरुषसूचनसम्बद्धानि मनसा  
परद्रोहं परद्रव्याभीष्टां नास्तिक्यञ्चेति सेयं प्राप्तात्मिका प्रवृत्तिरधर्माय ।  
अथ शूभा शरीरेण दानं परित्यागं परिचरणञ्च । वाचा सत्यं हितं  
प्रियं स्वाध्यायञ्चेति । मनसा दयामसृहां अज्ञाञ्चेति सेयं धर्माय । अत्र  
प्रवृत्ति साधनौ धर्माधर्मौ प्रवृत्तिशब्देनोक्तौ । यथाऽन्नसाधनाः प्राणाः ।  
“अन्नं वै प्राणिनः प्राणा इति” । सेयं कुत्सितस्वाभिपूजितस्य च जन्मनः  
कारणम्, जन्म पुनः शरीरेन्द्रिय-बुद्धीनां निकायविशिष्टः प्रादुर्भावः ।  
तस्मिन् सति दुःखम्, तत्पुनः प्रतिकूलवेदनीयम् बाधना पीडा ताप  
इति । इमे मिथ्याज्ञानादयो दुःखान्ता धर्मा अविच्छेदेनैव प्रवर्त्तमानाः  
संश्रर इति । यदा तु तत्त्वज्ञानान्मिथ्याज्ञानमपैति तदा मिथ्याज्ञानापाये  
दोषा अपयन्ति दोषापाये प्रवृत्तिरपैति प्रवृत्त्यपाये जन्मापैति जन्मा-  
पाये दुःखमपैति दुःखापाये चात्यन्तिकोऽपवर्गो निःश्रेयसमिति । तत्त्व-  
ज्ञानान्तं खलु मिथ्याज्ञानविपर्ययेण व्याख्यातम्, आत्मनि तावदस्तीति  
अनात्मन्यात्मेति एवं दुःखेऽनित्येऽत्राणे सभये जुगुप्सिते हातव्ये च यथा-  
विषयं वेदितुम्यम्, प्रवृत्तौ अस्ति कर्म अस्ति कर्मफलमिति दोषेषु दोष-



६

## न्यायदर्शनवाक्यायनभाष्ये

निमित्तोऽयं संसार इति । प्रेत्यभावे खल्वस्ति जन्तुर्जीवः सत्त्व आत्मा-  
 वा यः प्रेत्य भवेदिति । निमित्तवज्जन्तु निमित्तवान् जन्मोपरम-इत्यनादिः  
 प्रेत्यभावोऽपवर्गान्त-इति नैमित्तिकः सन् प्रेत्यभावः प्रवृत्तिनिमित्त इति  
 सात्मकः सन् देहेन्द्रियबुद्धिवेदनासन्तानोच्छेदप्रतिसंस्थानाभ्यां प्रवर्त्तत  
 इति । अपवर्गः शान्तः खल्वयं सर्वविप्रयोगः सर्वोपरमोऽपवर्गः । वज्र  
 च कच्छं घोरं पापकं लुप्यत इति कथं बुद्धिमान् सर्वदुःखोच्छेदं  
 सर्वदुःखासंविदपवर्गं न रोचयेदिति । तद्यथा मधुविपसंष्टक्ताक्षमना-  
 देयमिति एवं सुखं दुःखानुपक्तमनादेयमिति । त्रिविधा चास्य शास्त्रस्य  
 प्रवृत्तिः । उद्देशो लक्षणं परीक्षा चेति, तत्र नामधेयेन पदार्थभाव-  
 खाभिधानमुद्देशः, ततोद्दिष्टस्याऽतत्त्वव्यवच्छेदको धर्मो लक्षणम् लक्षि-  
 तस्य यथा लक्षणमुपपद्यते नवेति प्रमाणैरवधारणं परीक्षा, ततोद्दि-  
 ष्टस्य प्रविभक्तस्य लक्षणमुच्यते यथा प्रमाणानां प्रमेयस्य च, उद्दिष्टस्य  
 लक्षितस्य च विभागवचनं यथा कलस्य वचनविधातोऽर्थविकल्पोपपत्त्या  
 कलम् तत् त्रिविधमिति अथोद्दिष्टस्य विभागवचनम् ॥

## प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि ॥ ३ ॥

अक्षस्याक्षस्य प्रतिविपयं वृत्तिः प्रत्यक्षम् । वृत्तिस्तु सन्निकर्षो  
 ज्ञानं वा यदा सन्निकर्षस्तदा ज्ञानं प्रमितिः यदा ज्ञानं तदा ज्ञानोपा-  
 दानोपेक्षाबुद्धयः फलम् । अनुमानम् । मितेन लिङ्गेनार्थस्य पश्चान्मान-  
 मनुमानम् । उपमानं साहचर्यज्ञानम् यथा गौरेवं गवय इति, साहचर्यन्तु  
 सामान्ययोगः । शब्दः शब्दयुक्तेऽनेनार्थ इत्यभिधीयते ज्ञाप्यते उपलब्धि-  
 साधनानि प्रमाणानीति समाख्यानिर्वचनसामर्थ्याद्बोद्धव्यम्, प्रमोयते-  
 ऽनेनेति करणार्थाभिधानो हि प्रमाणशब्दस्तद्विशेषसमाख्या या अपि  
 तथैव व्याख्यानम् । किं पुनः प्रमाणानि प्रमेयमभिसंभवन्ते अथ प्रमेयं  
 व्यवतिष्ठन् इत्युभयथा दर्शनम् । अस्यात्मेत्याप्तोपदेशात् प्रतीयते तत्रा-  
 नुमानमिच्छाहेतुप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति । प्रत्यक्षं युञ्जा-  
 नस्य योगसमाधिजमात्ममनसोः संयोगविशेषादात्मा प्रत्यक्ष इति, अग्नि-



## १ अध्याये १ आह्निकम् ।

१०

राप्तोपदेशात् प्रतीयते अत्राग्निरिति, प्रत्यासीदता धूमदर्शनेनानुमीयते ।  
 प्रत्यासन्नेन च प्रत्यक्षत उपलभ्यते, व्यवस्था पुनरग्नौत्वं जुहुयात्  
 स्वर्गकाम इति । लौकिकस्य स्वर्गे न लिङ्गदर्शनं न प्रत्यक्षम् । अनयितु-  
 शब्दे व्युत्पाद्ये शब्दहेतोरनुमानम् तत्र न प्रत्यक्षं नागमः, पाणौ प्रत्यक्षत  
 उपलभ्यमाने नानुमानं नागम इति । सावेयं प्रमितिः प्रत्यक्षपरा,  
 जिज्ञासितमर्थमाप्नोपदेशात् प्रतिपद्यमानो लिङ्गदर्शनेनापि बुभुक्षते ।  
 लिङ्गदर्शनानुमितञ्च प्रत्यक्षतो दिदृक्षते, प्रत्यक्षत उपलब्धेऽर्थे जिज्ञासा  
 निवर्त्तते । पूर्वोक्तमुदाहरणम् अग्निरिति प्रमातुः प्रमातव्येऽर्थे प्रमा-  
 णानां संङ्करोऽभि संभवः । असङ्करो व्यवस्येति अथ विभक्तानां लक्षण-  
 वचनमिति ॥

## इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्य- भिचारि व्यवसायात्मकम् प्रत्यक्षम् ॥ ४ ॥

इन्द्रियसार्थेन सन्निकर्षादुत्पद्यते यत् ज्ञानं तत् प्रत्यक्षम् । न तर्ही-  
 दानीमिदं भवति आत्मा मनसा संयुज्यते मन इन्द्रियेण इन्द्रियमर्थेनेति,  
 नेदं कारणावधारणमेतावत् प्रत्यक्षे कारणमिति किन्तु विशिष्टकारण-  
 वचनमिति यत्प्रत्यक्षज्ञानस्य विशिष्टकारणं तदुच्यते, यत्तु समानमनु-  
 मानादिज्ञानस्य न तन्निवर्त्तत इति । मनसस्तर्हीन्द्रियेण संयोगो वक्तव्यः ।  
 भिद्यमानस्य प्रत्यक्षज्ञानस्य नायं भिद्यत इति समानत्वान्नोक्त इति याव-  
 दर्थं वै नामधेयशब्दास्तरर्थसंप्रत्ययः अर्थसम्प्रत्ययाच्च व्यवहारः । तत्रेदमि-  
 न्द्रियार्थसन्निकर्षादुत्पन्नमर्थज्ञानं रूपमिति वा रस इत्येवं वा भवति, रूप-  
 रसशब्दाश्च विषयनामधेयम् । तेन व्यपदिश्यते ज्ञानं रूपमिति जानीते  
 रस इति जानीते नामधेयशब्देन व्यपदिश्यमानं सत् शब्दम् प्रसज्यते अत-  
 आहाव्यपदेश्यमिति । यदिदमनुपयुक्ते शब्दार्थसम्बन्धेऽर्थज्ञानं तन्नामधे-  
 यशब्देन व्यपदिश्यते, गृहीतेऽपि च शब्दार्थसम्बन्धेऽस्याऽयं शब्दो नाम-  
 धेयमिति यदातु सोऽर्थो गृह्यते तदा तत् पूर्वसादर्थ्यज्ञानान्न विशिष्यते  
 तदर्थविज्ञानं तादृगेव भवति तस्य त्वर्थज्ञानस्यान्यः समाख्याशब्दो नास्ति



येन प्रतीयमानो व्यवहाराय कल्पेत न चाप्रतीयमानेन व्यवहारः ।  
 तस्याज्ञेयस्वार्थस्य संज्ञाशब्देनेतिकरणयुक्तेन निर्दिश्यते रूपमिति ज्ञानं  
 रस इति ज्ञानमिति तदेवमर्थज्ञानकाले स न समाख्याशब्दो व्याप्रियते  
 व्यवहारकाले तु व्याप्रियते, तस्मादशाब्दमर्थज्ञानमिन्द्रियार्थसन्निकर्षो-  
 त्पन्नमिति । ग्रीष्मे मरीचयो भौमेनोष्णसंस्पृष्टः स्पन्दमाना दूरस्थस्य  
 चक्षुषा सन्निकल्पन्ते बलेन्द्रियार्थसन्निकर्षादुदकमिति ज्ञानमुत्पद्यते तच्च  
 प्रत्यक्षम् प्रसज्यत इत्यत आह अव्यभिचारोति यदतस्मिंस्तदिति तद्व्यभि-  
 चारि, यत्तु तस्मिंस्तदिति तदव्यभिचारि प्रत्यक्षमिति । दूराच्चक्षुषा  
 ह्ययमर्थं पश्यन्नावधारयति धूम इति वा, रेणुरिति वा वदेत् तदिन्द्रि-  
 यार्थसन्निकर्षोत्पन्नमनवधारणज्ञानम् प्रत्यक्षमप्रसज्यत इत्यत आह व्यव-  
 सायात्मकमिति, तच्चैतन्मन्त्रव्यम् आत्ममनःसन्निकर्षजमेवानवधारण-  
 ज्ञानमिति । चक्षुषा ह्ययमर्थं पश्यन्नावधारयति तथाचेन्द्रियेणोपलब्ध-  
 मर्थं मनसोपलभते एवमिन्द्रियेणानवधारयन् मनसा नावधारयति यच्चै-  
 तदिन्द्रियानवधारणपूर्वकं मनसाऽनवधारणं तद्विशेषापेक्षं विमर्शमात्रं  
 संशयोपपूर्वमिति सर्वत्र प्रत्यक्षविषये ज्ञातुरिन्द्रियेण व्यवसायः पश्चात्  
 मनसाऽनुव्यवसायः उपहृतेन्द्रियाणामनुव्यवसायाऽभावादिति । आत्मा-  
 दिषु सुखादिषु च प्रत्यक्षलक्षणं वक्तव्यम् अनिन्द्रियार्थसन्निकर्षजं हि  
 वदिति, इन्द्रियस्य वै सतो मनस इन्द्रियेभ्यः पृथगुपदेशो धर्मभेदात् ।  
 भौतिकानीन्द्रियाणि नियतविषयाणि । सगुणानाञ्चैषामिन्द्रियभाव  
 इति । मनस्त्वभौतिकं सर्वविषयञ्च नास्य सगुणस्येन्द्रियभाव इति सति  
 चैन्द्रियार्थसन्निकर्षे सन्निकर्षमसन्निकर्षं चास्य युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिकारणं  
 वक्ष्याम इति । मनसश्चैन्द्रियभावान्न वाच्यं लक्षणान्तरमिति । तेन्वा-  
 न्तरसमाचाराच्चैतत् प्रत्येतव्यमिति परमतमप्रतिषिद्धमनुमतमिति हि  
 तन्त्रयुक्तिः ॥ व्याख्यातम् प्रत्यक्षम् ॥

अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानम् पूर्ववच्छे-  
 षवत् सामान्यतो दृष्टञ्च ॥ ५ ॥

तत्पूर्वकमित्यनेन लिङ्गलिङ्गिनोः सम्बन्धदर्शनम् लिङ्गदर्शनञ्चाभिसम्ब-



## १ अध्याये १ आह्निकम् ।

६

ध्यते लिङ्गलिङ्गिनोः सम्बन्धयोर्दर्शनेन लिङ्गस्मृतिरभिसन्ध्यते स्मृत्या लिङ्ग-  
दर्शनेन चाप्रत्यक्षोऽर्थोऽनुमीयते । पूर्ववदिति यत्र कारणेन कार्यमनु-  
मीयते । यथा मेघोन्नत्या भविष्यति वृष्टिरिति । शेषवत्तत् यत्र कार्येण  
कारणमनुमीयते पूर्वादकविपरीतसुदकं नद्याः पूर्णत्वं शीघ्रत्वञ्च दृष्ट्वा  
स्रोतसोऽनुमीयते भूता वृष्टिरिति, सामान्यतो वृष्टं ब्रज्यापूर्वकमन्यत्र  
वृष्टस्यान्यत्र दर्शनमिति तथाचादित्यस्य तस्मादस्यप्रत्यक्षाद्यादित्यस्य ब्र-  
ज्येति । अथ वा पूर्ववदिति यत्र यथा पूर्वं प्रत्यक्षभूतयोरन्यतरदर्शने-  
नान्यतरस्याप्रत्यक्षस्थानुमानम् । यथा धूमेनाग्निरिति । शेषवन्नाम परि-  
शेषः स च प्रसक्तप्रतिषेधेऽन्यत्वाप्रसङ्गाच्छिष्यमाणे सम्प्रत्ययः यथा सद-  
नित्यमित्येवमादिना द्रव्यगुणकर्मणामविशेषेण सामान्यविशेषसमवायेभ्यो  
निर्भक्तस्य शब्दस्य तस्मिन् द्रव्यकर्मगुणसंशये न द्रव्यमेकद्रव्यत्वात् न कर्म  
शब्दान्तरहेतुत्वात् यस्तु शिष्यते सोऽयमिति शब्दस्य गुणत्वप्रतिपत्तिः ।  
सामान्यतो वृष्टं नाम यत्राप्रत्यक्षे लिङ्गलिङ्गिनोः सम्बन्धे केनचिदर्धेन  
लिङ्गस्य सामान्यादप्रत्यक्षो लिङ्गी गम्यते यथेच्छादिभिरात्मा इच्छादयो  
गुणाः गुणाश्च द्रव्यसंस्थानाः तद्यदेषां स्थानं स आत्मेति विभागवचनादे-  
तत् त्रिविधमिति सिद्धे त्रिविधवचनम् महतो महाविषयस्य न्यायस्य लवी-  
यसा सूत्रेणोपदेशात् परं वाक्यलाघवं मन्यमानस्यान्नस्मिन् वाक्यलाघवेऽ-  
नादरः तथाचायमित्यम्भूतेन वाक्यविवक्षेन प्रवृत्तः सिद्धान्ते क्वले शब्दा-  
दिषु च वज्रलं समाचारः शास्त्रे इति सद्विषयञ्च प्रत्यक्षं सदसद्विषयज्ञा-  
नुमानम्, कस्मात् त्रैकाल्यग्रहणात् त्रिकालयुक्ता अर्था अनुमानेन गृह्यन्ते  
भविष्यतीत्यनुमीयते भवतीति चाभूदिति च असञ्च खल्वतीतमनागत-  
ञ्चेति । अथोपमादम् ॥

प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम् ॥ ६ ॥

प्रज्ञातेन सामान्यात् प्रज्ञापनीयस्य प्रज्ञापनमुपमानमिति । यथा गौ-  
रेवं गवय इति, किं पुनरत्रोपमानेन क्रियते यदा खल्वयं गवासमानधर्मं  
प्रतिपद्यते तदा प्रत्यक्षतस्तमर्थं प्रतिपद्यत इति समाख्यासम्बन्धप्रति-  
पत्तिरुपमानार्थ इत्याह । यथा गौरेवं गवय इत्युपमाने प्रयुक्ते गवा



समानधर्ममर्थमिन्द्रियार्थसन्निकर्षादुपलभमानोऽस्य गवयशब्दः संज्ञेति संज्ञा  
संज्ञिसम्बन्धं प्रतिपद्यत इति । यथा सुहस्तया सुहस्यणी ययामापस्तया  
मापयणीत्युपमाने प्रयुक्ते उपमानात् संज्ञासङ्गिसम्बन्धं प्रतिपद्यमानस्ता-  
मोषधीं भेषज्यायाहरति एवमन्योऽप्युपमानस्य लोके विषयो बुभुत्सितव्य  
इति । अथ शब्दः ॥

### आप्तोपदेशः शब्दः ॥ ७ ॥

आप्तः खलु साक्षात् कृतधर्मा यथादृष्ट्यार्थस्य चित्ख्यापयिषया प्रयुक्तं  
उपदेष्टा साक्षात्करणमर्थस्याप्तिस्तया प्रवर्त्तत इत्याप्तः ऋष्यार्थश्चेच्छानां  
समानं लक्षणम् । तथा च सर्वेषां व्यवहाराः प्रवर्त्तन्त इति । एवमेभिः  
प्रमाणैर्देवमनुष्यतिरश्चं व्यवहाराः प्रकल्पन्ते नातोऽन्यथेति ॥

### स द्विविधो दृष्टादृष्टार्थत्वात् ॥ ८ ॥

यस्येह दृश्यतेऽर्थः स दृष्टार्थः यस्यासुख प्रतीयते सोऽदृष्टार्थः एवमपि  
लौकिकवाक्यानां विभाग इति । किमर्थं पुनरिदमुच्यते स न मन्येत  
दृष्टार्थेवाप्तोपदेशः प्रमाणम् अर्थस्यावधारणादिति । अदृष्टार्थोऽपि प्रमा-  
णमर्थस्यानुमानादिति । किं पुनरनेन प्रमाणेनार्थजातं प्रमातव्यमिति  
तदुच्यते ॥

### आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनः प्रवृत्तिदोषप्रेत्य- भावफलदुःखापवर्गास्तु प्रमेयम् ॥ ९ ॥

तत्तात्मा सर्वस्य दृष्टा, सर्वस्य भोक्ता, सर्वज्ञः, सर्वानुभावो, तस्य  
भोगायतनं शरीरम् । भोगसाधनानीन्द्रियाणि भोक्तव्या इन्द्रियार्थाः  
भोगो बुद्धिः । सर्वार्थोपलब्धौ नेन्द्रियाणि प्रभवन्तीति सर्वविषयमनः  
करणं मनःशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिसुखवेदनानां निवृत्तिकारणम्, प्रवृत्तिर्दो-  
षाश्च नास्त्य, इदं शरीरमपूर्वमनुत्तरञ्च, पूर्वशरीराणामादिर्नास्ति उत्त-  
रेषामपवर्गोऽन्त इति प्रेत्यभावः । ससाधनसुखदुःखोपभोगः फलम् । दुःख-  
मिति नेदमनुकूलवेदनीयस्य सुखस्य प्रतीतेः प्रत्याख्यानम्, किन्तर्हि



## १ अध्याये १ आह्निकम् ।

११

अन्नं एवेदम्, सुखसाधनस्य दुःखानुपपन्नादः खेनाविप्रयोगाद्विविधवा-  
धनायोगाद्दुःखमितिसमाधिभावनमुपदिश्यते, समाहितो भावयति, भाव  
यन्निर्विद्यते, निर्विषयस्य वैराग्यम्, विरक्तस्यापवर्ग इति जन्ममरण-  
प्रबन्धोच्छेदः सर्वदुःखप्रहाणमपवर्ग इति । अस्यन्यदपि द्रव्यगुणकर्मसा-  
मान्यविशेषसमवायाः प्रमेयम् तद्वेदेन चाऽपरिसङ्ख्येयम् । अस्य तु तत्त्व-  
ज्ञानादपवर्गः मिथ्याज्ञानात् संसार इत्यत एतदुपदिष्टं विशेषेणेति ।  
तत्वात्मा तावत् प्रत्यक्षतो न गृह्यते स किमाप्नोपदेशमात्मादेव प्रतिपद्यत  
इति नेत्युच्यते अनुमानाच्च प्रतिपत्तव्य इति कथम् ॥

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्ग-  
मिति ॥ १० ॥

यज्जातीयस्यार्थस्य सन्निकर्षात् सुखमात्मोपलब्धवान् तज्जातीय-  
मेवार्थं पश्यन्नुपादातुमिच्छति सेयमादातुमिच्छा एकस्यानेकार्थदर्शिनो  
दर्शनप्रतिसम्मानाद् भवति लिङ्गमात्मनः, नियतविषये हि बुद्धिभेदमात्रे न  
सम्भवति देहान्तरवदिति । एवमेकस्यानेकार्थदर्शिनो दर्शनप्रतिसम्मा-  
नादः खहेतौ द्वेषः यज्जातीयो यस्यार्थः सुखहेतुः प्रसिद्धस्तज्जातीयमर्थ-  
स्यश्चन्नादातुम् प्रयतते सोऽयम् प्रयत्न एकमनेकार्थदर्शिनं दर्शनप्रति-  
सम्भातारमन्तरेण न स्थात् नियतविषये बुद्धिभेदमात्रे न सम्भवति देहा-  
न्तरवदिति एतेन दुःखहेतौ प्रयत्नो व्याख्यातः । सुखदुःखसृष्ट्या चायं  
तत्साधनमाददानः सुखमुपलभते दुःखमुपलभते सुखदुःखे वेदयते पूर्वो-  
क्त एव हेतुः, बुभुक्षमानः स्वल्पं विष्टयति किंस्विदिति विष्टयन्  
जानीते इदमिति तदिदं ज्ञानं बुभुक्षाविमर्शाभ्यामभिन्नकर्तृकं गृह्य-  
माणमीतलिङ्गम् पूर्वोक्त एव हेतुरिति । तत्र देहान्तरवदिति विभज्यते ।  
यथाऽनात्मवादिनो देहान्तरेषु नियतविषया बुद्धिभेदा न प्रतिसम्बीयन्ते  
तथैकदेहविषया अपि न प्रतिसम्बीयेरन् अविशेषात्, सोऽयमेकसत्त्वस्य  
समाचारः स्वयं दृष्टस्य स्मरणं नान्यदृष्टेति एवं खलु नानासत्त्वानां  
समाचारोऽन्यदृष्टमन्ये न स्मरन्तीति । तदेतदुभयसंशयमनात्मवादिना  
व्यवस्थापयितुमिति एवमुपपन्नमस्यात्मेति । तस्य भोगाधिष्ठानम् ॥



## चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम् ॥ ११ ॥

कथं चेष्टाश्रयः । ईक्षितं जिहासितं वाऽर्थमधिकृत्येसाजिहासाप्रयुक्तस्य तदुपायानुष्ठानलक्षणा समीहा चेष्टा सा यत्नवर्त्तते तच्छरीरम् । अस्मिन्द्रियाश्रयः । यस्यानुग्रहेणानुगृहीतानि उपघाते चोपहृतानि स्वविषयेषु साध्वसाधुषु वर्त्तन्ते स एषामाश्रयस्तच्छरीरम्, कथमर्थाश्रयः यस्मिन्नायतने इन्द्रियार्थसन्निकर्षा दुत्पन्नयोः सुखदुःखयोः प्रतिबंधेदनं प्रवर्त्तते स एषामाश्रयस्तच्छरीरमिति । भोगसाधनानि पुनः ॥

## प्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्राणीन्द्रियाणि भूतेभ्यः ॥ १२ ॥

जिघ्रत्यनेनेति प्राणं गन्धं गृह्णातीति, रसयत्यनेनेति रसनं रसं गृह्णातीति । चष्टेऽनेनेति चक्षु रूपं पश्यतीति, स्पृशत्यनेनेति स्पर्शनम् त्वक्स्थानमिन्द्रियं त्वक् तदुपचारः स्थानादिति । शृणोत्यनेनेति श्रोत्रं शब्दं गृह्णातीति एवं समाख्यानिर्वचनसामर्थ्याद्बोध्यम् स्वविषयग्रहणलक्षणानीन्द्रियाणीति । भूतेभ्य इति नानाप्रकृतीनामेषां सतां विषयनियमो नैकप्रकृतीनां सति च विषय नियमे स्वविषयग्रहणलक्षणत्वं भवतीति । कानि पुनरिन्द्रियकारणानि ॥

## पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशमिति भूतानि ॥ १३ ॥

संज्ञाशब्दैः पृथगुपदेशो भूतानां विभक्तानां सुवचं कार्यम्भविष्यतीति । इमे तु खलु ॥

## गन्धरसरूपस्पर्शशब्दाः पृथिव्यादिगुणास्तदर्थः ॥ १४ ॥

पृथिव्यादीनां यथाविनियोगं गुणा इन्द्रियाणां यथाक्रममर्था विषया इति । अचेतनस्य करणस्य बुद्धेर्ज्ञानं वृत्तिः चेतनस्याकर्तृरूपलब्धिरिति युक्तिविषयमर्थं प्रत्याचक्षाणक इवेदमाह ॥

## बुद्धिरूपलब्धिज्ञानमित्यनर्थान्तरम् ॥ १५ ॥

नाचेतनस्य करणस्य बुद्धेर्ज्ञानं भवितुमर्हति तद्वि चेतनं स्यात्  
एकस्यायं चेतनो देहेन्द्रियसङ्घातव्यतिरिक्त इति प्रमेयलक्षणां र्थस्याऽपि  
वाक्यस्यान्यार्थप्रकाशनमुपपत्तिसामर्थ्यादिति । सृष्ट्यनुमानागमसंशय-  
प्रतिभास्वप्नज्ञानोहाः सुखादिप्रत्यक्षमिच्छादयश्च मनसो लिङ्गानि तेषु  
सत्त्वियमपि ॥

## युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम् ॥ १६ ॥

अनिन्द्रियनिमित्ताः सृष्ट्यादयः करणान्तरनिमित्ता भवितुमर्हन्तीति  
युगपच्च खलु घ्राणादीनां गन्धादीनाञ्च सन्निकर्षेषु सत्सु युगपज्ज्ञानानि  
नोत्पद्यन्ते तेनानुमीयते अस्ति तत्तदिन्द्रियसंयोगि सहकारिनिमित्तान्त-  
रमव्यापि यस्यासन्निधेर्नोत्पद्यते ज्ञानं सन्निधेर्नोत्पद्यत इति मनःसंयो-  
गानपेक्षस्य हीन्द्रियार्थसन्निकर्षस्य ज्ञानहेतुत्वे युगपदुत्पद्येरन् ज्ञाना-  
नीति । क्रमप्राप्ता तु ॥

## प्रवृत्तिर्वाग्बुद्धिशरीरारम्भ इति ॥ १७ ॥

मनोऽत्र बुद्धिरित्यभिप्रेतं, बुद्ध्यतेऽनेनेति बुद्धिः, सोऽयमारम्भः  
शरीरेण वाचा मनसा च पुरुषः पापश्च दशविधः, तदेतत् कृतभाष्यं  
द्वितीयसूत्र इति ॥

## प्रवर्त्तनालक्षणा दोषाः ॥ १८ ॥

प्रवर्त्तना प्रवृत्तिहेतुत्वम् ज्ञातारं हि रागादयः प्रवर्त्तयन्ति पुरुषे  
पापे वा । यत्र मिथ्याज्ञानं तत्र रागद्वेषाविति प्रत्यात्मवेदनीया हो ने  
दोषाः कस्मात् लक्षणतो निर्दिश्यन्त इति कर्मलक्षणाः खलु रक्तद्विष्टमूढाः  
रक्तो हि तत्कर्म कुरुते येन कर्मणा सुखं दुःखं वा भजते, तथा द्विष्ट-  
स्तथा मूढ इति दोषा रागद्वेषमोहा इत्युच्यमाने वृद्धनोक्तं भवतीति ।



## पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः ॥ १८ ॥

उत्पन्नस्य क्वचित् सत्त्विकाये मृत्वा या पुनरुत्पत्तिः स प्रेत्यभावः ।  
उत्पन्नस्य सम्बन्धस्य सम्बन्धस्तु देहेन्द्रियमनोबुद्धिवेदनाभिः, पुनरुत्पत्तिः  
पुनर्देहादिभिः सम्बन्धः पुनरित्यभ्यासाभिधानम् । यत् क्वचित् प्राण-  
मृत्तिकाये वर्तमानः पूर्वापात्तान् देहादीन् जहाति तत्रैति यत् तत्वा-  
न्यत्र वा देहादीनन्यानुपादत्ते तद्भवति प्रेत्यभावो मृत्वा पुनर्जन्म सोऽयं  
जन्ममरणप्रवन्धाभ्यासोऽनादिरपवर्गान्तः प्रेत्यभावो वेदितव्य इति ॥

## प्रवृत्तिदोषजनितोऽर्थः फलम् ॥ २० ॥

सुखदुःखसंवेदनं फलम् सुखविपाकं कर्म दुःखविपाकञ्च तत्पुनर्देहे-  
न्द्रियविषयबुद्धिषु सतीषु भवतीति सह देहादिभिः फलमभिप्रेतम् तथा  
हि प्रवृत्तिदोषजनितोऽर्थः फलमेतत् सर्वमभवति तदेतत् फलमुपात्तमुपात्तं  
हेयं त्यक्तं त्यक्तमुपादेयमिति नास्य हानोपादानयोर्निष्ठा पर्यवसानं वा-  
ऽस्ति न खल्वयं फलस्य हानोपादानस्रोतसोह्यते लोका इति । अथैतदेव ॥

## बाधनालक्षणं दुःखमिति ॥ २१ ॥

बाधना पीडा ताप इति । तद्यानुविद्धमनुपपन्नमविनिर्भागेन वर्तमानं  
दुःखयोगाद्दुःखमिति सोऽयं सर्वं दुःखेनानुविद्धं दृहन्तमिति पश्यन्  
दुःखं जिहामुर्जन्तानि दुःखदर्शी निर्विद्यते निर्विण्णो विरज्यते विरक्तो  
विमुच्यते यत् तं निष्ठा सोऽयं यत् तं पर्यवसानम् ॥

## तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः ॥ २२ ॥

तेन दुःखेन जन्मनात्यन्तं विमुक्तिरपवर्गः कथमुपात्तस्य जन्मनो हान-  
मन्यस्य चानुपादानम् एतामवस्थामपर्यन्तामपवर्गं वेदयन्तोऽपवर्गविदः  
दभयमजरममृत्युपदं ब्रह्मक्षेमप्राप्तिरिति । नित्यं सुखमात्मनो महत्व-  
वन्मोक्षे व्यज्यते तेनाभिव्यक्तेनात्यन्तं विमुक्तः सुखो भवतीति केचिन्-  
मन्यन्ते तेषां प्रमाणाभावादनुपपत्तिः, गप्रत्यक्षं नानुमानं नागसो वा  
विद्यते नित्यं सुखमात्मनो महत्ववन्मोक्षोऽभिव्यज्यत इति नित्यस्याभि-



## १ अध्याये १ आह्निकम् ।

१५

व्यक्तिः संवेदनं ज्ञानमिति तस्य हेतुर्वाच्यो यतस्तदुपपद्यत इति, सुखव-  
न्नित्यमिति चेत् संसारस्यस्य सुक्तेनाऽविशेषः यथा सुक्तः सुखेन तत्  
संवेदनेन च सन्नित्येनोपपन्नस्तथा संसारस्योऽपि प्रसज्यत इति । उभयस्य  
नित्यत्वात् अभ्युदयाने च धर्माधर्मफलेन साहचर्यं यौगपद्यं गृह्येत  
यदिदस्यत्पत्तिस्थानेषु धर्माधर्मफलं सुखं दुःखं वा संवेद्यते पर्यायेण तस्य  
च नित्यं स्वसंवेदनस्य च सह भावो यौगपद्यं गृह्येत न सुखाभावो नाऽ-  
नभिव्यक्तिरस्ति उभयस्य नित्यत्वात् अनित्यत्वे हेतुवचनम् । अथ मोक्षे  
नित्यस्य सुखस्य संवेदनमनित्यं यत उत्पद्यते स हेतुर्वाच्यः आत्ममनःसंयो-  
गस्य निमित्तान्तरसङ्घितस्य हेतुत्वम् । आत्ममनःसंयोगो हेतुरिति चेत्  
एवमपि तस्य सहकारिनिमित्तान्तरं वचनीयमिति धर्मस्य कारणवचनम्  
यदि धर्मो निमित्तान्तरं तस्य हेतुर्वाच्यो यत उत्पद्यत इति योगसमाधिजस्य  
कार्यावसायविरोधात् प्रलये संवेदनानिवृत्तिः, यदि योगसमाधिजो  
धर्मो हेतुस्तस्य कार्यावसायविरोधात् प्रलये संवेदनमत्यन्तं निवर्त्तयति  
असंवेदने चाविद्यमानाविशेषः यदि धर्मक्षयात् संवेदनोपरमो नित्यं  
सुखं न संवेद्यत इति किं विद्यमानं न संवेद्यते अथाविद्यमानमिति  
नानुमानं विशिष्टेऽस्तीति अप्रक्षयश्च धर्मस्य निरनुमानवृत्त्यतिधर्मकत्वात्  
योगसमाधिजो धर्मो न क्षीयते इति नास्त्यनुमानस्यत्पत्तिधर्मकमनित्य-  
मिति विपर्ययस्य त्वनुमानम् यस्य तु संवेदनोपरमो नास्ति तेन संवेदनेन  
हेतुर्नित्य इत्यनुमेयम् । नित्ये च सुक्तसंसारस्ययोरविशेष इत्युक्तम्  
यथा सुक्तस्य नित्यं सुखं तत्संवेदनहेतुश्च संवेदनस्य तूपरमो नास्ति कारणस्य  
नित्यत्वात् तथा संसारस्यस्यापीति एवञ्च सति धर्माधर्मफलेन सुखदुःख-  
संवेदनेन साहचर्यं गृह्येतेति । शरीरादिसम्बन्धः प्रतिबन्धहेतुरिति  
चेत् न शरीरादीनामुपभोगार्थत्वात् विपर्ययस्य चाननुमानात् । स्यान्-  
मतं संसारावस्यशरीरादिसम्बन्धो नित्यसुखसंवेदनहेतोः प्रतिबन्धकस्तेना-  
विशेषो नास्तीति, एतच्चायुक्तम् शरीरादय उपभोगार्थास्ते भोगप्रतिबन्धं  
करिष्यन्तीत्युपपन्नम् न चास्त्यनुमानमशरीरस्यात्मनो भोगः कश्चिदस्तीति,  
इष्टाधिगमार्थं प्रवृत्तिरिति चेत् न अनिष्टोपरमार्थत्वात् इष्टाधिगमार्थो  
भोक्षोपदेशः प्रवृत्तिश्च सुसुक्ष्णमिति नेष्टमनिष्टेनाननुविद्धं सम्भवतीति



इष्टमप्यनिष्टं सम्पद्यते अनिष्टहानाय घटमान इष्टमपि जहाति विवेक-  
हानस्याशक्यत्वादिति दृष्टातिक्रमश्च देहादिषु तुल्यः यथा दृष्टमनित्यं  
सुखं परित्यज्य नित्यं सुखं कामयते एवं देहेन्द्रियबुद्धिरनित्या दृष्टा  
अतिक्रम्य सुक्तस्य नित्या देहेन्द्रियबुद्धयः कल्पयितव्याः, साधोयश्चैवं  
सुक्तस्य चैकात्म्यं कल्पितमभवतीति, उपपत्तिविरुद्धमिति चेत् समानम् ।  
देहादीनां नित्यत्वं प्रमाणविरुद्धं कल्पयितुमशक्यमिति समानं सुखस्यापि  
नित्यत्वं प्रमाणविरुद्धं कल्पयितुमशक्यमिति, आत्यन्तिके च संसारदुःखा  
भावे सुखवचनादागमेऽपि सत्यविरोधः यद्यपि कश्चिदागमः स्यान्मुक्त-  
स्यात्यन्तिकं सुखमिति सुखशब्द आत्यन्तिके दुःखाभावे प्रयुक्त इत्येव-  
मुपपद्यते । दृष्टे हि दुःखाभावे सुखशब्दप्रयोगो वज्रलं लोक इति,  
नित्यसुखरागस्याप्रहाणे मोक्षाधिगमाभावो रागस्य बन्धनसमाप्तानात्  
यद्ययं मोक्षे नित्यं सुखमभिव्यज्यत इति नित्यसुखरागेण मोक्षाय घट-  
मानो न मोक्षमधिगच्छेन्नाधिगन्तुमर्हतीति बन्धनसमाप्तातो हि रागः न  
च बन्धने सत्यपि कश्चिन्सुक्त इत्युपपद्यत इति प्रहीणनित्यसुखरागस्या-  
प्रतिकूलत्वम् अथास्य नित्यसुखरागः प्रहीयते तस्मिन् प्रहीणे नास्य  
नित्यसुखरागः प्रतिकूलो भवति यद्येवं सुक्तस्य नित्यं सुखं भवति अथापि  
न भवति नास्योभयोः पक्षयोर्मोक्षाधिगमो विवक्ष्यत इति । स्यान्नवत  
एव तर्हि संशयस्य लक्षणं वाच्यमिति तदुच्यते ॥

समानानेकधर्मीपपत्ते विप्रतिपत्तेरुपलब्ध-  
नुपलब्धव्यवस्थातश्च विशेषापेक्षो विमर्शः संशयः  
॥ २३ ॥

समानधर्मीपपत्ते विशेषापेक्षो विमर्शः संशय इति स्थानुपुरुषयोः  
समानं धर्ममारोहपरिणाहौ पश्यन् पूर्वदृष्टञ्च तयोर्विशेषं बुभुक्षमानः  
किंस्विदित्यन्यतरत्वावधारयति तदनवधारणं ज्ञानं संशयः समानमनयो  
धर्मसुपलभे विशेषमन्यतरस्य नोपलभ इत्येता बुद्धिरपेक्षा संशयस्य प्रव-  
र्त्तिका वर्त्तते, तेन विशेषापेक्षो विमर्शः संशयः । अनेकधर्मीपपत्तेरिति



## १ अध्याये १ आह्निकम् ।

१७

समानजातीयसमानजातीयज्ञानेकम् तस्यानेकस्य धर्म्मोपपत्ते विशेष-  
स्योभयथा दृष्टत्वात् समानजातीयेभ्योऽसमानजातीयेभ्यश्चार्था विशेष्यन्ते ।  
गन्धवत्त्वात् पृथिवी अवादिभ्यो विशिष्यते गुणकर्मभ्यश्च, अस्ति च शब्दे  
विभागजत्वं विशेषः, तस्मिन् द्रव्यं गुणः कर्म वेति सन्देहः विशेषस्यो-  
भयथा दृष्टत्वात् किं द्रव्यस्य सतो गुणकर्मभ्यो विशेष आहोस्तिगुणस्य सत  
इति अथ कर्मणः सत इति विशेषापेक्षा अन्यतमस्य व्यवस्थापकं धर्म्म-  
ज्ञोपलभे इति बुद्धिरिति । विप्रतिपत्तेरिति व्याहृतमेकार्थदर्शनं विप्र-  
तिपत्तिः । व्याघातो विरोधोऽसहभाव इति अस्यात्मेत्येकं दर्शनम्  
नास्यात्मेत्यपरम्, न च सद्भावासद्भावौ सहैकत्वं सम्भवतः, न चान्यतरस्य  
धको हेतुरूपलभ्यते तत्र तत्त्वानवधारणं संशय इति । उपलब्धप्रव्यव-  
स्थातः खल्वपि सञ्चोदकमुपलभ्यते तडागादिषु मरीचिषु वाऽविद्यमान-  
सुदकमिति ततः क्वचिदुपलभ्यमाने तत्त्वव्यवस्थापकस्य प्रमाणस्यानुपलब्धेः  
किं सुदुपलभ्यते अथासदिति संशयो भवति । अनुपलब्धप्रव्यवस्थातः सञ्च  
नोपलभ्यते मूलकीलकोदकादि, असञ्चानुत्पन्नं विरुद्धं वा, ततः क्वचि-  
दनुपलभ्यमाने संशयः किं सन्नोपलभ्यते उतासदिति संशयो भवति  
विशेषापेक्षा पूर्ववत्, पूर्वः समानोऽनेकश्च धर्म्मो ज्ञेयस्यः, उपलब्धानुप-  
लब्धौ पुनर्ज्ञातस्थे, एतावता विशेषेण पुनर्वचनम्, समानधर्म्माधिगमात्  
समानधर्म्मोपपत्तेर्विशेषसृष्ट्यपेक्षो विरुद्ध इति, स्यानावतां लक्षणवचन-  
मिति समानम् ॥

यमर्थमधिकृत्य प्रवर्तते तत् प्रयोजनम् ॥२४॥

यमर्थमाप्तव्यं हातस्य वाऽध्यवसाय तदप्राप्तज्ञानोपायसमुत्तिष्ठति  
प्रयोजनन्तर्हेदितव्यम्, प्रवृत्तिहेतुत्वादिममर्थमाप्स्यामि हास्यामि वेति  
व्यवसायोऽर्धस्याधिकारः, एवं व्यवसायसानोऽर्थोऽधिक्रियत इति ॥

लौकिकपरीक्षकाणां यस्मिन्नर्थे बुद्धिसाम्यं स  
दृष्टान्तः ॥ २५ ॥

लोकस्यमननीता लौकिका नैसर्गिकं नैसर्गिकं बुद्धितयमप्राप्ता-



स्तद्विपरीताः परीक्षका स्तर्केण प्रनाशैरर्थं परीक्षितमर्हन्तीति, यथा  
यमर्थं लौकिका बुध्यन्ते तथा परीक्षका अपि सोऽर्थो दृष्टान्तः । दृष्टान्त-  
विरोधेन हि प्रतिपक्षाः प्रतिषेद्धव्या भवन्तीति । दृष्टान्तसमाधिना च  
स्वपक्षाः स्थापनीया भवन्तीति । अवयवेषु चोदाहरणाय कल्पत इति ।  
अथ सिद्धान्तः । इदमित्यस्मृतञ्चेत्यभ्यवृत्तायमानसर्थजातं सिद्धं सिद्धस्य  
संस्थितिः सिद्धान्तः । संस्थितिरित्यन्नावव्यवस्था, धर्मनियमः । स  
खल्वयम् ॥

तन्त्राधिकरणाभ्युपगमसंस्थितिः सिद्धान्तः ॥ २६ ॥

तन्त्रार्थसंस्थितिस्तन्त्रसंस्थितिः । तन्त्रमितरेतराभिसम्बद्धस्यार्थसमूह-  
स्योपदेशः शास्त्रम् । अधिकरणानुपपत्तार्था संस्थितिरधिकरणसंस्थितिः ।  
अभ्युपगमसंस्थितिरनवधारितार्थपरिग्रहः तद्विशेषपरीक्षणायाभ्युपगम-  
सिद्धान्तः । तन्त्रभेदाच्च खलु स चतुर्विधः ॥

सर्वतन्त्रप्रतितन्त्राधिकरणाभ्युपगमसंस्थित्यर्था-  
न्तरभावात् ॥ २७ ॥

तल्लैताश्चतस्रः संस्थितयोऽर्थान्तरभूताः, तासाम् ॥

सर्वतन्त्राविरुद्धस्तन्त्रेऽधिष्ठिताऽर्थः सर्वतन्त्रसि-  
द्धान्तः ॥ २८ ॥

यथा घ्राणादीनीन्द्रियाणि गन्धादय इन्द्रियार्थाः पृथिव्यादीनि  
भूतानि प्रमाशैरर्थस्य ग्रहणमिति ॥

समानतन्त्रसिद्धः परतन्त्रासिद्धः प्रतितन्त्रसि-  
द्धान्तः ॥ २९ ॥

यथा नासत आत्मज्ञातः न सत आत्मज्ञानं निरतिशयाश्चेतनाः  
देहेन्द्रियमनःसु विषयेषु तत्तत्कारणेषु च विशेष इति सांख्यानाम्, पुरुष-

१ अध्याये १ आह्निकम् ।

१८

कर्मनिमित्तो भूतसर्गः, कर्महेतवो दोषाः प्रवृत्तिश्च, स्वगुणविशिष्टाश्चे-  
तनाः, असदुत्पद्यते, उत्पन्नं निरुध्यते इति, योगानाम् ॥

**यत्सिद्धावन्यप्रकरणसिद्धिः सोऽधिकरणसि-  
द्धान्तः ॥ ३० ॥**

यस्यार्थस्य सिद्धावन्येऽर्था अनुपपज्यन्ते न तैर्विना सोऽर्थः सिध्यति  
तेऽर्था यदधिष्ठानाः सोऽधिकरणसिद्धान्तः यथा देहेन्द्रियव्यतिरिक्तो  
ज्ञाता, दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणादिति । अत्रानुपपत्तिर्योऽर्था इन्द्रि-  
यनानात्वं नियतविषयाणोन्द्रियाणि स्वविषयग्रहणलिङ्गानि ज्ञातृज्ञान-  
साधनानि गन्धरसदिगुणव्यतिरिक्तं द्रव्यं गुणाधिकरणं नियतविषय चो-  
तना इति पूर्वार्थसिद्धावेतेऽर्थाः सिद्ध्यन्ति न तैर्विना सोऽर्थः सम्भवतीति ॥

**अपरीक्षिताभ्युपगमात् तद्विशेषपरीक्षणमभ्यु-  
पगमसिद्धान्तः ॥ ३१ ॥**

यत् किञ्चिदर्थजातमभ्युपगम्यते अस्तु द्रव्यं शब्दः, स तु नित्योऽप्या-  
ऽनित्य इति द्रव्यस्य सतो नित्यताऽनित्यता वा तद्विशेषः परीक्ष्यते सो-  
ऽभ्युपगमसिद्धान्तः स्वबुद्धतिशयचिख्यापविषया परबुद्धवज्ज्ञानाच्च प्रवर्तते  
इति । अथावयवाः ।

**प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनान्यवयवाः ॥  
॥ ३२ ॥**

देशवयवानेके नैयायिका वाक्ये सञ्चक्षते । जिज्ञासा संशयः शक्य-  
प्राप्तिः प्रयोजनं संशयव्युदास इति ते कस्माज्ज्ञोच्यन् इति तत्रापरीत्य-  
मानेऽर्थे प्रत्ययार्थस्य प्रवर्तिका जिज्ञासा अपरीत्यमानसर्थं कस्माज्जि-  
ज्ञासते तं तत्त्वतो ज्ञातं हास्यामि वोपादास्ये वा, उपेक्षिष्ये वेति तावता  
ज्ञानोपादागोपेक्षाबुद्ध्यस्तत्त्वज्ञानस्वार्थस्तदर्थमयं जिज्ञासते सा स्वस्विय-  
संसाधनसुखेति, जिज्ञासाधिष्ठानं संशयस्य व्याहृतधर्मापसङ्घातात् तत्त्व-



ज्ञाने प्रत्यासन्नः व्याहृतयोर्हि धर्मयोरन्यतरत्तत्त्वं भवितुमर्हतीति स  
 पृथगुपदिष्टोऽप्यसाधनमर्थहेति, प्रमातुः प्रमाणानि प्रमेयाधिगमार्थानि  
 सा शक्यप्राप्तिर्न साधकस्य वाक्यस्य भागेन युज्यते प्रतिज्ञादिवदिति प्रयो-  
 जनं तत्त्वावधारणमर्थसाधकस्य वाक्यस्य फलं नैकदेश इति, संशयव्युदासः  
 प्रतिपक्षोपवर्णनम् तत्प्रतिषेधेन तत्त्वज्ञानाभ्यनुज्ञानार्थं न त्वयं साधक-  
 वाक्यैकदेश इति प्रकरणे तु जिज्ञासादयः समर्थाः अवधारणीयार्थोप-  
 कारा अर्थसाधकाभावात्तु प्रतिज्ञादयः साधकवाक्यस्य भागः एकदेशा अव-  
 यवा इति । तेषां तु यथाविभक्तानाम् ॥

### साध्यनिर्देशः प्रतिज्ञा ॥ ३३ ॥

प्रज्ञापनीयेन धर्मेण धर्मिणो विशिष्टस्य परिग्रहवचनम् प्रतिज्ञा  
 साध्यनिर्देशः अनित्यः शब्द इति ॥

### उदाहरणसाधर्म्यात् साध्यसाधनं हेतुः ॥ ३४ ॥

उदाहरणेन सामान्यात् साध्यस्य धर्मस्य साधनं प्रज्ञापनम् हेतुः  
 साध्ये प्रतिसम्वाय धर्मस्य उदाहरणे च प्रतिसम्वाय तस्य साधनतावचनं  
 हेतुः उत्पत्तिधर्मकत्वादिति उत्पत्तिधर्मकमनित्यं दृष्टमिति । किमे-  
 तावद्वैतलक्षणमिति नेत्युच्यते किन्तर्हि ॥

### तथा वैधर्म्यात् ॥ ३५ ॥

उदाहरणवैधर्म्याच्च साध्यसाधनं हेतुः कथम् अनित्यः शब्द उत्प-  
 त्तिधर्मकत्वात् अनुत्पत्तिधर्मकं नित्यं यथात्मादि द्रव्यमिति ॥

### साध्यसाधर्म्यात् तद्वर्त्मभावो दृष्टान्त उदाहर- णम् ॥ ३६ ॥

साध्येन साधक्यं समानधर्मेता साध्यसाधर्म्यात् कारणात् तद्वर्त्मभावो  
 दृष्टान्त इति तस्य धर्मस्तद्वर्त्मः तस्य साध्यस्य साध्यञ्च द्विविधम् धर्म-  
 विशिष्टो वा धर्मः शब्दस्थानित्यत्वम् । धर्मविशिष्टो वा धर्मो अनित्यः



96825

Library

Kangri Collection

79 201  
६६२ २१

शब्द इति, इहोत्तरान्नङ्गणेन गृह्यते इति कस्मात् । इत्यर्थवचनात् ।  
तस्य धर्मस्तद्धर्मस्तस्य भावस्तद्धर्मभावः स यस्मिन् दृष्टान्ते वर्तते स  
दृष्टान्तः साध्यसाधस्यात् तद्धर्मभावी भवति स चोदाहरणमिष्यते तत्र  
यदुत्पद्यते तदुत्पत्तिधर्मकम् तच्च भूत्वा न भवति आत्मानं जहाति निरु-  
ध्यत इत्यनित्यम् । एवमुत्पत्तिधर्मकत्वं साधनमनित्यत्वं साध्यं सं-  
सृज्यते द्वयोर्धर्मयोः साध्यसाधनभावः साधस्याद्यवस्थित उपलभ्यते  
तं दृष्टान्ते उपलभमानः शब्देऽप्यनुमिनोति शब्देऽप्युत्पत्तिधर्मकत्वाद-  
नित्यः स्यात्त्यादिवदित्युदाह्रियते तेन धर्मयोः साध्यसाधनभाव इत्यु-  
दाहरणम् ॥

### तद्विपर्ययाद्वा विपरीतम् ॥ ३७ ॥

दृष्टान्त उदाहरणमिति प्रकृतं साध्यवैधर्म्यात् तद्धर्मभावी दृष्टान्त  
उदाहरणमिति अनित्यः शब्द उत्पत्तिधर्मकत्वात् अनुत्पत्तिधर्मकं नित्य-  
मात्मादि सोऽयमात्मादि दृष्टान्तः साध्यवैधर्म्यादनुत्पत्तिधर्मकत्वादतद्धर्म-  
भावी योऽसौ साध्यस्य धर्मोऽनित्यत्वं स तस्मिन् भवतीति । अत्रात्मादौ  
दृष्टान्ते उत्पत्तिधर्मकत्वस्याभावादनित्यत्वं न भवतीति उपलभमानः  
शब्दे विपर्ययमनुमिनोति उत्पत्तिधर्मकत्वस्य भावादनित्यः शब्द इति  
साध्योक्तस्य हेतोः साध्यसाधस्यात् तद्धर्मभावी दृष्टान्त उदाहरणम् वैध-  
र्म्योक्तस्य हेतोः साध्यवैधर्म्यादतद्धर्मभावी दृष्टान्त उदाहरणम् पूर्वस्मिन्  
दृष्टान्ते यौ तौ धर्मौ साध्यसाधनभूतौ पश्यति साध्येऽपि तयोः साध्य-  
साधनभावमनुमिनोति उत्तरस्मिन् दृष्टान्ते ययोर्धर्मयोरेकस्याभावाद-  
तरस्याभावं पश्यति तयोरेकस्याभावादतरस्याभावं साध्ये अनुमिनो-  
तीति, तदेतद्वेत्वाभासेषु न सम्भवतीत्यहेतवो हेत्वाभासाः तदिदं हेतु-  
दाहरणयोः सामर्थ्यम्परमसूक्ष्मं दुःखबोधं परिण्डितैरुपवेदनोपमिति ॥

उदाहरणापेक्षस्तथेत्युपसंहारो न तथेति वा  
साध्यस्योपनयः ॥ ३८ ॥

उदाहरणापेक्ष उदाहरणतन्त्रः उदाहरणवशः, वशः साम-



र्थम्, साध्यसाधर्ययुक्ते उदाहरणे स्यात्त्यादिद्रव्यसुत्पत्तिधर्मकमनित्यं  
 दृष्टम् तथा शब्द उत्पत्तिधर्मक इति साध्यस्य शब्दस्योत्पत्तिधर्मकत्वसु-  
 पसंक्षिप्यते, साध्यवैधर्म्ययुक्ते पुनरुदाहरणे आत्मादिद्रव्यसुत्पत्तिधर्मकं  
 नित्यं दृष्टं न च तथा शब्द इति अनुत्पत्तिधर्मकत्वस्योपसंहारप्रतिषेधे-  
 नोत्पत्तिधर्मकत्वसुपसंक्षिप्यते तदिदमुपसंहारद्वैतमुदाहरणद्वैताद्भवति  
 उपसंक्षिप्यतेऽनेनेति चोपसंहारो वेदितव्य इति । द्विविधस्य पुनर्हेतो  
 द्विविधस्य चोदाहरणस्योपसंहारद्वैते च समानम् ॥

हेत्वपदेशात् प्रतिज्ञायाः पुनर्वचनं निगमनम्  
 ॥ ३६ ॥

साध्यस्योक्ते वैधर्म्योक्ते वा यद्योदाहरणसुपसंक्षिप्यते तस्मादुत्पत्ति-  
 धर्मकत्वादनित्यः शब्दः इति निगमनम्, निगम्यन्तेऽनेनेति प्रतिज्ञाहे-  
 त्वादुदाहरणोपनया एकत्वेति निगमनम् निगम्यन्ते समर्थ्यन्ते सम्बध्यन्ते,  
 तत्र साध्यस्योक्ते तावद्धेतौ वाक्यमनित्यः शब्दः इति प्रतिज्ञा, उत्पत्तिध-  
 र्मकत्वादिति हेतुः । उत्पत्तिधर्मकं स्यात्त्यादिद्रव्यमनित्यमित्युदाहरणम्,  
 तथाचोत्पत्तिधर्मकः शब्द इत्युपनयः, तस्मादुत्पत्तिधर्मकत्वादनित्यः शब्द  
 इति निगमनम्, वैधर्म्योक्तेऽपि अनित्यः शब्द, उत्पत्तिधर्मकत्वात्, अनु-  
 त्पत्तिधर्मकमात्मादिद्रव्यं नित्यं दृष्टम्, न च तथाऽनुत्पत्तिधर्मकः शब्दः  
 तस्मादुत्पत्तिधर्मकत्वादनित्यः शब्द इति, अथयवसमुदाये च वाक्ये सम्भूय  
 इतरेतराभिसम्बन्धात् प्रमाणान्यर्थं साधयन्तीति, सम्भवस्तावच्छब्दविषया  
 प्रतिज्ञा आप्तोपदेशस्य प्रत्यक्षानुमानाभ्यां प्रतिसम्बन्धानादन्तपक्षे स्वातन्त्र्या-  
 नुपपत्तेः अनुमाने हेतुः उदाहरणे संदृश्यप्रतिपत्तेः, तत्रोदाहरणं भाष्ये  
 व्याख्यातम् प्रत्यक्षविषयमुदाहरणम् दृष्टेनादृष्टसिद्धेः । उपमानमुपनयः  
 तथेत्युपसंहारात् न च तथेत्युपमानधर्मप्रतिषेधे विपरीतधर्मोपसंहार-  
 सिद्धेः, सर्वेषामेकार्थप्रतिपत्तौ सामर्थ्यप्रदर्शनं निगमनमिति । इतरे-  
 तराभिसम्बन्धेऽयसत्यां प्रतिज्ञायामनाश्रया हेत्वादयो न प्रवर्तन्ते,  
 अस्ति हेतौ कस्य साधनभावः प्रदर्श्यते उदाहरणे साध्ये च कस्योप-



## १ अध्याये १ आह्निकम् ।

२३

संहारः स्यात् कस्य चापदेशात् प्रतिज्ञायाः पुनर्वचनं निगमनं स्यादिति,  
 असत्युदाहरणे केन साधर्म्यं वैधर्म्यं वा साध्यसाधनमुपादीयेत कस्य वा  
 साधर्म्यवशादुपसंहारः प्रवर्त्तते, उपनयनञ्चान्तरेण साध्येऽनुपसंहृतः  
 साधको धर्मो नार्थं साधयेत्, निगमनाभावे वानभिव्यक्तसम्बन्धानां प्रति-  
 ज्ञादीनामेकार्थेन प्रवर्त्तनं तथेति प्रतिपादनं कस्येति । अथावयवार्थः  
 साध्यस्य धर्मस्य धर्मिणा सम्बन्धोपादानं प्रतिज्ञार्थः । उदाहरणेन  
 समानस्य विपरीतस्य वा धर्मस्य साधकभाववचनं हेत्वर्थः, धर्मयोः साध्य-  
 साधनभावप्रदर्शनमेकलोदाहरणार्थः । साधनभूतस्य धर्मस्य साध्येन ध-  
 र्मेण सामानाधिकरण्योपपादनमुपनयार्थः । उदाहरणस्ययो-धर्मयोः  
 साध्यसाधनभावोपपत्तौ साध्ये विपरीतप्रसङ्गप्रतिषेधार्थं निगमनम् । न  
 चैतस्यां हेतुदाहरणपरिशुद्धौ सत्यां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानस्य  
 विकल्पाज्जातिनिग्रहस्यानवृत्तत्वं प्रक्रमते, अव्यवस्थायः खलु साध्यसा-  
 धनभावमुदाहरणे जातिवादी प्रत्यवतिष्ठते व्यवस्थिते तु खलु धर्मयोः  
 साध्यसाधनभावे दृष्टान्तस्ये गृह्यमाणे साधनभूतस्य धर्मस्य हेतुत्वेनोप-  
 मानं न साधर्म्यमात्रस्य न वैधर्म्यमात्रस्य वेति । अत ऊर्ध्वं तर्को लक्ष-  
 णीय इति अथेदमुच्यते ॥

अविज्ञाततत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितत्त्वत्वज्ञानार्थ-  
 मूहस्तकः ॥ ४० ॥

अविज्ञायमानतत्त्वेऽर्थे जिज्ञासा तावज्जायते जानीयेममर्थमिति,  
 अथ जिज्ञासितस्य वस्तुनो व्याहृतौ धर्मो विभागेन विवक्ष्यति किंस्त्रि-  
 दित्यसाहोस्त्रिन्नेत्यमिति विवक्ष्यमानयोर्धर्मयोरेकं कारणोपपत्त्याऽनु-  
 जानाति सम्भावत्यस्मिन् कारणं प्रमाणं हेतुरिति, कारणोपपत्त्या  
 स्यादेवमेतच्चेतरदिति तत्र निदर्शनम् योऽयं ज्ञाता ज्ञातव्यमर्थं जानीते  
 तच्च भो जानीयेति जिज्ञासा, स किमुत्पत्तिधर्मकोऽनुत्पत्तिधर्मक इति  
 विमर्शः, विवक्ष्यमानेऽविज्ञाततत्त्वेऽर्थे यस्य धर्मस्याभ्यनुज्ञाकारणमुप-  
 पद्यते तमनुजानाति, यद्ययमनुत्पत्तिधर्मकस्ततः स्वततस्य कर्मणः फल-



समुभवति ज्ञाता, 'दुःखजनप्रवृत्तिदोषमित्याज्ञानानामुत्तरमुत्तरं पूर्वस्य पूर्वस्य कारणमुत्तरोत्तरापाये तदनन्तराभावादपवर्ग इति स्थातां संसारापवर्गो, उत्पत्तिधर्मके ज्ञातरि पुनर्न स्याताम्, उत्पन्नः खलु ज्ञाता देहेन्द्रियबुद्धिवेदनाभिः सम्बध्यत इति नास्तेदं स्वकृतस्य कर्मणः फलमुत्पन्नञ्च भूत्वा न भवतीति तस्याविद्यमानस्य निरुद्धस्य वा स्वकृतकर्मणः फलोपभोगो नास्ति, तदेवमेकस्यानेकशरीरयोगः शरीरादिवियोगज्ञात्यन्तं न स्यादिति । यत्र कारणमनुपपद्यमानं पश्यति तदनुजानाति, सोऽयमेवं लक्षणं जहस्तर्क इत्युच्यते । कथं पुनरयं तत्त्वज्ञानार्थं न तत्त्वज्ञानमेवेति अनवधारणात् अनुजानात्ययमेकतरं धर्मं कारणोपपत्त्या न त्वधारयति न व्यवस्यति न निश्चिनोति एवमेवेदमिति । कथं तत्त्वज्ञानार्थ इति, तत्त्वज्ञानविषयाभ्यनुज्ञालक्षणाभ्यनुज्ञावितात् प्रसन्नादनन्तरप्रमाणसामर्थ्यात् तत्त्वज्ञानमुत्पद्यत इत्येव तत्त्वज्ञानार्थ इति । सोऽयं तर्कः प्रमाणानि प्रतिसन्दधानः प्रमाणाभ्यनुज्ञानात् प्रमाणसहितो वादे उपदिष्ट इत्यविज्ञाततत्त्वमनुजानातीति यथा सोऽर्थो भवति तस्य यथाभावस्तत्त्वमविपर्ययो यायातथ्यम् । एतस्मिन् तर्क विषये ।

## विमृश्य पक्षप्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणं निर्णयः

॥ ४१ ॥

स्थापना साधनं, प्रतिषेध उपालम्भाः, तौ साधनोपालम्भौ पक्षप्रतिपक्षान्नयौ व्यतिपक्षावलुब्धेन प्रवृत्तेमानौ पक्षप्रतिपक्षावित्युच्येते, तयोरन्यतरस्य निवृत्तिरेकतरस्यावस्थानम् अवश्यम्भावि, यस्यावस्थानं तस्यावधारणं निर्णयः । नेदं पक्षप्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणं सम्भवतीतिः एको हि प्रतिज्ञातमर्थं हेतुतः स्थापयति प्रतिषिद्धं चोद्धरतीति द्वितीयस्य द्वितीयेन स्थापनाहेतुः प्रतिषिध्यते तस्यैव प्रतिषेधहेतुस्योद्भूयते स निवर्तते तस्य निवृत्तौ योऽवतिष्ठते तेनार्थावधारणं निर्णय इति उभाभ्यामेवार्थावधारणमित्याह, कया युक्त्या एकस्य सम्भवो द्वितीयस्यासम्भवः तावेतौ सम्भवासम्भवौ विमर्शं सह निवृत्तयतः, उभयसम्भवे उभयासम्भवे



## १ अध्याये २ आह्निकम् ।

२५

त्वनिरुक्तो विमर्श इति । विरुद्धेति विमर्शं कृत्वा, सोऽयं विमर्शः पक्ष-  
प्रतिपक्षाभावदोषं न्यायं प्रवर्त्तयतोऽप्युपादीयत इति, एतच्च विरुद्धयो-  
रेकधर्मिण्ययोर्वीर्यव्युत्पत्तौ धर्मिसामान्यगतौ विरुद्धौ धर्मौ हेतुतः सम्भ-  
वतः तत्र सञ्चयहेतुतोऽर्थस्य तत्त्वाभावोपपत्तेः, यथा क्रियावद्द्रव्य-  
मिति लक्षणवचने यस्य द्रव्यस्य क्रियायोगो हेतुतः सम्भवति तत् क्रिया-  
वत् यस्य न सम्भवति तदक्रियमिति, एकधर्मिण्ययोश्च विरुद्धयोरप्यग-  
पङ्गाविनोः कालविकल्पः यथा तदेव द्रव्यं क्रियायुक्तं क्रियावत् अतु-  
त्पन्नोपरतक्रियं पुनरक्रियमिति । न चायं निर्णये नियमो विरुद्धैव  
यत्प्रतिपक्षाभ्यामर्थविधारणं निर्णय इति किन्त्विन्द्रियार्थसन्निकर्षोपात्त-  
प्रत्यक्षेऽर्थाविधारणं निर्णय इति परीक्षाविषये तु विरुद्धस्य पक्षप्रतिपक्षा-  
भ्यामर्थविधारणं निर्णयः शास्त्रे वादे च विमर्शवर्जम् ॥

इति वात्स्यायनीये न्यायभाष्ये प्रथमाऽध्यायस्य

प्रथममाह्निकम् ।

तिस्रः कथा भवन्ति वादो जल्यो वितण्डा चेति तासाम् ।

प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः सिद्धान्ताविरुद्धः प-  
ञ्चावयवोपपन्नः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहो वादः ॥४२॥

एकाधिकरणस्यौ विरुद्धौ धर्मौ पक्षप्रतिपक्षौ प्रत्यनीकभावादस्यात्मा  
नास्यात्मेति, नानाधिकरण्यौ विरुद्धौ न पक्षप्रतिपक्षौ यथा नित्य आत्मा  
अनित्या बुद्धिरिति, परिग्रहोऽभ्युपगमव्यवस्था, सोऽयं पक्षप्रतिपक्ष-  
परिग्रहो वादः तस्य विशेषणं प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः प्रमाणैस्तर्केण  
च साधनमुपालम्भश्चास्मिन् क्रियत इति, साधनं स्थापना, उपालम्भः प्रति-



प्रेषः, तौ साधनोपायभौ उभयोरपि पक्षयोर्व्यतिपत्तावमुवदौ च याव-  
देको निवृत्त एकतरो व्यवस्थित इति निवृत्तस्योपायभौ व्यवस्थितस्य  
साधनमिति जल्पे निग्रहस्थानविनियोगत्वादेतत्प्रतिषेधः, प्रतिषेधे  
कस्यचिदभ्यनुज्ञानार्थं सिद्धान्ताविरुद्ध इति वचनम्, सिद्धान्तमभ्युपेत्य  
तद्विरोधी विरुद्ध इति हेत्वाभासस्य निग्रहस्थानस्याभ्यनुज्ञावादे पञ्चावय-  
वोपपन्न इति, हीनमन्यतमेनाभ्यवयवेन न्यूनम् हेतुदाहरणाधिकमधिक-  
मिति चैतयोरभ्यनुज्ञानार्थमिति अवयवेषु प्रमाणतर्कान्तिर्भावे पृथक्  
प्रमाणतर्कग्रहणं साधनोपायभौव्यतिपद्गज्ञापनार्थम् । अन्ययोर्भावपि  
पक्षौ स्थापनाहेतुना प्रवृत्तौ वाद इति स्यात् । अन्तरेणाभ्यवयवसम्बन्धम्  
प्रमाणान्यर्थं साधयन्तीति दृढम् तेनापि कल्पेन साधनोपायभौ वादे भवत  
इति ज्ञापयति । कलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपायभौ जल्प इति वचना-  
द्विनिग्रहो जल्प इति मा विज्ञायि । कलजातिनिग्रहस्थानसाधनो-  
पायभौ एव जल्पः प्रमाणतर्कसाधनोपायभौ वाद एवेति मा विज्ञायी-  
त्येवमर्थं पृथक् प्रमाणतर्कग्रहणमिति ।

यथोक्तोपपन्नश्च कलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपा-  
यभौ जल्पः ॥ ४३ ॥

यथोक्तोपपन्न इति प्रमाणतर्कसाधनोपायभौः सिद्धान्ताविरुद्धः पञ्चा-  
वयवोपपन्नः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहः । कलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपायभौ  
इति । कलजातिनिग्रहस्थानैः साधनमुपायभौश्चास्मिन् क्रियत इति ।  
एवंविशेषणो जल्पः न खलु वै कलजातिनिग्रहस्थानैः साधनं कस्यचि-  
दर्थस्य सम्भवति प्रतिषेधार्थं चैषां सामान्यलक्षणे च श्रूयते वचनविधातो  
ऽर्थविवक्षोपपत्त्या कलमिति साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानं जातिः ।  
विप्रतिपत्तिरतिपत्तिश्च निग्रहस्थानमिति । विशेषलक्षणेऽपि यथा-  
स्वमिति न चैतद्विजानोयात् प्रतिषेधार्थतयैवार्थं साधयन्तीति । कलजाति-  
निग्रहस्थानोपायभौ इत्येवमभ्युपेत्यमाने विज्ञायत एतदिति । प्रमाणैः  
साधनोपायभौश्च कलजातीनामङ्गभावो रक्षणार्थत्वात् न तु स्वतन्त्राणां



## १ अध्याये २ आह्निकम् ।

२७

साधनभावः । यत् तत्प्रमाणैरर्थस्य साधनं तत्र कृत्वातिनिग्रहस्थाना-  
नामङ्गभावो रक्षणार्थत्वात्, तानि हि प्रयुज्यमानानि परपक्षविघातेन  
स्वपक्षं रक्षयन्ति । तथा चोक्तम् । “तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थं जल्पवि-  
तरणं बीजप्ररोहरक्षणार्थं कण्टकशाखावरणवदिति” । यस्मात् प्र-  
माणैः प्रतिपक्षस्योपापलम्पस्तस्य चैतानि प्रयुज्यमानानि प्रतिषेधविघा-  
तात्सहकारीणि भवन्ति तदेवमङ्गीभूतानां कृतादीनामुपादानम् जल्पे  
न स्वतन्त्राणां साधनभावः । उपालम्पे तु स्वातन्त्र्यमप्यस्तीति ।

## स प्रतिपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा ॥ ४४ ॥

स जल्पो कितण्डा भवति, किं विशेषणः प्रतिपक्षस्थापनया हि नः, यौ  
तौ समानाधिकरणौ विरुद्धौ धर्मौ पक्षप्रतिपक्षावित्युक्तौ तयोरेकतरं  
वैतण्डिको न स्थापयतीति परपक्षप्रतिषेधेनैव प्रवर्तत इति । अस्तु तर्हि  
स प्रतिपक्षहीनो वितण्डा यद्वै खलु तत्परप्रतिषेधलक्षणं वाक्यं स वैत-  
ण्डिकस्य पक्षः न त्वसौ साध्यं कश्चिदर्थं प्रतिज्ञाय स्थापयतीति तस्माद्-  
यथान्यासमेवास्त्विति हेतुलक्षणाभावादहेतवो हेतुसामान्याद्देतुवदाभास-  
माना स्त इमे ॥

सव्यभिचारविरुद्धप्रकरणसमसाध्यसमातीत-  
काला हेत्वाभासाः ॥ ४५ ॥

तेषाम् ॥

## अनैकान्तिकः सव्यभिचारः ॥ ४६ ॥

व्यभिचार एकत्वव्यवस्था सह व्यभिचारेण वर्तत इति सव्यभिचारः,  
निदर्शनम् नित्यः शब्दोऽसंशेत्वात् स्पर्शवान् कुम्भोऽनित्यो दृष्टो न च  
तथा स्पर्शवान् शब्दस्तस्मादस्पर्शत्वान्नित्यः शब्द इति दृष्टान्ते स्पर्शवत्त्वमनि-  
त्यत्वं च धर्मो न साध्यसाधनभूतौ दृश्येते स्पर्शवाञ्छुर्नित्यश्चेति । आ-  
त्मादौ च दृष्टान्ते उदाहरणसाधर्म्यात् साध्यसाधनं हेतुरिति । असंशे-



२८

## न्यायदर्शनवात्स्यायनभाष्ये

त्वादिति हेतुर्नित्यत्वं व्यभिचरति अस्यर्था बुद्धिरनित्या चेति, एवं द्विविधेऽपि दृष्टान्ते व्यभिचारात् साध्यसाधनभावो नास्तीति लक्षणाभावादहेतुरिति । नित्यत्वमध्येकोऽन्तः । अनित्यत्वमध्येकोऽन्तः, एकस्मिन्नन्ते विद्यत इति ऐकान्तिकः । विपर्ययादनैकान्तिकः उभयान्तव्यापकत्वादिति ॥

## सिद्धान्तमभ्युपेत्य तद्विरोधी विरुद्धः ॥ ४७ ॥

तं विरुण्जीति तद्विरोधी अभ्युपेतं सिद्धान्तं व्याहन्तीति यथा सोऽयं विकारो व्यक्तेरपैति नित्यत्वप्रतिषेधादपेतोऽप्यस्ति विनाशप्रतिषेधात् न नित्यो विकार उपपद्यते इत्येव हेतुर्व्यक्तेरपेतोऽपि विकारोऽस्तीत्यनेन स्वसिद्धान्तेन विरुध्यते । कथम् व्यक्तिरात्मलाभः अपायः प्रच्युतिः यदात्मलाभात् प्रच्युतो विकारोऽस्ति नित्यत्वप्रतिषेधो नोपपद्यते यद्यक्तेरपेतस्यापि विकारस्यास्तित्वं तत् खलु नित्यत्वमिति । नित्यत्वप्रतिषेधो नाम विकारस्यात्मलाभात्प्रच्युतेरुपपत्तिः । यदात्मलाभात्प्रच्यवते तदनित्यं दृष्टं यदस्ति न तदात्मलाभात् प्रच्यवते । अस्तित्वं चात्मलाभात् प्रच्युतिरिति विरुद्धावेतौ न सह सम्भवत इति सोऽयं हेतुर्व्यक्तिसिद्धान्तान्नित्यं प्रवर्तते तमेव व्याहन्तीति ॥

## यस्मात्प्रकरणचिन्ता स निर्णयार्थमपदिष्टः प्रकरणसमः ॥ ४८ ॥

विमर्शाधिष्ठानौ पक्षप्रतिपक्षावनवसितौ प्रकरणम् तस्य चिन्ता विमर्शात्प्रभृति प्राङ्निर्णयाद्यत् समीक्षणं सा जिज्ञासा यत्कृता स निर्णयार्थं प्रयुक्त उभयपक्षसंख्यात् प्रकरणमनतिवर्त्तमानः प्रकरणसमो निर्णयाय न प्रकल्पते प्रज्ञापनं तु अनित्यशब्दे नित्यधर्मानुपलब्धेरित्यनुपलब्धमाननित्यधर्मकमनित्यं दृष्टं स्यात्त्यादि, यत्र समानो धर्मः संशयकारणं हेतुत्वेनोपादीयते स संशयसमः सव्यभिचार एव । या तु विमर्शस्य विशेषापेक्षिता उभयपक्षविशेषानुपलब्धश्च सा प्रकरणं प्रवर्त्तयति, क-



यम् । विपर्यये हि प्रकरणनिवृत्तेः यदि नित्यधर्मशब्दे गृह्यते न स्यात्-  
प्रकरणम् यदि वा अग्नित्वधर्मो गृह्येत एवमपि निवर्त्तते प्रकरणम्  
सोऽयं हेतुरुभौ पक्षौ प्रवर्त्तयन्नन्यतरस्य निर्णयाय न प्रकल्पते ॥

## साध्याविशिष्टः साध्यत्वात् साध्यसमः ॥ ४९ ॥

द्रव्यं जायेति साध्यम्, गतिमत्वादिति हेतुः साध्येनाविशिष्टः साध-  
नीयत्वात्साध्यसमः, अयमव्यसिद्धत्वात् साध्यवत्तत्त्वात्प्रयितव्यः, साध्यं ताव-  
देतत् किं पुरुषवच्छायापि गच्छति आहोस्विदावरकद्रव्ये संसर्पति आव-  
रणसन्तानादसन्निधिसन्तानोऽयं तेजसो गृह्यत इति सर्पता खलु द्रव्येण  
ज्ञानद्योयत्तेजोभाग आन्निवने तस्य तस्यासन्निधिरेवावच्छिन्ने गृह्यत  
इति । आवरणेन प्राप्तिप्रतिषेधः ॥

## कालात्ययापदिष्टः कालातीतः ॥ ५० ॥

कालात्ययेन युक्तो यस्मात्स्थलेकदेशेऽपदिश्यमानस्य स कालात्ययापदिष्टः  
कालातीत इत्युच्यते । निदर्शनम् । नित्यःशब्दः संयोगव्यङ्ग्यत्वात् रूप-  
वत् प्रागूर्ध्वं व्यक्तेरवस्थितं रूपं प्रदीपघटसंयोगेन व्यज्यते तथा च  
शब्देऽप्यवस्थितो भैरीदण्डसंयोगेन व्यज्यते दारुपरशुसंयोगेन वा तस्मात्  
संयोगव्यङ्ग्यत्वानित्यःशब्द इत्ययमहेतुः कालात्ययापदेशात् व्यञ्जकस्य  
संयोगस्य कालं न व्यङ्ग्यस्य रूपस्य व्यक्तेरत्येति सति प्रदीपघटसंयोगे  
रूपस्य ग्रहणं भवति न निवृत्ते संयोगे रूपं गृह्यते, निवृत्ते दारुपरशु-  
संयोगे दूरस्थेन शब्दः श्रूयते । विभागकाले सेयं शब्दव्यक्तिः संयोगकाल-  
मलेतीति न संयोगनिर्मिता भवति । कस्मात्कारणान्नावाहि कार्याभाव  
इति । एवमुदाहरणसाधस्यसाभावादसाधनमयं हेतुर्हेत्वाभास इति ।  
अवयवविपर्ययावबचनं न सूत्रार्थः, कस्मात्, “यस्य येनार्थस्त्वन्वो दूरस्थ-  
स्यापि तस्य सः । अर्थतो ह्यसमर्धानासानन्तर्यमकारणम्” इत्येतद्वचनादु-  
विपर्ययसिनोक्तो हेतुरुदाहरणसाधस्यात् तथा वैधर्स्यात्साधनं हेतुलक्षणं न  
कहाति । अजहद्वेतुलक्षणं न हेत्वाभासो भवतीति अयमवयवविपर्यया-



सवचनसंप्राप्तकालमिति निग्रहस्थानमुक्तं तदेवेदं पुनरुच्यते इति अतस्तन्न  
सूतार्थः । अथ छलम् ॥

वचनविघातोऽर्थविकल्पोपपत्तया छलम् ॥ ५१ ॥

न सामान्यलक्षणे छलं शक्यमुदाहर्तुम् विभागे तदाहरणानि ।  
विभागश्च ॥

तत् त्रिविधं वाक्छलं सामान्यच्छलमुपचार-  
च्छलञ्चेति ॥ ५२ ॥

तेषाम् ॥

अविशेषाभिहितेऽर्थे वक्तुरभिप्रायादर्थान्तर-  
कल्पना वाक्छलम् ॥ ५३ ॥

नवकम्बलोऽयं माणवक इति प्रयोगः । अत्र नवः कम्बलोऽस्येति  
वक्तुरभिप्रायः । विग्रहे तु विशेषो न समासे, तत्रायं छलवादी वक्तु-  
रभिप्रायादविवक्षितमन्यमर्थं नव कम्बला अस्मेति तावदभिहितं भवतेति  
कल्पयति कल्पयित्वा चासम्भवेन प्रतिषेधति एकोऽस्य कम्बलः कुतो नव  
कम्बला इति । तदिदं सामान्यशब्दे वाचि छलं वाक्छलमिति । अस्य  
प्रत्यवस्थानम् सामान्यशब्दस्थानेकार्थत्वेऽन्यतराभिधानकल्पनायां विशेष-  
वचनम् । नवकम्बल इत्यनेकार्थस्याभिधानं नवः कम्बलोऽस्य नवकम्बला  
अस्मेति । एतस्मिन् प्रयुक्ते येयं कल्पना नव कम्बला अस्मेत्येतद्वचनताभि-  
हितं तच्च न सम्भवतीति । एतद्वचनन्यतराभिधानकल्पनायां विशेषो  
वक्तव्यः । यस्माद्विशेषोऽर्थविशेषेषु विज्ञायते । अयमर्थोऽनेनाभिहित  
इति, स च विशेषो नास्ति तस्मान्निष्ठाभियोगसात्वन्नेतदिति । प्रसिद्धश्च  
लोके शब्दार्थसम्बन्धोऽभिधानाभिधेयनियमनियोगः । अस्माभिधानस्या-  
यमर्थोऽभिधेय इति समानः सामान्यशब्दस्य विशेषो विशिष्टशब्दस्य प्रयुक्त-  
पूर्वाच्चेने शब्दा अर्थे प्रयुज्यन्ते नाप्रयुक्तपूर्वाः, प्रयोगश्चार्थसम्प्रत्ययार्थः,  
अर्थप्रत्ययाच्च व्यवहार इति । तत्रैवमर्थगत्यर्थे शब्दप्रयोगे सामर्थ्यात्-



सामान्यशब्दस्य प्रयोगनियमः । अजां ग्रामं नय सर्पिराहर ब्राह्मणं भोजयेति सामान्यशब्दाः सन्तोऽर्थावयवेषु प्रयुज्यन्ते सामर्थ्याद्यतार्थक्रियादेशना सम्भवति तत्र प्रवर्तन्ते नार्थसामान्ये क्रियादेशनाऽसम्भवात् । एवमयं सामान्यशब्दो नवकम्बल इति योऽर्थः सम्भवति नव कम्बलोऽस्येति तत्र प्रवर्तते यस्तु न सम्भवति नव कम्बला अस्येति तत्र न प्रवर्तते सोऽयमनुपपद्यमानार्थकल्पनया परवाक्योपात्मस्तेन व्युत्पद्यते इति ॥

सम्भवतोऽर्थस्यातिसामान्ययोगादसम्भूतार्थकल्पना सामान्यच्छलम् ॥ ५४ ॥

अहो खल्वसौ ब्राह्मणो विद्याचरणसम्पन्न इत्युक्ते कश्चिदाह सम्भवति हि ब्राह्मणे विद्याचरणसम्पत् इत्यस्य वचनस्य विघातोऽर्थविवक्षोपपत्त्याऽसम्भूतार्थकल्पनया क्रियते यदि ब्राह्मणे विद्याचरणसम्पत् सम्भवति ब्राह्मणेऽपि सम्भवेत्, ब्राह्मणेऽपि ब्राह्मणः सोऽयन्तु विद्याचरणसम्पन्न इति । यद्विवक्षितमर्थनामोति चात्येति च तदतिसामान्यम् । यथा ब्राह्मणत्वं विद्याचरणसम्पदं क्वचिदाप्रोति क्वचिदत्येति सामान्यकल्प्यं कलं सामान्यच्छलमिति । अथ च प्रत्यवस्थानमविवक्षितहेतुकस्य विषयानुवादः प्रशंसार्थत्वात् वाक्यस्य, तदवासम्भूतार्थकल्पनानुपपत्तिः । यथा सम्भवन्त्यस्मिन् क्षेत्रे शालय इति । अनिराकृतमविवक्षितञ्च बीजजन्तु, प्रवृत्तिविषयस्तु क्षेत्रं प्रशस्यते सोऽयं क्षेत्रानुवादो नास्मिन् शालयो विधेयेत्यत इति । बीजात्तु शालिनिवृत्तिः सती न विवक्षता एवं सम्भवति ब्राह्मणे विद्याचरणसम्पदिति सम्प्रदिपयो ब्राह्मणत्वं न सम्भवेत् । न चात्र हेतुर्विवक्षितः । विषयानुवादस्त्वयं प्रशंसार्थत्वाद्वाक्यस्य, सति ब्राह्मणत्वे सम्प्रहेतुः समर्थ इति विषयञ्च प्रशंसता वाक्येन यथा हेतुतः फलनिवृत्तिर्न प्रत्याख्यायते तदेवं सति वचनविघातोऽसम्भूतार्थकल्पनया नोपपद्यत इति ॥



## धर्मविकल्पनिर्देशेऽर्थसङ्गावप्रतिषेध उपचार- च्छलम् ॥ ५५ ॥

अभिधानस्य धर्मो यथार्थप्रयोगः । धर्मविकल्पोऽन्यत्र दृष्टस्यान्यत्र प्र-  
योगः । तस्य निर्देशे धर्मविकल्पनिर्देशे । यथा सङ्गाः क्रोशन्तीति अर्थ-  
सङ्गावेन प्रतिषेधः सञ्चस्याः पुरुषाः क्रोशन्ति न तु सञ्चाः क्रोशन्ति, वा  
पुनरन्वार्थविकल्पोपपत्तिः अन्यथा प्रयुक्तस्यान्यथार्थकल्पनस् भक्त्या प्रयोगे  
प्राधान्येन कल्पनस्, उपचारविषयं क्लृप्तुपचारक्लृप्तुपचारो नीत्यर्थः  
सहचरणादिनिमित्तेनाऽतङ्गावे तद्वदभिधानमुपचार इति । अत्र समाधिः  
प्रसिद्धाप्रसिद्धे प्रयोगे वक्तुर्यथाभिप्रायं शब्दार्थयोरनुज्ञा प्रतिषेधो वा न  
क्लृप्तः प्रधानभूतस्य शब्दस्य भाक्तस्य च गुणभूतस्य प्रयोग उभयोर्लोक-  
सिद्धः । सिद्धे प्रयोगे यथा वक्तुरभिप्रायस्तथा शब्दार्थविवक्षेयौ प्रतिषेधौ  
वा न क्लृप्तः । यदि वक्ता प्रधानशब्दं प्रयुङ्क्त यथा भूतस्याभ्यनुज्ञा प्रति-  
षेधो वा न क्लृप्तः । अथ गुणभूतं तदा गुणभूतस्य, यत्र तु वक्ता गुणभूतं  
शब्दं प्रयुङ्क्ते प्रधानभूतमभिप्रेत्य परः प्रतिषेधति स्वमनीषया प्रतिषेधोऽसौ  
भवति न परोपाकृष्ट इति ॥

## वाक्क्लृप्तमेवोपचारच्छलं तदविशेषात् ॥ ५६ ॥

न वाक्क्लृप्तादुपचारच्छलं भिद्यते तस्याप्यर्थान्तरकल्पनाया अविशे-  
षात्, इहापि स्थान्यर्थो गुणशब्दः, प्रधानशब्दः स्थानार्थ इति कल्पयित्वा  
प्रतिषिध्यत इति ॥

## न तदर्थान्तरभावात् ॥ ५७ ॥

न वाक्क्लृप्तमेवोपचारच्छलं तस्यार्थसङ्गावप्रतिषेधस्यार्थान्तरभावात् ।  
कुतः अर्थान्तरकल्पनातोऽन्यार्थान्तरसङ्गावकल्पना अन्यार्थसङ्गावप्रतिषेध  
इति ॥



**अविशेषे वा किञ्चित्साधर्म्यादेकच्छलप्रसङ्गः ॥ ५८ ॥**

छलस्य द्वित्वसम्यनुज्ञाय द्वित्वं प्रतिपिध्यते किञ्चित्साधर्म्यात् यथा चायं हेतुस्त्वित्वं प्रतिषेधति तथा द्वित्वसम्यनुज्ञातं प्रतिषेधति, विद्यते हि किञ्चित्साधर्म्यं द्वयोरपीति, अथ द्वित्वं किञ्चित्साधर्म्यान् निवर्त्तते त्वित्वमपि न निवर्त्ततीति । अत उक्तम् ॥

**साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानं जातिः ॥ ५९ ॥**

प्रयुक्ते हि हेतौ यः प्रसङ्गो जायते सा जातिः स च प्रसङ्गः साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानंनुपालम्भः प्रतिषेध इति उदाहरणसाधर्म्यात् साध्यसाधनं हेतुरित्यस्योदाहरणसाधर्म्येण प्रत्यवस्थानम् । उदाहरणवैधर्म्यात् साध्यसाधनं हेतुरित्यस्योदाहरणवैधर्म्येण प्रत्यवस्थानम् । प्रत्यनीकभावाज्जायमानेऽर्थो जातिरिति ॥

**विप्रतिपत्तिरप्रतिपत्तिश्च निग्रहस्थानम् ॥ ६० ॥**

विपरीता वा कुक्षिता वा प्रतिपत्तिर्विप्रतिपत्तिः । विप्रतिपत्त्यमानः पराजयं प्राप्नोति, निग्रहस्थानं खलु पराजयप्राप्तिः । अप्रतिपत्तिस्त्वारम्भविषये न प्रारम्भः । परेण स्थापितं वा न प्रतिषेधति प्रतिषेधं वा नोद्धरति, असमासाच्च नैत एव निग्रहस्थाने इति । किं पुनर्हेतुान्तवज्जातिनिग्रहस्थानयोरभेदोऽयं सिद्धान्तवज्जेद इत्यत आह ॥

**तद्विकल्पाज्जातिनिग्रहस्थानवञ्चत्वम् ॥ ६१ ॥**

तस्य साधर्म्यवैधर्म्याभ्याम् प्रत्यवस्थानस्य विवकल्पाज्जातिवञ्चत्वम् । तयोच्च विप्रतिपत्त्यप्रतिपत्त्योर्विकल्पाच्च निग्रहस्थानवञ्चत्वम्, नानाकल्पो विवक्ष्यः, विविधो वा कल्पो विवक्ष्यः । तत्राननुभाषणसंज्ञानसमप्रतिभाविक्तेपोमतानुज्ञा पर्यनुयोच्योपेक्षणमित्यप्रतिपत्तिर्निग्रहस्थानम् शेषस्तु विप्रतिपत्तिरिति । इमे प्रमाणादयः पदार्था उद्दिष्टा ययोद्देशे लक्षिता यथालक्षणं परीक्षिष्यन्त इति त्रिविधस्य शास्त्रस्य प्रवृत्तिर्वैदितव्येति ॥ ० ॥ इति वात्स्यायनीये न्यायभाष्ये प्रथमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ।

समाप्तसायं प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥



अत ऊर्ध्वं प्रमाणादिपरीक्षा सा च विवक्ष्य पक्षप्रतिपक्षाभ्यामर्था-  
वधारणं निर्णय इत्यग्रे विमर्श एव परीज्यते ॥

**समानानेकधर्माध्यवसायादन्यतरधर्माध्यव-  
सायाद्वा न संशयः ॥ १ ॥**

समानस्य धर्मस्याध्यवसायात् संशयो न धर्ममात्रात् । अथवा समा-  
नमनयोर्यद्वर्मसुपलभत इति धर्मधर्मिग्रहणे संशयाभाव इति । अथवा  
समानधर्माध्यवसायादर्थान्तरभूते धर्मिणि संशयोऽनुपपन्न इति न जात  
रूपस्यार्थान्तरभूतस्याध्यवसायादर्थान्तरभूते स्पर्शे संशय इति । अथवा  
नाध्यवसायादर्थवधारणादनवधारणज्ञानं संशय उपपद्यते कार्यकार-  
णयोः सारूपाभावादिति । एतेनानेकधर्माध्यवसायादिति व्याख्यातम् ।  
अन्यतरधर्माध्यवसायाच्च संशयो न भवति । ततो ह्यन्यतरावधारणमेवेति ॥

**विप्रतिपत्त्यवस्थाध्यवसायाच्च ॥ २ ॥**

न विप्रतिपत्तिमात्रादव्यवस्थामात्राद्वा संशयः । किं तर्हि विप्र-  
तिपत्तिमुपलभमानस्य संशयः । एवमव्यवस्थायमपीति । अथवास्यात्मे-  
त्येके, नास्यात्मेत्यपरे मन्यन्त इत्युपलब्धेः कथं संशयः स्यादिति । अयो-  
पलञ्चिरव्यवस्थिता अनुपलञ्चिञ्चाव्यवस्थितेति विभागो नाध्यवसिते संशयो  
नोपपद्यत इति ॥

**विप्रतिपत्तौ च सम्प्रतिपत्तेः ॥ ३ ॥**

याच्च विप्रतिपत्तिं भवान् संशयहेतुं मन्यते सा सम्प्रतिपत्तिः । सा  
हि द्वयोः प्रत्यनीकधर्मविषया तत्र यदि विप्रतिपत्तेः संशयः सम्प्रतिपत्ते  
रेव संशय इति ॥

**अव्यवस्थात्मनि व्यवस्थितत्वाच्चाव्यवस्थायाः ॥ ४ ॥**

न संशयः । यदि तावदियमव्यवस्था आत्मन्येव व्यवस्थिता व्यवस्था-



मादव्यवस्था न भवतीत्यनुपपन्नः संशयः, अथाव्यवस्थात्मनि न व्यवस्थिता,  
एवमतादात्म्यादव्यवस्था न भवतीति संशयाभाव इति ॥

तथाऽत्यन्तसंशयस्तद्वर्मासातत्योपपत्तेः ॥ ५ ॥

येन कल्पेन भवान् समानधर्मोपपत्तेः संशय इति मन्यते तेन खल्व-  
त्यन्तसंशयः प्रसज्यते समानधर्मोपपत्तेरनुच्छेदात् संशयानुच्छेदः नायमत-  
द्वर्मा धर्मा विस्तृष्टमाणे गृह्यते सततन्तु तद्वर्मा भवतीति अस्य प्रतिषेध-  
प्रपञ्चस्य संक्षेपेणोद्धारः ॥

यथोक्ताध्यवसायादेव तद्विशेषापेक्षात् संशये  
नासंशयो नात्यन्तसंशयो वा ॥ ६ ॥

संशयानुपपत्तिः संशयानुच्छेदश्च न प्रसज्यते, कथम्, यत्तावत्समान-  
धर्माध्यवसायः संशयहेतुर्न समानधर्ममात्रमिति । एवमेतत्, कस्मादेवं  
नोच्यत इति विशेषापेक्ष इति वचनात् सिद्धेः । विशेषस्यापेक्षाकाङ्क्षा,  
सा चानुपलभ्यमाने विशेषे समर्था न चोक्तं समानधर्मापेक्ष इति समाने  
च धर्मे कथमाकाङ्क्षा न भवेत् यद्ययं प्रत्यक्षः स्यात् । एतेन सामर्थ्येन विज्ञा-  
यते समानधर्माध्यवसायादिति उपपत्तिवचनाद्वा समानधर्मोपपत्तेरित्यु-  
च्यते न चान्यासद्भावसंवेदनादते समानधर्मोपपत्तिरस्ति । अनुपलभ्यमा-  
नसद्भावो हि समानो धर्मो विद्यमानवद्भवतीति । विषयशब्देन वा  
विषयविणः प्रत्ययस्याभिधानम् । यथा लोके धूमेनाग्निरनुसीयते इत्युक्ते  
धूसद्रूपेणाग्निरनुसीयत इति ज्ञायते कथं दृष्ट्वा हि धूममग्निसमुत्पन्नमिति  
नादृष्ट्वा, न च वाक्ये दर्शनशब्दः श्रूयते अनुजानाति च वाक्यसार्थप्रत्या-  
यकत्वम्, तेन मन्यामहे विषयशब्देन विषयविणः प्रत्ययस्याभिधानम् बोद्धा-  
ऽनुजानाति एवमिहापि समानधर्मशब्देन समानधर्माध्यवसायमाहेति ।  
यथोहित्वा समानमनयोर्धर्मसुपलभत इति । धर्मधर्मियच्छेपे संशयाभाव  
इति । पूर्वदृष्टविषयमेतत् । यावद्भूमयो पूर्वसद्राजन्तयोः समानं धर्मसु  
पलभे विशेषं नोपलभ इति । कथन्तु विशेषं पश्येयं येनान्यतरमवधारयेय-



मिति, न चैतत्समानधर्मापलब्धौ धर्मधर्मिग्रहणभावेण निवर्त्तत इति यच्चोक्तम् नार्थान्तराध्यवसायादन्यत्र संशय इति यो ह्यर्थान्तराध्यवसाय-  
 भावं संशयहेतुमुपाददीत स एवं वाच्य इति । यत्पुनरेतत्कार्यकार-  
 णयोः साहचर्याभावादिति कारणस्य भावाभावयोः कार्यस्य भावाभावौ  
 कार्यकारणयोः साहचर्यम् यस्योत्पादाद्यदुत्पद्यते यस्य चावृत्तादाद्यवृत्तोत्प-  
 द्यते तत्कारणं कार्यमितरदित्येतत्साहचर्यम्, अस्ति च संशयकारणे संशये  
 चैतदिति, एतेनानेकधर्माध्यवसायादिति प्रतिषेधः परिहृत इति यत्पु-  
 नरेतदुक्तं विप्रतिपत्त्यव्यवस्थाध्यवसायाच्च न संशय इति । पृथक्  
 प्रवादयोर्व्याहृतमर्थसुपलभे विशेषश्च न जानामि नोपलभे येनान्यतरमव-  
 धारयेयम् । तत् कोऽत्र विशेषः स्यादयेनैकतरमवधारयेयमिति । संशयो  
 विप्रतिपत्तिजनितोऽयं न शक्यो विप्रतिपत्तिसम्प्रतिपत्तिभावेण निवर्त्त-  
 यितुमिति । एवमुपलब्धप्रपञ्चव्यवस्थाकृते संशये वेदितव्यमिति । यत्  
 पुनरेतत् विप्रतिपत्तौ च सम्प्रतिपत्तेरिति विप्रतिपत्तिशब्दस्य योऽर्थः  
 तदध्यवसायो विशेषापेक्षः संशयहेतुस्तस्य च समाख्यानरेण न निवृत्तिः  
 समानेऽधिकरणे व्याहृतार्थौ प्रवादौ विप्रतिपत्तिशब्दस्यार्थः तदध्यवसा-  
 यश्च विशेषापेक्षः संशयहेतुः न चास्य सम्प्रतिपत्तिशब्दे समाख्यानरे  
 योज्यमाने संशयहेतुत्वं निवर्त्तते । तदिदमकृतवृद्धिसम्बोहनमिति । यत्पु-  
 नरव्यवस्थात्मनि व्यवस्थितत्वाच्चाव्यवस्थाया इति संशयहेतोरर्थस्याप्रति-  
 पेक्षादव्यवस्थाऽत्यनुज्ञानाच्च निमित्तान्तरेण शब्दान्तरकल्पना व्यर्था शब्दा-  
 न्तरकल्पना, अव्यवस्था खलु व्यवस्था न भवत्यव्यवस्थात्मनि व्यवस्थितत्वा-  
 दिति नानयोरुपलब्धप्रपञ्चयोः सदसद्विषयत्वं विशेषापेक्षं संशयहेतुर्न  
 भवतीति प्रतिषिध्यते यावता चाव्यवस्थात्मनि व्यवस्थिता न तावतात्मानं  
 जहाति तावता ह्यनुज्ञाता भवत्यव्यवस्था । एवमियं क्रियमाणापि शब्दा-  
 न्तरकल्पना नार्थान्तरं साधयतीति । यत्पुनरेतत्तत्तात्पर्यसंशयस्तद्धर्मसात-  
 ल्योपपत्तेरिति नायं समानधर्मादिभ्य एव संशयः किन्तर्हि तत्तद्विषया-  
 ध्यवसायाद्विशेषकृतिरुहितादित्यतो नात्यन्तसंशय इति अन्यतरधर्माध्य-  
 वसायाद्वा न संशय इति तत्र युक्तम् विशेषापेक्षो विवर्गः संशय इति  
 वचनात् विशेषज्ञान्यतरधर्मो न च तस्मिन् अध्यवसायमाने विशेषापेक्षा  
 सम्भवतीति ॥



यत्र संशयस्तत्रैवमुत्तरोत्तरप्रसङ्गः ॥७॥

यत्र यत्र संशयपूर्विका परीक्षा शास्त्रे कथायां वा तत्र तत्रैवं संशये  
परेण प्रतिपिद्धे समाधिर्वाच्य इति । अतः सर्वपरीक्षाव्यापित्वात्म्यमं  
संशयः परीक्षित इति अथ प्रमाणपरीक्षा ॥

प्रत्यक्षादीनामप्रामाण्यं त्रैकाल्यासिद्धेः ॥८॥

प्रत्यक्षादीनां प्रमाणत्वं नास्ति त्रैकाल्यासिद्धेः पूर्वापरसहभावा-  
नुपपत्तेरिति । अस्मै सामान्यवचनस्यार्थविभागः ॥

पूर्वं हि प्रमाणसिद्धौ नेन्द्रियार्थसन्निकर्षात्म-  
त्यक्षोत्पत्तिः ॥ ८ ॥

गन्धादिविषयं ज्ञानं प्रत्यक्षं तद्यदि पूर्वम्, पञ्चाङ्गन्धादीनां सिद्धिः,  
नेदं गन्धादिसन्निकर्षादुत्पद्यत इति ॥

पश्चात् सिद्धौ न प्रमाणेभ्यः प्रमेयसिद्धिः ॥ १०॥

असति प्रमाणे केन प्रमेयमाणोऽर्थः प्रमेयः स्यात् प्रमाणेन खलु  
प्रमेयमाणोऽर्थः प्रमेयमित्येतत्सिध्यति ॥

युगपत्सिद्धौ प्रत्यर्थनियतत्वात् क्रमवृत्तित्वा-  
भावो बुद्धीनाम् ॥ ११ ॥

यदि प्रमाणं प्रमेयञ्च युगपद्भवतः । एवमपि गन्धादिष्विन्द्रियार्थेषु  
ज्ञानानि प्रत्यर्थनियतानि युगपत्सम्भवन्तीति ज्ञानानां प्रत्यर्थनियतत्वात्  
क्रमवृत्तित्वाभावः । या इमा बुद्धयः क्रमेणार्थेषु प्रवर्तन्ते तासां क्रमवृत्तित्वं  
न सम्भवतीति, व्याघातश्च युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्नसोल्लिङ्गमिति, एतावाञ्च  
प्रमाणप्रमेययोः सद्भावविषयः स चानुपपन्न इति तस्मात् प्रत्यक्षादीनां  
प्रमाणत्वं न सम्भवतीति, अस्मै समाधिः उपलब्धिहेतोरुपलब्धिविषयस्य



चार्थस्य पूर्वपरसहभावानियमाद्यथा दर्शनं विभागवचनम् कचिदुप-  
लब्धिहेतुः पूर्वं पश्चादुपलब्धिविषयः । यथादित्यस्य प्रकाशः उत्पद्यमानानां  
कचित्पूर्वसुपलब्धिविषयः पश्चादुपलब्धिहेतुः, यथावस्थितानां प्रदीपः  
कचिदुपलब्धिहेतुरुपलब्धिविषयश्च सह सम्भवतः, यथा धूमेनाग्नेर्ग्रह-  
णमिति, उपलब्धिहेतुश्च प्रमाणम्, प्रमेयन्तूपलब्धिविषयः एवं प्रमाण-  
प्रमेययोः पूर्वपरसहभावेऽनियते यथाऽर्थो दृश्यते तथा विभज्य ववनीय  
इति । तत्रैकान्तेन प्रतिषेधानुपपत्तिः सामान्येन खलु विभज्य प्रतिषेध  
उक्त इति समाख्याहेतोस्त्रैकाल्ययोगात् तथाभूता समाख्या, यत् पुन-  
रिदं पश्चात् सिद्धे च प्रमाणेन प्रमीयमाणोऽर्थः प्रमेयमिति विज्ञायत  
इति । प्रमाणमित्येतस्य : समाख्याया उपलब्धिहेतुत्वं निमित्तं तस्य  
त्रैकाल्ययोगः, उपलब्धिसकार्षीदुपलब्धिं करोति उपलब्धिं करिष्यतीति  
समाख्याहेतोस्त्रैकाल्ययोगात् समाख्या तथाभूता, प्रमितोऽनेनार्थः प्रमी-  
यते प्रमास्यते इति प्रमाणम्, प्रमितं प्रमीयते प्रमास्यत इति च प्रमेयम् ।  
एवं सति भविष्यित्यस्मिन् हेतुत उपलब्धिः, प्रमास्यतेऽयमर्थः, प्रमेयमिद-  
मित्येतत् सत्त्वं भवतीति, त्रैकाल्यानभ्यनुज्ञाने च व्यवहारानुपपत्तिः ।  
यच्चैवं नाभ्यनुजानीयात् तस्य पाचकमानय पक्ष्यति, लावकमानय लवि-  
ष्यतीति व्यवहारो नोपपद्यत इति ॥ प्रत्यक्षादीनामप्रामाण्यं त्रैकाल्या-  
सिद्धेरित्येवमादिवाक्यम् प्रमाणप्रतिषेधः । तत्रायं प्रष्टव्यः । अयानेन  
प्रतिषेधेन भवता किं क्रियत इति, किं सम्भवो निवर्त्यते अथासम्भवो  
ज्ञायत इति, तद्यदि सम्भवो निवर्त्यते सति सम्भवे प्रत्यक्षादीनां प्रति-  
षेधानुपपत्तिः अथासम्भवो ज्ञायते प्रमाणलक्षणं प्राप्तस्त्वर्हि प्रतिषेधः  
प्रमाणासम्भवस्योपलब्धिहेतुत्वादिति । किञ्चातः ॥

**त्रैकाल्यासिद्धेः प्रतिषेधानुपपत्तिः ॥ १२ ॥**

अस्य तु विभागः पूर्वं हि प्रतिषेधसिद्धावसति प्रतिषेध्ये किमनेन  
प्रतिषिध्यते, पश्चात् सिद्धौ प्रतिषेध्यासिद्धिः प्रतिषेधाभावादिति युगप-  
त्सिद्धौ प्रतिषेधसिद्धाभ्यनुज्ञानादनर्थकः प्रतिषेधः इति । प्रतिषेधलक्षणे च  
वाक्येऽनुपपद्यमाने सिद्धं प्रत्यक्षादीनां प्रामाण्यमिति ॥



सर्वप्रमाणप्रतिषेधाच्च प्रतिषेधानुपपत्तिः ॥ १३ ॥

कथम् त्रैकाल्यासिद्धेरित्यस्य हेतोर्यद्युदाहरणमुपादीयते हेत्वर्थस्य साधकत्वं दृष्टान्ते दर्शयितव्यमिति न च तर्हि प्रत्यक्षादीनामप्रामाण्यम् । अथ प्रत्यक्षादीनामप्रामाण्यमुपादीयमानमप्युदाहरणं नार्थं साधयिष्यतीति सोऽयं सर्वप्रमाणैर्व्याहतो हेतुरहेतुः । सिद्धान्तमभ्युपेत्य तद्विरौधी विरुद्ध इति, वाक्यार्थो ह्यस्य सिद्धान्तः स च वाक्यार्थः प्रत्यक्षादीनि नार्थं साधयन्तीति । इदञ्चावयवानामुपादानमर्थस्य साधनायेति । अथ नोपादीयते अप्रदर्शितहेत्वर्थस्य दृष्टान्तेन साधकत्वमिति निषेधो नोपपद्यते हेतुत्वासिद्धेरिति ॥

तत्प्रामाण्ये वा न सर्वप्रमाणविप्रतिषेधः ॥ १४ ॥

प्रतिषेधलक्षणे स्ववाक्ये तेषामवयवाश्रितानां प्रत्यक्षादीनामप्रामाण्येऽभ्यनुज्ञायमाने परवाक्येऽप्यवयवाश्रितानां प्रामाण्यं प्रचक्ष्यते अवशिष्टादिति । एवञ्च न सर्वाणि प्रमाणानि प्रतिषिध्यन्त इति । विप्रतिषेध इति वीत्ययमुपसर्गः सम्प्रतिपत्त्यर्थे न व्याघातेऽर्थाभावादिति ॥

त्रैकाल्याप्रतिषेधश्च शब्दादातोद्यसिद्धिवत्तत्सिद्धेः ॥ १५ ॥

किमर्थं पुनरिदमुच्यते, पूर्वोक्तनिवन्धनार्थं यत्तावत् पूर्वोक्तमुपलब्धिहेतोरुपलब्धिविषयस्य चार्थस्य पूर्वोपरसहभावानियमाद्युदादर्शनं विभागवचनमिति । तदितः समुत्थानं यथा विज्ञायेत । अनियमदर्शी खल्वयमृषिर्नियमेन प्रतिषेधं प्रत्याचटे, त्रैकाल्यस्य चायुक्तः प्रतिषेध इति । तत्रैकां विधामुदाहरति । शब्दादातोद्यसिद्धिवदिति यथा प्लवात् सिद्धेन शब्देन पूर्वसिद्धमातोद्यमनुमीयते साध्यञ्चातोद्यं साधनञ्च शब्दः । अन्तर्हितं ह्यातोद्ये स्वनतोऽनुमानं भवतीति । वीणा वाद्यते वेणुः पूर्यत इति स्वनविशेषेण आतोद्यविशेषं प्रतिपद्यते । तथा पूर्वसिद्धमुपलब्धिहे-



तुना प्रतिपद्यतइति । निदर्शनार्थत्वाच्चास्य शेषयोर्विधयोर्यथोक्तमुदाहरणं वेदितव्यमिति । कस्मात् पुनरिह तन्नोच्यते पूर्वोक्तमुपपाद्यत इति सर्वथा तावदयमर्थः प्रकाशयितव्यः सह इह वा प्रकाशयेत तत्र वा न कश्चिद्विशेष इति यदा चोपलब्धिविषयः कस्यचिदुपलब्धिसाधनं भवति तदा प्रमाणं प्रमेयमिति चैकोऽर्थोऽभिधीयते । अस्यार्थस्यावद्योतनार्थमिदमुच्यते ॥

## प्रमेयता च तुलाप्रामाण्यवत् ॥ १६ ॥

गुरुत्वपरिमाणज्ञानसाधनं तुला प्रमाणं, ज्ञानविषयो गुरुद्रव्यं सुवर्णादि प्रमेयम् । यदा तु सुवर्णादिना तुलान्तरं व्यवस्थायते तदा तुलान्तरप्रतिपत्तौ सुवर्णादि प्रमाणम्, तुलान्तरं प्रमेयमिति एवमनवयवेन तन्वार्थं उद्दिष्टो वेदितव्यः । आत्मा तावदुपलब्धिविषयत्वात् प्रमेये परिपठितः । उपलब्धौ स्वातन्त्र्यात् प्रमाता । बुद्धिरुपलब्धिसाधनत्वात् प्रमाणम्, उपलब्धिविषयत्वात् प्रमेयम्, उभयाभावात् प्रमितिः । एवमर्थविशेषे समाख्या समावेशो योज्यः । तथा च कारकशब्दा निमित्तवशत् समावेशेन वर्तन्त इति । वृक्षस्तिष्ठतीति स्वस्थितौ स्वातन्त्र्यात् कर्त्ता, वृक्षं पश्यतीति दर्शनेनाप्तुमिच्छमाणतमत्वात् कर्म, वृक्षेण चन्द्रमसं ज्ञापयतीति ज्ञापकस्य साधकतमत्वात् करणम् । वृक्षोदकमासिञ्चतीत्यासिच्यमानेनोदकेन वृक्षमभिप्रैतीति सम्प्रदानम्, वृक्षात्पुष्पततीति ध्रुवमपायेऽपादानमित्यपादानम् । वृक्षे वयांसि सन्तीत्याधारोऽधिकरणमित्यधिकरणम् । एवञ्च सति न द्रव्यमात्रं कारकं न क्रियामात्रं किं तर्हि क्रियासाधनं क्रियाविशेषयुक्तं कारकम् । यत् क्रियासाधनं स्वतन्त्रः स कर्त्ता न द्रव्यमात्रं न क्रियामात्रम् । क्रियया ह्याप्तुमिच्छमाणतमं कर्म न द्रव्यमात्रं न क्रियामात्रम् । एवं साधकतमादिष्वपि, एवञ्च कारकाथान्वाख्यानं यथैवोपपत्तित एवं लक्षणतः कारकान्वाख्यानमपि न द्रव्यमात्रेण न क्रियया वा, किं तर्हि क्रियासाधने क्रियाविशेषे युक्त इति कारकशब्दज्ञायं प्रमाणं प्रमेयमिति स च कारकधर्मं न हातुमर्हति अस्ति च भोः कारकशब्दानां निमित्तवशात् समावेशः । प्रत्यक्षादीनि च प्रमाणानि उपलब्धिहेतुत्वात्, प्रमेयञ्चोपलब्धिविषयत्वात्, संवेद्यानि च प्रत्यक्षादीनि प्रत्यक्षेणोपलभे



अनुमानेनोपलभे उपमानेनोपलभे व्यागमेनोपलभे प्रत्यक्षं मे ज्ञानमातु-  
मानिकं मे ज्ञानमौपमानिकं मे ज्ञानमागमिकं मे ज्ञानमिति ज्ञानविशेषा  
गृह्यन्ते, लक्षणतश्च ज्ञाप्यमानानि ज्ञायन्ते विशेषेण इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्-  
पन्नं ज्ञानमित्येवमादिना, सेयमुपलब्धिः प्रत्यक्षादिविषया किं प्रमाणान्त-  
रतोऽथान्तरेण प्रमाणान्तरमसाधनेति कश्चात् विशेषः ।

**प्रमाणतः सिद्धेः प्रमाणानां प्रमाणान्तरसिद्धि-  
प्रसङ्गः ॥ १७ ॥**

यदि प्रत्यक्षोद्दीनि प्रमाणेन नोपलभ्यन्ते । येन प्रमाणेनोपलभ्यन्ते  
तत्प्रमाणान्तरसङ्गावः प्रसज्यत इति । अनवस्थामाह तस्याप्यन्यतरस्या-  
प्यन्येनेति नचानवस्था शक्यानुज्ञातुमनुपपत्तेरिति । अस्तु तर्हि प्रमाणा-  
न्तरमन्तरेण नि.साधनेति ।

**तद्विनिवृत्तेर्वा प्रमाणान्तरसिद्धिवत् प्रमेयसिद्धिः  
॥ १८ ॥**

यदि प्रत्यक्षाद्युपलब्धौ प्रमाणान्तरं निवर्त्तते आत्मैत्युपलब्ध्वापि  
प्रमाणान्तरं निवर्त्तप्रत्यविशेषात् । एवञ्च सर्वप्रमाणविलोप इत्यत आह ।

**न प्रदीपप्रकाशवत् तत्सिद्धेः ॥ १९ ॥**

यथा प्रदीपप्रकाशः प्रत्यक्षाङ्गत्वाद्दृश्यदर्शने प्रमाणम्, स च प्रत्य-  
क्षान्तरेण चक्षुषः सन्निकर्षेण गृह्यते । प्रदीपभावाभावयोर्दर्शनस्य तथा  
भावादर्थनहेतुरनुमीयते । तमसि प्रदीपमुपादधीया इत्याप्तोपदेशेनापि  
प्रतिपद्यते । एवं प्रत्यक्षादीनां यथादर्शनं प्रत्यक्षादिनिरेवोपलब्धिः ।  
इन्द्रियाणि तावत् स्वविषयग्रहणेनैवानुमीयन्ते । अर्थाः प्रत्यक्षतो गृ-  
ह्यन्ते, इन्द्रियार्थसन्निकर्षस्तु आवरणेन लिङ्गेनानुमीयते, इन्द्रियार्थसन्नि-  
कर्षोत्पन्नं ज्ञानमात्मनसोः संयोगविशेषादात्मसमवायाच्च सुखादिवद्-



गृह्यन्ते । एवं प्रमाणविशेषो विभज्य वचनीयः । यथा च दृश्यः सन् प्रदीपप्रकाशो दृष्टान्तराणां दर्शनहेतुरिति दृश्यदर्शनव्यवस्थां लभते । एवं प्रमेयं सत् किञ्चिदर्थजातसुपलब्धिहेतुत्वात् प्रमाणप्रमेयव्यवस्थां लभते, सेयं प्रत्यक्षादिभिरेव प्रत्यक्षादीनां यथादर्शनसुपलब्धिर्न प्रमाणान्तरतो न च प्रमाणमन्तरेण निःसाधनेति, तेनैव तस्या ग्रहणमिति चेत् नार्थभेदस्य लक्षणसामान्यात् प्रत्यक्षादीनाम् प्रत्यक्षादिभिरेव ग्रहणमित्युक्तम् । अन्येन ह्यन्यस्य ग्रहणं दृष्टमिति नार्थभेदस्य लक्षणसामान्यात् प्रत्यक्षलक्षणेनानेकोऽर्थः सङ्गृहीतः । तत्र केनचित् कस्यचिद्ग्रहणमित्यदोषः । एवमुत्तमानादिष्वपीति, यथोद्धृतेनोदकेनाशयस्यस्य ग्रहणमिति ज्ञातमनसोश्च दर्शनात् । अहं सुखो अहं दुःखी चेति तेनैव ज्ञात्वा तस्यैव ग्रहणं दृश्यते, युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गमिति च तेनैव मनसा तस्यैवानुमानं दृश्यते, ज्ञातुर्चैयस्य चाभेदो ग्रहणस्य ग्राह्यस्य चाभेद इति । निमित्तभेदोऽवेति चेत् समानम्, न निमित्तान्तरेण विना ज्ञाताऽऽत्मानं जानीते न च निमित्तान्तरेण विना मनसा मनो गृह्यत इति समानमेतत्, प्रत्यक्षादिभिः प्रत्यक्षादीनां ग्रहणमित्यत्राप्यर्थभेदो न गृह्यत इति । प्रत्यक्षादीनाञ्चाविषयस्यानुपपत्तेः । यदि स्यात् किञ्चिदर्थजातं प्रत्यक्षादीनामविषयः । यत् प्रत्यक्षादिभिर्न शक्यं ग्रहीतुं तस्य ग्रहणाय प्रमाणान्तरमुपादीयेत । तत्तु न शक्यं केनचिदुपपादयितुमिति । प्रत्यक्षादीनां यथादर्शनमेवेदं सञ्ज्ञासञ्च सर्वं विषय इति केचित्तु दृष्टान्तमपरिगृहीतं हेतुना विशेषहेतुमन्तरेण साध्यसाधनायोपाददते । यथा प्रदीपप्रकाशः प्रदीपान्तरप्रकाशमन्तरेण गृह्यते, तथा प्रमाणानि प्रमाणान्तरमन्तरेण गृह्यन्त इति । स चायं किञ्चिन्निवृत्तिदर्शनादनिवृत्तिदर्शनाच्च कचिदनेकान्तः । यथा चायं प्रसङ्गोऽनिवृत्तिदर्शनात् प्रमाणसाधनायोपादीयते, एवं प्रमेयसाधनायाप्युपादेयो विशेषहेतुत्वात् यथा स्यात्स्यादिरूपग्रहणे प्रदीपप्रकाशः प्रमेयसाधनायोपादीयते । एवं प्रमाणसाधनायाप्युपादेयो विशेषहेतुभावात् सोऽयं विशेषहेतुपरिग्रहमन्तरेण दृष्टाग्र एकस्मिन् पक्षे उपादेयो न प्रतिपक्ष इत्यनेकान्तः । एकस्मिन् पक्षे दृष्टान्त इत्यनेकान्तो विशेषहेतुचाभावादिति । विशेषहेतु-



परिग्रहे सति उपसंहाराभ्यनुष्ठानादप्रतिषेधः । विशेषहेतुपरिगृही-  
तस्तु दृष्टान् एवस्मिन् पक्षे उपसंहृत्यमाणो न शक्यो ज्ञातुम् । एवञ्च  
सत्यनेकान्त इत्ययं प्रतिषेधो न भवति । प्रत्यक्षादीनां प्रत्यक्षादिभिरूप-  
लब्धावनवस्येति चेत् न संविद्विषयनिमित्तानामुपलब्ध्या व्यवहारोपपत्तेः ।  
प्रत्यक्षेणार्थमुपलभे अनुमानेनार्थमुपलभे उपमानेनार्थमुपलभे आगमेनार्थ-  
मुपलभ इति । प्रत्यक्षं मे ज्ञानमातृसाणिकं मे ज्ञानमौघसाणिकं मे ज्ञान-  
मागमिकं मे ज्ञानमिति संविद्विमित्तज्ञोपलभमानस्य धर्माद्यसुखापवर्ग-  
प्रयोजनस्तत्प्रत्यनीकपरिवर्जनप्रयोजनश्च व्यवहार उपपद्यते, सोऽयं  
तावत्येव निवर्तते, न चास्ति व्यवहारान्तरमनवस्था साधनीयम्, येन  
प्रयुक्तोऽनवस्थासुपाददीतेति । सामान्येन प्रमाणाणि परीक्ष्य विशेषेण  
परीक्ष्यन्ते तव ।

**प्रत्यक्षलक्षणानुपपत्तिरसमग्रवचनात् ॥ २० ॥**

आत्मनः सन्निकर्षो हि कारणान्तरं नोक्तमिति । न चासंयुक्ते द्रव्ये  
संयोगजन्यस्य गुणस्योत्पत्तिरिति ज्ञानोत्पत्तिदर्शनादात्मनःसन्निकर्षः  
कारणम्, मनःसन्निकर्षानपेक्षस्य चेन्द्रियार्थसन्निकर्षस्य ज्ञानकारणत्वे युग-  
पदुत्पद्येरन् बुद्ध्य इति मनःसन्निकर्षोऽपि कारणम् । तदिदं सूत्रं पुर-  
स्तात् कृतमाद्यम् :

**नात्ममनसोः सन्निकर्षाभावे प्रत्यक्षोत्पत्तिः ॥ २१ ॥**

आत्ममनसोः सन्निकर्षाभावे नोत्पद्यते प्रत्यक्षम् इन्द्रियार्थसन्निकर्षा-  
भाववदिति, सति चेन्द्रियार्थसन्निकर्षे ज्ञानोत्पत्तिदर्शनात् कारणभावं  
ब्रुवते ।

**दिग्देशकालाकाशेष्वप्येवं प्रसङ्गः ॥ २२ ॥**

दिगादिषु सत्सु ज्ञानभावात्तान्यपि कारणानीति । अकारणभावेऽपि  
ज्ञानोत्पत्तिर्दिगादिसन्निधेरवर्जनीयत्वात् । यदाप्यकारणं दिगादीनि



ज्ञानोत्पत्तौ तदापि सत्त्वं दिगादिषु ज्ञानेन भवितव्यम्, न हि दिगादीनां सन्नधिः शक्यः परिवर्जयितुमिति तत्र कारणभावे हेतुवचनम् एतस्मादेतौ दिगादीनि ज्ञानकारणानीति । आत्मनः सन्निकर्षस्तर्ह्यपसङ्गो य इति तत्रेदमुच्यते ।

**ज्ञानलिङ्गत्वादात्मनो नानवरोधः ॥ २३ ॥**

ज्ञानमात्मनो लिङ्गं तद्गुणत्वात् न चासंयुक्ते द्रव्ये संयोगस्य गुणस्योत्पत्तिरस्तीति ।

**तदयौगपद्यलिङ्गत्वाच्च न मनसः ॥ २४ ॥**

अनवरोध इति वर्तते, युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्भनसो लिङ्गमित्युच्यमाने सिध्यत्येव मनः सन्निकर्षोपेक्ष इन्द्रियार्थसन्निकर्षो ज्ञानकारणमिति प्रत्यक्षनिमित्तत्वाच्चेन्द्रियार्थयोः सन्निकर्षस्य शब्देन वचनम्, प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दानां निमित्तमात्मनः सन्निकर्षः प्रत्यक्षस्येवेन्द्रियार्थसन्निकर्ष इत्यसमानोऽसमानत्वात्तस्य ग्रहणं सुप्तव्यासक्तमनसाच्चेन्द्रियार्थयोः सन्निकर्षनिमित्तत्वादिन्द्रियार्थसन्निकर्षस्य ग्रहणं नात्ममनसोः सन्निकर्षस्येति । एकदा खल्वयं प्रबोधकालं प्रणिधाय सुप्तः प्रणिधानवशात् प्रबुध्यते । यदा तु तीव्रौ ध्वनिसंघर्षौ प्रबोधकारणम्भवतस्तदा प्रसुप्तस्येन्द्रियार्थसन्निकर्षनिमित्तं प्रबोधज्ञानमुत्पद्यते, तत्र न ज्ञातुर्भनसच्च सन्निकर्षस्य प्राधान्यं भवति, किन्तुहीन्द्रियार्थयोः सन्निकर्षस्य, न ह्यात्मा जिज्ञासमानः प्रयत्नेन मनस्तदाप्रेरयतीति एकदा खल्वयं विषयान्तरासक्तमनः सङ्कल्पवशाद्विषयान्तरं जिज्ञासमानः प्रयत्नप्रेरितेन मनसेन्द्रियं संयोज्य तत्तद्विषयान्तरं जानीते । यदा तु खल्वस्य निःसङ्कल्पस्य निर्जिज्ञासस्य च व्यासक्तमनसो बाह्यविषयोपनिपातनाज्ज्ञानमुत्पाद्यते तदेन्द्रियार्थसन्निकर्षस्य प्राधान्यम् न ह्येतासौ जिज्ञासमानः प्रयत्नेन मनः प्रेरयतीति प्राधान्याच्चेन्द्रियार्थसन्निकर्षस्य ग्रहणं कार्यं, गुणत्वात्, नात्ममनसोः सन्निकर्षस्येति । प्राधान्ये च हेत्वन्तरम् ॥



## तैश्चापदेशो ज्ञानविशेषाणाम् ॥ २५ ॥

तैरिन्द्रियैरर्थेषु व्यपदिश्यन्ते ज्ञानविशेषाः, कथम्, घ्राणेन जिघ्रति, चक्षुषा पश्यति: रसनया रसयतोति, घ्राणविज्ञानं, चक्षुर्विज्ञानं, रस-  
नाविज्ञानमिति, गन्धविज्ञानं, रूपविज्ञानं, रसविज्ञानमिति च इन्द्रि-  
यविषयविशेषाश्च पञ्चधा बुद्धिर्भवति, अतः प्राधान्यमिन्द्रियार्थसन्निकर्ष-  
स्येति । यदुक्तमिन्द्रियार्थसन्निकर्षग्रहणं कार्यन्नात्ममनसोः सन्निकर्षस्येति  
कस्मात् सुप्तव्यासक्तमनसामिन्द्रियार्थयोः सन्निकर्षस्य ज्ञाननिमित्तत्वा-  
दिति, सेऽयम् ॥

## व्याहतत्वादहेतुः ॥ २६ ॥

यदि तावत् कचिदात्ममनसोः सन्निकर्षस्य ज्ञानकारणत्वं नेष्यते  
तदा युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसोर्लङ्घ्यमिति व्याहन्येत तदानीं मनसः  
सन्निकर्षमिन्द्रियार्थसन्निकर्षोऽपेक्षते, मनःसंयोगानपेक्षयाच्च युगपज्ज्ञा-  
नोत्पत्तिप्रसङ्गः । अथ माभूद्व्याघात इति सर्वविज्ञानानानात्ममनसोः  
सन्निकर्षः कारणमिष्यते तदवस्थमेवेदं भवति ज्ञानकारणत्वादात्ममनसोः  
सन्निकर्षस्य ग्रहणं कार्यमिति ॥

## नार्थविशेषप्रावल्यात् ॥ २७ ॥

नास्ति व्याघातः नह्यात्ममनःसन्निकर्षस्य ज्ञानकारणत्वं व्यभिचरति,  
इन्द्रियार्थसन्निकर्षस्य प्राधान्यमुपादीयते अर्थविशेषप्रावल्याद्वि सुप्तव्या-  
सक्तमनसां ज्ञानोत्पत्तिरेकदा भवति, अर्थविशेषः कश्चिदेवेन्द्रियार्थः तस्य  
प्रावल्यं तीव्रतापटुते तच्चार्यविशेषप्रावल्यमिन्द्रियार्थसन्निकर्षविषयं नात्म-  
मनसोः सन्निकर्षविषयं, तस्मादिन्द्रियार्थसन्निकर्षः प्रधानमिति, असति  
प्रणिधाने सङ्कल्पे चसति सुप्तव्यासक्तमनसां यदिन्द्रियार्थसन्निकर्षादुत्प-  
द्यते ज्ञानं तत्र मनःसंयोगोऽपि कारणमिति मनसि क्रिया कारणं वाच्य-  
मिति यथैव ज्ञातुः खल्वयमिच्छाजनितः प्रग्रहो मनसः प्रेरक आत्मगुण  
एवमात्मनि गुणान्तरं सर्वस्य साधकं प्रवृत्तिदोषजनितमस्ति येन प्रेरितं



मम इन्द्रियेण सत्त्वध्यते तेन ह्यनेर्यसां मनसि संयोगाभावाज्ज्ञाना-  
नुत्पत्तौ सर्वार्थतास्य निवर्त्तते, एषितव्यञ्चास्य गुणान्तरस्य द्रव्यगुणकर्म-  
कारणकत्वं अन्यथा हि चतुर्विधानासङ्गनां भूतसूक्ष्माणां मनसाञ्च ततो-  
ऽन्यस्य क्रियाहेतोरसम्भवात् शरीरेन्द्रियविषयाणामनुत्पत्तिप्रसङ्गः ॥

**प्रत्यक्षमनुमानमेकदेशग्रहणादुपलब्धैः ॥ २८ ॥**

यदिदमिन्द्रियार्थसन्निर्गमादुत्पद्यते ज्ञानं वृत्त इत्येतत् किल प्रत्यक्षं  
तत् खल्वनुमानमेव, कस्मात्, एकदेशग्रहणात् वृत्तस्योपलब्धेरवांग्भागस्य  
गृहीत्वा वृत्तसुपलभते नचैकदेशो वृत्तः । तत्र यथा धूमं गृहीत्वा वह्नि-  
मनुमिनोति तादृगेव तद्ववति । किं पुनर्गृह्यमाणोदेकदेशादर्थान्तरमनु-  
मेयं सन्त्यसे अवयवसमूहपक्षे अवयवान्तराणि द्रव्योत्पत्तिपक्षे तानि, चावयवी  
चेति अवयवसमूहपक्षे तावत् एकदेशग्रहणाद्वृत्तबुद्धेरभावः नागृह्यमाण-  
मेकदेशान्तरं वृत्तो गृह्यमाणैकदेशवदिति, अथैकदेशग्रहणादेशान्तरानु-  
माने समुदायप्रतिसम्भानात् तत्र वृत्तबुद्धिः न तर्हि वृत्तबुद्धिरनुमानमेव  
सति भवितुमर्हतीति । द्रव्यान्तरोत्पत्तिपक्षे नावयव्यनुमेयः । अस्यैकदेश-  
सम्बन्धस्याग्रहणात् ग्रहणे चाविशेषादनुमेयत्वाभावः । तस्माद्वृत्तबुद्धि-  
रनुमानं न भवति । एकदेशग्रहणमाश्रित्य प्रत्यक्षस्यानुमानत्वमुपपाद्यते  
तच्च ॥

**न प्रत्यक्षेण यावत्तावदप्युपलभ्यात् ॥ २९ ॥**

न प्रत्यक्षमनुमानं कस्मात् प्रत्यक्षेणैवोपलभ्यात् यत्तदेकदेशग्रहणमा-  
भाश्रीयते प्रत्यक्षेणासावुपलब्धः न चोपलब्धो निर्विषयोऽस्ति यावच्चा-  
र्थजातन्तस्य विषयस्तावदभ्यनुज्ञायमानं प्रत्यक्षव्यवस्थापकमभवति । किं  
पुनस्ततोऽन्यदर्थजातमप्यवयी समुदायो वा न चैकदेशग्रहणमनुमानं  
भावयितुं शक्यं हेत्वभावादिति । अन्यथापि च प्रत्यक्षस्य नानुमानत्व-  
प्रसङ्गस्तत्पूर्वकत्वात्, प्रत्यक्षपूर्वकमनुमानं, सम्बद्धावग्निधूमौ प्रत्यक्षतो  
दृष्टवतो धूमप्रत्यक्षदर्शनादग्नावनुमानमभवति यत्र च सम्बद्धयोर्लिङ्गलि-  
ङ्गिनोः प्रत्यक्षं यच्च लिङ्गमात्रप्रत्यक्षग्रहणं नैतदन्तरेणानुमानस्य प्रवृत्ति-



## २ अध्याये २ आह्निकम् ।

४७

रस्ति न चैतदनुमानमिन्द्रियार्थसन्निकर्षजत्वात् न चानुमेयस्येन्द्रियेण सन्निकर्षादनुमानम्भवति सोऽयम् प्रत्यक्षानुमानयोर्लक्षणभेदो महानाश्रयितव्य इति ॥

## न चैकदेशोपलब्धिरवयविसङ्गावात् ॥ ३० ॥

न चैकदेशोपलब्धिमात्रं किं तर्हीकदेशोपलब्धिस्तत्सहचरितावयव्युपलब्धिश्च, कस्मात् अवयविसङ्गावात् अस्ति ह्ययमेकदेशयतिरिक्तोऽवयवो तस्यावयवस्थानस्योपलब्धिकारणप्राप्त्येकदेशोपलब्ध्यावनुपलब्धिरनुपपन्नो त । अकृतस्त्वग्रहणादिति चेत् न कारणतोऽन्यस्यैकदेशस्याभावात् न चावयवाः कृतस्त्वाः गृह्यन्ते अवयवैरेवावयवान्तरव्यवधानात् नावयवो कृतस्त्वो गृह्यत इति नायं गृह्यमाणेष्ववयवेषु परिसमाप्त इति, सेयमेकदेशोपलब्धिरनिवृत्तेति कृतस्त्वमिति वै खल्वशेषतायां सत्याम्भवति, अकृतस्त्वमिति शेषे सति, तच्चैतदवयवेषु वृक्षस्त । अव्यवधाने ग्रहणात् व्यवधाने चाग्रहणादिति । अङ्गतु भवान् पृष्टो व्याचष्टां गृह्यमाणस्यावयविनः किमगृहीतं मन्यसे येनैकदेशोपलब्धिः स्यादिति न ह्यस्य कारणेभ्योऽन्ये एकदेशा भवन्तीति तत्तावयववृत्तं नोपपद्यत इति इदं तस्य वृत्तम्, येषामिन्द्रियार्थसन्निकर्षादुग्रहणमवयवानां व्यवधानादग्रहणं तैः सह गृह्यते येषामवयवानां व्यवधानादग्रहणं तैः सह न गृह्यते न चैतत्कृतोऽस्ति भेद इति ससुदायोऽयशेषता वा ससुदायो वृक्षः स्यात् तत्प्राप्तिर्वा उभयथाग्रहणभावः । मूलस्तन्वशाखापलाशादीनामशेषता वा ससुदायो वृक्ष इति स्यात् प्राप्तिर्वा ससुदायिनामिति उभयथा ससुदायभूतस्य वृक्षस्य ग्रहणं नोपपद्यत इति अवयवैस्तुतावदवयवान्तरस्य व्यवधानादशेषग्रहणं नोपपद्यते प्राप्त्यग्रहणमपि नोपपद्यते प्राप्तिसतामग्रहणात् सेयमेकदेशग्रहणसहचरिता वृक्षबुद्धिर्द्रव्यान्तरोत्पत्तौ कल्प्यते न ससुदायमात्र इति ।

## साध्यत्वादवयविनि सन्देहः ॥ ३१ ॥

यदुक्तमवयविसङ्गावात् प्राप्तिसतामयमहेतुः साध्यत्वात् साध्यतावदेतत्कारणेभ्यो द्रव्यान्तरमुत्पद्यत इति अनुपादितमेतत्, एवञ्च सति विप्रतिपत्तिमात्रम्भवति विप्रतिपत्तेर्वावयविनि संशय इति ॥



## सर्वाग्रहणमवयव्यसिद्धेः ॥ ३२ ॥

यद्यवयवी नास्ति सर्वस्य ग्रहणं नोपपद्यते किं तत्सर्वम् द्रव्यगुण-  
कर्मसामान्यविशेषसमवायाः । कथं कृत्वा परमाणुसमवस्थानं तावद्दर्शन-  
विषयो भवतीत्यन्द्रियत्वादणूनां द्रव्यान्तरञ्चावयविभूतं दर्शनविषयस्या-  
स्य मे द्रव्यादयो गृह्यन्ते तेन निरधिष्ठाना न गृह्येरन्, गृह्यन्ते तु कुम्भो-  
ऽयं श्याम एको महान् संयुक्तः सन्दते अस्ति गृह्यमयश्चेति, सन्ति चेमे  
गुणादयो धर्मा इति तेन सर्वस्य ग्रहणात् पश्यामोऽस्ति द्रव्यान्तरभूतो-  
ऽवयवीति ।

## धारणाकर्षणोपपत्तेश्च ॥ ३३ ॥

अवयव्यर्थान्तरभूत इति संग्रहकारिते वै धारणाकर्षणे संग्रहो नाम  
संयोगसङ्घचरितं गुणान्तरम् । स्नेहद्रव्यत्वकारितनपां संयोगादामे कुम्भे  
अग्निसङ्गात् पक्वे यदि त्ववयविकारिते अभविष्यताम् पांशुराशिप्रभृति-  
ष्वप्यज्ञास्तेषां द्रव्यान्तरानुत्पत्तौ च तृणोपकलाद्यादिषु जन्तुसंग्रहीतेष्वपि  
नाभविष्यतामिति । अथावयविनं प्रत्याचक्षाणको माभूत् प्रत्यक्षलोप  
द्रव्यगुणसञ्चयं दर्शनविषयं प्रतिजानानः किमनुयोक्तव्य इति । एकमिदं  
द्रव्यमित्थैकबुद्धेर्विषयं पर्यनुयोज्यः किमेकबुद्धिरभिन्नार्थविषया, आहो  
नानार्थविषयेति । अभिन्नार्थविषयेति चेत् अर्थान्तरानुत्तानादवयवि-  
सिद्धिः, नानार्थविषयेति चेत् भिन्नेष्वेकदर्शनानुपपत्तिः । अनेकस्मिन्नेक  
इति व्याहृताबुद्धिर्न दृश्यत इति ।

सेनावनवद्ग्रहणमिति चेन्नातीन्द्रियत्वादणूनाम्  
॥ ३४ ॥

यथा सेनाङ्गेषु वनाङ्गेषु च दूरादगृह्यमाणपृथक्त्वेकमिदमित्युप-  
पद्यते बुद्धिः, एवं परमाणुषु सञ्चितेष्वगृह्यमाणपृथक्त्वेकमिदमित्युप-  
पद्यते बुद्धिरिति, यथाऽगृह्यमाणपृथक्त्वानां खलु सेनावनाङ्गानामारात्  
कारणान्तरतः पृथक्त्वाग्रहणम्, यथाऽगृह्यमाणजातीनां पलाश इति



वा खदिर इति वा नाराज्जातिग्रहणम्भवति, गृह्यमाणप्रसन्दानां-  
 रात् स्रन्दग्रहणम्, गृह्यमाणे चार्थजाते पृथक्स्याग्रहणादेकमिति  
 भाक्तः प्रत्ययो भवति, न त्वणूनां गृह्यमाणपृथक्त्वानां कारणतः पृथक्स्या-  
 ग्रहणात् भाक्त एकप्रत्ययोऽतीन्द्रियत्वादणूनामिति । इदमेव च परी-  
 ज्यते किमेकप्रत्ययोऽणुसञ्चयविषय आह्वेस्त्रिन्नेति । अणुसञ्चय एव सेना-  
 वनाङ्गानि न च परीज्यमाणमुदाहरणमिति युक्तम्, साध्यत्वादिति,  
 दृष्टमिति चेन्न तद्विषयस्य परीज्योपपत्तेः । यदपि मन्यते दृष्टमिदं सेनाव-  
 नाङ्गानां पृथक्स्याग्रहणादभेदेनैकमिति ग्रहणं न च दृष्टं शक्यं प्रत्या-  
 ख्यातमिति, तथा नैवं तद्विषयस्य परीज्योपपत्तेः । दर्शनविषयएवायं  
 परीज्यते योऽयमेकमिति प्रत्ययो दृश्यते स परीज्यते किं द्रव्यान्तरविषयो  
 वाऽथाणुसञ्चयविषय इत्यत्र दर्शनमन्यतरस्य साधकं न भवति नानाभावे  
 चाणूनां पृथक्स्याग्रहणादभेदेनैकमिति ग्रहणम् । अतस्मिंस्तदिति प्र-  
 त्ययो यथा स्याणौ पुरुष इति ततः किमतस्मिंस्तदिति प्रत्ययस्य प्रधाना-  
 पेक्षितत्वात् प्रधानसिद्धिः, स्याणौ पुरुषइति प्रत्ययस्य किं प्रधानम्,  
 योऽसौ पुरुषे पुरुषप्रत्ययस्तस्मिन् सति पुरुषसामान्यग्रहणात् स्याणौ  
 पुरुषोऽयमिति, एवं नानाभूतेष्वेकमिति प्रामाण्यग्रहणात् प्रधाने सति  
 भवितुमर्हति । प्रधानञ्च सर्वस्याग्रहणादिति नोपपद्यते, तस्मादभिन्न  
 एवावयवभेदप्रत्यय एकमिति, इन्द्रियान्तरविषयेष्वभेदप्रत्ययः प्रधानमिति  
 चेत् न विशेषहेत्वभावात् दृष्टान्ताव्यवस्था, श्रोतादिविषयेषु शब्दादिष्व-  
 भिन्नेष्वेकप्रत्ययः प्रधानमनेकस्मिन्नेकप्रत्ययस्येति । एवञ्च सति दृष्टान्तोपा-  
 दानं न व्यवतिष्ठते, विशेषहेत्वभावात्, अणुषु सञ्चितेषु एकप्रत्ययः किम-  
 तस्मिंस्तत्प्रत्ययः स्याणौ पुरुषप्रत्ययवत्, अवयवस्य तथाभावात् तस्मिंस्त-  
 दिति प्रत्ययो यथा शब्दस्यैकत्वादेकः शब्द इति । विशेषहेत्वपरिग्रह-  
 मन्तरेण दृष्टान्तौ संशयसम्पादयत इति, कुम्भवत् सञ्चयमात्रं गन्धादयो-  
 ऽपीत्यनुदाहरणं गन्धादय इति, एवं परिमाणसंयोगस्रन्दजातिविशेष-  
 प्रत्ययानयनयुक्तव्याख्यैषु चैवं प्रसङ्ग इति । एकत्वबुद्धिस्तस्मिंस्तदिति  
 प्रत्यय इति विशेषहेत्वमर्हदिति प्रत्ययेन सामानाधिकरण्यात् एकमिदं  
 सहचेति एकविषयौ प्रत्ययौ सामानाधिकरण्यौ भवतः तेन विज्ञायते



यन्महत् तदेकमिति ॥ अणुसमूहातिशयग्रहणं महत्प्रत्यय इति चेत्  
 सोऽयममहत्स्वरूपं महत्प्रत्ययो ऽतस्मिंस्तदिति प्रत्ययो भवतीति, किञ्चातः  
 अतस्मिंस्तदिति प्रत्ययस्य प्रधानापेक्षितत्वात् प्रधानसिद्धिरिति भवितव्यं  
 महत्त्वेन महत्प्रत्ययेनेति । अणुशब्दो महानिति च व्यवसयात् प्रधान-  
 सिद्धिरिति चेत् न मन्दतीव्रताग्रहणमित्यन्तानवधारणात् यथा द्रव्येऽणुः  
 शब्दोऽल्पो मन्द इत्येतस्य ग्रहणम्, महान् शब्दः पटुतीव्र इत्येतस्य ग्रह-  
 णम् । कस्मात् इत्यन्तानवधारणात् न ह्ययं महान् शब्द इति व्यवस-  
 क्षित्यानयमित्यवधारयति । यथा वदरामलकविल्वादीनि संयुक्ते इमे इति  
 च द्वित्वसमानाश्रयं प्राप्त्यग्रहणम्, द्वौ समुदायावाश्रयः संयोगश्चेति चेत्  
 कोऽयं समुदायः । प्राप्त्यिरेकस्याऽनेका वा प्राप्त्यिरेकस्य समुदाय इति  
 चेत् प्राप्त्यग्रहणं प्राप्ताश्रितायाः संयुक्ते इमे वस्तुनी इति नात द्वे  
 प्राप्ती संयुक्ते गृह्येते, अनेकसमूहः समुदाय इति चेन्न द्वित्वेन समानाधि-  
 कारणस्य ग्रहणात् द्वाविमौ संयुक्तावर्थाविति ग्रहणे सति नानेकसमु-  
 दायाश्रयः संयोगो गृह्यते न च द्वयोरण्वोरग्रहणमस्ति तस्मान्महती  
 द्वित्वाश्रयभूते द्रव्यसंयोगस्य स्थानमिति प्रत्यासत्तिः प्रतीक्षा तावता  
 संयोगो नार्थान्तरमिति चेत् नार्थान्तरहेतुत्वात् संयोगस्य शब्दरूपादि-  
 स्थन्दानां हेतुः संयोगो न च द्रव्ययोग्युष्णान्तरोपजननमन्तरेण शब्दे  
 रूपदिषु स्थे च कारणत्वं गृह्यते तस्माद्गुणान्तरं प्रत्ययविषयश्चार्थान्तरं  
 तदप्रतिषेधो वा कुण्डली गुरुरकुण्डलश्चात इति संयोगबुद्धेश्च यदर्थान्तरं  
 न विषयः अर्थान्तरप्रतिषेधस्तर्हि विषयस्तत्र प्रतिपिञ्चमानवचनं संयुक्ते  
 द्रव्ये इति यदर्थान्तरमन्यत्र दृष्टमिह प्रतिपिञ्चते तद्वक्तव्यमिति द्वयोर्महतो-  
 राश्रितस्य ग्रहणान्नाश्रय इति जातिविशेषस्य प्रत्यायानुद्धितिलि-  
 ङ्गस्याप्रत्याख्यानम् प्रत्याख्याने वा प्रत्ययव्यवस्थानुपपत्तिः । व्यधिकर-  
 णस्थानभिव्यक्तेरधिकरणवचनम्, अणुसमवस्थानम् विषय इति चेत्,  
 प्राप्ताप्राप्तमानर्थवचनम् । किमप्राप्ते अणुसमवस्थाने तदाश्रयो जाति-  
 विशेषो गृह्यते अथ प्राप्ते इति, अप्राप्ते ग्रहणमिति चेत् व्यवहित-  
 स्थानसमानस्थानस्याप्युपलक्षिकप्रसङ्गः, अव्यवहितेऽणुसमवस्थाने तदाश्रयो  
 जातिविशेषो गृह्येत, प्राप्ते ग्रहणमिति चेत्, मध्यपरभागयोरप्राप्ताव-



अभिव्यक्तिः, यावत् प्राप्तम्भवति तावत्प्रतिव्यक्तिरिति चेत् तावतोऽधि-  
करणत्वमणुसमवस्थानस्य यावत् प्राप्ते जातिविशेषो गृह्यते तावदस्याधि-  
करणमिति प्राप्तम्भवति, तत्रैकसमुदाये प्रतीयमानेऽर्थभेदः । एवञ्च सति  
योऽयमणुसमुदायो वृत्त इति प्रतीयते तत्र वृत्तवृत्तत्वं प्रतीयेत । यत्र यत्र  
ह्यणुसमुदायस्य भागे वृत्तत्वं गृह्यते स स वृत्त इति । तस्मात् समुदि-  
ताणुसमवस्थानस्यार्थान्तरस्य जातिविशेषस्याभिव्यक्तिविषयत्वादव्यवस्था-  
न्तरभूत इति । परीक्षितं प्रत्यक्षम् । अनुमानमिदानीं परीक्ष्यते ।

## रोधोपघातसादृश्येभ्यो व्यभिचारादनुमानम- प्रमाणम् ॥ ३५ ॥

अप्रमाणमिति । एकदोषार्थस्य न प्रतिपादकमिति । रोधादपि नदी  
पूर्णा गृह्यते तदा चोपरिष्ठाद्देवो देव इति सिद्ध्यनुमानम् । नोडोप-  
घातादपि पिपीलिकाण्डसञ्चारी भवति तदा च भविष्यति वृष्टिरिति  
सिद्ध्यनुमानमिति । पुरुषोऽपि मयूरवासितमनुकरोति तदापि शब्द-  
सादृश्यान्निश्चयानुमानम्भवति ॥

## नैकदेशत्राससादृश्येभ्योऽर्थान्तरभावात् ॥ ३६ ॥

नायमनुमानव्यभिचारः अननुमाने तु खल्वयमनुमानाभिमानः, कथं,  
नाविशिष्टो लिङ्गं भवितुमर्हति । पूर्वोदकविशिष्टं खलु वर्षोदकं शीघ्र-  
तरत्वं स्रोतसो वृद्धतरफेणफलपर्णकाशादिवृद्धलञ्चोपलभमानः पूर्णत्वेन  
नद्या उपरि वृष्टो देव इत्यनुमिनोति नोदकवृद्धिमात्रेण । पिपीलिका-  
प्रायस्याण्डसञ्चारे भविष्यति वृष्टिरित्यनुमीयते न काशाच्चिदिति । नेदं  
मयूरवासितं तत्सदृशोऽयं शब्द इति विशेषापरिज्ञानान्निश्चयानुमानमिति  
यस्तु सदृशात् विशिष्टाच्छब्दाद्विशिष्टं मयूरवासितं गृह्णाति तस्य विशिष्टो-  
ऽर्थो गृह्यमाणो लिङ्गं यथा सर्पादीनामिति, सोऽयमनुमातरपराधो  
नानुमानस्य योऽर्थविशेषेणानुमेयमर्थमविष्टार्थदर्शनेन बुभुक्षत इति ।  
त्रिकालविषयमनुमानं त्रैकाल्यग्रहणादित्युक्तमत्र च ॥



वर्त्तमानाभावः पततः पतितपतितव्यकालोपपत्तेः

॥ ३७ ॥

हन्तात् प्रच्युतस्य फलस्य भूमौ प्रत्यासीदतो यदूर्ध्वं स पतितोऽध्वा  
तत्संयुक्तः कालः, पतितकालः, योऽधस्तात् स पतितव्योऽध्वा तत् संयुक्तः  
कालः पतितव्यकालः नेदानीं तृतीयोऽध्वा वर्त्तते यत्र पततीति वर्त्तमानः  
कालो गृह्येत, तस्माद्वर्त्तमानः कालो न विद्यते इति ॥

तयोरप्यभावो वर्त्तमानाभावे तदपेक्षत्वात् ॥ ३८ ॥

नाभ्यव्यङ्ग्यः कालः, किन्तिर्हि क्रियाव्यङ्ग्यः पततीति यदा पतनक्रिया  
व्युपरता भवति स कालः पतितकालः, यदोत्पत्त्यते स पतितव्यकालः ।  
यदा द्रव्ये वर्त्तमाने क्रिया गृह्यते स वर्त्तमानः कालः । यदि चायं द्रव्ये  
वर्त्तमानं पतनं न गृह्णाति कस्योपरमसत्पत्त्यमानतां वा प्रतिपद्यते प-  
तितः काल इति भूता क्रिया, पतितव्यः काल इति चोत्पत्त्यप्रसाना क्रिया,  
उभयोः कालयोः क्रियाहीनं द्रव्यमधःपततीति क्रियासम्बद्धम् सोऽयं  
क्रियाद्रव्ययोः सम्बन्धं गृह्णाति वर्त्तमानः कालस्तदाम्ययौ चेतरो कालौ  
तदभावे न स्यातामिति । अथापि ॥

नातीतानागतयोरितरेतरापेक्षा सिद्धिः ॥ ३९ ॥

यद्यतीतानागतावितरेतरापेक्षौ सिद्धेताम्, प्रतिपद्येमहि वर्त्तमान-  
विशेषम् । नातीतापेक्षाऽनागतसिद्धिः । नाप्यनागतापेक्षा अतीतसिद्धिः  
कया युक्त्या केन कल्पेनातीताः कथमतीतानागतयोरिति तन्नोपपद्यते  
विशेषहेत्वभावात् । दृष्टान्तवत् प्रतिदृष्टान्तोऽपि प्रसज्यते । यथा रूप-  
स्पर्शौ गन्धरसौ नेतरेतरापेक्षौ सिद्धेते एवमतीतानागताविति नेतरे-  
तरापेक्षा कस्यचित् सिद्धिरिति । यस्मादेकाभावेऽन्यतराभावादुभयाभावः ।  
यद्येकस्यान्यतरापेक्षासिद्धिरेकस्येदानीं किमपेक्षा यदन्यतरस्येकापेक्षा  
सिद्धिरेकस्येदानीं किमपेक्षा एवमेकस्याभावेऽन्यतरन्न सिद्धतीत्युभयाभावः



प्रसज्यते । अर्थसङ्गावव्यङ्ग्यायं वर्त्तमानः कालः विद्यते द्रव्यं विद्यते गुणः  
विद्यते कर्मेति । यस्य चायं नास्ति तस्य ॥

**वर्त्तमानाभावे सर्वाग्रहणप्रत्यक्षानुपपत्तेः ॥४०॥**

प्रत्यक्षमिन्द्रियार्थसन्निकर्षजम् न चाविद्यमानमसदिन्द्रियेण सन्नि-  
कष्यते, न चायं विद्यमानं सत् किञ्चिदनुजानाति प्रत्यक्षनिमित्तं प्रत्यक्ष-  
विषयः प्रत्यक्षज्ञानं सर्वत्रोपपद्यते प्रत्यक्षानुपपत्तौ च तत्पूर्वकत्वात् अनु-  
मानागमयोरनुपपत्तिः । सर्वप्रमाणविलोपे सर्वग्रहणं न भवतीति । उभ-  
यथा च वर्त्तमानः कालो गृह्यते क्वचिदर्थसङ्गावव्यङ्ग्यः यथा द्रव्ये द्रव्य-  
मिति, क्वचित् क्रियासन्तानव्यङ्ग्यः । यथा पचति छिनत्तीति, नानाविधा  
चैकार्था क्रिया क्रियासन्तानः क्रियाभ्यासश्च नानाविधा चैकार्था क्रिया  
पचतीति स्याद्विधायकसुदकासेचनं तण्डुलावपनमेधोपसर्पणमग्न्याभि-  
ज्वालनं दर्वीघटनं मण्ड्यावणमधोऽवतारणमिति । छिनत्तीति क्रिया-  
भ्यास उद्यमोद्यम्य परशुं दारुणि निपातयन् छिनत्तीत्युच्यते । यच्च दं  
पचमानं च्छिद्यमानञ्च तत्क्रियमाणं तस्मिन् क्रियमाणे ॥

**कृतताकर्त्तव्यतोपपत्तेस्तुभयथाग्रहणम् ॥४१॥**

क्रियासन्तानोऽनारब्धिकीर्षितोऽनागतः कालः पच्यतीति । प्रयो-  
जनावसानः क्रियासन्तानोपरमोऽतीतः कालोऽपाक्षीदिति । आरब्ध-  
क्रियासन्तानो वर्त्तमानः कालः पचतीति । तत्र या उपरता सा कृतता,  
या चिकीर्षिता सा कर्त्तव्यता, या विद्यमाना सा क्रियमाणा । तदेवं  
क्रियासन्तानस्थस्त्रैकाल्यसमाहारः पचति पच्यत इति वर्त्तमानग्रहणेन  
गृह्यन्ते क्रियासन्तानस्य ह्यवाविच्छेदो विधीयते नारम्भो नोपरम इति  
सोऽयमुभयथा वर्त्तमानो गृह्यते । अपटङ्गो व्यपटङ्गश्च । अतीताना-  
गतभ्यां स्थितिव्यङ्ग्यो विद्यते द्रव्यमिति क्रियासन्तानविच्छेदाभिधायी च  
त्रैकाल्यान्वितः पचति छिनत्तीति अन्यश्च प्रत्यासत्तिप्रभृतेरर्थस्य विव-  
क्षायां तदभिधायी बहुप्रकारो लोकेषु उल्लेखितव्यः तस्मादस्ति वर्त्त-  
मानः काल इति ॥



**अत्यन्तप्रायैकदेशसाधर्म्यादुपमानासिद्धिः ॥४२॥**

अत्यन्तसाधर्म्यादुपमानं न सिद्धति, न चैवं भवति यथा गौरेवं गौरि-  
रिति, प्रायः साधर्म्यादुपमानं न सिद्धति, नहि भवति यथानुमानेवं  
महिष इति, एकदेशसाधर्म्यादुपमानं न सिद्धति, नहि सर्वेषां सर्वसुप-  
मीयत इति ॥

**प्रसिद्धसाधर्म्यादुपमानसिद्धेर्यथोक्तदोषानुपपत्तिः  
॥ ४३ ॥**

न साध्यस्य कतस्त्रप्राय ल्पभावमाश्रित्योपमानं प्रवर्तते, किन्तर्हि  
प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनभावमाश्रित्य प्रवर्तते, यत्र चैतदस्ति न  
तत्तोपमानं प्रतिषेद्धुं शक्यम्, तस्माद्यथोक्तदोषो नोपपद्यत इति । अस्तु  
तर्ह्युपमानमनुमानम् ॥

**प्रत्यक्षेणाप्रत्यक्षसिद्धेः ॥ ४४ ॥**

यथा धूमेन प्रत्यक्षेणाप्रत्यक्षस्य वज्रेर्ग्रहणमनुमानमेवं गवा प्रत्यक्षेणा-  
प्रत्यक्षस्य गवयस्य ग्रहणमिति नेदमनुमानाद्विशिष्यते । विशिष्यत इत्याह,  
कया युक्त्या ॥

**नाप्रत्यक्षे गवये प्रमाणार्थमुपमानस्य पश्याम  
इति ॥ ४५ ॥**

यदा ह्ययमुपयुक्तोपमानो गोदर्शी गवयसमानमर्थं पश्यति, तदाऽयं  
गवय इत्यस्य संज्ञाशब्दस्य व्यवस्थां प्रतिपद्यते, न चैवमनुमानमिति प-  
रार्थं चोपमानम् यस्य ह्युपमानमप्रसिद्धं तदर्थं प्रसिद्धोभयेन क्रियत इति  
परार्थमुपमानमिति चेत् न स्वयमध्यवसायात् भवति च भोः स्वयमध्यव-  
सायः यथा गौरेवं गवय इति । नाध्यवसायः प्रतिषिध्यते उपमाने तु  
तत्र भवति प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम् न च यस्योभयं प्रसिद्धं  
तं प्रति साध्यसाधनभावो विद्यत इति । अद्यापि ॥



तथेत्युपसंहारादुपमानसिद्धेर्नाविशेषः ॥ ४६ ॥

तथेति समानधर्मोपसंहारादुपमानं सिध्यति नानुमानम् । अयङ्गानयोर्विशेष इति ॥

शब्दोऽनुमानमर्थस्यानुपलब्धेरनुमेयत्वात् ॥ ४७ ॥

शब्दोऽनुमानं न प्रमाणान्तरम्, कस्मात् शब्दार्थस्यानुमेयत्वात्, कथमनुमेयत्वम्, प्रत्यक्षतोऽनुपलब्धे यथाऽनुपलब्धमानो लिङ्गी मितेन लिङ्गेन पश्चान्नीयत इति अनुमानम् एवं मितेन शब्देन पश्चान्नीयतेऽर्थोऽयमनुपलब्धमान इत्यनुमानं शब्दः । इतश्चानुमानं शब्दः ॥

उपलब्धेरद्विप्रवृत्तित्वात् ॥ ४८ ॥

प्रमाणान्तरभावे द्विप्रवृत्तिरूपलब्धिरन्यथा ह्युपलब्धिरनुमाने अन्यधोपमाने, तद्व्याख्यानम् शब्दानुमानयोस्तूपलब्धिरद्विप्रवृत्तिर्यथानुमाने प्रवर्तते तथा शब्दोऽपि विशेषाभावादनुमानं शब्द इति ॥

सम्बन्धाच्च ॥ ४९ ॥

शब्दोऽनुमानमिति वर्तते, सम्बन्धयोश्च शब्दार्थयोः सम्बन्धप्रसिद्धौ शब्दोपलब्धेरर्थग्रहणम् । यथा सम्बन्धयोर्लिङ्गलिङ्गिनोः सम्बन्धप्रतीतौ लिङ्गोपलब्धौ लिङ्गग्रहणमिति । यत्तावदर्थस्यानुमेयत्वादिति तन्न ॥

आप्तोपदेशसामर्थ्याच्छब्दार्थसम्प्रत्ययः ॥ ५० ॥

स्वर्गः अक्षरस उत्तराः कुरवः सप्तद्वीपाः सप्तद्वी लोकाश्चित्रेश इत्येवमादेरप्रत्यक्षस्यार्थस्य न शब्दकालात् प्रत्ययः, किन्तु हि आप्तैरयमुक्तः शब्द इत्यतः सम्प्रत्ययः । विपर्ययेण सम्प्रत्ययाभावात् । न त्वेवमनुमानमिति । यत् पुनरुपलब्धेरद्विप्रवृत्तित्वादिति, अयमेव शब्दानुमानयोरुपलब्धेः प्रवृत्तिभेदः । तत्र विशेषे सत्यहेतुर्विशेषाभावादिति । यत्पुनरिदं सम्-



५६

## न्यायदर्शनवात्स्यायनभाष्ये

न्यायेति अस्ति शब्दार्थयोः सम्बन्धोऽनुज्ञातः अस्ति च प्रतिषिद्धः । अस्मि-  
दमिति षष्ठीविशिष्टस्य वाक्यस्यार्थविशेषोऽनुज्ञातः प्राप्तिप्रमाणस्तु शब्दा-  
र्थयोः सम्बन्धः प्रतिषिद्धः वक्ष्यात् ॥

## प्रमाणतोऽनुपलब्धेः ॥ ५१ ॥

प्रत्यक्षतस्तावच्छब्दार्थप्राप्ते नोपलब्धिरतीन्द्रियत्वात् येनेन्द्रियेण गृ-  
ह्यते शब्दस्तस्य विषयभावमतिवृत्तौऽर्थो न गृह्यते । अस्ति चातीन्द्रिय-  
विषयभूतोऽर्थः समानेन चेन्द्रियेण गृह्यमाणयोः प्राप्तिर्गृह्यत इति  
प्राप्तिप्रमाणे च गृह्यमाणे शब्दार्थयोः शब्दान्तिके वार्थः स्यात्, अर्थान्तिके  
वाशब्दः स्यात्, उभयं बोधयत् । अथ खल्वयम् ॥

## पूरणप्रदाहपाटनानुपलब्धेश्च सम्बन्धाभावः ॥ ५२ ॥

स्थानकरणाभावादिति चार्थः । न चायमनुमानतोऽप्युपलभ्यते शब्दा-  
न्तिकेऽर्थ इति । एकस्मिन् पक्षेऽप्यस्य स्थानकरणोच्चारणीयः शब्दस्तद-  
न्तिकेऽर्थ इति । अज्ञान्यसि शब्दोच्चारणे पूरणप्रदाहपाटनानि गृह्ये-  
रन्, न च प्रगृह्यन्ते । अग्रहणान्नानुमेयः प्राप्तिप्रमाणः सम्बन्धः अर्था-  
न्तिके शब्द इति । स्थानकरणासम्भवादनुच्चारणम्, स्थानं कण्ठादयः,  
करणं प्रत्यक्षविशेषः । तस्यार्थान्तिकेऽनुपपत्तिरिति उभयप्रतिषेधाच्च  
नोभयम् । तस्मान्न शब्देनार्थः प्राप्त इति ॥

## शब्दार्थव्यवस्थानादप्रतिषेधः ॥ ५३ ॥

शब्दार्थप्रत्ययस्य व्यवस्थादर्शनादनुमीयतेऽस्ति शब्दार्थसम्बन्धो व्यवस्था-  
कारणम् । असम्बन्धे हि शब्दमात्रादर्थमात्रे प्रत्ययप्रसङ्गः । तस्माद-  
प्रतिषेधः सम्बन्धस्येति । अत्र समाधिः ॥

## न सामयिकत्वाच्छब्दार्थसम्प्रत्ययस्य ॥ ५४ ॥

न सम्बन्धाकारितं शब्दार्थव्यवस्थानं किन्तु हि समयकारितं यत्त-  
दवोचाम । अस्मिदमिति षष्ठीविशिष्टस्य वाक्यस्यार्थविशेषोऽनुज्ञातः शब्दा-



धियोः सम्बन्ध इति समयं तदवोचामेति । कः पुनरयं समयः । अस्य शब्द-  
स्येदमर्थजातमभिधेयमित्यभिधानाभिधेयनियमनियोगः । तस्मिन्नुपयुक्ते  
शब्दार्थसम्बन्धयो भवति । विपर्यये हि शब्दश्चवरेऽपि प्रत्ययाभावः,  
सम्बन्धवादिनापि चायमवर्जनीय इति । प्रयुज्यमानग्रहणाच्च समयो-  
पयोगो लौकिकानाम्, समयपालनार्थं चेदपदलक्षणया वाचोऽन्वाख्यानं  
व्याकरणवाक्यलक्षणया वाचोऽर्थो लक्षणम् । पदसमूहो वाक्यमर्थपरि-  
समाप्ताविति । तदेवं प्राप्तिलक्षणस्य शब्दार्थसम्बन्धस्यार्थजुषोऽप्यनुमानहे-  
तुर्न भवतीति ॥

### जातिविशेषे चानियमात् ॥ ५५ ॥

रामयिकः शब्दार्थसम्बन्धयो न स्वाभाविकः । ऋष्यार्थस्तेच्छानां  
यथाकासं शब्दविनियोगोऽर्थप्रत्यायनाय पवर्तते, स्वाभाविके हि शब्द-  
स्यार्थप्रत्यायकत्वे यथाकासं न स्यात् । यथा तैजसस्य प्रकाशस्य रूपप्रत्य-  
यहेतुत्वं न जातिविशेषे व्यभिचरतीति ॥

### तदप्रामाण्यमन्तव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः ॥ ५६ ॥

पुत्रकामेष्टिहवनाभ्यासेषु तस्येतिशब्दविशेषमेवाधिकुरुते भगवा-  
न्तपि । शब्दस्य प्रमाणत्वं न सम्भवति, कस्मादन्तदोषात् । पुत्रकामेष्टौ  
पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या यजेतेति, नेष्टौ संस्थितायां पुत्रजन्म दृश्यते । दृष्टार्थस्य  
वाक्यस्यान्ततत्वात् अदृष्टार्थमपि वाक्यमग्निहोत्रं जङ्घ्यात् स्वर्गकाम  
इत्याद्यन्तमिति ज्ञायते । विहितव्याघातदोषाच्च हवने “उदिते होत-  
व्यमनुदिते होतव्यं समयाध्युषिते होतव्यम्” इति विधाय विहितं  
व्याहन्ति “श्यावोऽस्याहुतिमभ्यवहरति य उदिते जुहोति शवलोऽस्या,  
हुतिमभ्यवहरति योऽनुदिते जुहोति श्यावशवलो वास्याहुतिमभ्यवहरतो  
यः समयाध्युषिते जुहोति” । व्याघाताच्चान्यतरन्मिथ्येति । पुनरुक्तदोषाच्च  
अभ्यासे देश्यमाने “त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुक्तमाम्” इति पुनरुक्तदोषो  
भवति । पुनरुक्तञ्च प्रमत्तवाक्यमिति तस्मादप्रमाणं शब्दोऽन्तव्याघात-  
पुनरुक्तदोषेभ्य इति ॥



## न कर्मकर्तृसाधनवैगुण्यात् ॥ ५७ ॥

नान्तदोषः पुत्रकामेष्टौ, कस्मात्, कर्मकर्तृसाधनवैगुण्यात् इच्छा  
पितरौ संयुज्यमानौ पुत्रं जनयत इति इष्टेः करणं साधनम् पितरौ  
कर्तारौ संयोगः कर्म तयोणां गणयोगात् पुत्रजन्म वैगुण्याद्विपर्ययः ।  
इच्छाश्रयं तावत्कर्मवैगुण्यम् समीहाभ्येपः कर्तृवैगुण्यम् अविद्वान्  
प्रयोक्ता कर्प्याचरणश्च । साधनवैगुण्यं हविरसंस्कृतसुपहतमिति । मन्त्रा-  
न्यूनाधिकाः स्वरवर्णहीना इति । दक्षिणा दुरांगता हीना निन्दिता  
चेति । अथोपयजनाश्रयं कर्मवैगुण्यम् मिथ्यासम्प्रयोगः । कर्तृवैगुण्यम्  
यौनिव्यापाशौ बीजोपघातश्चेति । साधनवैगुण्यम् इष्टावभिहितम् लोके  
चाग्निकामो दारुणीमग्नौयादिति विधिवाक्यम्, तत्र कर्मवैगुण्यम् मिथ्या-  
भिमन्यनम्, कर्तृवैगुण्यम् प्रज्ञाप्रयत्नगतः प्रमादः, साधनवैगुण्यम् आर्द्रं  
सुषिरं दार्विति, तत्र फलं न निष्पद्यत इति नान्तदोषः । गुणयोगेन  
फलनिष्पत्तिर्दर्शनात् न चेदं लौकिकाद्भिद्यते पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या यजेतेति ॥

## अभ्युपेत्य कालभेदे दोषवचनात् ॥ ५८ ॥

न व्यधातो हवन इत्यनुवर्त्तते योऽभ्युपगतं हवनकालमभिनति  
ततोऽन्यत्र जुहोति तत्तायमभ्युपगतकालभेदे दोष उच्यते श्वावोऽस्याङ्ग-  
तिमभ्यवहरति य उदिते जुहोति तदिदं विधिभङ्गे निन्दावचनमिति ॥

## अनुवादोपपत्तेश्च ॥ ५९ ॥

पुनरुक्तदोषोऽभ्यासे नेति प्रकृतम् । अनर्थकोऽभ्यासः पुनरुक्तः  
अर्थवानभ्यासोऽनुवादः योऽयमभ्यासस्त्रिः प्रथमामन्त्राह त्विरुक्तमामित्य-  
नुवाद उपपद्यते अर्थवत्त्वात् । त्रिवचनेन हि प्रथमोक्तमयोः पञ्चदशलं  
सामिधेनीनाम्भवति । तथाच मन्त्राभिवादः । इदमहं भ्रातृव्यं पञ्चद-  
शावरेण वाग्वज्रेण वाधे योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्म इति पञ्चदशसा-  
मिधेनीर्वज्रं मन्त्रोऽभिवदति तदभ्यासमन्तरेण न स्यादिति ॥



वाक्यविभागस्य चार्थग्रहणात् ॥ ६० ॥

प्रमाणं शब्दो यथा लोके विभागश्च ब्राह्मणवाक्यानां त्रिविधः ॥

विध्यर्थवादानुवादवचनविनियोगात् ॥ ६१ ॥

विधा खलु ब्राह्मणवाक्यानि विनियुक्तानि विधिवचनानि अर्थवाद-  
वचनान्यनुवादवचनानीति तत् ॥

विधिविधायकः ॥ ६२ ॥

यद्वाक्यं विधायकं चोदकं स विधिः । विधिस्तु नियोगोऽनुज्ञा वा  
यथाग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकाम इत्यादि ॥

स्तुतिनिन्दा परकृतिः पुराकल्प इत्यर्थवादः ॥ ६३ ॥

विधेः फलवादलक्षणा या प्रशंसा सा स्तुतिः सम्यक्त्वार्थं स्तूयमानं  
अहधीतेति प्रवर्तिका च फलश्रवणात् प्रवर्तते । सर्वजिता वै देवाः  
सर्वमजयन् सर्वस्यायै सर्वस्य जित्यै सर्वमेवैतेनाप्नोति सर्वं जयतीत्येव-  
मादिः । अनिष्टफलवादो निन्दा वर्जनार्थं निन्दितं न समाचरेदिति ।  
स एष वा प्रथमो यज्ञो यज्ञानां यज्ज्योतिष्टोमो य एतेनानिष्ठाऽन्येन  
यजते गर्त्ते पतत्ययमेवैतज्जीर्यते वा इत्येवमादि । अत्यकर्त्तव्यं व्याह-  
तस्य विधेर्वादः परकृतिः । कृत्वावपामेवाग्रेऽभिधारयन्ति अथ पृषदाज्यं  
वडुह चरकाध्वर्यवः पृषदाज्यमेवाग्रेऽभिधारयन्ति । अग्नेः प्राणाः  
पृषदाज्यं स्तोममित्येवमभिदधतीत्येवमादि । ऐतिह्यसमाचरितो विधिः  
पुराकल्प इति । तस्माद्वा एतेन ब्राह्मणा हविः पवनानां सामस्तोमस्तौषन्  
योने यज्ञं प्रतनवामह इत्येवमादिः । कथं परकृतिपुराकल्पौ अर्थवादा-  
विति । स्तुतिनिन्दावाक्येनाभिसम्बन्धाद्विध्याश्रयस्य कस्य कस्यचिदर्थस्य  
द्योतनादर्थवाद इति ॥

विधिविहितस्यानुवचनमनुवादः ॥ ६४ ॥



## न्यायदर्शनवाक्यायनभाष्ये

विध्यनुवचनञ्चानुवादो विहितानुवचनञ्च, पूर्वः शब्दानुवादोऽपरो-  
ऽयानुवादः । यथा पुनरुक्तं द्विविधमेवमनुवादोऽपि । किमर्थं पुनर्वि-  
हितमनूद्यते, अधिकारार्थम्, विहितमधिकृत्य स्तुतिर्वाध्यते निन्दा वा  
विधिषेधो वाभिधीयते । विहितानन्तरार्थोऽपि चानुवादो भवति ।  
एवमन्यदप्युत्प्रेक्षणीयम् । लोकोऽपि च विधिरर्थवादोऽनुवाद इति च त्रि-  
विधं वाक्यम् । ओदनं पचेदिति विधिवाक्यम् । अर्थवादवाक्यमायुर्वचो  
बलं सुखं प्रतिभानञ्चान्ने प्रतिष्ठितम् । अनुवादः पचतु पचतु भवानित्य-  
भ्यासः क्षिप्रं पच्यतामिति वा, अङ्गं पच्यतामित्यध्वेषणार्थम् । पच्यता-  
मेवेति वाऽवधारणार्थम् । यथा लौकिके वाक्ये विभागेनार्थग्रहणात्  
प्रमाणत्वमेवं वेदवाक्यानामपि विभागेनार्थग्रहणात् प्रमाणत्वं भवितु-  
मर्हतीति ॥

## नानुवादपुनरुक्तयोर्विशेषः शब्दाभ्यासोपपत्तेः ॥६५॥

पुनरुक्तमसाधु, साधुगनुवाद इति अयं विशेषो नोपपद्यते । कस्मात्  
उभयत्र हि प्रतीतार्थः शब्दोऽभ्यस्यते चरितार्थस्य शब्दस्याभ्यासादुभयम-  
साध्विति ॥

## शीघ्रतरगमनोपदेशवदभ्यासान्नाविशेषः ॥६६॥

नानुवादपुनरुक्तयोरविशेषः । कस्मात् । अर्थवदभ्यासस्यानुवाद-  
भावात् समानेऽभ्यासे पुनरुक्तमनर्थकम् । अर्थवानभ्यासोऽनुवादः । शीघ्र-  
तरगमनोपदेशवत् । शीघ्रं शीघ्रं गम्यतां शीघ्रतरं गम्यतामिति क्रिया-  
तिशयोऽभ्यासेनैवोच्यते । उदाहरणार्थञ्चेदम् एवमन्योऽप्यभ्यासः । प-  
चति पचतीति क्रियानुपरमः । आसो आसो रक्षणीय इति व्याप्तिः ।  
परिपरि त्रिगर्त्तस्थो वृष्टो देव इति परिवर्जनम्, अध्यधि कुडां निषण्ण-  
मिति सामीप्यम् । तित्तं तित्तमिति प्रकारः । एवमनुवादस्य स्तुतिनिन्दा-  
शेषविधिष्वधिकारार्थता विहितार्थता चेति । किं पुनः प्रतिषेधहेतुद्वारा-  
देव शब्दस्य प्रमाणत्वं न सिध्यति ॥



मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामा-  
ण्यात् ॥ ६७ ॥

किं पुनरायुर्वेदस्य प्रामाण्यं यदायुर्वेदेनोपदिश्यते इदं क्वत्वेऽसि-  
गच्छति इदं वर्ज्ययित्वाऽनिष्टं जहाति तस्मानुद्गीयमानस्य तथाभावः  
सत्यार्थताऽविपर्ययः, मन्त्रपदानाञ्च विषमूताऽशनिप्रतिषेधाधानां प्रयो-  
गेऽर्थस्य तथाभावः एतत्प्रामाण्यं किं कृतमेतत् । आप्तप्रामाण्यकृतम् ।  
किं पुनराप्तानां प्रामाण्यम् साक्षात्कृतधर्मता भूतदया यथाभूतार्थचिख्या-  
पयिषेति । आप्ताः खलु साक्षात्कृतधर्माणः इदं हातव्यमयमस्य हानि-  
हेतुरिदमस्याधिगन्तव्यमस्याधिगमहेतुरिति भूतान्यनुकम्पन्ते । तेषां  
खलु वै प्राणभृतां स्वयमनवबुध्यमानानां नात्यदुपदेशादवबोधकारणमस्ति,  
न चानवबोधे समीक्षा वर्जनं वा, न वाऽज्ञात्वा स्वस्तिभावः, नाप्यस्यान्य  
उपकारकोऽप्यस्ति । हन्त वयमेभ्यो यथादर्शनं यथाभूतमुपदिशाम स्त इमे  
श्रुत्वा प्रतिपद्यमाना हेयं हास्यन्त्यधिगन्तव्यमेवाधिगमिष्यन्तीति । एव-  
माप्तोपदेशः एतेन द्विविधेनाप्तप्रामाण्येन परिगृहीतोऽनुद्गीयमानोऽर्थस्य  
साधको भवति । एवमाप्तोपदेशः प्रमाणमेवमाप्ताः प्रमाणम् । दृष्टार्थेना-  
प्तोपदेशेनायुर्वेदेनादृष्टार्थो वेदभागोऽनुमातव्यः प्रमाणमिति आप्तप्रामा-  
ण्यस्य हेतोः समानत्वादिति, अस्यापि चैकदेशो यामकामो यजेतेत्येव-  
मादिर्दृष्टार्थस्तेनानुमातव्यमिति । लोके च भूयानुपदेशाश्रयो व्यवहारः ।  
लौकिकस्याप्युपदेष्टु रूपदेष्टव्यार्थं ज्ञानपरानुजिबृक्षया यथाभूतार्थचिख्या-  
पयिष्या<sup>१</sup> च प्रामाण्यम् । तत्परिग्रहादाप्तोपदेशः प्रमाणमिति द्रष्टृप्रव-  
क्तृसामान्याज्ञानुमानम् । य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च त एवा-  
युर्वेदप्रभृतीनामित्यायुर्वेदप्रामाण्यवद्देदप्रामाण्यमनुमातव्यमिति । नित्य-  
त्वाद्देवाक्यानां प्रमाणत्वे तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यादित्वयुक्तम् शब्दस्य  
वाचकत्वादर्थप्रतिपत्तौ प्रमाणत्वं न नित्यत्वात् नित्यत्वे हि सर्वस्य सर्वेषु  
वचनाच्छब्दार्थव्यवस्थानुपपत्तिः । नानित्यत्वे वाचकत्वमिति चेत् न  
लौकिकेष्वदर्शनात्, तेऽपि नित्या इति चेत् न अनाप्तोपदेशादर्थविसंवादो-



## न्यायदर्शनवात्स्यायनभाष्ये

ऽनुपपन्नः । नित्यत्वाद्वि शब्दः प्रमाणमिति अनित्यः स इति चेत् अवि-  
शेषवचनम् अनाप्तोपदेशो लौकिको न नित्य इति कारणं वाच्यमिति ।  
यथानियोगञ्चार्थस्य प्रत्यायनाक्षामधेयशब्दानां लोके प्रामाण्यम् नित्य-  
त्वात्प्रामाण्यानुपपत्तिः । यत्रार्थे नामधेयशब्दो नियुज्यते लोके तस्य नियो-  
गसामर्थ्यात् प्रत्यायको भवति न नित्यत्वात् सत्त्वन्तरयुगान्तरेषु चातीता-  
नागतेषु सम्प्रदायध्यासप्रयोगविच्छेदो वेदानां नित्यत्वम् आप्तप्रामाण्याच्च  
प्रामाण्यम् लौकिकेषु शब्देषु चैतत् समानमिति ॥

इति वात्स्यायनीये न्यायभाष्ये द्वितीयाध्यायस्याद्यमाह्निकम् ॥

अथयथार्थः प्रमाणोद्देश इति सत्वाह ।

## न चतुष्टमैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यात्॥१॥

न चतुष्टमैव प्रमाणानि, किन्तिर्हि, ऐतिह्यमर्थापत्तिः सम्भवोऽभाव  
इत्येतान्यपि प्रमाणानि, इति होचुरित्यनिर्दिष्टप्रवक्तृकस्यवादपारम्प-  
र्यमैतिह्यम्, अर्थादापत्तिरर्थापत्तिः आपत्तिः प्राप्तिः प्रसङ्गः । यत्राभि-  
धीयमानेऽर्थे योऽन्योऽर्थः प्रयुज्यते सोऽर्थापत्तिः । यथा मेघेज्जसत्सु दृष्टिर्न  
भवतीति किमत्र प्रयुज्यते सत्सु भवतीति । सम्भवो नाम अविनाभा-  
विनोऽर्थस्य सत्ताग्रहणादन्यस्य सत्ताग्रहणम् । यथा द्रोणस्य सत्ताग्रह-  
णादाढकस्य सत्ताग्रहणम् आढकस्य सत्ताग्रहणात्स्यस्येति । अभावो  
विरोधी अभूतं भूतस्य, अविद्यमानं वर्धकर्म विद्यमानस्य वाच्यभ्रसंयोगस्य  
प्रतिपादकम् विधारको हि वाच्यभ्रसंयोगे शुरुत्वादापां प्रतनकर्म न भव-  
तीति । सत्यमेतानि प्रमाणानि न तु प्रमाणान्तराणि प्रमाणान्तरञ्च  
सत्यमानेन प्रतिषेधः उच्यते सोऽयम् ॥



शब्द एतिह्यानर्थान्तरभावादनुमानेऽर्थापत्तिस-  
म्भवाभावानर्थान्तरभावाच्चाप्रतिषेधः ॥ २ ॥

अनुपपन्नः प्रतिषेधः कथम् आप्तोपदेशः शब्द इति न च शब्दलक्षण-  
मैतिह्याद्यावर्तते सोऽयं भेदः सामान्यात् संगृह्यत इति । प्रत्यक्षेणाप्र-  
त्यक्षस्य सम्बद्धस्य प्रतिपत्तिरनुमानम्, तथा चार्थापत्तिसम्भवाभावाः,  
वाक्यार्थसम्प्रत्ययेनानभिहितस्वार्थस्य प्रत्यनीकभावाद्गृह्यमर्थापत्तिरनुमा-  
नमेव, अविनाभाववृत्त्या च सम्बद्धयोः ससुदायससुदायिनोः ससुदायेनेतरस्य  
ग्रहणं सम्भवः । तदप्यनुमानमेव । अस्मिन् सतीदं नोपपद्यत इति विरो-  
धित्वे प्रसिद्धे कार्यानुत्पत्त्या कारणस्य प्रतिबन्धकमनुमीयते सोऽयं यथायं  
एव प्रमाणोद्देश इति सत्यमेतानि प्रमाणानि न तु प्रमाणान्तराणीत्यु-  
क्तम् । अत्रार्थापत्तेः प्रमाणभावाभ्यनुज्ञा नोपपद्यते तथाहीयम् ॥

अर्थापत्तिरप्रमाणमनैकान्तिकत्वात् ॥ ३ ॥

असत्सु मेघेषु वृष्टिर्न भवतीति सत्सु भवतीत्येतदर्थोदापद्यते सत्-  
स्वपि चैकदा न भवति सेयमर्थापत्तिरप्रमाणमिति । नानैकान्तिकत्व-  
मर्थापत्तेः ॥

अनर्थापत्तावर्थापत्यभिमानात् ॥ ४ ॥

असति कारणे कार्यन्नोत्पद्यते इति वाक्यात् प्रत्यनीकभूतोऽर्थः  
सति कारणे कार्यमुत्पद्यत इत्यर्थोदापद्यते अभावस्य हि भावः प्रत्यनीक  
इति । सोऽयं कार्योत्पादः सति कारणेऽर्थोदापद्यमानो न कारणस्य  
सत्तां व्यभिचरति न खल्वसति कारणे कार्यमुत्पद्यते तस्मान्नानैकान्तिकी  
यत् सति कारणे निमित्तप्रतिबन्धात् कार्यन्नोत्पद्यत इति कारणधर्मोऽसौ  
न त्वर्थापत्तेः प्रमेयं किन्तु ह्यस्याः प्रमेयम् सति कारणे कार्यमुत्पद्यत इति  
योऽसौ कार्योत्पादः कारणस्य सत्तां न व्यभिचरति एतदस्याः प्रमेयम् ।  
एवमु सति अनर्थापत्तावर्थापत्यभिमानं कृत्वा प्रतिषेध उच्यत इति ।  
वृष्टस्य कारणधर्मो न शक्यः प्रत्याख्यातुमिति ॥



प्रतिषेधाप्रामाण्यञ्चानैकान्तिकत्वात् ॥ ५ ॥

अर्थापत्तिर्न प्रमाणमनैकान्तिकत्वादिति वाक्यम् प्रतिषेधः तेना-  
नेनार्थापत्तेः प्रमाणत्वं प्रतिषिद्यते न सङ्गावः एवमनैकान्तिको भवति  
अनैकान्तिकत्वादप्रमाणेनानेन न कश्चिदर्थः प्रतिषिद्यते इति । अथ मन्यमे  
नियतविषयेष्वर्थेषु स्वविषये व्यभिचारो भवति न च प्रतिषेधस्यासङ्गावो  
विषयः एवन्तर्हि ॥

तत्प्रामाण्ये वा नार्थापत्त्यप्रामाण्यम् ॥ ६ ॥

अर्थापत्तेरपि कार्योत्पत्तेन कारणसत्ताया अव्यभिचारो विषयः  
न च कारणधर्मो निमित्तप्रतिबन्धात् कार्योत्पत्त्यदत्वमिति । अभावस्य  
तर्हि प्रमाणभावाभ्युत्ता नोपपद्यते कथमिति ॥

नाभावप्रामाण्यममेयासिद्धेः ॥ ७ ॥

अभावस्य भूयसि प्रमेये लोकसिद्धे वैजात्यादुच्यते नाभावप्रामाण्यम्  
प्रमेयासिद्धेरिति अथाऽयमर्थवद्भूतत्वादर्थेकदेश उदाह्रियते ॥

लक्षितेष्वलक्षणलक्षितत्वादलक्षितानां तत्प्रमेय-  
सिद्धेः ॥ ८ ॥

तस्याभावस्य सिद्धति प्रमेयम्, कथम् लक्षितेषु वासस्सु अनुपादेशेषु  
उपादेशानामलक्षितानां लक्षणलक्षितत्वात् लक्षणाभावेन लक्षितत्वादिति ।  
उभयसन्निधावलक्षितानि वासांस्तानयेति प्रयुक्तो येषु वासस्सु लक्षणानि  
न भवन्ति तानि लक्षणाभावेन प्रतिपद्यते प्रतिपद्य चानयति प्रतिपत्ति-  
हेतुश्च प्रमाणमिति ॥

१ अध्याये २ अङ्किकम् ।

६५

असत्यर्थे नाभाव इति चेन्नान्यलक्षणोपपत्तेः ॥६॥

यत्र भूत्वा किञ्चिन्न भवति तत्र तस्याभावः उपपद्यते । अलक्षितेषु च वासस्तु लक्षणानि भूत्वा न भवन्ति तस्मात् तेषु लक्षणाभावोऽनुपपन्न इति नान्यलक्षणोपपत्तेः यथायमन्येषु वासस्तु लक्षणानामुपपत्तिरस्म्यति नैवमलक्षितेषु सोऽयं लक्षणाभावं पश्यमभावेनार्थस्मृतिपद्यते इति ॥

तत्सिद्धेरलक्षितेष्वहेतुः ॥ १० ॥

तेषु वांसस्तु लक्षितेषु सिद्धिर्विद्यमानता येषां भवति न तेषामभावो लक्षणानाम्, यानि च लक्षितेषु विद्यन्ते लक्षणानि, तेषामलक्षितेष्वभाव इत्यहेतुः । यानि खलु भवन्ति तेषामभावो व्याहृत इति ॥

न लक्षणावस्थितापेक्षसिद्धेः ॥ ११ ॥

न ब्रूमो यानि लक्षणानि भवन्ति तेषामभाव इति । किन्तु केषुचि-  
ल्लक्षणान्यवस्थितानि अनवस्थानि केषुचिदपेक्षसाक्षात् येषु लक्षणानां भावं  
न पश्यति तानि लक्षणाभावेन प्रतिपद्यत इति ॥

प्रागुत्पत्तेरभावोपपत्तेश्च ॥ १२ ॥

अभावद्वैतं खलु भवति प्राक् चोत्पत्तेरविद्यमानता उत्पन्नस्य चात्मनो  
हानोद्विद्यमानता, तत्रालक्षितेषु वासस्तु प्रागुत्पत्तेरविद्यमानतालक्षणे  
लक्षणानामभावो नेतर इति । आप्तोपदेशः शब्द इति प्रमाणभावे विशेष-  
पणं ब्रुवता नानाप्रकारः शब्द इति ज्ञायते तस्मिन् सामान्येन विचारः  
किं नित्योऽथानित्य इति ॥

विमर्शहेत्वनुयोगे च विप्रतिपत्तेः संशयः ॥१३॥

आकाशगुणः शब्दो विभुर्नित्योऽभिव्यक्तिधर्मक इत्येके, गन्धादि-  
सहृत्तिर्द्रव्येषु सन्निविष्टो गन्धादिवदवस्थितोऽभिव्यक्तिधर्मक इत्यपरे,



आकाशगुणः शब्द उत्पत्तिनिरोधधर्मको बुद्धिवदित्यपरे, महाभूतसङ्ख्यो-  
भजः शब्दोऽनाश्रित उत्पत्तिधर्मको निरोधधर्मक इत्यन्ये, अतः संशयः  
किमत्र तत्त्वमिति, अनित्यः शब्द इत्युत्तरम्, कथम् ॥

## आदिमत्वादैन्यिकत्वात् कृतकवदुपचाराच्च॥१४

आदिर्योनिः कारणम्, आदीयतेऽस्मादिति कारणवदनित्यं दृष्टम्  
संयोगविभागश्च शब्दः कारणवत्त्वादनित्य इति, का पुनरियमर्थदेशना  
कारणवदिति उत्पत्तिधर्मकत्वादनित्यः शब्द इति। भूत्वा न भवति  
विनाशधर्मक इति, सांशयिकमेतत् किमुत्पत्तिकारणं संयोगविभागौ  
शब्दस्य, आहोस्विदभिव्यक्तिकारणमित्यत आह। ऐन्द्रियकत्वात् ऐन्द्रिय-  
प्रत्यासत्तिग्राह्य ऐन्द्रियः। किमयं व्यञ्जकेन समानदेशोऽभिव्यज्यते  
रूपादिवत्। अथ संयोगजाच्छब्दाच्छब्दसन्ताने सति श्रोत्रप्रत्यासन्नो  
गृह्यत इति, संयोगनिवृत्तौ शब्दग्रहणान्न व्यञ्जकेन समानदेशस्य ग्रह-  
णम्। दारुवञ्चने दारुपरशुसंयोगनिवृत्तौ दूरस्थेन शब्दो गृह्यते न च  
व्यञ्जकाभावे व्यङ्ग्यस्य ग्रहणं भवति, तस्मान्न व्यञ्जकः संयोगः। उन्-  
पादके तु संयोगे संयोगजाच्छब्दाच्छब्दसन्ताने सति श्रोत्रप्रत्यासन्नस्य  
ग्रहणमिति। इतश्च शब्द उत्पद्यते नाभिव्यज्यते कृतकवदुपचारात् तीव्रं  
मन्दमिति कृतकमुपचर्यते तीव्रं सुखं मन्दं सुखं तीव्रं दुःखं मन्दं दुःख-  
मिति उपचर्यते च तीव्रः शब्दो मन्दः शब्द इति। व्यञ्जकस्य तथाभावाद्-  
ग्रहणस्य तीव्रमन्दता रूपवदिति चेन्न अभिभवोपपत्तेः संयोगस्य व्यञ्ज-  
कस्य तीव्रमन्दतया शब्दग्रहणस्य तीव्रमन्दता भवति न तु शब्दो भिद्यते  
यथा प्रकाशस्य तीव्रमन्दतया रूपग्रहणस्येति तच्च नैवम् अभिभवोपपत्तेः,  
तीव्रो भेरीशब्दो मन्दं तन्त्रीशब्दमभिभवति न मन्दः, न च शब्दग्रहण-  
मभिभावकं शब्दश्च न भिद्यते शब्दे तु भिद्यमाने युक्तोऽभिभवः तस्मादुत्-  
पद्यते शब्दो नाभिव्यज्यत इति, अभिभवानुपपत्तिश्च व्यञ्जकसमानदेश-  
स्याभिव्यक्तौ प्राप्त्यभावात् व्यञ्जकेन समानदेशोऽभिव्यज्यते शब्द इत्ये-  
तस्मिन् पक्षे नोपपद्यतेऽभिभवः, न हि भेरीशब्देन तन्त्रीस्वनः प्राप्त  
इति, अप्राप्ते अभिभव इति चेत् शब्दमात्राभिभवप्रसङ्गः। अथ मन्वेता-



## २ अध्याये २ आह्निकम् ।

६७

ऽसत्त्वां प्राप्तावभिभवो भवतीति । एवं सति यथा भेरीशब्दः कश्चित्तन्वी-  
खनमभिभवति । एवमनिकस्योपादानमिव दधीयस्योपादानमपि तन्वी-  
खनं नाभिभवेत् अप्राप्तेरविशेषात् तत्र कश्चिदेव भेर्यां प्रणादितायां  
सर्वलोकेषु समानकालास्तन्वीखना न श्रूयेरन् इति ॥ नानाभूतेषु शब्द-  
सन्तानेषु सत्सु श्रोत्रप्रत्यासत्तिभावेन कस्यचिच्छब्दस्य तीक्ष्णेण मन्दस्याभि-  
भवो युक्त इति । कः पुनरयमभिभवो नाम ग्राह्यसमानजातीयग्रहण-  
मभिभवः । यथोक्ताप्रकाशस्य ग्रहणार्हस्यादित्यप्रकाशेनेति ॥

न घटाभावसामान्यनित्यत्वात् नित्येष्वप्यनित्य-  
वदुपचाराच्च ॥ १५ ॥

न खलु आदिमत्त्वादनित्यः शब्दः, कस्मात् व्यभिचारात् आदिमतः  
खलु घटाभावस्य दृष्टं नित्यत्वम्, कथमादिमान् कारणविभागेभ्यो हि घटो  
न भवति कथमस्य नित्यत्वं योऽसौ कारणविभागेभ्यो न भवति न तस्या-  
भावो भावेन कदाचिन्निवर्त्यते इति, यदप्येन्द्रियकत्वात् तदपि व्यभिच-  
रति । ऐन्द्रियकञ्च सामान्यं नित्यञ्चेति, यदपि कृतकवदुपचारादिति  
तदपि व्यभिचरति नित्येष्वनित्यवदुपचारो दृष्टः यथा हि भवति वृक्षस्य  
प्रदेशः कम्बुजस्य प्रदेशः एवमाकाशस्य प्रदेशः आत्मनः प्रदेश इति भवतीति ॥

तत्त्वभाक्तयोर्नानात्वविभागादव्यभिचारः ॥ १६ ॥

नित्यमित्यत्र किं तावत्तत्त्वम् । आत्मान्तरस्यानुत्पत्तिधर्मकस्यात्महा-  
नानुपपत्तिर्नित्यत्वम् । तच्चाभावे नोपपद्यते, भाक्तं तु भवति यत्तत्तात्मा  
न महानासीत् यद्भूत्वा न भवति न जातु तत् पुनर्भवति तत्रानित्य इव  
नित्यो घटाभावो इत्यर्थं पदार्थ इति, तत्र यथाजातीयकः शब्दो न तथा-  
जातीयकं कार्यं किञ्चिन्नित्यं दृश्यते इत्यव्यभिचारः । यदपि सामान्य-  
नित्यत्वमिति ऐन्द्रियप्रत्यासत्तिग्राह्यनैन्द्रियकमिति ॥



## सन्तानानुमानविशेषणात् ॥ १७ ॥

नित्ये व्यभिचार इति प्रकृतम् । नेन्द्रियग्रहणसामर्थ्याच्छब्दस्थानित्वत्वं किन्तर्हीन्द्रियप्रत्यासत्तिग्राह्यत्वात् सन्तानानुमानं तेनानित्यत्वमिति यदपि नित्येष्वप्यनित्यत्ववदुपचारादिति न ॥

## कारणद्रव्यस्य प्रदेशशब्देनाभिधानान्नित्येष्वप्यव्यभिचार इति ॥ १८ ॥

एवमाकाशप्रदेश आत्मप्रदेश इति नात्राकाशात्मनोः कारणद्रव्यमभिधीयते यथा कृतकस्य, कथं ह्यविद्यमानमभिधीयते अविद्यमानता च प्रमाणतोऽनुपलब्धेः किन्तर्हि तत्राभिधीयते संयोगस्याव्याप्यवृत्तित्वम्, परिच्छिन्नेन द्रव्येणाकाशस्य संयोगो नाकाशं व्याप्नोति अव्याप्य वर्त्तत इति, तदस्य कृतकेन द्रव्येण सामान्यम् न ह्यामलकयोः संयोग आश्रयं व्याप्नोति सामान्यकृता च भक्तिराकाशस्य प्रदेश इति । अनेनात्मप्रदेशो व्याख्यातः संयोगवच्च शब्दबुद्ध्यादीनामव्याप्यवृत्तित्वमिति । परीक्षिता च तीव्रमन्दता शब्दतत्त्वं न भक्तिरुक्तेति । कस्मात् पुनः सूत्रकारस्यास्मिन्नर्थे सूत्रं न श्रूयत इति, शीलमिदं भगवतः सूत्रकारस्य बहुष्वधिकरणेषु द्वौ पक्षौ न व्यवस्थापयति तत्र शः सूत्रसिद्धान्तात् तत्त्वावधारणं प्रतिपत्तुमर्हतीति मन्थते शास्त्रसिद्धान्तस्तु न्यायसमाख्यातमनुमतं बहुशास्त्रमनुमानमिति । अथापि खल्विदमस्ति इदं नास्तीति कृत एतत् प्रतिपत्तव्यमिति प्रमाणत उपलब्धेरनुपलब्धेरेति । अविद्यमानस्तर्हि शब्दः ॥

## प्रागुच्चारणाद्यनुपलब्धेरावरणाद्यनुपलब्धेश्च ॥ २६ ॥

प्रागुच्चारणान्नास्ति शब्दः । कस्मात् । अनुपलब्धेः सतोऽनुपलब्धिरावरणादिभ्य एतन्नोपपद्यत कस्मात् आवरणादीनामनुपलब्धिकारणानामग्रहणात् । अनेनादृतः शब्दो नोपलभ्यते असन्निकटस्थेन्द्रियव्यवधा-



## २ अध्याये २ आह्निकम् ।

६६

मादित्येवमादि अनुपलब्धिकारणं न गृह्यत इति सोऽयमनुच्चारितो नास्तीति, उच्चारणमस्य व्यञ्जकं तदभावात् प्रागुच्चारणादनुपलब्धिरिति । किमिदमुच्चारणं नामेति । विवक्षाजनितेन प्रयत्नेन कोष्ठस्य वायोः प्रेरितस्य कण्ठतात्त्विकप्रतिघातः । यथास्यानं प्रतिघाताद्वर्णाभिव्यक्तिरिति । संयोगविशेषो वै प्रतिघातः प्रतिषिद्धञ्च संयोगस्य व्यञ्जकत्वम् । तस्मान्न व्यञ्जकाभावादपहणम् अपि त्वभावादेवेति सोऽयमुच्चार्यमाणः श्रूयते श्रूयमाणश्च भूत्वा भवतीति अनुमीयते ऊर्ध्वं चोच्चारणाच्छ्रूयते स भूत्वा न भवतीति अभावाच्च श्रूयत इति कथं आवरणादनुपलब्धेरित्युक्तं तस्मादुत्पत्तितिरोभावधर्मकः शब्द इति एवञ्च सति तत्त्वं पांशुभिरवावाकिरन्निदमाह ॥

तदनुपलब्धेरनुपलम्भादावरणोपपत्तिः ॥ २० ॥

यद्यनुपलम्भादावरणं नास्ति आवरणानुपलब्धिरपि तर्ह्यनुपलम्भान्नास्तीति तस्या अभावादप्रतिषिद्धमावरणमिति कथं पुनर्जानीतेऽभावाच्च आवरणानुपलब्धिरुपलभ्यत इति किमत ज्ञेयं प्रत्यात्मवेदनीयत्वात् समानम् अयं खल्वेवावरणमनुपलभमानः प्रत्यात्ममेव संवेदयते नावरणमुपलम्भ इति यथा बुद्धेर्नाष्टस्यावरणमुपलभमानः प्रत्यात्ममेव संवेदयते हेयमावरणोपलब्धिवदावरणानुपलब्धिरपि संवेद्यैवेति एवञ्च सत्यपहृतविषयसत्तरवाक्यमस्तीति अस्यतुच्चावादेन तूच्यते जातिवादिना ॥

अनुपलम्भादप्यनुपलब्धिसङ्गाववन्नावरणानुपपत्तिरनुपलम्भात् ॥ २१ ॥

यथानुपलभ्यमानाऽप्यावरणानुपलब्धिरस्ति एवमनुपलभ्यमानमप्यावरणमस्तीति यद्यभ्यनुजानाति भवाननुपलभ्यमानाप्यावरणानुपलब्धिरस्ति एवमनुपलभ्यमानमप्यावरणमस्तीति । यद्यभ्यनुजानाति न चानुपलभ्यमाना नावरणानुपलब्धिरस्तीति अभ्यनुज्ञाय च वदति नास्त्यावरणमनुपलम्भादिति । एतस्मिन्नप्यभ्यनुज्ञावादे प्रतिपत्तिनिश्चयो नोपपद्यत इति ॥



अनुपलम्भात्मकत्वादनूपलब्धेरहेतुः ॥ २२ ॥

यदुपलभ्यते तदस्ति यन्नोपलभ्यते तच्चास्तीति अनुपलम्भात्मकमसदिति व्यवस्थितम् उपलब्ध्यभावश्चानुपलब्धिरिति सेयमभावत्वान्नोपलभ्यते सच्च खत्वावरणं तस्योपलब्ध्या भवितव्यम् । न चोपलभ्यते तस्मान्नास्तीति । तच्च यदुक्तं नावरणानुपपत्तिरनुपलम्भादित्युक्तमिति अथ शब्दस्य नित्यत्वं प्रतिजानानः कस्मद्द्वयोः प्रतिजानीते ॥

अस्पर्शत्वात् ॥ २३ ॥

अस्पर्शनाकाशं नित्यं दृष्टमिति तथा च शब्द इति सोऽयमुभयतः सव्यभिचारः स्पर्शवाङ्माणुर्नित्यः अस्पर्शश्च कर्माऽनित्यं दृष्टं अस्पर्शत्वादित्येतस्य साध्यसाधर्म्येणोदाहरणम् ॥

न कर्मानित्यत्वात् ॥ २४ ॥

साध्यवैधर्म्येणोदाहरणम् ॥

नाणुनित्यत्वात् ॥ २५ ॥

उभयस्मिन्नुदाहरणे व्यभिचाराद् हेतुः । अयन्तर्हि हेतुः ॥

सम्प्रदानात् ॥ २६ ॥

सम्प्रदीयमानमवस्थितं दृष्टम्, सम्प्रदीयते च शब्द आचार्येणान्वेसिने तस्मादवस्थित इति ॥

तदन्तरालानुपलब्धेरहेतुः ॥ २७ ॥

येन सम्प्रदीयते यस्मै च तयोरन्तरालेऽवस्थानमस्य केन लिङ्गेनोपलभ्यते सम्प्रदीयमानो ह्यवस्थितः सम्प्रदातुरपैति सम्प्रदानञ्च प्रोतोत्यवर्जनीयमेतत् ॥

२ अध्याये २ आह्निकम् ।

७१

अध्यापनादप्रतिषेधः ॥ २८ ॥

अध्यापनं लिङ्गं असति सम्प्रदानेऽध्यापनं न स्यादिति ॥

उभयोः पक्षयोरन्यतरस्याध्यापनादप्रतिषेधः ॥ २९ ॥

समानमध्यापनमुभयोः पक्षयोः संशयानतिवृत्तेः किमाचार्यस्यः  
शब्देऽन्तेवासिनभापद्यते तदध्यापनम् । आहोस्त्रिचूत्योपदेशवद्ब्रू-  
तस्यानुकरणमध्यापनमिति । एवमध्यापनमलिङ्गं सम्प्रदानस्येति । अय-  
न्तर्हि हेतुः ॥

अभ्यासात् ॥ ३० ॥

अभ्यस्यमानमवस्थितं दृष्टम् पञ्चकत्वः पश्यतीति, रूपमवस्थितं  
पुनः पुनर्दृश्यते, भवति च शब्देऽभ्यासः, दशकत्वोऽधीतेऽनुवाको विंशति-  
त्वोऽधीत इति, तस्मादवस्थितस्य पुनः पुनरुच्चारणमभ्यास इति ॥

नान्यत्वेऽप्यभ्यासस्योपचारात् ॥ ३१ ॥

अनवस्थानेऽप्यभ्यासस्याभिधानं भवति । द्विरन्त्यत्वं भवान् त्रिरन्त्यत्वं  
भवानिति, द्विरन्त्यत्वं त्रिरन्त्यत्वं द्विरग्निहोत्रं जुहोति द्विर्भुङ्क्ते एवं  
व्यभिचारात् प्रतिषिद्धहेतावन्यशब्दस्य प्रयोगः प्रतिषिध्यते ॥

अन्यदन्यत्वादनन्यत्वादित्यन्यताऽभावः ॥ ३२ ॥

यदिदन्यदिति अन्यत्वे तत् स्वार्थेनानन्यत्वादित्यन्यता भवति । एवम-  
न्यताया अभ्यासः, तत्र यदुक्तमन्यत्वेऽप्यभ्यासोपचारादित्येवदयुक्तमिति  
शब्दप्रयोगं प्रतिषेधतः शब्दान्तरप्रयोगः प्रतिषिध्यते ॥

तदभावे नास्त्य नन्यता तयोरितरेतरापेक्षसिद्धेः  
॥ ३३ ॥



अन्यस्मादन्यत्पादयति भवान् उपपाद्य चान्यत् प्रत्याचष्टे अन-  
न्यदिति च शब्दमनुजानाति प्रयुक्ते चानन्यदिति । एतत् समासपदम-  
न्यशब्दोऽयं प्रतिषेधेन सह समस्यते यदिचातोत्तरं पदं नास्ति कस्यायं  
प्रतिषेधेन सह समासः, तस्मात्तयोरनन्यान्यशब्दयोरितरोऽनन्यशब्द इतर-  
मन्यशब्दमपेक्षमाणः सिद्ध्यतीति तत्र यदुक्तमन्यताया अभाव इत्येतदयुक्त-  
मिति, अस्तु तर्हीदानीं शब्दस्य नित्यत्वम् ॥

### विनाशकारणानुपलब्धेः ॥ ३४ ॥

यदनित्यं तस्य विनाशः कारणाद्भवति यथा लोष्टस्य कारणद्वयवि-  
भागात्, शब्दश्चेदनित्यस्तस्य विनाशो यस्मात् कारणाद्भवति तदुपलब्धेः  
न चोपलब्धे तस्मान्नित्य इति ॥

### अश्रवणकारणानुपलब्धेः सततश्रवणप्रसङ्गः ३५

यथा विनाशकारणानुपलब्धेरविनाशप्रसङ्गः । एवमश्रवणकारणानुप-  
लब्धेः सततं श्रवणप्रसङ्गः । व्यङ्गकाभावादश्रवणमिति चेत् प्रतिषिद्धम्  
व्यङ्गकम् । अथाविद्यमानस्य निर्निमित्तं श्रवणमिति विद्यमानस्य निर्नि-  
मित्तो विनाश इति समानश्च दृष्टविरोधो निमित्तमन्तरेण विनाशे चाश्र-  
वणे चेति ॥

### उपलभ्यमाने चानुपलब्धेरसत्त्वादनपदेशः ॥ ३६ ॥

अनुमानाच्चोपलभ्यमाने शब्दस्य विनाशकारणे विनाशकारणानु-  
पलब्धेरसत्त्वादित्यनपदेशः । यस्माद्विषाणी तस्मादश्व इति किमनु-  
मानमिति चेत् सन्नानोपपत्तिः उपपादितः शब्दसन्तानः संयोगविभाग-  
जाच्छब्दाच्छब्दान्तरं ततोऽप्यन्यत्ततोऽप्यन्यदिति तत्र कार्यः शब्दः कारण-  
शब्दं निरुणद्धि प्रतिधातिद्रव्यसंयोगस्त्वन्यस्य शब्दस्य निरोधकः । दृष्टं  
हि तिरः प्रतिकुट्टमन्तिकस्थेनाप्यश्रवणं शब्दस्य श्रवणं दूरस्थेनाप्यसति  
व्यवधान इति । घण्टायां भिन्नान्यमानायां तारस्तारतरो मन्दो मन्दतर  
इति श्रुतिभेदान्नानाशब्दसन्तानोऽविच्छेदेन श्रूयते तत्र नित्ये शब्दे,



## २ अध्याये २ आह्निकम् ।

७३

घण्टास्यसन्धगतं वाऽवस्थितं सन्ताननिवृत्तिरभिव्यक्तिकारणं वाच्यम् येन  
श्रुतिसन्तानो भवतीति शब्दभेदश्चासतिश्रुतिभेद उपपादयितव्य इति ।  
अनित्ये तु शब्दे घण्टास्यं सन्तानवृत्तिसंयोगसहकारिनिमित्तान्तरं संस्कार-  
रभूतं पटुमन्दमिति वर्तते तस्यानुवृत्त्या शब्दसन्तानानुवृत्तिः । पटुमन्द-  
भावाच्च तीव्रमन्दता शब्दस्य, तत्कृतश्च श्रुतिभेद इति न वै निर्निमित्ता-  
न्तरं संस्कार उपलभ्यते अनुपलब्धेर्नास्तीति ॥

**पाणिनिमित्तप्रज्ञेपाच्छब्दाभावे नानुपलब्धिः ॥ ३७ ॥**

पाणिनिकर्मणा पाणिघण्टाप्रज्ञेधो भवति तस्मिंश्च सति शब्दसन्तानो  
नोपलभ्यते अतः श्रवणानुपपत्तिः । तत्र प्रतिघातिद्रव्यसंयोगः शब्दस्य  
निमित्तान्तरं संस्काररभूतं निरुण्णीत्यनुमोयते । तस्य च निरोधाच्छब्द-  
सन्तानो नोत्पद्यते अनुत्पत्तौ श्रुतिविच्छेदः । यथा प्रतिघातिद्रव्यसंयोगा-  
दिषोः क्रियाहेतौ संस्कारे निरुद्धे गमनाभाव इति कम्पसन्तानस्य स्पर्श-  
नेन्द्रियमाह्वस्य चोपरमः कांक्ष्यपात्वादिषु पाणिप्रज्ञेधो लिङ्गं संस्कारस-  
न्तानस्येति, तस्मान्निमित्तान्तरस्य संस्काररभूतस्य नानुपलब्धिरिति ॥

**विनाशकारणानुपलब्धेः श्चावस्थाने तन्नित्यत्व-  
प्रसङ्गः ॥ ३८ ॥**

यदि यस्य विनाशकारणं नोपलभ्यते तदवतिष्ठते अवस्थानाच्च तस्य  
नित्यत्वं प्रसज्यते । एवं यानि खल्विमानि शब्दश्रवणानि शब्दाभिव्य-  
क्तय इति मतं न तेषां विनाशकारणं भवतोपपाद्यते अनुपपादनादनव-  
स्थानमनवस्थानात् तेषां नित्यत्वं प्रसज्यत इति । अथ नैवन्तर्हि विना-  
शकारणानुपलब्धेः शब्दस्यावस्थानान्नित्यत्वमिति । कम्पसमानाश्रयस्य च  
नादस्य पाणिप्रज्ञेपात् कम्पवत् कारणोपरमादभावः वैयधिकरण्ये हि  
प्रतिघातिद्रव्यप्रज्ञेपात् समानाधिकरणस्यैवोपरमः स्यादिति ॥

**अस्पर्शत्वादप्रतिषेधः ॥ ३९ ॥**



यदिदमाकाशशुणः शब्द इति प्रतिप्रिध्यते अयमनुपपन्नः प्रतिषेधः  
अस्पर्शत्वाच्छब्दाश्रयस्य रूपादिसमानदेशस्याग्रहणे शब्दसन्तानोपपत्तेर-  
स्पर्शव्यापिद्रव्याश्रयः शब्द इति ज्ञायते न च कम्पसमानाश्रय इति  
प्रतिद्रव्यं रूपादिभिः सह सन्निविष्टः शब्दसमानदेशो व्यज्यत इति नोपप-  
द्यते कथम् ॥

## विभक्त्यन्तरोपपत्तेश्च समासे ॥ ४० ॥

सन्तानोपपत्तेश्चेति चार्थः, तद्व्याख्यातम् । यदि रूपादयः शब्दाश्च  
प्रतिद्रव्यं समस्ताः समुदितास्तस्मिन् समासे समुदाये यो [यथाजातीयकः  
सन्निविष्टस्तस्य तथाजातीयस्यैव ग्रहणेन भवितव्यं शब्दे रूपादिवत्  
तत्र योऽयं विभक्त्यैकद्रव्ये नानारूपाभिन्नश्रुतयो विधर्माणः शब्दा  
अभिव्यज्यमाना श्रूयन्ते । यच्च विभागान्तरं सरूपाः समानश्रुतयः सध-  
र्माणः शब्दास्तीव्रमन्दधर्मतया भिन्नाः श्रूयन्ते तदुभयं नोपपद्यते नाना-  
भूतानामुत्पद्यमानानामयं धर्मो नैकस्य व्यज्यमानस्येति । अस्ति चायं  
विभागो विभागान्तरश्च तेन विभागोपपत्तेर्मन्यामहे न प्रतिद्रव्यं रूपा-  
दिभिः सह शब्दः सन्निविष्टो व्यज्यत इति । द्विविधश्चायं शब्दो वर्णा-  
त्मको ध्वनिमात्रश्च, तत्र वर्णात्मनि तावत् ॥

## विकारादेशोपदेशात् संशयः ॥ ४१ ॥

दध्यतेति । केचिदिकार इत्वं हित्वा यत्वमापद्यते इति विकारं  
मन्यन्ते । केचिदिकारस्य प्रयोगे विषयकते यदिकारः स्थानं जहाति  
तत्र यकारस्य प्रयोगं ब्रुवते । संहितयां विषये इकारो न प्रयुज्यते तस्य  
स्थाने यकारः प्रयुज्यते स आदेश इति । उभयमिदमुपदिश्यते तत्र न  
ज्ञायते किन्तत्त्वमिति । आदेशोपदेशस्तत्त्वम् । विकारोपदेशे ह्यन्वयस्या-  
ग्रहणादिकारानुमानम् सत्यन्वये किञ्चिच्चिर्वर्त्तते किञ्चिदुपजायत इति  
शक्येत विकारोऽनुमातुम्, न चान्वयो गृह्यते, तस्माद्विकारो नास्तीति,  
भिन्नकरणयोश्च वर्णयोरप्रयोगे प्रयोगोपपत्तिः । विवृत्तकरण इकारः



## २ अध्याये २ आह्निकम् ।

३५

इष्टस्मृष्टकरणो यकारः । ताविमौ पृथक् करणाख्येन प्रयत्नेनोच्चारणीयौ  
तयोरेकस्याप्रयोगे अन्यतरस्य प्रयोग उपपन्न इति अविकारे चाविशेषः ।  
यत्वेमाविकारयकारौ न विकारभूतौ यतते यच्छति प्रायस्त इति । इकार  
इदमिति । यत्न च विकारभूतौ इदं व्याहरति उभयत्र प्रयोक्तुरविशेषो  
यत्नः, श्रोतुश्च श्रुतिरित्यादेशोपपत्तिः । प्रयुज्यमानापहणाच्च न खल्वि-  
कारः प्रयुज्यमानो यकारतामापद्यमानो गृह्यते । किन्तर्हि इकारस्य  
प्रयोगे यकारः प्रयुज्यते तस्मादविकार इति । अविकारे च न शब्दान्वा-  
ख्यानलोपः । न विक्रियन्ते वर्णा इति नचैतस्मिन् पक्षे शब्दान्वाख्या-  
नस्यासम्भवो येन वर्णविकारं प्रतिपद्येमहीति न खलु वर्णस्य वर्णान्तरं  
कार्यम् नहीकाराद्यकार उत्पद्यते यकारादिकारः । पृथक्स्थानप्रय-  
त्नोत्पाद्या हीमेवर्णास्तेषामन्योन्यस्य स्थाने प्रयुज्यत इति युक्तम् । एता-  
वच्चैतत् परिणामो विकारः स्यात् कार्यकारणभावो वा उभयञ्च नास्ति  
तस्माच्च सन्ति वर्णविकारा वर्णसमुदायविकारानुपपत्तिवच्च वर्णविकारा-  
नुपपत्तिः अस्ते भूः ब्रुवो वचिरिति यथा वर्णसमुदायस्य धातुलक्षणस्य  
कचिद्विषये वर्णान्तरसमुदायो न परिणामो नाकार्यं शब्दान्तरस्य स्थाने  
शब्दान्तरं प्रयुज्यते तथा वर्णस्य वर्णान्तरमिति इतश्च न सन्ति वर्णविकाराः ।

## प्रकृतिविट्छौ विकारविट्छेः ॥ ४२ ॥

प्रकृत्यनुविधानं विकारेषु दृष्टम् । यकारे ह्रस्वदीर्घानुविधानं नास्ति  
येन विकारत्वमनुमीयत इति ॥

## न्यूनसमाधिकोपलब्धे विकाराणामहेतुः ॥ ४३ ॥

द्रव्यविकारा न्यूनाः सप्ता अधिकाश्च गृह्यन्ते तद्वदयं विकारो न्यूनः  
स्यादिति द्विविधस्यापि हेतोरभावादसाधनं दृष्टान्तः । अत्र नोदाहरण-  
साधर्म्याद्धेतुरस्ति न वैधर्म्यात् अनुपसंहृतश्च हेतुना दृष्टान्तो न साधक  
इति प्रतिदृष्टान्ते चानियमः प्रसज्येत । यथाऽनडुहस्थानेऽश्वा बोधुं  
नियुक्तो न तद्विकारो भवति, एवमिवर्णस्य स्थाने यकारः प्रयुक्तो न वि-  
कार इति, न चात्र नियमहेतुरस्ति दृष्टान्तः साधको न प्रतिदृष्टान्त इति,  
द्रव्यविकारोदाहरणञ्च ॥



## नातुल्यप्रकृतीनां विकारविकल्पात् ॥ ४४ ॥

अतुल्यातां द्रव्याणां प्रकृतिभावो विकल्पते विकारश्च प्रकृतीरनुविधी-  
यते, न तु इवर्णमनुविधीयते यकारः, तस्मादनुदाहरणं द्रव्यविकार इति।

## द्रव्यविकारे वैषम्यवद्वर्णविकारविकल्पः ॥ ४५ ॥

यथा द्रव्यभावेन तुल्यायाः प्रकृते विकारवैषम्यम्, एवं वर्णभावेन  
तुल्यायाः प्रकृते विकारविकल्प इति ॥

## न विकारधर्मानुपपत्तेः ॥ ४६ ॥

अयं विकारधर्मो द्रव्यसामान्ये, यदात्मकं द्रव्यं रूढ्वा सुवर्णं वा  
तस्यात्मनोऽन्वये पूर्वो व्यूहो निवर्त्तते, व्यूहान्तरञ्चोपजायते तं विकार-  
रमाचक्षते। न वर्णसामान्ये कश्चिच्छब्दात्मान्वयो य इत्वं जहाति यत्न-  
श्चापद्यते तत्र यथा सति द्रव्यभावे विकारवैषम्ये नाऽनडुहोऽन्वो विकारो  
विकारधर्मानुपपत्तेः, एवमिवर्णस्य न यकारो विकारो विकारधर्मानु-  
पपत्तेरिति। इतश्च न सन्ति वर्णविकाराः ॥

## विकारप्राप्तानामपुनरावृत्तेः ॥ ४७ ॥

अनुपपन्ना पुनरापत्तिः। कथम्। पुनरापत्तेरनुमानादिति।  
इकारो यकारत्वमापन्नः पुनरिकारो भवति न पुनरिकारस्य स्थाने यका-  
रस्य प्रयोगोऽप्रयोगश्चेत्यत्रानुमानं नास्ति ॥

## सुवर्णादीनां पुनरापत्तेरहेतुः ॥ ४८ ॥

अनुमानादिति न इदं ह्यनुमानम्, सुवर्णं कुण्डलत्वं हित्वा रुच-  
कत्वमापद्यते रुचकत्वं हित्वा पुनः कुण्डलत्वमापद्यते, एवमिकारोऽपि  
यकारत्वमापन्नः पुनरिकारो भवतीति व्यभिचारादननुमानम्, यथा  
पयो दधिभावमापन्नं पुनः पयो भवति किम्, एवं वर्णानां न पुनरा-  
पत्तिः। अथ सुवर्णवत्पुनरापत्तिरिति सुवर्णोदाहरणोपपत्तिश्च न ॥



तद्विकाराणां सुवर्णभावाव्यतिरेकात् ॥ ४६ ॥

अवस्थितं सुवर्णं ह्रीयमानेनोपजायमानेन धर्मेण धर्मो भवति नैवं  
कश्चिच्छब्दात्मा ह्रीयमानेनेत्वेनोपजायमानेन यत्त्वेन धर्मो गृह्यते ।  
तस्मात्सुवर्णोदाहरणं नोपपद्यत इति ।

वर्णत्वाव्यतिरेकाद्वर्णविकाराणामप्रतिषेधः ॥ ५० ॥

वर्णविकारा अपि वर्णत्वं न व्यभिचरन्ति । यथा सुवर्णविकारः  
सुवर्णत्वमिति ॥

सामान्यवतो धर्मयोगो न सामान्यस्य ॥ ५१ ॥

कुण्डलरुचकौ सुवर्णस्य धर्मौ न सुवर्णत्वस्य एवमिकारयकारौ कस्य  
वर्णात्मनो धर्मौ वर्णत्वं सामान्यं न तस्येवौ वर्णौ भवितुमर्हतः । न च  
निवर्त्तमानो धर्मो उपजायमानस्य प्रकृतिः । तत्र निवर्त्तमान इकारो न  
यकारस्योपजायमानस्य प्रकृतिरिति । इतश्च वर्णविकारानुपपत्तिः ॥

नित्यत्वे विकारादनित्यत्वे चानवस्थानात् ॥ ५२ ॥

नित्या वर्णा इत्येतस्मिन् पक्षे इकारयकारौ वर्णौ इत्युभयोर्नित्य-  
त्वाद्विकारानुपपत्तिः । अनित्यत्वे विनाशित्वात्कः कस्य विकार इति ।  
अथानित्या वर्णा इति पक्षः एवमप्यनवस्थानं वर्णानाम्, किमिदमनवस्थानं  
वर्णानाम् उत्पद्य निरोधः । उत्पद्य निरुद्धे इकारे यकार उत्पद्यते यकारे  
चोत्पद्य निरुद्धे इकार उत्पद्यते इति कः कस्य विकारः तदेतदवगृह्य  
सम्भारं सम्भार्य चावग्रहे वेदितव्यमिति नित्यपक्षे तु तावत्समाधिः ॥

नित्यानामतीन्द्रियत्वात्तद्वर्णविकल्पाच्च वर्ण-  
विकाराणामप्रतिषेधः ॥ ५३ ॥

नित्या वर्णा न विक्रियन्त इति विप्रतिषेधः यथा नित्यत्वे सति  
किञ्चिदतीन्द्रियं किञ्चिदिन्द्रियमाह्वयमिन्द्रियमाह्वय वर्णा एवं नित्यत्वे



सति किञ्चित् विक्रियते वर्णास्तु विक्रियन्त इति विरोधादहेतुस्तद्विक्रियतेः, नित्यं नोपजायते नापैति अनुपजनापायधर्मकम्, अनित्यं पुनरुपजनापाययुक्तम्, न चान्तरेणोपजनापायौ विकारः सम्भवति, तद्यदि वर्णा विक्रियन्ते नित्यत्वमेवां निवर्त्तते। अथ नित्या विकारधर्मत्वमेवां निवर्त्तते सोऽयं विरुद्धो हेत्वाभासो धर्मविकल्प इति, अनित्यपक्षे समाधिः ॥

### अनवस्थायित्वे च वर्णोपलब्धिवत्तद्विकारोपपत्तिः ५४

यथाऽनवस्थायिनां वर्णानां अवस्थाभवति एवमेवां विकारो भवतीति असम्भवादसमर्था अर्थप्रतिपादिका वर्णोपलब्धिर्न विकारेण सम्भवाद्दसमर्था या गृह्यमाणा वर्णविकारमनुपपादयेदिति। तत्र यादृगिदं गन्धगुणा पृथिवी एवं शब्दसुखादिगुणापीति तादृगेतद्भवतीति। न च वर्णोपलब्धिर्वर्णनिवृत्तौ वर्णान्तरप्रयोगस्य निवर्त्तिका सोऽयमिवर्णनिवृत्तौ यकारस्य प्रयोगो यद्ययं वर्णोपलब्ध्या निवर्त्तते तदा ततोपलभमान इवर्णो यत्नमापद्यत इति गृह्यते। तस्माद्वर्णोपलब्धिरेतुर्वर्णविकारस्येति॥

### विकारधर्मित्वे नित्यत्वाभावात्कालान्तरे विकारोपपत्तेश्चाप्रतिषेधः ॥ ५५ ॥

तद्वर्णविकल्पादिति न युक्तः प्रतिषेधः, न खलु विकारधर्मकं किञ्चित् नित्यमुपलभ्यत इति वर्णोपलब्धिवदिति न युक्तः प्रतिषेधः अवगृहे हि दधि अत्रेति प्रयुज्य चिरं स्थित्वा ततः संहितायां प्रयुक्ते दध्यत्रेति, चिरनिवृत्ते चायमिवर्णो यकारः प्रयुज्यमानः, कस्य विकार इति प्रतीयते कारणाभावात्कार्याभाव इत्यनुयोगः प्रसज्यत इति। इतश्च वर्णविकारानुपपत्तिः ॥

### प्रकृत्यनियमाद्वर्णविकाराणाम् ॥ ५६ ॥



इकारस्याने यकारः श्रूयते यकारस्याने खल्विकारो विधीयते, विध्यति, तद्यदि स्यात् प्रकृतिविकारभावो वर्णानां तस्य प्रकृतिनियमः स्यात् इदो विकारधर्मित्वे प्रकृतिनियम इति ।

**अनियमे नियमान्नानियमः ॥ ५७ ॥**

योऽयं प्रकृतेरनियम उक्तः स नियतो यथाविषयं व्यवस्थितः, नियतत्वान्नियम इति भवति, एवं सत्यनियमो नास्ति तत्र यदुक्तं प्रकृत्यनियमादित्येतदयुक्तमिति ॥

**नियमानियमविरोधादनियमे नियमाच्चाप्रतिषेधः ॥ ५८ ॥**

नियम इत्येकार्याभ्यनुज्ञा, अनियम इति तस्य प्रतिषेधः । अनुज्ञातनिषिद्धयोश्च व्याघातादनर्थान्तरत्वं न भवति । अनियमश्च नियतत्वान्नियमो न भवतीति नात्वार्थस्य तथाभावः प्रतिषिध्यते किन्तर्हि तदाभूतस्यार्थस्य नियमशब्देनाभिधीयमानस्य नियतत्वान्नियमशब्द एवोपपद्यते सोऽयं नियमादनियमे प्रतिषेधो न भवतीति न चेयं वर्णविकारोपपत्तिः परिणामात्कार्यकारणभावाद्वा, किन्तर्हि ॥

**गुणान्तरापत्त्युपमर्हत्वासद्विलेशस्तेभ्यस्तु विकारोपपत्तेर्वर्णविकारः ॥ ५९ ॥**

स्थान्यदेशभावादप्रयोगे प्रयोगो विकारशब्दार्थः, स भिद्यते गुणान्तरापत्तिः उदात्तस्थानुदात्त इत्येवमादिः । उपमर्हो नाम एकरूपनिवृत्तौ रूपान्तरापजनः । ह्रासो दीर्घस्य ह्रस्वः, वृद्धिर्ह्रस्वस्य दीर्घः, तयोर्वाप्युतः । लेशो लाघवं स्यादित्यस्तेर्विकारः । श्लेष आगमः प्रकृतेः प्रत्ययस्य वा । एत एव विशेषा विकारा इति । एत एवादेशा एते चेद्विकारा उपपद्यन्ते तर्हि वर्णविकारा इति ॥

**ते विभक्त्यन्ताः पदम् ॥ ६० ॥**



यथादर्शनं विकृता वर्णा विभक्त्यन्ताः पदसंज्ञा भवन्ति । विभक्तिर्द्वयी नामिक्याख्यातिकी च, ब्राह्मणः पचतीत्युदाहरणम्, उपसर्गनिपातात्तर्हि न पदसंज्ञाः लक्षणान्तरं वाच्यमिति, शिष्यते च खलु नामिक्या विभक्तेरव्ययाङ्गोपः तयोः पदसंज्ञार्थमिति पदेनार्थसम्बन्ध इति प्रयोजनम् नामपदञ्चाधिकृत्य परोक्षा गौरिति पदं खल्विदमुदाहरणम् ॥

तदर्थे व्यक्तीकृतिजातिसन्निधावुपचारात् संशयः ६१

अविनाभाववृत्तिः सन्निधिः अविनाभावेन वर्तमानासु व्यक्तीकृतिजातिषु गौरिति प्रयुज्यते तत्र न ज्ञायते किमन्यतमः पदार्थः उत सर्व इति । शब्दस्य प्रयोगसामर्थ्यात्पदार्थावधारणम् तस्मात् ॥

या शब्दसमूहत्यागपरिग्रहसंख्यावृद्ध्युपचयवर्णसमासानुबन्धानां व्यक्तावुपचाराद्व्यक्तिः ॥ ६२ ॥

व्यक्तिः पदार्थः कस्मात् या शब्दप्रभृतीनां व्यक्तावुपचारादुपचारः प्रयोगः । या गौस्तिष्ठति या गौनिषेष्टेति नेदं वाक्यं जातेरभिधायकमभेदात् द्रव्याभिधायकम्, गां समूह इति भेदात् द्रव्याधानं न जातेरभेदात्, वैद्याय गां ददातीति द्रव्यस्य त्यागो न जातेरमूर्त्तत्वात् प्रतिक्रमानुक्रमानुपपत्तेश्च परिग्रहः स्वत्वेनाभिसम्बन्धः, कौण्डिन्यस्य गौ ब्राह्मणस्य गौरिति द्रव्याभिधाने द्रव्यभेदात् सम्बन्धभेद इति उपपन्नमभिन्ना तु जातिरिति, सङ्ख्या दश गावो विंशतिर्गाव इति भिन्नं द्रव्यं सङ्ख्यायते न जातिरभेदादिति, वृद्धिः कारणवतो द्रव्यस्यावयवोपचयः अवर्द्धत गौरिति निरवयवा तु जातिरिति, एतेनापचयो व्याख्यातः, वर्णः शुक्ला गौः कपिला गौरिति द्रव्यस्य गुणयोगो न सामान्यस्य, समासः गोहितं गोमुखमिति द्रव्यस्य सुखादियोगो न जातेरिति । अनुबन्धः स्वरूपप्रजननस्तनो गौ गां जनयतीति तदुत्पत्तिधर्मात्वाद्द्रव्ये युक्तं न जातौ विपर्ययादिति । द्रव्यं व्यक्तिरिति हि नार्थान्तरम्, अस्य प्रतिषेधः ॥



## न तदनवस्थानात् ॥ ६३ ॥

न व्यक्तिः पदार्थः । कस्मादनवस्थानात् यावदप्रवृत्तिभि र्यौ विशे-  
ष्यते स गोशब्दार्थो या गौस्तिष्ठति या गौर्निपस्येति न द्रव्यमात्रमविशिष्टं  
जात्याविनाऽभिधीयते, किन्तु हि जातिविशिष्टं, तस्मान्न व्यक्तिः पदार्थः,  
एवं समूहादिषु द्रष्टव्यम् । यदि न व्यक्तिः पदार्थः कथं तर्हि व्यक्तावुप-  
चार इति । निमित्तादतद्भावेऽपि तदुपचारो दृश्यते खनु ॥

सहचरणस्थानतादर्थ्यवृत्तमानधारणसामीप्ययोग-  
साधनाधिपत्येभ्यो ब्राह्मणमञ्चकटराजशक्तुचन्दन-  
गङ्गाशाटकान्नपुरुषेष्वतद्भावेऽपि तदुपचारः ॥ ६४ ॥

अतद्भावेऽपि तदुपचार इत्येतच्छब्दस्य तेन शब्देनाभिधानमिति,  
सहचरणान्यत्र तां भोजयेति यद्विकासहचरितो ब्राह्मणोऽभिधीयत  
इति, स्थानात् मञ्चाः क्रोशन्तीति मञ्चस्थाः पुरुषा अभिधीयन्ते, तादर्थ्यात्  
कटार्थेषु वीरणेषु व्यूहमानेषु कटङ्करोतीति, वृत्तात् यमो राजा कुबेरो  
राजेति तद्वद्वर्त्तत इति, स्थानात् आढकेन मिताः शक्तवः आढकशक्तव  
इति, धारणात् तुलया धृतं चन्दनं तुलाचन्दनमिति, सामीप्यात् गङ्गायां  
गावश्चरन्तीति देशोऽभिधीयते सन्निकटः, योगात् कृष्णेन रागेन युक्तः  
शाटकः कृष्ण इत्यभिधीयते, साधनात् अन्नं प्राणा इति । आधिपत्यात्  
अयं पुरुषः कुलं अयं गोत्रमिति तत्तायं सहचरणाद्योगाद्वा जातिशब्दो  
व्यक्तौ प्रीयुज्यत इति यदि गौरित्यस्य पदस्य न व्यक्तिरर्थोऽस्तु तर्हि ॥

आकृतिस्तदपेक्षत्वात् सत्त्वव्यवस्थानसिद्धेः ॥ ६५ ॥

आकृतिः पदार्थः । कस्मात् तदपेक्षत्वात् सत्त्वव्यवस्थानसिद्धेः । सत्त्व-  
वयवानां तदवयवानाञ्च नियतोव्यूह आकृतिः तस्यां गृह्यमाणायां सत्त्व-  
व्यवस्थानं सिध्यति अयं गौरयसश्च इति नागृह्यमाणायां, यस्य यद्-  
भावात् सत्त्वव्यवस्थानं सिध्यति तं शब्दोऽभिधातुमर्हति सोऽस्यार्थ इति



नैतदुपपद्यते यस्य जात्या योगस्तदत्र जातिविशिष्टमभिधीयते गौरिति ।  
नचावयवव्यूहस्य जात्या योगः, कस्य तर्हि नियतावयवव्यूहस्य द्रव्यस्य,  
तस्माच्चाकृतिः पदार्थः । अस्तु तर्हि जातिः पदार्थः ॥

व्यत्याकृतियुक्तेऽप्यप्रसङ्गात्प्रोक्षणादीनां सृष्टवके  
जातिः ॥ ६६ ॥

जातिः पदार्थः, कस्मात् व्यत्याकृतियुक्तेऽपि सृष्टवके प्रोक्षणादी-  
नामप्रसङ्गादिति । गां प्रोक्ष्य गामानय गां देहीति नैतानि सृष्टवके  
प्रयुज्यन्ते कस्मात् जातेरभावात् । अस्ति हि तत्र व्यक्तिरस्याकृतिः यद-  
भावात् तत्वासम्प्रत्ययः स पदार्थ इति ॥

नाकृतिव्यत्यपेक्षत्वाज्जात्यभिव्यक्तेः ॥ ६७ ॥

जातेरभिव्यक्तिराकृतिव्यक्ती अपेक्षते नागृह्यमाणायामाकृतौ व्यक्तौ  
जातिमात्रं युज्यं गृह्यते तस्माच्च जातिः पदार्थः इति । न वै पदार्थेन न  
भवितुं शक्यम् कः खल्विदानीं पदार्थ इति ॥

व्यत्याकृतिजातयस्तु पदार्थः ॥ ६८ ॥

तृतीयो विशेषणार्थः । किं विशिष्यते प्रधानाङ्गभावनानियमेन पदा-  
र्थत्वमिति । यदा हि भेदविवक्षा विशेषगतिश्च तदा व्यक्तिः प्रधानमङ्गन्तं  
जात्याकृती । यदा तु भेदीऽविवक्षितः सामान्यगतिस्तदा जातिः प्रधान-  
मङ्गन्तं व्यत्याकृती खोक्तते तदेतद्वृत्तं प्रयोगेष्वकृतेस्तु प्रधानभाव  
उत्प्रेक्षितव्यः । कथं पुन र्ज्ञायते नानाव्यत्याकृतिजातय इति लक्षणभे-  
दात् तत्र तावत् ॥

व्यक्तिगुणविशेषाश्रयो मूर्तिः ॥ ६९ ॥

व्यज्यत इति व्यक्तिरिन्द्रियमाह्येति न सर्वं द्रव्यं व्यक्तिः । यो गुण-  
विशेषाणां स्पर्शान्तानां गुरुत्वघनत्वद्रवत्वसंस्काराणामव्यापिनः परिमा-  
णस्याश्रयो यथासम्भवं तद्द्रव्यम्, मूर्तिः मूर्च्छितावयवत्वादिति ॥



## २ अध्याये २ आह्निकम् ।

८३

## आकृतिर्जातिलिङ्गाख्या ॥ ७० ॥

यया जातिर्जातिलिङ्गानि च प्रख्यायन्ते तामाकृतिं विद्यात् । सा च नाना सत्त्वानां तदवयवानाञ्च नियतं ह्युच्चादिति नियताबद्धव्यूहाः खलु सत्त्वावयवा जातिलिङ्गं शिरसा पादेन गामनुमिन्वन्ति । नियते च सत्त्वावयवानां व्यूहे सति गोत्वं प्रख्यायत इति । अनाकृतिव्यङ्गायां जातौ सत्सुवर्णं रजतमित्येवमादिष्वकृतिर्निवर्त्तते जहाति पदार्थत्वमिति ॥

## समानप्रसवात्मिका जातिः ॥ ७१ ॥

या समानां बुद्धिं प्रसूते भिन्नेष्वधिकरणेषु यया बह्वनीतरेतरतो न व्यावर्त्तन्ते योऽर्थोऽनेकत्वं प्रत्ययानुवृत्तिनिमित्तं तत् सामान्यम् । यच्च केषाञ्चिद्भेदं कुतश्चिद्भेदं करोति तत् सामान्यविशेषो जातिरिति ॥ २ ॥

इति वात्स्ययनीये न्यायभाष्ये द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ॥

समाप्तञ्चायं द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

परीक्षितानि प्रमाणानि, प्रमेयमिदानीं परीक्ष्यते तच्चात्मादीत्यत्मा विविच्यते । किं देहेन्द्रियमनोबुद्धिवेदनासङ्घातमात्रमात्मा आहोस्वित्तद्व्यतिरिक्त इति, कुतः संशयः व्यपदेशस्योभयथासिद्धेः क्रियाकरणयोः कर्ता सम्बन्धस्याभिधानं व्यपदेशः स द्विविधः अवयवेन समुदायस्य मूलैर्दृष्टिस्तिति स्तम्भैः प्रासादो धियत इति । अन्येनान्यस्य व्यपदेशः परशुना दृश्यति प्रदीपेन पश्यति । अस्ति चायं व्यपदेशः वक्षुषा पश्यति मनसा विजानाति बुद्ध्या विचारयति शरीरेण सुखदुःखमनुभवतीति तत् नावधार्यते किमवयवेन समुदायस्य देहादिसङ्घातस्य अपान्येनान्यस्य तद्व्यतिरिक्तस्य वेति अन्येनायमन्यस्य व्यपदेशः कस्मात् ॥



## दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणात् ॥ १ ॥

दर्शनेन कश्चिदर्थो गृहीतः स्पर्शनेनापि सोऽर्थो गृह्यते यमहम-  
 द्राक्षञ्चक्षुषा तं स्पर्शनेनापि स्पृशामीति यच्चास्मात् स्पर्शनेन तं चक्षुषा  
 पश्यामीति, एकविषयाविमौ प्रत्ययावेककर्तृकौ प्रतिसन्धीयेते न च सङ्घा-  
 तकर्तृकौ नेन्द्रियेणैककर्तृकौ । तद्योऽसौ चक्षुषा त्वगिन्द्रियेण चैका-  
 र्थस्य सङ्गृहीता भिन्ननिमित्तावन्यकर्तृकौ प्रत्ययौ समानविषयौ प्रति-  
 सन्धाति सोऽर्थान्तरभूत आत्मा । कथं पुनर्नेन्द्रियेणैककर्तृकौ इन्द्रियं  
 खलु खं खं विषयग्रहणमनन्यकर्तृकं प्रतिसन्धातमर्हति नेन्द्रियान्तरस्य  
 विषयान्तरग्रहणमिति । कथं न सङ्घातकर्तृकौ एकः खल्वयं भिन्ननि-  
 मित्तौ स्वात्मकर्तृकौ प्रत्ययौ प्रतिसंहितौ वेदयते न सङ्घातः कस्मात्  
 अनिष्टत्वं हि सङ्घाते प्रत्येकं विषयान्तरग्रहणस्याप्रतिसन्धानमिन्द्रिया-  
 न्तरेनैवेति ॥

## न विषयव्यवस्थानात् ॥ २ ॥

न देहादिसङ्घातादन्यत्वेतनः, कस्मात् विषयव्यवस्थानात् व्यवस्थित-  
 विषयाणीन्द्रियाणि चक्षुष्यसति रूपं न गृह्यते सति च गृह्यते । यच्च  
 यस्मिन्नसति न भवति सति भवति तस्य तदिति विज्ञायते । तस्माद्रूप-  
 ग्रहणं चक्षुषः चक्षू रूपं पश्यति एवं घ्राणादिष्वपीति तानीन्द्रियाणी-  
 मानि स्वस्वविषयग्रहणाच्चेतनानि इन्द्रियाणां भावाभावयोर्विषयग्रह-  
 णस्य तथाभावात् एवं सति किमन्येन चेतनेन सन्दिग्धत्वादहेतुः योऽय-  
 मिन्द्रियाणां भावाभावयोर्विषयग्रहणस्य तथाभावः स किञ्चेतनत्वादा-  
 होस्त्रिञ्चेतनोपकरणानां ग्रहणनिमित्तत्वादिति सन्दिह्यते, चेतनोपकर-  
 णत्वेऽपीन्द्रियाणां ग्रहणनिमित्तत्वाद्भवितुमर्हति यच्चोक्तं विषयव्यव-  
 स्थानादिति ॥

## तद्व्यवस्थानादेवात्मसङ्गावादप्रतिषेधः ॥ ३ ॥

यदि खल्वेकमिन्द्रियमव्यवस्थितविषयं सर्वज्ञं सर्वविषयग्रहि चेतनं  
 स्यात्, कस्ततोऽन्यं चेतनमनुमातुं शक्नुयात् । यच्चात्तु व्यवस्थितविष-



## ३ अध्याये १ आह्निकम् ।

८५

आणीन्द्रियाणि तस्मात्तेभ्योऽन्यच्चेतनः सर्वज्ञः सर्वविषयग्राही विषयव्यव-  
स्थिततोऽनुमीयते । तत्वेदमभिज्ञानमप्याख्येयं चेतनवृत्तमुदाहृत्यते रूप-  
दर्शी खल्वयं रसं गन्धं वा पूर्वगृहीतमनुमिनोति । गन्धप्रतिसंवेदी च  
रूपरसावनुमिनोति । एवं विषयशेषेऽपि वाच्यम् । रूपं दृष्ट्वा गन्धं  
जिघ्रसि प्राप्त्वा च गन्धं रूपं पश्यति । तदेवमनियतपर्यायं सर्वविषय-  
ग्रहणमेकचेतनाधिकरणमनन्यकर्तृकं प्रतिसम्बन्धे प्रत्यक्षानुमानागमसं-  
शयप्रत्ययांश्च नानाविषयान् स्वात्मकर्तृकान् प्रतिसम्बाधय वेदयते सर्वार्थ-  
विषयञ्च शास्त्रं प्रतिपद्यते । अर्थमविषयभूतं श्रोत्रस्य क्रमभाविनो वर्णान्  
श्रुत्वा पदवाक्यभावं प्रतिसम्बाधय शब्दार्थव्यवस्थाञ्च बुध्यमानोऽनेक-  
विषयमर्ज्जातग्रहणीयमेकैकेनेन्द्रियेण गृह्णाति । सेयं सर्वज्ञस्य ज्ञेया  
व्यवस्थाऽनुपदं न शक्या परिक्रमिष्यतम् । आकृतिमात्रानूदाहृतम् । तत्र  
यदुक्तमिन्द्रियचेतन्ये सति किमन्येन चेतनेन तदयुक्तं भवति । इतश्च  
देहादिव्यतिरिक्त आत्मा न देहादिसङ्घातमात्रम् ॥

## शरीरदाहे पातकाभावात् ॥ ४ ॥

शरीरग्रहणेन शरीरेन्द्रियबुद्धिवेदनासङ्घातः प्राणिभूतो गृह्यते  
प्राणिभूतं शरीरं दहतः प्राणिहिंसाकृतं पापं पातकमित्युच्यते तस्या-  
भावः तत्फलेन कर्तुरसम्बन्धात् अकर्तृश्च सम्बन्धात् शरीरेन्द्रियबुद्धि-  
वेदनाप्रवन्धे खल्वन्यः सङ्घात उत्पद्यतेऽन्यो निरुध्यते उत्पादनिरोध-  
सन्ततीभूतः प्रवन्धो नान्यत्वं बाधते, देहादिसङ्घातस्यान्यत्वाधिष्ठान-  
त्वात् । अन्यत्वाधिष्ठानो ह्यसौ प्रस्थाप्यत इति एवं सति यो देहादि  
सङ्घातः प्राणिभूतो हिंसां करोति नासौ हिंसाफलेन सम्बध्यते, यश्च  
सम्बध्यते न तेन हिंसा कृता, तदेवं सत्त्वभेदे कृतज्ञानमकृताभ्यागमः प्रस-  
ज्यते सति तु सत्त्वोत्पादे सत्त्वनिरोधे चाकर्म्मनिमित्तः सत्त्वसर्गः प्राप्नोति ।  
तत्र मुक्त्यर्थो ब्रह्मज्ञानवासो न स्यात् । तद्यदि देहादिसङ्घातमात्रं स्यात्  
शरीरदाहे पातकं न भवेत् अनिष्टञ्चैतत् तस्माद्देहादिसङ्घातव्यतिरिक्त  
आत्मा नित्य इति ॥

८



तदभावः सात्मकप्रदाहेऽपि तन्नित्यत्वात् ॥ ५ ॥

यस्यापि नित्येनात्मना सात्मकं शरीरं दह्यते तस्यापि शरीरदाहे पातकं न भवेद्दुःखं, कस्मात् नित्यत्वादात्मनः न जातु कश्चिन्नित्यं हिंसितमर्हति अथ हिंस्यते नित्यत्वमस्य न भवति, सेयमेकास्मिन् पक्षे हिंसा निष्फला अन्यस्मिंस्त्वनुपपन्नेति ॥

न कार्याश्रयकर्तृवधात् ॥ ६ ॥

न वृत्तो नित्यस्य सत्त्वस्य वधो हिंसा, अपित्वनुच्छित्तिधर्मकस्य सत्त्वस्य कार्याश्रयस्य शरीरस्य स्वविषयोपलब्धेश्च कर्तृणासुपघातः पीडा वैकल्यलक्षणः प्रवञ्चीच्छेदो वा प्रमापणलक्षणो वा वधो हिंसेति, कार्यन्त सुखदुःखसंवेदनं तस्यायतनमधिष्ठानमाश्रयः शरीरम् । कार्याश्रयस्य शरीरस्य स्वविषयोपलब्धेश्च कर्तृणामिन्द्रियाणां वधो हिंसा न नित्यस्यात्मनः । तत्र यदुक्तं तदभावः सात्मकप्रदाहेऽपि तन्नित्यत्वादित्येतदयुक्तम् । यस्य सत्वोच्छेदो हिंसा तस्य क्षतहानमकृताभ्यागमश्च दोषः । एतावच्चैतत् स्यात् । सत्वोच्छेदो वा हिंसा अनुच्छित्तिधर्मकस्य सत्वस्य कार्याश्रय कर्तृवधो वा न वत्पान्तरमन्यदस्ति सत्वोच्छेदश्च प्रतिषिद्धः तत्र किमन्यच्छेदं यथाभूतमिति । अथवा कार्याश्रय कर्तृवधादिति कार्याश्रयो देहेन्द्रियबुद्धिसङ्घातो नित्यस्यात्मनस्तत्र सुखदुःखप्रतिसंवेदनं तस्याधिष्ठानमाश्रयस्तदायतनं तद्भवति न ततोऽन्यदिति स एव कर्त्ता तन्निमित्ताहि सुखदुःखसंवेदनस्य निवृत्तिः न तमन्तरेणेति वस्य वध उपघातः पीडा प्रमापः वा हिंसा न नित्यत्वेनात्मोच्छेदः । तत्र यदुक्तं तदभावः सात्मकप्रदाहेऽपि तन्नित्यत्वादेतन्नेति । इदञ्च देहादिव्यतिरिक्ता आत्मा ॥

सव्यदृष्ट्येतरेण प्रत्यभिज्ञानात् ॥ ७ ॥

पूर्वापरयोर्विज्ञानयोरेकविषये प्रतिसम्बिज्ञानं प्रत्यभिज्ञानम् । तमेवैतर्हि पश्यामि यमज्ञासिषं स एवायमर्थ इति । सव्येन चक्षुषा दृष्ट-



## ३ अध्याये । आह्निकम् ।

८७

अथेतरेणापि चक्षुषा प्रत्यभिज्ञानात् । यमद्राक्षं तमेवैतर्हि पश्यामीति ।  
इन्द्रियचैतन्ये तु नान्यदृष्टमन्यः प्रत्यभिज्ञानातीति प्रत्यभिज्ञानुपपत्तिः  
अस्तित्विदं प्रत्यभिज्ञानं तस्मादिन्द्रियव्यतिरिक्तहेतुः ॥

**नैकस्मिन्नासास्थिव्यवहिते द्वित्वाभिमानात् ॥ ८ ॥**

एकमिदं चक्षुर्मध्ये नासास्थिव्यवहितं तस्यान्तौ गृह्यमाणौ द्वित्वाभि-  
मानं प्रयोजयतः मध्यव्यवहितस्य दीर्घस्येव ।

**एकविनाशे द्वितीयाविनाशान्नैकत्वम् ॥ ९ ॥**

एकस्मिन्नुपहृते चोद्धृते वा चक्षुषि द्वितीयमवतिष्ठते चक्षुर्विषयग्रहण-  
लिङ्गम् तस्मादेकस्य व्यवधानानुपपत्तिः ॥

**अवयवनाशेऽप्यवयव्युपलब्धेरहेतुः ॥ १० ॥**

एकविनाशे द्वितीयाविनाशादित्यहेतुः कस्मात् वृक्षस्य हि काष्ठचि-  
च्छाखास्तु द्वित्रास्तूपलभ्यत एव वृक्षः ॥

**दृष्टान्तविरोधादप्रतिषेधः ॥ ११ ॥**

न कारणद्रव्यस्य विभागे कार्यद्रव्यमवतिष्ठते नित्यत्वप्रसङ्गात् बद्ध-  
व्यवयविषु यस्य कारणानि विभक्तानि तस्य विनाशः । येषां कारणान्यवि-  
भक्तानि तान्यवतिष्ठन्ते अथवा दृश्यमानार्थविरोधो दृष्टान्तविरोधः न्तस्य  
हि शिरःकपाले हाववटौ नासास्थिव्यवहितौ चक्षुषः स्थाने भेदेन  
गृह्येते न चैतदेकस्मिन्नासास्थिव्यवहिते सम्भवति अथैकविनाशस्यानिय-  
मा हाविमावयौ तौ च पृथगावरणोपघातौ अनुमीयेते विभिन्नाविति अव-  
पीडनाच्चैकस्य चक्षुषो रश्मिविषय सन्निकर्षस्य भेदाद् दृश्यभेद इव गृह्येते  
तच्चैकत्वे विरुद्धते अवपीडननिवृत्तौ चाभिन्नप्रतिसन्धानमिति तस्मा-  
देकस्य व्यवधानानुपपत्तिः अनुमीयते चायं देहादिसङ्घातव्यतिरिक्तश्चेतन  
इति ॥



## इन्द्रियान्तर विकारात् ॥ १२ ॥

कस्यचिदह्णफलस्य गृहीतसाहचर्ये रूपे गन्धे वा केनचिदिन्द्रियेण गृह्यमाणे रसनस्येन्द्रियान्तरस्य विकारः रसानुस्मृतौ रसगर्जिप्रवर्त्तितो-  
दनोदकसंज्ञवभूतो गृह्यते तस्येन्द्रियचैतन्येऽनुपपत्तिः, नान्यदृष्टमन्यः  
स्मरति ॥

## न स्मृतेः स्मृतिव्यविषयत्वात् ॥ १३ ॥

स्मृतिर्नाम धर्मो निमित्तादुत्पद्यते तस्याः स्मृतिव्यो विषयः तत्कृत, इन्द्रि-  
यान्तरविकारो नात्मकत इति ॥

## तदात्मगुणसङ्गावादप्रतिषेधः ॥ १४ ॥

तस्या आत्मगुणत्वे सति सङ्गावादप्रतिषेध आत्मनः यदि स्मृतिरात्म-  
गुणः एवं सति स्मृतिरुपपद्यते नान्यदृष्टमन्यः स्मरतीति, इन्द्रियचैतन्ये तु  
नानाकर्तृकाणां विषयग्रहणानामप्रतिसम्भानम् । अप्रतिसम्भवान् वा वि-  
षयव्यवस्थानुपपत्तिः, एकस्तु चेतनोऽनेकार्थदर्शी भिन्ननिमित्तः पूर्वदृष्टमर्थं  
स्मरतीति एकस्यानेकार्थदर्शनो दर्शनप्रतिसम्भानात् स्मृतेरात्मगुणत्वे  
सति सङ्गावः विपर्यये चानुपपत्तिः । स्मृत्याश्रया. प्राणभृतां सर्वे व्यव-  
हाराः आत्मलिङ्गमुदाहरणमात्मनिन्द्रियान्तरविकार इति ॥

## अपरिसङ्ख्यानाञ्च स्मृतिविषयस्य ॥ १५ ॥

अपरिसङ्ख्याय च स्मृतिविषयमिदमुच्यते न स्मृतेः स्मृतिव्यविषयत्वा-  
दिति येयं स्मृतिरगृह्यमाणेऽर्थे अज्ञासिषमहमसुमर्थमिति । एतस्या  
ज्ञातज्ञानविशिष्टः पूर्वज्ञातोऽर्थोविषयो नार्थमात्मम् ज्ञातवानहमसुमर्थ-  
मसावर्थो मया ज्ञातः ज्ञातमस्मिन्नर्थे मम ज्ञानमभूदिति चतुर्विधमेतद्-  
वाक्यं स्मृतिविषयज्ञापकं समानार्थम् सर्वत्र खलु ज्ञाता ज्ञानं ज्ञेयं च  
गृह्यते अथ प्रत्यक्षेऽर्थे या स्मृतिस्तया त्रीणि ज्ञानान्येकस्मिन्नर्थे प्रति-



## ३ अध्याये १ आह्निकम् ।

८१

सन्ने यन्ते समानकर्तृकाणि न नानाकर्तृकाणि नाकर्तृकाणि किन्तुर्ह्येक-  
कर्तृकाणि अद्राक्ष्यमसुमर्थं यमेवैतर्हि पश्यामि अद्राक्षमिति दर्शनं दर्शन-  
सम्बन्ध, न खल्वसम्बन्धिते स्वे दर्शने स्यादेतद्राक्षमिति, ते खल्वेते  
द्वे ज्ञाने यमेवैतर्हि पश्यामीति तृतीयं ज्ञानमेवमेकोऽर्थस्तिभिर्ज्ञानै-  
र्युज्यमानो नाकर्तृको न नानाकर्तृकः कितर्ह्येककर्तृक इति, सोऽयं  
सृष्टिविषयोऽपरिसङ्ख्यायमानो विद्यमानः प्रज्ञातोऽर्थः प्रतिप्रिध्यते ना-  
ख्यात्मा सृष्टेः स्मर्तव्यविषयत्वादिति न चेदं सृष्टिमात्रं स्मर्तव्यमात्र-  
विषयं वा इदं खलु ज्ञानप्रतिसम्भानवत् सृष्टिप्रतिसम्भानमेकस्य सर्ववि-  
षयत्वात् एकोऽयं ज्ञाता सर्वविषयः खानि ज्ञानानि प्रतिसम्बन्धे असुमर्थं  
ज्ञास्यास्यसुमर्थं विज्ञानास्यसुमर्थमज्ञासिषमसुमर्थं जिज्ञासमानश्चिरम-  
ज्ञात्वाऽध्यवस्थत्यज्ञासिषमिति एवं सृष्टिमपि त्रिकालविशिष्टां सुसूक्ष्मा-  
विशिष्टाञ्च प्रतिसम्बन्धे संस्कारसन्ततिमात्रे तु सत्वे उत्पद्योत्पद्य संस्का-  
रास्तिरोभवन्ति स नास्त्येकोऽपि संस्कारो यस्त्रिकालविशिष्टं ज्ञानं सृष्टि-  
ज्ञातुमवेत् । न चानुभवमन्तरेण ज्ञानस्य सृष्टेश्च प्रतिसम्भानमहं ममेति  
चोत्पद्यते देहान्तरवत् अतोऽनुमीयते अस्त्येकः सर्वविषयः प्रतिदेहं स्व-  
ज्ञानप्रवन्धं सृष्टिप्रवन्धञ्च प्रतिसम्बन्धे इति यस्य देहान्तरेषु वृत्तेरभावाच्च  
प्रतिसम्भानं भवतीति ॥

नात्मप्रतिपत्तिहेतूनां मनसि सम्भवात् ॥ १६ ॥

न देहादिसङ्घातव्यतिरिक्त आत्मा कस्मात् आत्मप्रतिपत्तिहेतूनां  
मनसि सम्भवात् । दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणादित्वेवमादीनामात्म-  
प्रतिपादकानां हेतूनां मनसि सम्भवो यतः मनो हि सर्वविषयमिति  
तस्मान्न शरीरेन्द्रियमनोबुद्धिसङ्घातव्यतिरिक्त आत्मेति ॥

ज्ञातुर्ज्ञानसाधनोपपत्तेः संज्ञाभेदमात्रम् ॥ १७ ॥

ज्ञातः खलु ज्ञानसाधनान्युपपद्यन्ते चक्षुषा पश्यति घ्राणेन जिघ्रति  
स्पर्शनेन स्पर्शति एवम्प्रन्तः सर्वविषयस्य मतिसाधनमन्तःकरणभूतं सर्व-



विषयं विद्यते येनार्थं मन्यत इति । एवं सति ज्ञातर्यात्मसंज्ञा न मृष्यते मनः संज्ञाऽभ्यनुज्ञायते मनसि च मनःसंज्ञा न मृष्यते मतिसाधनं त्वभ्यनुज्ञायते तदिदं संज्ञाभेदमात्रं नार्थं विवाद इति प्रत्याख्याने वा सर्वेन्द्रिय-  
विलोपप्रसङ्गः, अथ सन्तुः सर्वविषयस्य मतिसाधनं सर्वविषयं प्रत्याख्यायते नास्तीति । एवं रूपादिविषयग्रहणसाधनान्यपि न सन्तीति सर्वेन्द्रिय-  
विलोपः प्रसज्यत इति ॥

### नियमश्च निरनुमानः ॥ १८ ॥

योऽयं नियम इष्यते रूपादिग्रहणसाधनान्यस्य सन्ति मतिसाधनं सर्व-  
विषय नास्तीति, अयं निरनुमानो नात्रानुमानमस्ति येन नियमं प्रति-  
पद्य मच्च इति । रूपादिभ्यश्च विषयान्तरं सुखादयस्तदुपलब्धौ करणान्तर-  
सङ्गावः, यथा चक्षुषा गन्धो न गृह्यत इति करणान्तरं घ्राणम्, एवञ्चक्षु-  
र्घ्राणाभ्यां रसो न गृह्यत इति करणान्तरं रसनम् एवं शेषेषु तथा चक्षु-  
रादिभिः सुखादयो न गृह्यन्त इति करणान्तरेण भवितव्यम् तच्च ज्ञाना-  
यौगपद्यलिङ्गम् । यच्च सुखाद्युपलब्धौ करणं तच्च ज्ञानायौगपद्यलिङ्गम्  
तस्येन्द्रियमिन्द्रियं प्रति सन्निधेरसन्निधेर्न युगपज्ज्ञानान्यत्पद्यन्ते तत्र  
यदुक्तमात्मप्रतिपत्तिहेतूनां मनसि सम्भवादिति तदयुक्तम् किं पुनरयं  
देहादिसङ्गातादन्योनित्य उतानित्य इति कुतः संशयः उभयथा दृष्टत्वात्  
संशयः । विद्यमानमुभयथा भवति नित्यमनित्यञ्च प्रतिपादिते चात्मसङ्गावे  
संशवानिष्टत्तेरिति आत्मसङ्गावे हेतुभिरेवास्य प्राग्देहभेदादवस्थानं  
सिद्धम् ऊर्ध्वमपि देहभेदोदवतिष्ठते कुतः ॥

### पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धात् जातस्य हर्षभयशोक- सम्प्रतिपत्तेः ॥ १९ ॥

जातः खल्वयं कुमारकोऽस्मिन् जन्मन्यगृहीतेषु हर्षभयशोकहेतुषु  
हर्षभयशोकान् पतिपद्यते लिङ्गानुमेयान् तेच स्मृत्यनुबन्धादुत्पद्यन्ते ना-  
न्यथा स्मृत्यनुबन्धश्च पूर्वाभ्यासमन्तरेण न भवति पूर्वाभ्यासश्च पूर्वजन्मनि  
सति नान्यर्थात् सिद्ध्यत्येतत्, अवतिष्ठते ऽयमूर्ध्वं शरीरभेदादिति ॥



३ अध्याये १ आह्निकम् ।

६१

पद्मादिषु प्रबोधसंमीलनविकारवत्तद्विकारः॥२०॥

यथा पद्मादिष्वनित्येषु प्रबोधसंमीलनं विकारो भवति एवमनित्यस्यात्मनो हर्षभयशोकसम्प्रतिपत्तिर्विकारः स्यात् हेत्वभावादयुक्तम् अनेन हेतुना पद्मादिषु प्रबोधसंमीलनविकारवदनित्यस्यात्मनो हर्षादिसम्प्रतिपत्तिरिति, नात्रोदाहरणसाधर्म्यात् साध्यसाधनहेतुर्न वैधर्म्यादस्ति हेत्वभावादसंबद्धान्तरकमपार्थक्यमुच्यते इति । दृष्टान्तः च हर्षादिनिमित्तस्यानिष्टतिः या चेयमासेवितेषु विषयेषु हर्षादिसम्प्रतिपत्तिः सृष्ट्यनुबन्धकता प्रत्यात्मं गृह्यते सेयं पद्मादिसंमीलनदृष्टान्तेन न निवर्तते यथा चेष्टं न निवर्तते तथा जातस्यापीति, क्रियाजातश्च पर्णविभागः संयोगप्रबोधः, संमीलने क्रियाहेतुश्चानुमेयः । एवञ्च सति किं दृष्टान्तेन प्रतिषिध्यते । अथ निर्निमित्तः पद्मादिषु प्रबोधसंमीलनविकार इति मतम् एवमात्मनोऽपि हर्षादिसम्प्रतिपत्तिरिति तच्च ॥

नोष्णशीतवर्षाकालनिमित्तत्वात् पञ्चात्मकविकाराणाम् ॥ २१ ॥

उष्णादिषु सत्यु भावात् असत्स्वभावात् तन्निमित्ताः पञ्चभूतानुग्रहेण निवृत्तानां पद्मादीनां प्रबोधसंमीलनविकारा निमित्ताद्भवितुमर्हन्ति न निमित्तमन्तरेण, नचान्यत् पूर्वस्थसृष्ट्यनुबन्धात् निमित्तमस्तीति । नचोत्पत्तिनिरोधकारणानुमानमात्मनो दृष्टान्तात् न हर्षादीनां निमित्तमन्तरेणोत्पत्तिः नोष्णादिवन्निमित्तान्तरोपादानं हर्षादानं तस्मादयुक्तमेतत् इत्यनित्य आत्मा ॥

प्रेत्याहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात् ॥ २२ ॥

जातमात्रस्य वत्सस्य प्रवृत्तिबिद्गः स्तन्याभिलाषो गृह्यते सच नानुरेणाहाराभ्यासम् । कया युक्त्या, दृश्यते हि शरीरेणं जुधापीद्यमानानामाहाराभ्यासकृतात् अरण्यनुबन्धादाहाराभिलाषः, न च पूर्वशरीर-



मन्तरेणासौ जातमात्रस्योपपद्यते, तेनानुमीयते भूतपूर्वं शरीरं यत्नानेना-  
हारोऽभ्यस्त इति। स खल्वयमात्मा पूर्वशरीरात् प्रेत्य शरीरान्तरमा-  
पन्नः क्षुत्पीडितः पूर्वोभ्यस्तमाहारमनुस्मरन् स्तन्यमभिलषति तस्माच्च-  
देहभेदादात्मा भिद्यते भवत्येवोर्द्धं देहभेदादिति ॥

अयसोऽयस्कान्ताभिगमनवत्तदुपसर्पणम् ॥ २३ ॥

यथा खलु अयोऽभ्यासमन्तरेणायस्कान्तसुपसर्पति, एवमाहाराभ्यास-  
मन्तरेण बालः स्तन्यमभिलषति, किमिदमयसोऽयस्कान्ताभिसर्पणं निर्नि-  
मित्तमथ निमित्तादिति निर्निमित्तत्वावत् ॥

नान्यत्र प्रवृत्त्यभावात् ॥ २४ ॥

यदि निर्निमित्तं लोषादयोऽयस्कान्तसुपसर्पेयुर्न जातु नियमे कार-  
णमस्तीति अथ निमित्तात् तत्केनोपलभ्यत इति क्रियालिङ्गः क्रियाहेतुः  
क्रियानियमलिङ्गश्च क्रियाहेतुनियमः तेनान्यत्र प्रवृत्त्यभावः बालस्यापि  
नियतसुपसर्पणं क्रियोपलभ्यते न च स्तन्याभिलाषलिङ्गमन्यदाहाराभ्यास-  
कृतात् स्मरणानुवन्धात्। निमित्तं दृष्टान्तेनोपपाद्यते न चास्ति निमित्ते  
कस्य चिदुत्पत्तिः, न च दृष्टान्तो दृष्टमभिलाषहेतुं बाधते, तस्मादयसोऽय-  
स्कान्ताभिगमनमदृष्टान्त इति, अयसः खल्वपि नान्यत्र प्रवृत्तिर्भवति न  
जात्ययो लोषसुपसर्पति किं कृतोऽस्यानियम इति यदि कारणनियमाः  
सर्वक्रियानियमलिङ्गः एवं बालस्यापि नियतविषयोऽभिलाषः कारण-  
नियमाद्भवितुमर्हति तच्च कारणमभ्यस्तस्मरणमन्यदेति दृष्टेन विशिष्यते  
दृष्टोहि शरीरिणामभ्यस्तस्मरणदाहाराभिलाष इति। इतश्च नित्य  
आत्मा कस्मात् ॥

वीतरागजन्मादर्शनात् ॥ २५ ॥

स रागो जायत इत्यर्थादापद्यते अयं जायमानो रागानुबद्धो जायते  
रागस्य पूर्वानुभूतविषयास्तुचिन्तनं योनिः पूर्वानुभवश्च विषयाण्यमन्यस्मिन्



## ३ अध्याये १ आह्निकम् ।

६३

जन्मनि शरीरमन्तरेण नोपपद्यते, सोऽयमात्मा पूर्वशरीरानुभूतान् विषयाननुस्मरन् तेषु तेषु रज्यते तथा चायं द्वयोर्जन्मनोः प्रतिसन्धिः, एवं पूर्वशरीरस्य पूर्वतरेण पूर्वतरस्य पूर्वतमेनेत्यादिना ऽनादिश्चेतनस्य शरीरयोगः अनादिश्च रागानुबन्ध इति सिद्धं नित्यत्वमिति । कथं पुनर्ज्ञायते पूर्वविषयानुचिन्तनजनितो जातस्य रागो न पुनः ॥

**सगुणद्रव्योत्पत्तिवत्तदुत्पत्तिः ॥ २६ ॥**

यथोत्पत्तिधर्मकस्य द्रव्यस्य गुणाः कारणत उत्पद्यन्ते यथोत्पत्तिधर्मकस्यात्मनो रागः कुतश्चिदुत्पद्यते, अत्रायमुदितानुवादो निदर्शनार्थः ॥

**न सङ्कल्पनिमित्तत्वाद्वागादीनाम् ॥ २७ ॥**

न खलु सगुणद्रव्योत्पत्तिवदुत्पत्तिरात्मनो रागस्य च, कस्मात् सङ्कल्पनिमित्तत्वाद्वागादीनाम् । अयं खलु प्राणिनां विषयाननुस्मरमानां सङ्कल्पजनितो रागो गृह्यते सङ्कल्पश्च पूर्वानुभूतविषयानुचिन्तनबोधिः, तेनानुमीयते जातस्यापि पूर्वानुभूतार्थचिन्तनकतोरग इति । आत्मेत्यादाधिकरणात्तु रागोत्पत्तिर्भवन्ती सङ्कल्पादन्यस्मिन् रागकारणे सति वाच्या कार्थद्रव्यगुणवत् न चात्मेत्यादः सिद्धो नापि सङ्कल्पादन्यद्वागकारणमस्ति । तस्मादयुक्तं सगुणद्रव्योत्पत्तिवत्तदुत्पत्तिरिति, अद्यापि सङ्कल्पादन्यद्वागकारणं धर्माधर्मलक्षणमदृष्टमुपादीयते तथापि पूर्वशरीरयोगोऽप्रत्याख्येयः । तत्र हि तस्य निर्हृतिः नास्मिन् जन्मनि तन्मयत्वाद्वाग इति विषयाभ्यासः खल्वयं भावनाहेतुः तन्मयत्वमुच्यते इति जातिविशेषाच्च रागविशेष इति, कस्मात् खल्विदं जातिविशेषनिवर्तकम् तादर्थ्यात्ताच्छब्दां विज्ञायते, तस्मादनुपपन्नं सङ्कल्पादन्यद्वागकारणमिति, अनादिश्चेतनस्य शरीरयोग इत्युक्तं, स्वकृतकर्मानिमित्तं चास्य शरीरं सुखदुःखाधिष्ठानं तत् परीक्ष्यते किं प्राणादिवदेकप्रकृतिकम् उत नानाप्रकृतीति, कुतः संशयः, विप्रतिपत्तेः संशयः, पृथिव्यादीनि भूतानि सङ्ख्याविकल्पेन शरीरप्रकृतिरिति प्रतिजानत इति किन्तव तत्त्वम् ॥



## पार्थिवं गुणान्तरोपलब्धेः ॥ २८ ॥

तत्र मानुषं शरीरं पार्थिवम् । कस्मात् गुणान्तरोपलब्धेः गन्धवती  
 पृथिवी गन्धवच्छरीरम् अवादीनामगन्धत्वात् तत् प्रकृत्यगन्धं स्यात् न  
 त्विदमवादिभिरसंपृक्तया पृथिव्यारब्धं चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयभावेन कल्पत  
 इत्यतः पञ्चानां भूतानां संयोगे सति शरीरं भवति भूतसंयोगोहि मिथः  
 पञ्चानां न निषिद्ध इति, आप्यतैजसवायव्यानि लोकान्तरे शरीराणि,  
 तेष्वपि भूतसंयोगः पुरुषार्थतन्त्र इति स्याल्यादिद्रव्यनिष्पत्तावपि निःसं  
 शयो नावादि संयोगभन्तरेण निष्पत्तिरिति । पार्थिवाप्यतैजसं तद्गुणोप-  
 लब्धेः, निश्वासोच्छ्वासोपलब्धेःचातुर्भौतिकम्, गन्धक्लेदपाकव्यूहावकाश-  
 दानेभ्यः पाञ्चभौतिकम्, त इमे सन्दिग्धा हेतव इत्युपेक्षितवान् सूत्र-  
 कारः, कथं सन्दिग्धाः सति च प्रकृतिभावे भूतानां धर्म्मोपलब्धिरसति  
 च संयोगाप्रतिषेधात् सच्चिहितानामिति । यथा स्याल्यासुदकतेजोवा-  
 य्वाकाशानामिति तदिदमेकभूतप्रकृति शरीरमगन्धमरसमरूपमस्पर्शं  
 प्रकृत्यनुविधानात् स्यात् नत्विदमित्यं भूतम् तस्मात् पार्थि गुणान्तरोपलब्धेः॥

## श्रुतिप्रामाण्याच्च ॥ २९ ॥

सूर्यन्ते चक्षुर्गच्छतादित्यत्र मन्त्रे पृथिवीन्ते शरीरमिति श्रूयते  
 तदिदं प्रकृतौ विकारस्य प्रलयाभिधानमिति सूर्यं ते चक्षुः सृष्टोमीत्यत्र  
 मन्त्रान्तरे पृथिवीन्ते शरीरमिति श्रूयते सेयं कारणाद्विकारस्य सृष्टि-  
 रभिधीयत इति, स्याल्यादिषु च तुल्यजातीयानामेककार्यारम्भदर्शना-  
 द्भिन्नजातीयानामेककार्यारम्भानुपपत्तिः । अथेदातीमिन्द्रियाणि प्रमेयक्र-  
 मेण विचार्यन्ते किमाव्यक्तिकान्याहो स्विङ्गतैतिकानीति कुतः संशयः ॥

कृष्णसारं सत्युपलम्भाद्यतिरिच्य चोपलम्भात्  
 संशयः ॥ ३० ॥



## ३ अध्याये १ आह्निकम् ।

८५

कृष्णसारभौतिकं तस्मिन्ननुपहते रूपोपलब्धिः उपहते चानुपलब्धिरिति व्यतिरिच्य कृष्णसारमवस्थितस्य विषयस्योपासकस्य न कृष्णसारप्राप्तस्य, न चाप्राप्तकारित्वमिन्द्रियाणाम् तदिदमभौतिकत्वे विभुत्वात् सम्भवति, एव सुभयधर्मोपलब्धेः संशयः, अभौतिकानि इत्याह कस्मात् ॥

## महदणुग्रहणात् ॥ ३१ ॥

महदिति महत्तरं महत्तमं चोपलभ्यते यथा न्यग्रोधपर्ष्वतादि, अण्वित्यणुतरमणुतमञ्च गृह्यते न्यग्रोधधानादि, तदुभयतुपलभ्यमानं चक्षुषो भौतिकत्वं बाधते भौतिकं हि यावत्तावदेव व्याप्नोति अभौतिकं नु विभुत्वात् सर्वव्यापकमिति न महदणुग्रहणमात्रादभौतिकत्वं विभुत्वज्ञेन्द्रियाणां शक्यं प्रतिपत्तुम् इदं खलु ॥

## रश्मिरर्थसन्निकर्षविशेषात् तद्ग्रहणम् ॥ ३२ ॥

तयोर्महदखोर्यग्रहणं चक्षूरश्मेरर्थस्य च सन्निकर्षविशेषाद्भवति यथा प्रदीपरश्मेरर्थस्य चेति रश्मिरर्थं सन्निकर्षावरणलिङ्गः, चाक्षुषो हि रश्मिः कुड्यादिभिरावृतमर्थं न प्रकाशयति यथा प्रदीपरश्मिरिति आवरणानुमेयत्वे सतीदमाह ॥

## तदनुपलब्धेरहेतुः ॥ ३३ ॥

रूपस्पर्शवद्वि तेजो महत्त्वादनेकद्रव्यवत्त्वाच्चोपलब्धिरिति प्रदीपवत् प्रत्यक्षत उपलभ्येत चक्षुषोरश्मि र्यदिस्वादिति ॥

## नानुमीयमानस्य प्रत्यक्षतोऽनुपलब्धिरभावहेतुः ॥ ३४ ॥

सन्निकर्षप्रतिषेधार्थेनावरणेन लिङ्गेनानुमीयमानस्य रश्मे र्यां प्रत्यक्षतोऽनुपलब्धिर्नासावभावं प्रतिपादयति । यथा चन्द्रमसः परभागस्य पृथिव्याच्चाधोभागस्य ॥



## द्रव्यगुणधर्मभेदाच्चोपलब्धि नियमः ॥ ३५ ॥

भिन्नः खल्वयं द्रव्यधर्मो गुणधर्मश्च सहदनेकद्रव्यवच्च विषक्तावयव-  
भाष्यं द्रव्यं प्रत्यक्षतो नोपलभ्यते स्पर्शस्तु शीतो गृह्यते तस्य द्रव्यस्यानु-  
बन्धात् हेमन्तशिशिरौ कल्पेते । तथाविधमेवच तेजसं द्रव्यमनुद्भूतरूपं  
सह रूपेण नोपलभ्यते स्पर्शस्वस्योष्ण उपलभ्यते तस्य द्रव्यस्यानुबन्धात्  
योग्यवसन्तौ कल्पेते यत्र त्वेषा भवति ॥

## अनेकद्रव्यसमवायाद्रूपविशेषाच्च रूपोपलब्धिः ॥ ३६ ॥

यत्र रूपञ्च द्रव्यञ्च तदाम्रयः प्रत्यक्षतः उपलभ्यते रूपविशेषस्तु यद्भा-  
वात् कचिद्रूपोपलब्धिः यदभावाच्च द्रव्यस्य कचिदनुपलब्धिः स रूपधर्मो-  
ऽयमुद्भवसमाख्यात इति, अनुद्भूतरूपस्यायं नायनो रश्मिः, तस्मात्प्रत्य-  
क्षतो नोपलभ्यत इति दृष्टञ्च तेजसोधर्मभेदः उद्भूतरूपस्यैव प्रत्यक्ष-  
तेजो यथादित्यरश्मयः, उद्भूतरूपमनुद्भूतस्पर्शञ्च प्रत्यक्षम् यथा प्रदीपर-  
श्मयः । उद्भूतस्पर्शमनुद्भूतरूपमप्रत्यक्षम् यथावादिसंयुक्तं तेजः । अनुद्भू-  
तरूपस्पर्शोऽप्रत्यक्षश्चाक्षुषोरश्मिरिति ॥

## कर्मकारितश्चेन्द्रियाणां व्यूहः पुरुषार्थतन्त्रः ॥ ३७ ॥

यथा चेतनस्यार्थो विषयोपलब्धिभूतः सुखदुःखोपलब्धिभूतश्च कल्पते  
तथेन्द्रियाणि व्यूढानि विषयप्राप्त्यर्थञ्च रश्मेश्चाक्षुषस्य व्यूहः, रूपस्पर्श-  
नभिव्यक्तिश्च व्यवहारप्रकृत्यर्थं द्रव्यविशेषे च प्रतीक्षातादावरणोपप-  
त्तिर्व्यवहारार्था सर्वद्रव्याणां विश्वरूपोव्यूह इन्द्रियवत्कर्मकारितः पुरु-  
षार्थतन्त्रः । कर्म तु धर्माधर्मभूतं चेतनस्योपभोगार्थमिति ॥

## अव्यभिचाराच्च प्रतीक्षातो भौतिकधर्मः ॥ ३८ ॥

यथावरणोपलम्भादिन्द्रियस्य द्रव्यविशेषे प्रतीक्षातः स भौतिकधर्मो  
न भूतानि व्यभिचरति नाभौतिकं प्रतिष्ठातधर्मकं दृष्टमिति । अप्रति-  
ष्ठातस्तु व्यभिचारो भौतिकाभौतिकयोः समानत्वादिति । यदपि मन्यते



## ३ अध्याये १ आह्निकम् ।

६७

प्रतिघातः ज्ञातिकानीन्द्रियाणि अप्रतिघातादभौतिकानीति प्राप्तम् ढट-  
 चाप्रतिघातः काचाभ्रपटलस्कटिकान्तरितोपलब्धेः तच्च युक्तम् कस्मात्  
 यस्माद्भौतिकमपि न प्रतिहन्यते काचाभ्रपटलस्कटिकान्तरितप्रकाशात्  
 प्रदीपरश्मीनां, स्यात्त्यादिषु पाचकस्य तेजसो ऽप्रतिघातः, उपपद्यते  
 चानुपलब्धिः कारणभेदात् ॥

मध्यन्दिनोल्काप्रकाशानुपलब्धिवत्तदनुपलब्धिः ॥ ३९ ॥

यथाऽनेकद्रव्येण समवायः द्रूपविशेषाच्चोपलब्धिरिति सत्युपलब्धि कार-  
 णे मध्यन्दिनोल्काप्रकाशो नोपलभ्यते आदित्यप्रकाशेनाभिभूतः, एवं  
 सहदनेकद्रव्यवत्पाद्रूपविशेषाच्चोपलब्धिरिति, सत्युपलब्धिकारणे चानुपो-  
 रस्मिर्नोपलभ्यते निमित्तान्तरतः, तच्च व्याख्यातमनुद्भूतरूपस्यार्थद्रव्यस्य  
 प्रत्यक्षतोऽनुपलब्धिरिति, अत्यन्तानुपलब्धिस्वाभावकारणम्, योहि ब्रवीति  
 लोष्टप्रकाशो मध्यन्दिने आदित्यप्रकाशाभिभवान्नोपलभ्यत इति तस्यै-  
 तत्स्यात् ॥

न रात्रावप्यनुपलब्धेः ॥ ४० ॥

अव्यनुमानतोऽनुपलब्धिरिति एवमत्यन्तानुपलब्धेर्लोष्टप्रकाशो नास्ति  
 नत्वेवं चानुपो रस्मिरिति उपपन्नरूपा चेयम् ॥

वाह्यप्रकाशानुग्रहादिप्रयोपलब्धेरनभिव्यक्ति-  
 तोऽनुपलब्धिः ॥ ४१ ॥

वाह्येन प्रकाशेनानुगृहीतं चक्षुर्विषयग्राहकम्, तदभावेऽनुपलब्धिः,  
 सति च प्रकाशानुग्रहे शीतस्पर्शोपलब्धौ च सत्यां तदाश्रयस्य द्रव्यस्य  
 चक्षुषा ऽग्रहणम् रूपस्यानुद्भूतत्वात् सेयं रूपानभिव्यक्तितो रूपान्नयस्य  
 द्रव्यस्यानुपलब्धिर्दृष्टा तत्र यदुक्तं तदनुपलब्धेरहेतुरित्येतदयुक्तम्, कस्मात्  
 पुनरभिभवोऽनुपलब्धिकारणम् चानुपलब्धे रश्मेर्नोच्यत इति ॥



अभिव्यक्तौ चाभिभवात् ॥ ४२ ॥

वाह्यप्रकाशानुग्रहानिरपेक्षतायाच्चेति चार्थः, यद्रूपमभिव्यक्तसङ्गतं  
वाह्यप्रकाशानुग्रहं च नापेक्षते तद्विषयोऽभिभवोविपर्ययेऽभिभवाभावात्  
अनुद्भूतरूपत्वाच्चानुपलभ्यमानं वाह्यप्रकाशानुग्रहाच्चोपलभ्यमानं नाभि-  
भूयत इति एवमुपपन्नम् अस्ति चानुषो रश्मिरिति ॥

नक्तञ्चरनयनरश्मिदर्शनाच्च ॥ ४३ ॥

दृश्यन्ते हि नक्तं नयनरश्मयो नक्तञ्चराणां वृषदंशप्रभृतीनाम्, तेन  
शेषस्यानुमानमिति, जातिभेदवदिन्द्रियभेद इति चेत् धर्म्ममात्रं चानुप-  
पन्नम् आवरणस्य प्राप्तिप्रतिषेधार्थस्य दर्शनादिति । इन्द्रियार्थसन्नि-  
कर्षस्य ज्ञानकारणत्वानुपपत्तिः कस्मात् ॥

अप्राप्य ग्रहणम् काचाभ्रपटलस्फटिकान्तरि-  
तोऽपलब्धे ॥ ४४ ॥

तृणादिसर्पदुद्रव्यं काचेऽभ्रपटले वा प्रतिहतं दृष्टमव्यवहितेन सन्नि-  
लप्यते व्यवहन्यते वै प्राप्तिर्व्यवधानेनेति यदि च रश्मिप्रार्थसन्निकर्षो-  
ग्रहणहेतुः स्यात् न व्यवहितस्य सन्निकर्ष इत्यग्रहणं स्यात् अस्ति चेयं  
काचाभ्रपटलस्फटिकान्तरितोपलब्धिः सा ज्ञापयत्यप्राप्यकारीणीन्द्रियाणि  
अत एवाभौतिकानि प्राप्यकारित्वं हि भौतिकधर्म इति ॥

न कुड्यान्तरितानुपलब्धेरप्रतिषेधः ॥ ४५ ॥

अप्राप्यकारित्वे सतीन्द्रियाणां कुड्यान्तरितस्यानुपलब्धिर्न स्यात्  
प्राप्यकारित्वेऽपि तु काचाभ्रपटलस्फटिकान्तरितोपलब्धिर्न स्यात् ॥

अप्रतिघातात् सन्निकर्षोपपत्तिः ॥ ४६ ॥



न च काचाभ्रपटलं वा नयनरश्मिं विदम्नाति सो ऽप्रतिहृत्यमानः  
सन्निकष्यत इति, यच्च मन्यते न भौतिकस्याप्रतीघात इति तच्च ॥

**आदित्यरश्मेः स्फटिकान्तरेऽपि दाह्येऽविधा-  
तात् ॥ ४७ ॥**

आदित्यरश्मेरविधातात् स्फटिकान्तरितेऽप्यविधातात् दाह्येऽविधा-  
तात् अविधातादिति च पदाभिप्रेत्यभेदाद्वाक्यभेद इति यथा वाक्यं  
चार्थभेद इति प्रतिवाक्यं वाक्यार्थभेदः आदित्यरश्मिः कुम्भादिषु न  
प्रतिहृत्यते अविधातात् कुम्भस्यसुदकनपति प्राप्नोति हि द्रव्यानुरगुणस्य  
उष्णस्यर्शस्य ग्रहणम् तेन च शीतस्पर्शाभिभव इति, स्फटिकान्तरितेऽपि  
प्रकाशनीये प्रदीपरश्मीनामप्रतिघातः अप्रतिघातात् प्राप्तस्य ग्रहणमिति  
भर्जनकपालादिस्यञ्च द्रव्यमाग्नेयेन तेजसा दह्यते तत्ताविधातात् प्राप्तिः  
प्राप्नोति दाह्येनाप्राप्यकारि तेज इति अविधातादिति च केवलं पद-  
मुपादीयते कोऽयमविधातो नाम अव्यूह्यमानावयवेन व्यवधायकेन द्रव्येणा-  
सर्वतो द्रव्यस्याविष्टम्भः क्रियाहेतोरप्रतिबन्धः प्राप्तेरप्रतिषेध इति, दृष्टं  
हि कलशनिषक्तानामपां वह्निः शीतस्पर्शस्य ग्रहणम्, न च इन्द्रियेणा-  
मन्निकष्यस्य द्रव्यस्य स्पर्शोपलब्धिः दृष्टौ च प्रस्यन्दपरिस्त्रवौ तत्र काचाभ्र-  
पटलादिभिर्नयनरश्मेरप्रतिघाताद्विभिद्यार्थेन सह सन्निकषादुपपन्नं  
ग्रहणमिति ॥

**नेतरैतरधर्माप्रसङ्गात् ॥ ४८ ॥**

काचाभ्रपटलादिवद्वा कुद्यादिभिरप्रतिघातः कुद्यादिवद्वा काचाभ्र-  
पटलादिभिः प्रतिघात इति नियमे कारणं वाच्यमिति ॥

**आदर्शोदकयोः प्रसादस्वाभाव्याद्रूपोपलब्धि-  
वत्तदुपलब्धिः ॥ ४९ ॥**



## न्यायदर्शनवाक्ययनभाष्ये

आदर्शोदकयोः प्रसादो रूपविशेषः स्त्री धर्मो नियमदर्शनात् प्रसा-  
दस्य वा स्त्रीधर्मो रूपोपलम्भनम् यथादर्शप्रतिहतस्य परावृत्तस्य नयन-  
रश्मिः स्त्रेण मुखेन सन्निकर्षे सति स्वमुखोपलम्भनं प्रतिबिम्बग्रहणाख्य-  
मादर्शरूपापुनरावृत्तचित्रमिति भवति आदर्शरूपोपघाते तदभावात् कुड्या-  
दिषु च प्रतिबिम्बग्रहणं न भवति एवं काचाभ्रपटलादिभिरविघातश्चक्षु-  
रश्मिः कुड्यादिभिश्च प्रतिघातोद्भव्यस्वभावनिवमादिति ॥

## दृष्टानुमितानां नियोगप्रतिषेधानुपपत्तिः ॥ ५० ॥

प्रमाणस्य तत्त्वविषयत्वात् न खलु भोः परीक्ष्यमाणेन दृष्टानुमिता  
अर्थाः शक्या नियोक्तुमेवं भवतेति नापि प्रतिषेद्धमेवं स भवतेति नही-  
दनुपपद्यते रूपवद्भवोऽपि चाक्षुषो भवत्विति गन्धवद्वा रूपञ्चाक्षुषं साभू-  
दिति अग्निप्रतिपत्तिवद्भूमेनोदकप्रतिपत्तिरपि भवत्विति उदकाप्रति-  
पत्तिवद्वा धूमेनाग्निप्रतिपत्तिरपि साभूदिति किं कारणम् यथा खल्वर्था  
भवन्ति य एषां स्त्रीभावः स्त्रीधर्म इति तथाभूताः प्रमाणेन प्रतिप्रद्यन्  
इति तथाभूतविषयकं हि प्रमाणमिति इमौ खलु नियोगप्रतिषेधौ  
भवतादेशितौ काचाभ्रपटलादिवद्वा कुड्यादिभिरप्रतिघातो भवतु कुड्या-  
दिवद्वा काचाभ्रपटलादिभिरप्रतिघातो साभूदिति न दृष्टानुमिताः ख-  
ल्विमे द्रव्यधर्माः प्रतिघाताप्रतीघातयोर्ह्युपलब्धानुपलब्धी व्यवस्थापिके  
व्यवहितानुपलब्धाऽनुमीयते कुड्यादिभिः प्रतिघातः, व्यवहितोपलब्धा-  
ऽनुमीयते काचाभ्रपटलादिभिरप्रतिघात इति अथापि खल्वेकमिदमि-  
न्द्रियं बहूनीन्द्रियाणि वा कुतः संशयः ॥

स्थानान्यत्वे नानात्वादवयविनानात्वादवयवि-  
नानास्थानत्वाच्च संशयः ॥ ५१ ॥

बहूनि द्रव्याणि नानास्थानानि दृश्यन्ते नानास्थानश्च सत्तेकोऽवयवी  
चेति तेनेन्द्रियेषु भिन्नस्थानेषु संशय इति एकमिन्द्रियम् ॥

## त्वगव्यतिरेकात् ॥ ५२ ॥



## ३ अध्याये १ अङ्किकम् ।

१०१

त्वगेकमिन्द्रियमित्याह कस्मात् अव्यतिरेकात् न त्ववा किञ्चिदिन्द्रियाधिष्ठानं न प्राप्तम् न चासत्यां त्वचि किञ्चिद्विषयग्रहणं भवति यया सर्वेन्द्रियस्थानानि व्याप्तानि दृष्टाञ्च सत्यां विषयग्रहणं भवति सा त्वगेकमिन्द्रियमिति ॥

## नेन्द्रियान्तरार्थानुपलब्धेः ॥ ५३ ॥

स्पर्शोपलब्धिलक्षणायां सत्यां त्वचि गृह्यमाणे त्वगिन्द्रियेण स्पर्शेन्द्रियान्तरार्था रूपादयो न गृह्यन्ते अन्वादिभिः न स्पर्शग्राहकादिन्द्रियान्तरमस्तीति स्पर्शवदन्वादिभिर्गृह्येरन् रूपादयो न च गृह्यन्ते तस्मान्नैकमिन्द्रियं त्वमिति ॥

## त्वगवयवविशेषेण धूमोपलब्धिवत्तदुलपत्तिः ॥ ५४ ॥

यथा त्वचोऽवयवविशेषः कश्चिच्चक्षुषि सन्निकटो धूमस्पर्शं गृह्णाति नान्यः एवं त्वचोऽवयवविशेषोरूपादिग्राहकस्तेषामुपघातादन्वादिभिर्न गृह्यन्ते रूपादय इति ॥

## आहतत्वादहेतुः ॥ ५५ ॥

त्वगव्यतिरेकादेकमिन्द्रियमित्युक्त्वा त्वगवयवविशेषेण धूमोपलब्धिवद्रूपाद्युपलब्धिरित्युच्यते एवं च सति नानाभूतानि विषयग्राहकाणि विषयव्यवस्थानात् तद्भावे विषयग्रहणस्य भावान्तदुपघाते चाभावात् तथा ज्ञ पूर्वोवाद उत्तरेण वादेन व्याहृत्य इति, सन्दिग्धव्यतिरेकः पृथिव्यादिभिरपि भूतैरिन्द्रियाधिष्ठानानि व्याप्तानि न च तेष्वसत्त्वं विषयग्रहणं भवतीति तस्मान्न त्वगन्यद्वा सर्वविषयमेकमिन्द्रियमिति ॥

## न युगपदर्थानुपलब्धेः ॥ ५६ ॥

आत्मा मनसा संबध्यते मन इन्द्रियेण इन्द्रियं सर्वार्थैः सन्निकटमिति आत्मेन्द्रियमनोऽर्थसन्निकर्षेभ्यो युगपद्ग्रहणानि स्यः, न च युगपदु-



रूपादयो गृह्यन्ते, तस्मान्नैकमिन्द्रियं सर्वविषयमस्तीति असाहचर्याच्च  
विषयग्रहणानां नैकमिन्द्रियं सर्वविषयकम्, साहचर्ये हि विषयग्रह-  
णानामन्वाद्यनुपपत्तिरिति ॥

## विप्रतिषेधाच्च नत्वगेका ॥ ५७ ॥

न खलु त्वगेकमिन्द्रियं व्याघातात् त्वचा रूपाण्यप्राप्तानि गृह्यन्ते  
इति अप्राप्यकारित्वे स्पर्शादिष्वप्येवं प्रसङ्गः, स्पर्शादीनाञ्च प्राप्तानां  
ग्रहणाद्रूपादीनामप्राप्तानामग्रहणमिति प्राप्तम्, प्राप्याप्राप्यकारित्व-  
मिति चेत् आवरणानुपपत्तेर्विषयमात्रस्य ग्रहणम्, अथापि मन्येत  
प्राप्तः स्पर्शादयस्त्वचा गृह्यन्ते रूपाणि त्वप्राप्तानीति, एवं सति नाख्या-  
वरणम् आवरणानुपपत्तेश्च रूपमात्रस्य ग्रहणं व्यवहितस्य चाव्यवहितस्य  
चेति। दूरान्तिकानुविधानं च रूपोपलब्ध्यानुपलब्धयोर्न स्यात् अप्राप्तं  
त्वचा गृह्यते रूपमिति दूरे रूपस्याग्रहणमन्तिके च ग्रहणमित्येतन्नस्या-  
दिति एकत्वप्रतिषेधाच्च नानात्वसिद्धौ स्थापनाहेतुरप्युपादीयते ॥

## इन्द्रियार्थपञ्चत्वात् ॥ ५८ ॥

अर्थः प्रयोजनं तत् पञ्चविधमिन्द्रियाणाम्, स्पर्शनेनेन्द्रियेण स्पर्श-  
ग्रहणे सति न तेनैव रूपं गृह्यत इति रूपग्रहणप्रयोजनं चक्षुरनुमीयते,  
स्पर्शरूपग्रहणे च ताभ्यामेव गन्धो न गृह्यत इति गन्धग्रहणप्रयोजनं  
घ्राणमनुमीयते, त्वयाणां ग्रहणे न तैरेव रसो गृह्यत इति रसग्रहण-  
प्रयोजनं रसनमनुमीयते, न चक्षुणां ग्रहणे तैरेव शब्दः श्रूयत इति  
शब्दग्रहणप्रयोजनं श्रोत्रमनुमीयते, एवमिन्द्रियप्रयोजनस्यानितरेतर-  
साधनसाध्यत्वात् पञ्चैवेन्द्रियाणि ॥

## न तदर्थवज्जत्वात् ॥ ५९ ॥

न खल्विन्द्रियार्थपञ्चत्वात् पञ्चेन्द्रियाणीति सिद्ध्यति, कस्मात् तेषा-  
मर्थानां वज्जत्वात्, बहवः खल्विमे इन्द्रियार्थाः, स्पर्शास्तावच्छीतो-  
ष्णानुष्णशीता इति, रूपाणि शुक्लहरितादीनि, गन्धा इष्टानिष्टोपेक्ष



## ३ अध्याये १ आह्निकम् ।

१०३

शीयाः रसाः कटुकादयः शब्दा वर्णात्मनो ध्वनिमात्राश्च भिन्नाः, तद्य-  
स्वेन्द्रियार्थपञ्चत्वात् पञ्चेन्द्रियाणि तस्वेन्द्रियार्थवहुत्वादहनीन्द्रियाणि  
प्रसज्यन्त इति ॥

## गन्धत्वाद्यव्यतिरेकाङ्गन्धादीनामप्रतिषेधः ॥ ६० ॥

गन्धत्वादिभिः स्वसामान्यैः कृतव्यवस्थानां गन्धादीनां यानि गन्धादि-  
ग्रहणानि तान्यसमानसाधनसाध्यत्वाद्ग्राहकान्तराणि न प्रयोजयन्ति,  
अर्थसमूहोऽनुमानसक्तो नार्थकदेशः अर्थकदेशश्चाश्रित्य विषयपञ्चत्वमात्रं  
भवान् प्रतिषेधति, तस्मादयुक्तोऽयं प्रतिषेध इति, कथं पुनर्गन्धत्वादिभिः  
स्वसामान्यैः कृतव्यवस्था गन्धादय इति । स्पर्शः खल्वयं त्रिविधः शीत-  
उष्णोऽनुष्णशीतश्च स्पर्शत्वेन स्वसामान्येन सङ्गृहीतः गृह्यमाणे च शीत-  
स्पर्शे नोष्णस्यानुष्णाशीतस्य वा ग्रहणम् ग्राहकान्तरं प्रयोजयति, स्पर्श-  
भेदानामेकसाधनसाध्यत्वात् । येनैव शीतस्पर्शो गृह्यते तेनैवेतराव-  
पीति । एवं गन्धत्वेन गन्धानां रूपत्वेन रूपाणां रसत्वेन रसानां शब्द-  
त्वेन शब्दानामिति, गन्धादिग्रहणानि पुनरसमानसाधनसाध्यत्वाद्ग्राह-  
कान्तराणां प्रयोजकानि, तस्मादुपपन्नमिन्द्रियार्थपञ्चत्वात् पञ्चेन्द्रिया-  
णीति, यदिसामान्यं संग्राहकं प्राप्तमिन्द्रियाणाम् ॥

## विषयत्वाव्यतिरेकादेकत्वम् ॥ ६१ ॥

विषयत्वेन हि सामान्येन गन्धादयः संगृहीता इति ॥

## न बुद्धिलक्षणाधिष्ठानगत्याकृतिजातिपञ्चत्वेभ्यः ॥ ६२ ॥

न खलु विषयत्वेन सामान्येन कृतव्यवस्था विषया ग्राहकान्तरनिर-  
पेक्षा एकसाधनग्राह्या अनुमीयन्ते, अनुमीयन्ते च पञ्च गन्धादयो  
गन्धत्वादिभिः स्वसामान्यैः कृत व्यवस्था इन्द्रियान्तरग्राह्यास्तस्मादसम्ब-  
न्धेन तत् । अयमेव चार्थोऽनूद्यते बुद्धिलक्षणपञ्चत्वादिति, बुद्धय एव लक्ष-  
णानि विषयग्रहणलिङ्गत्वादिन्द्रियाणाम्, तदेतदिन्द्रियार्थपञ्चत्वादित्ये-  
तस्मिन् स्थिते इति भाव्यमिति, तस्माद्बुद्धिलक्षणपञ्चत्वात् पञ्चेन्द्रियाणि,



अधिष्ठानान्यपि खलु पञ्चेन्द्रियाणाम् सर्वशरीराधिष्ठानं स्पर्शनं स्पर्श-  
ग्रहणलिङ्गम्, कण्ठसाराधिष्ठानं चक्षुर्वह्निर्निःसृतं रूपग्रहणलिङ्गम्,  
नासाधिष्ठानं घ्राणम्, जिह्वाधिष्ठानं रसनम्, कर्णच्छिद्राधिष्ठानं श्रो-  
तम्, गन्धरसरूपस्पर्शशब्दग्रहणलिङ्गत्वादिति । गतिभेदादपीन्द्रिय-  
भेदः, कण्ठसारीपनिबद्धं चक्षुर्वह्निर्निःसृत्य रूपाधिकरणानि द्रव्याणि  
प्राप्नोति, स्पर्शनादीनित्विन्द्रियाणि विषयाएवाश्रयोपसर्पणात् प्रत्या-  
सीदन्ति, सन्तानवृत्त्या शब्दस्य श्रोत्रप्रत्यासत्तिरिति आकृतिः खलु परि-  
माणमियत्ता सा पञ्चधा स्वस्थानमात्राणि घ्राणरसनस्पर्शनानि विषय-  
ग्रहणे नातुमेयानि, चक्षुः कण्ठसाराश्रयं वह्निर्निःसृतं विषयव्यापि,  
श्रोत्रं नान्यदाकाशात्, तच्च विभु शब्दमात्रानुभवानुमेयं पुरुषसंस्कारोप-  
ग्रहज्ञाधिष्ठाननियमेन शब्दस्य व्यञ्जकमिति । जातिरिति योनिं प्रच-  
क्षते, पञ्च खल्विन्द्रिययोनयः पृथिव्यादीनि भूतानि, तस्मात् प्रकृति-  
पञ्चत्वादपि पञ्चेन्द्रियाणीति सिद्धम्, कथं पुनर्ज्ञायते भूतप्रकृतीनीन्द्रि-  
याणि नाव्यक्तप्रकृतीनीति ॥

**भूतगुणविशेषोपलब्धेस्तादात्म्यम् ॥ ६३ ॥**

इदोहि बाह्यादीनां भूतानां गुणविशेषाभिव्यक्तिनियमः, वायुः  
स्पर्शव्यञ्जकः, अपो रसव्यञ्जिकाः, तेजो रूपव्यञ्जकम्, पार्थिवं किञ्चिद्-  
द्रव्यं कस्यचिद्द्रव्यस्य गन्धव्यञ्जकम् । अस्ति चायमिन्द्रियाणां भूतगुणवि-  
शेषोपलब्धिनियमः, तेन भूतगुणविशेषोपलब्धे र्मन्यामहे भूतप्रकृतीनीन्द्रि-  
याणि नाव्यक्तप्रकृतीनीति, गन्धादयः पृथिव्यादिगुणा इत्युपदिष्टम् उद्दे-  
यश्च पृथिव्यादीनामेकगुणत्वे समान इत्यत आह ॥

**गन्धरसरूपस्पर्शशब्दानां स्पर्शदर्यन्ताः पृथि-  
व्याः अग्नेजोवायूनां पूर्वं पूर्वमपोह्याकाश-  
स्योत्तरः ॥ ६४ ॥**



## ३ अध्याये १ आह्निकम् ।

१०५

स्पर्शपर्यन्तानामिति विभक्तिविपरिणामः, अकाशस्योत्तरं शब्दः  
स्पर्शपर्यन्तेभ्य इति कथन्तरन्निर्देशः स्वतन्त्रविनियोगसामर्थ्यात्, तेनो-  
त्तरशब्दस्य परार्थाभिधानं विज्ञायते, उद्देशस्त्विति स्पर्शपर्यन्तेभ्यः पर-  
शब्द इति तन्त्रं वा स्पर्शस्य विवक्षितत्वात् स्पर्शपर्यन्तेषु नियुक्तेषु योऽन्य-  
स्तदुत्तरः शब्द इति ॥

## न सर्व गुणानुपलब्धेः ॥ ६५ ॥

नायं गुणनियोगः साधुः, कस्मात् यस्य भूतस्य ये गुणा न ते तदा-  
त्मकेनेन्द्रियेण सर्वे उपलभ्यन्ते पार्थिवेन हि घ्राणेन स्पर्शपर्यन्ता न  
गृह्यन्ते गन्धएवैको गृह्यते एवं शोषेष्वपीति कथन्तर्हीमे गुणा, विनि-  
योक्तव्या इति ॥

एकैकस्यैवोत्तरो गुणसङ्घावादुत्तरोत्तराणां तद-  
नुपलब्धिः ॥ ६६ ॥

गन्धादीनामेकैको यथाक्रमं पृथिव्यादीनामेकैकस्य गुणः अतस्तदनु-  
पलब्धिः तेषान्तयोस्तस्य चानुपलब्धिः, घ्राणेन रसरूपस्पर्शानां रसेन रूप-  
स्पर्शयोः, चक्षुषा स्पर्शस्येति, कथन्तर्ह्यनेकगुणानि भूतानि गृह्यन्त इति ॥

## संसर्गाच्चानेकगुणग्रहणम् ॥ ६७ ॥

अवादिसंसर्गाच्च पृथिव्यां रसादयो गृह्यन्ते एवं शोषेष्वपीति निद-  
मस्तर्हि न प्राप्नोति संसर्गस्यानियमाच्चतुर्गुणा पृथिवी विगुणा आपो द्वि-  
गुणं तेज एकगुणो वायुरिति नियमश्चोपपद्यते कथम् ॥

## विष्टं ह्यपरम्परेण ॥ ६८ ॥

पृथिव्यादीनां पूर्वस्मूर्त्तसुत्तरेणोत्तरेण विष्टमतः संसर्गानिदम इति  
तच्चैतद्भूतस्यैव वेदितव्यञ्चैतर्हीति ॥

## न पार्थिवाप्ययोः प्रत्यक्षत्वात् ॥ ६९ ॥



नेति विस्तृता प्रत्यावष्टे, कस्मात् पार्थिवस्य द्रव्यस्याप्यस्य च प्रत्यक्षत्वात् महत्त्वानेकद्रव्यत्वाद्भूपाञ्चोपलब्धिरिति तैजसमेव द्रव्यं प्रत्यक्षं स्यात् न पार्थिवमाप्यं वा रूपभावात् तेजसवत्तु पार्थिवाप्ययोः प्रत्यक्षत्वात् न संसर्गादनेकगुणग्रहणं भूतानामिति । भूतान्तररूपकृततन्त्रं पार्थिवाप्ययोः प्रत्यक्षत्वं द्रुवतः प्रत्यक्षो वायुः प्रसज्यते नियमे वा कारणमुच्यतामिति, रसयोर्वा पार्थिवाप्ययोः प्रत्यक्षत्वात् पार्थिवो रसः षड्विधः, आप्यो मधुर एव न चैतत् संसर्गाद्भवितुमर्हति, रूपयोर्वा पार्थिवाप्ययोः प्रत्यक्षत्वात् तैजसरूपानुगृहीतयोः संसर्गे हि व्यञ्जकमेव रूपं न व्यङ्ग्यमस्तीति एका-  
नेकविधत्वे च पार्थिवाप्ययोः प्रत्यक्षत्वात् रूपयोः, पार्थिवं हरितलोहित-  
तपीताद्यनेकविधं रूपम्, आप्यन्तु शुक्लमप्रकाशम् । न चैतदेकगुणानां संसर्गं सत्पुलभ्यत इति । उदाहरणमात्रञ्चैतत् अतः परं प्रपञ्चः, स्पर्श-  
योर्वा पार्थिवतैजसयोः प्रत्यक्षत्वात् पार्थिवोऽनुष्णाशीतः स्पर्शः, उष्णस्ते-  
जसः प्रत्यक्षो, न चैतदेकगुणानामनुष्णाशीतस्पर्शेन वायुना संसर्गं योपपद्यत  
इति, अथवा पार्थिवाप्ययोर्द्रव्ययोर्व्यवस्थितगुणयोः प्रत्यक्षत्वात् चतुर्गुणं पा-  
र्थिवं द्रव्यं त्रिगुणमाप्यं प्रत्यक्षत्वेन तत्कारणमनुमीयते, तथाभूतमिति तस्य  
कार्यं लिङ्गं कारणभावाद्भि कार्यभाव इति, एवं तैजसवायव्ययोर्द्रव्ययोः  
प्रत्यक्षत्वाद्गुणव्यवस्थायास्तत्कारणे द्रव्ये व्यवस्थानुमानमिति । दृष्टञ्च विवेकः  
पार्थिवाप्ययोः प्रत्यक्षत्वात् पार्थिवं द्रव्यमवादिभिर्वियुक्तं प्रत्यक्षतो गृह्यते  
आप्यञ्च पराभ्यां तैजसञ्च वायुना न चैकैकगुणं गृह्यत इति निरनुमानत्वं  
विष्टं ह्यपरं परेणेत्येतदिति नात्र लिङ्गमनुभाषकं गृह्यत इति येनैतदेवं  
प्रतिपद्येमहि यच्चोक्तं विष्टं ह्यपरस्मरेणेति भूतसृष्टौ वेदितव्यं न साम्प्र-  
तमिति नियमकारणाभावादयुक्तं दृष्टञ्च साम्प्रतमपरस्मरेण विष्टमिति  
वायुना च विष्टं तेज इति । विष्टत्वं संयोगः सच द्वयोः समानो वायुना च  
विष्टत्वात् स्पर्शवत्तेजो न तु तेजसाविष्टत्वाद्भूषवान् वायुरिति नियमका-  
रणं नास्तीति । दृष्टञ्च तैजसेन स्पर्शेन वायव्यस्पर्शस्याभिभवादयद्ग-  
णमिति न च तेनैव तस्याभिभव इति । तदेवं न्यायविरुद्धं प्रवादं प्रतिषि-  
ध्यन् सर्वगुणानुपलब्धेरिति चोदि तं समाधोयते ॥



## पूर्व पूर्व गुणोत्कर्षोत्तत्प्रधानम् ॥ ७० ॥

तस्मान्न सर्वगुणोपलब्धिः प्राणादीनां पूर्वं पूर्वं गन्धादेर्गुणस्योत्कर्षोत्तत्प्रधानम् का प्रधानता विषयग्राहकत्वम्, को गुणोत्कर्षः अभिव्यक्तौ समर्थत्वम्, यथा बाह्यानां पार्थिववायुतैजसानां द्रव्याणां चतुर्गुणविगुणद्विगुणानां न सर्वगुणव्यञ्जकत्वम्, गन्धरसरूपोत्कर्षान्तु यथाक्रमं गन्धरसरूपव्यञ्जकत्वम्, एवं प्राणरसनचक्षुषां चतुर्गुणविगुणद्विगुणानां सर्वगुणग्राहकत्वम् । गन्धरसरूपोत्कर्षान्तु यथाक्रमं गन्धरसरूपग्राहकत्वं तस्माद् प्राणादिभिर्न सर्वेषां गुणानामुपलब्धिरिति । यस्तु प्रतिजानीते गन्धगुणत्वाद्प्राणं गन्धग्राहकं एवं रसनादिष्वपीति तस्य यथागुणयोगं प्राणादिभिर्गुणग्रहणं प्रसज्यत इति किञ्चित् पुनर्व्यवस्थानम् किञ्चित् पार्थिवमिन्द्रियं न सर्वाणि कानिचिदाप्यतैजसवायव्यानीन्द्रियाणि न सर्वाणीति ॥

## तद्यवस्थानन्तु भूयस्वात् ॥ ७१ ॥

अर्थनिवृत्तिसमर्थस्य प्रविभक्तस्य द्रव्यस्य संसर्गः पुरुषसंस्कारकारितो भूयस्त्वम्, दृष्टो हि प्रकर्षे भूयस्त्वशब्दः प्रकटो यथा विषयोभूयानित्युच्यते । यथा पृथगर्थक्रियासमर्थानि पुरुषसंस्कारवशाद्विषयैषधिमणिप्रभृतीनि द्रव्याणि निर्वर्त्यन्ते न सर्वं सर्वार्थम्, एवं पृथग्विषयग्रहणसमर्थानि प्राणादीनि निर्वर्त्यन्ते न सर्वं विषयग्रहणसमर्थानीति स्वगुणान्नोपलभन्ते इन्द्रियाणि कस्मादिति चेत् ॥

## सगुणानामिन्द्रियभावात् ॥ ७२ ॥

स्वान् गन्धादीन्नोपलभन्ते प्राणादीनि केन कारणेनेति चेत् सगुणैः सह प्राणादीनामिन्द्रियभावात् प्राणं स्वेन गन्धेन समानार्थकारिणा सह बाह्यं गन्धं गृह्णाति तस्य स्वगन्धग्रहणं सहकारिवैकल्यात् न भवति, एवं शेषाणामपि यदि पुनर्गन्धः सहकारी च स्यात् प्राणस्य ग्राह्यत्वेन तच्चाह ॥



तेनैव तस्याग्रहणाच्च ॥ ७३ ॥

न गुणोपलब्धिरिन्द्रियाणाम् । यो ब्रूते यथा वाह्यं द्रव्यं चक्षुषा  
गृह्यते तथा तेनैव चक्षुषा तदेव चक्षुर्गृह्यतामिति तादृगिदम् तद्व्योह्य-  
भयत्नं प्रतिपत्तिहेत्वभाव इति ॥

न शब्दगुणोपलब्धेः ॥ ७४ ॥

स्वगुणान्नोपलभन्ते इन्द्रियाणीत्येतत् न भवति उपलभ्यते हि स्वगुणः  
शब्दः श्रोत्रेणेति ॥

तदुपलब्धिरितरेतरद्रव्यगुणवैधर्म्यात् ॥ ७५ ॥

न शब्देन गुणेन स्वगुणमाकाशमिन्द्रियं भवति न शब्दः शब्दस्य व्यञ्जकः  
न च प्राणादीनां स्वगुणग्रहणं प्रत्यक्षं नाप्यनुमीयते अनुमीयते तु  
श्रोत्रेणाकाशेन शब्दस्य ग्रहणं शब्दगुणत्वज्ञाकाशत्वेति, परिशेषस्यानुमानं  
वेदितव्यम्, आत्मा तावत् श्रोता न करणं मनसः श्रोतृत्वे वधिरत्वाभावः  
पृथिव्यादीनां प्राणादिभावे सामर्थ्यं श्रोतृभावे चासामर्थ्यम् अस्ति चेदं  
श्रोतृमाकाशञ्च शिष्यते परिशेषादाकाशं श्रोतृमिति ॥

इति वात्स्यायनीये न्यायभाष्ये तृतीयाध्यायस्याद्यमाह्निकम् ॥

परीक्षितानीन्द्रियाण्यर्थाश्च बुद्धेरिदानीं परीक्षाक्रमः सा किमनित्या  
नित्यावेति कुतः संशयः ॥

कर्माकाशसाधर्म्यात् संशयः ॥ १ ॥

यस्यैवत्वन्ताभ्यां समानो धर्म उपलभ्यते । बुद्धौ विशेषश्चोपजना-  
दायधर्मवत्त्वम् विपर्ययश्च यथास्वमनित्यनित्ययोस्तस्यां बुद्धौ नोपलभ्यते



## ३ अध्याये २ आह्निकम् ।

१०८

तेन संशयः । अनुपपन्नरूपः खल्वयं संशयः, सर्वशरीरिणां हि प्रत्यात्म-  
वेदनीयाऽनित्या बुद्धिः सुखादिवत्, भवति च संवित्तिज्ञास्यामि जामामि  
न्यज्ञासिप्रमिति नचोपजनापायौ अन्तरेण त्वैकाल्यव्यक्तिः, ततश्च त्वैकाल्य-  
व्यक्तेरनित्या बुद्धिरित्येतत् सिद्धम्, प्रमाणसिद्धवेदम् शस्त्रेऽप्युक्तम्  
इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गमित्येवमादि,  
तस्मात् संशयप्रक्रियानुपपत्तिरिति । दृष्टिप्रवादोपालम्भार्थं न्तु प्रकर-  
णम् । एवं हि पश्यन्तः प्रवदन्ति साध्याः पुरुषस्यानःकरणभूता नित्याः  
बुद्धिरिति साधनं प्रचक्षते ॥

## विषयप्रत्यभिज्ञानात् ॥ २ ॥

किं पुनरिदं प्रत्यभिज्ञानम् यं पूर्वमज्ञासिप्रमयं तमिमं जानामीति  
ज्ञानयोः समानेऽर्थे प्रतिसन्धिज्ञानं प्रत्यभिज्ञानम् एतच्चावस्थिताया बुद्धे  
रुपपन्नम्, नान्नात्वे तु बुद्धिभेदेष्टुपपन्नवर्गिषु प्रत्यभिज्ञानानुपपत्तिः ना-  
न्यज्ञातमन्वः प्रत्यभिज्ञानातीति ॥

## साध्यसमत्वादहेतुः ॥ ३ ॥

यथा खलु नित्यत्वं बुद्धेः साध्यमेवमप्रत्यभिज्ञानमपीति किं कार-  
णम् चेतनधर्मस्य कारणेऽनुपपत्तिः पुरुषधर्मः खल्वयं ज्ञानं दर्शनरूपल-  
ब्धिर्वोधः प्रत्ययोऽध्यवसाय इति, चेतनो हि पूर्वज्ञातमर्थमप्रत्यभिज्ञाना-  
तीति तस्यैवस्माद्धेतो नित्यत्वं युक्तमिति, कारणचैतन्याभ्युपगमे तु चेतन  
स्वरूपं वचनीयं नानिर्दिष्टस्वरूपसात्मानरं शक्यमस्तीति प्रतिपत्तुम्,  
ज्ञानश्चेदुबुद्धेरन्तःकरणस्याभ्युपगम्यते, चेन्नस्तेदानीं किं स्वरूपं को धर्मः  
किन्तत्त्वम् ज्ञानेन च बुद्धौ व्रत्तमानेनायं चेतनः किं करोतीति, चेतयत  
इति चेत् न ज्ञानादुर्थान्तरवचनम् । पुरुषश्चेतयते बुद्धिर्जानीतीति नेदं  
ज्ञानादर्थान्तरमुच्यते चेतयते जानीते ब्रूयते पश्यत्युपलभ्यत इत्येकोऽयमर्थ  
इति, बुद्धिर्ज्ञापयतीति चेत् अज्ञा जानीते पुरुषो बुद्धिर्ज्ञापयतीति सत्य-  
मेतत् एवञ्चाभ्युपगमे ज्ञानं पुरुषस्तेति सिद्धं भवति न बुद्धेरन्तःकरण-



११०

## न्यायदर्शनवाक्यायनभाष्य

स्मेति प्रतिषु रूपञ्च शब्दान्तरव्यवस्था प्रतिज्ञाने प्रतिषेधहेतुवचनम् । यच्च  
 प्रातिजानीते कश्चित् पुरुषश्चेतयते कश्चिदुबुध्यते कश्चिदुपलभते कश्चित्  
 पश्यतीति पुरुषान्तराणि खल्विमानि चेतनोबोधोपलभ्यग्रा दृष्टेति नैक-  
 स्यैते धर्मा इति, अत्र कः प्रतिषेधहेतुरिति, अर्थस्याभेद इति चेत्  
 समानमभिधायार्था एते शब्दा इति तत्र व्यवस्थानुपपत्तिरित्येवं चेन्नन्यसे  
 समानं भवति पुरुषश्चेतयते बुद्धिर्जानीते इत्यत्राप्यर्थो न भिद्यते तत्रो-  
 भयोश्चेतनत्वादन्यतरलोप इति यदि पुनर्बुध्यतेऽनयेति बोधनं बुद्धिर्मन-  
 एवोच्यते तच्च नित्यम् अस्त्वोतदेवं न तु मनसोविषयप्रत्यभिज्ञानान्नित्य-  
 त्वत् । दृष्टं हि करणभेदे ज्ञातुरेकत्वात् प्रत्यभिज्ञानम् सव्यवृष्टस्येतरेण  
 प्रत्यभिज्ञानादिति चक्षुर्वत् प्रदीपवच्च प्रदीपान्तरदृष्टस्य प्रदीपान्तरेण  
 प्रत्यभिज्ञानमिति तस्माज्ज्ञातुरयं नित्यत्वे हेतुरिति । यच्च मन्यते बुद्धे-  
 रवस्थिताया यथाविषयं वृत्तयो ज्ञानानि निश्चरन्ति वृत्तिश्च वृत्तिमतो  
 नान्येति ॥

## न युगपदग्रहणात् ॥ ४ ॥

वृत्तिवृत्तिमतोरनन्यत्वे वृत्तिमतोऽवस्थानाद्दृष्टोनामवस्थानमिति  
 यानीमानि विषयग्रहणानि तान्यवतिष्ठन्ति इति युगपद्विषयाणां ग्रहणं  
 प्रसज्यत इति ॥

## अप्रत्यभिज्ञाने च विनाशप्रसङ्गः ॥ ५ ॥

अतीते च प्रत्यभिज्ञाने वृत्तिमानप्यतीत इत्यन्तःकरणस्य विनाशः  
 प्रसज्यते विपर्यये च नानात्वमिति । अविभुः चैकस्मिन् पथ्यायेन्द्रियैः  
 संयुज्यत इति ॥

## क्रमवृत्तित्वादयुगपद्ग्रहणम् ॥ ६ ॥

इन्द्रियार्थानां वृत्तिवृत्तिमतोर्नानात्वमिति, एकत्वे च प्रादुर्भावतिरो-  
 भावयोरभाव इति ॥



३ अध्याये २ आह्निकम् ।

१११

अप्रत्यभिज्ञानञ्च विषयान्तरव्यासङ्गात् ॥ ७ ॥

अप्रत्यभिज्ञानमनुपलब्धिः, अनुपलब्धिश्च कस्यचिदर्शस्य विषयान्तर-  
व्यासङ्गे मनस्युपपद्यते वृत्तिवृत्तिमतोर्नानात्वात् एकत्वे ह्यनर्थकोव्या-  
सङ्गः इति । विभुत्वे चोक्तकरणस्य पर्यायेणेन्द्रियैः संयोगः ॥

न गत्यभावात् ॥ ८ ॥

प्राप्तानीन्द्रियाख्यन्तकरणेनेतिः प्राप्त्यर्थस्य गमनस्याभावः । तत्र  
क्रमवृत्तित्वाभावादयुगपद्गृह्यानुपपत्तिरिति गत्यभावाच्च प्रतिषिद्धं  
विभुनोऽन्तःकरणस्यायुगपद्गृह्यं न लिङ्गान्तरस्यानुमीयते । यथा चक्षुषो  
गतिः प्रतिषिद्धा सन्निकटविप्रकटयोस्तुल्यकालग्रहणात् पाणिचन्द्रमसो-  
र्व्यवधानप्रतीक्षातेनानुमीयत इति सोऽयं नान्तःकरणे विवादो न तस्य  
नित्यत्वे सिद्धं हि मनोऽन्तःकरणं नित्यञ्चेति, क तर्हि विवादः तस्य  
विभुत्वे तच्च प्रमाणतोऽनुपलब्धे । प्रतिषिद्धमिति एकञ्चान्तःकरणं नाना  
चेता ज्ञानात्मिका वृत्तयः चक्षुर्विज्ञानं घ्राणविज्ञानं रूपविज्ञानं गन्धवि-  
ज्ञानमेतच्च वृत्तिमतोरेकत्वेऽनुपपन्नमिति । एतेन विषयान्तरव्यासङ्गः  
प्रत्युक्तः । विषयान्तरग्रहणलक्षणो विषयान्तरव्यासङ्गः पुरुषस्य नान्तः  
करणस्येति केनचिदिन्द्रियेण सन्निधिः केनचिदसन्निधिरिति । अयन्त  
व्यासङ्गोऽनुज्ञायते मनस इति । एवमन्तःकरणं नाना वृत्तय इति सत्य-  
भेदे वृत्तेरिदमुच्यते ॥

स्फटिकान्यत्वाभिमानवत्तदन्यत्वाभिमानः ॥ ९ ॥

तस्यां वृत्तौ नानात्वाभिमानः यथा द्रव्यान्तरोपहिते स्फटिके अन्य-  
त्वाभिमानो नीलो लोहित इति । एवं विषयान्तररोपधानादिति ॥

न हेत्वभावात् ॥ १० ॥

स्फटिकान्यत्वाभिमानवदयं ज्ञानेषु नानात्वाभिमानो गौणो न पुन-  
र्गन्धाद्यन्यत्वाभिमानवदिति हेतुर्नास्ति हेत्वभावादनुपपन्न इति, समानो



हेत्वभाव इति चेत् न ज्ञानानां क्रमेणोपजननापायदर्शनात् क्रमेण  
हीन्द्रियार्थेषु ज्ञायान्युपजायन्ते चापयन्ति चेति दृश्यते तस्माद्व्यन्यत्वा-  
भिमानवदयं ज्ञानेषु नानात्वाभिमान इति ॥ स्फटिकान्यत्वाभिमानव-  
दित्येतददृष्टमात्रः क्षणिकत्वाद्याह ॥

**स्फटिकेऽप्यपरापरोत्यक्तेः क्षणिकत्वाद्यक्तीनाम-  
हेतुः ॥ ११ ॥**

स्फटिकस्याभेदेनावस्थितस्योपधानभेदान्नानात्वाभिमान इत्ययमविद्य-  
मानहेतुः पक्षः, कस्मात् स्फटिकेऽप्यपरापरोत्यक्तेः, स्फटिकेऽप्यन्याव्य-  
क्तय उत्पद्यन्ते अस्या निरुध्यन्त इति, कथम् क्षणिकत्वं व्यक्तीनां क्षण-  
श्चास्तीयान् कालः, क्षणस्थितिकाः क्षणिकाः कथं पुनर्गम्यते क्षणिका-  
व्यक्तय इति, उपचयापचयप्रबन्धदर्शनाच्छरीरादिषु पक्षिनिर्दत्तस्था-  
हाररसस्य शरीररुधिरादिभावेनोपचयोऽपपद्यश्च प्रबन्धेन प्रवर्तते उप-  
चयाद्यक्तीनामुत्पादः अपचयाद्यक्तिनिरोधः, एवं च सत्यवयवपरिणाम-  
भेदेन वृद्धिः शरीरस्य कालान्तरे गृह्यते इति सोऽयं व्यक्तिमात्रे वेदि-  
तव्य इति ॥

**नियमहेत्वभावाद्व्याख्यादर्शनमभ्यनुज्ञा ॥ १२ ॥**

पदार्थानां सर्वास्तु व्यक्तिपूवचयापचयप्रबन्धः शरीरवदिति नायं  
नियमः, कस्मात् हेत्वभावात्, नात्र प्रत्यक्षमनुमानं वा प्रतिपादकमस्तीति,  
तस्माद्व्याख्यादर्शनमभ्यनुज्ञा यत्र यत्रोपचयापचयप्रबन्धो दृश्यते तत्र तत्र  
व्यक्तीनाम-परापरोत्यक्ति-रूपचयापचयप्रबन्धदर्शनेनाभ्यनुज्ञायते यथा  
शरीरादिषु, यत्र यत्र न दृश्यते तत्र तत्र प्रत्याख्यायते यथा मावप्रभ-  
तिषु, स्फटिकेऽप्युपचयापचयप्रबन्धो न दृश्यते तस्मादयुक्तं स्फटिकेऽप्य-  
परापरोत्यक्तिरिति, यथा चार्कस्य कटुकिम्बा सर्वद्रव्याणां कटुकिमानमा-  
पादयेत्, तादृगेतदिति । यथाशेषनिरोधेनापूर्वोत्पादन्निरन्तरं द्रव्य-  
सन्ताने क्षणिकानां मन्यते तस्यैतत् ॥



३ अध्याये २ आह्निकम् ।

१६३

नोत्पत्तिविनाशकारणोपलब्धेः ॥ १३ ॥

उत्पत्तिकारणं तावदुपलभ्यते अवयवोपचयोवस्मोकादीनाम्, विनाशकारणञ्चोपलभ्यते घटादीनामवयवविभागः । यस्य त्वनपचितावयवं निरुद्ध्यते अतुपचितावयवञ्चोत्पद्यते तस्याशेषनिरोधे निरन्त्ये वा पूर्वोत्पादे न कारणमुभयत्वाप्युपलभ्यत इति ॥

क्षीरविनाशे कारणानुपलब्धिवद्ध्युत्पत्तिवच्च  
तदुपपत्तिः ॥ १४ ॥

यथानुपलभ्यमानं क्षीरविनाशकारणं दध्युत्पत्तिकारणञ्चाभ्यनुज्ञायते बध्ना स्फटिकेऽपरापरासु व्यक्तिषु विनाशकारणमुत्पत्तिकारणं चाभ्यनुज्ञेयमिति ॥

लिङ्गतो ग्रहणान्नानुपलब्धिः ॥ १५ ॥

क्षीरविनाशलिङ्गं क्षीरविनाशकारणं दध्युत्पत्ति लिङ्गं दध्युत्पत्तिकारणञ्च गृह्यतेऽतोऽनानुपलब्धिः । विपर्ययस्तु स्फटिकादिषु द्रव्येषु अपरापरोत्पत्तौ व्यक्तीनां न लिङ्गमस्तीत्यनुवृत्तिरेवेति, अत्र कश्चित् परिहारमाह ॥

न पयसः परिणामगुणान्तरप्रादुर्भावात् ॥ १६ ॥

पयसः परिणामो न विनाश इत्येक आह । परिणामश्चावस्थितस्य द्रव्यस्य पूर्वधर्मनिवृत्तौ धर्मान्तरौत्पत्तिरिति । गुणान्तरप्रादुर्भाव इत्यपर आह गुणान्तरप्रादुर्भावश्च सतो द्रव्यस्य पूर्वगुणनिवृत्तौ गुणान्तरमुत्पद्यत इति स खल्वेकपक्षीभाव इव, अत्र तु प्रतिषेधः ॥

व्यूहान्तराद्द्रव्यान्तरोत्पत्तिदर्शनं पूर्वद्रव्य-  
निवृत्तेरनुमानम् ॥ १७ ॥



सम्पूर्वनलक्षणादवयवव्यूहाद्व्यन्तरेदध्वन्युत्पन्ने गृह्यमाणे पूर्वं पयो-  
द्रव्यमवयवविभागेष्वनित्यत्तमित्यनुमीयते यथा सूदवयवानां व्यूहान्तरा-  
द्व्यन्तरे स्थात्यासुत्पन्नायां पूर्वं स्फुटिगुडद्रव्यं सूदवयवविभागेष्वनित्य-  
त्तइति सूदवयवान्वयः पयोदध्नेर्नाशेषनिरोधे निरन्वयो द्रव्यान्तरोत्-  
पादो घटत इति अभ्यनुज्ञाय च निष्कारणं क्षीरविनाशं दध्युत्पादञ्च  
प्रतिषेध उच्यते इति ॥

**क्वचिद्विनाशकारणानुपलब्धेः क्वचिच्चोपलब्धे-  
रनेकान्तः ॥ १८ ॥**

क्षीरदधिवन्निष्कारणौ विनाशोत्पादौ स्फटिकादिव्यक्तीनामिति  
नायमेकान्त इति, कस्मात् हेत्वभावात् नात्रहेतुरस्ति अकारणौ विना-  
शोत्पादौ स्फटिकादि व्यक्तीनां क्षीरदधिवत् न पुनर्विनाशकारणाभावात्  
कुम्भस्य विनाशः उत्पत्तिकारणाभावाच्चेत्युक्तिः एवं स्फटिकादिव्यक्तीनां  
विनाशोत्पत्तिकारणाभावाद्विनाशोत्पत्तिभाव इति निरधिष्ठानञ्च दृष्टान्त-  
वचनम् गृह्यमाणयोर्विनाशोत्पादयोः स्फटिकादिषु स्थाय्यमाश्रयवान्  
दृष्टान्तः क्षीरविनाशकारणानुपलब्धिवद्ध्युत्पलब्धिवच्चेति तौ तु न गृ-  
ह्येते तस्मान्निरधिष्ठानोऽयं दृष्टान्त इति, अभ्यनुज्ञाय च स्फटिकस्योत्पाद-  
विनाशौ योऽत्र साधकस्तस्याभ्यनुज्ञानादप्रतिषेधः । कुम्भवन्न निष्कारणौ  
विनाशोत्पादौ स्फटिकादीनामित्यभ्यनुज्ञेयोऽयं दृष्टान्तः प्रतिषेद्धमशक्य-  
त्वात् क्षीरदधिवत्तु निष्कारणौ विनाशोत्पादाविति शक्योऽयं प्रतिषेद्धं  
कारणतो विनाशोत्पत्तिदर्शनात् क्षीरदध्नेर्विनाशोत्पत्ती पश्यता तत्-  
कारणमनुमेयम्, कार्यलिङ्गं हि कारणमित्युपपन्नमनित्या बुद्धिरिति ।  
इदन्तु चिन्त्यते कस्येवं बुद्धिः आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानां गुण इति प्रसिद्धोऽपि  
च खल्वयमर्थः परीक्षाशेषं प्रवर्त्तयामीति प्रक्रियते सोऽयं बुद्धौ सन्नि-  
कर्षोत्पत्तेः संशयः विशेषस्याग्रहणादिति । तत्रायं विशेषः ॥

**नेन्द्रियार्थयोस्तद्विनाशोऽपि ज्ञानावस्थानात् ॥ १९**



## ३ अध्याये २ आह्निकम् ।

११५

नेन्द्रियाणामर्थानां वा गुणो ज्ञानं तेषां विनाशे ज्ञानस्य भावात्,  
भवति खल्विदमिन्द्रियेऽर्थे च विनष्टे ज्ञानमद्राक्षमिति न च ज्ञातरि वि-  
नष्टे ज्ञानमवितुमर्हति अन्यत् खलु चैतदिन्द्रियार्थसन्निकर्षजं ज्ञानं यदि-  
न्द्रियार्थं विनाशे न भवति, इदमन्यदात्मजनः सन्निकर्षजं तस्य युक्तोभाव  
इति, सृतिः खल्वियमद्राक्षमिति पूर्वदृष्टविषया न च विज्ञातरि नष्टे  
पूर्वोपलब्धेः स्मरणं युक्तम्, न चान्यदृष्टमन्यः स्मरति, न च मनसि ज्ञात-  
र्यभ्युपगम्यमाने शक्यमिन्द्रियार्थयोर्ज्ञातत्वं प्रतिपादयितुम्, अस्तु तर्हि  
मनो गुणो ज्ञानम् ॥

युगपज्ज्ञेयानुपलब्धेऽपि न मनसः ॥ २० ॥

युगपज्ज्ञेयानुपलब्धिरन्तःकरणस्य लिङ्गम्, तत्र युगपज्ज्ञेयानुप-  
लब्ध्यानुमीयते अन्तःकरणं न तस्य गुणो ज्ञानम्, कस्य तर्हि ज्ञस्य वशि-  
त्वात्, वशी ज्ञाता, वश्यं करणम्, ज्ञानगुणत्वे च करणभावनिरुक्तिः  
प्राणादिसाधनस्य च ज्ञातृगन्धादिज्ञानाभावादनुमीयते अन्तःकरणसाध-  
नस्य सुखादिज्ञानं सृतिरिति तत्र यज्ज्ञानगुणं स आत्मा, यत्तु सुखा-  
द्युपलब्धिसाधनमन्तःकरणं मनस्तदिति संज्ञाभेदमात्रवार्थभेदइति युग-  
पज्ज्ञेयानुपलब्धेश्चायोगिन इति चार्थः योगी खलु ऋद्धौ प्रादुर्भूतायां  
विकरणधर्मा निर्माय सेन्द्रियाणि शरीरान्तराणि तेषु तेषु युगपज्-  
ज्ञेयानुपलभते, तच्चैतद्विभौ ज्ञातर्युपपद्यते नाणौ मनसीति, विभुत्वे वा  
मनसो ज्ञानस्य नात्मगुणत्वप्रतिषेधः, विभु॥ मनस्तदन्तःकरणभूतमिति तस्य  
सर्वेन्द्रियैर्युगपत् संयोगाद्युगपज्ज्ञानान्युत्पद्येरन्निति ॥

तदात्मगुणत्वेऽपि तुल्यम् ॥ २१ ॥

विभुरात्मा सर्वेन्द्रियैः संयुक्त इति युगपज्ज्ञानोत्पत्तिप्रसङ्ग इति ॥

इन्द्रियैर्मनसः सन्निकर्षाभावात् तदनुत्पत्तिः ॥ २२ ॥

गन्धाद्युपलब्धेरिन्द्रियार्थसन्निकर्षवदिन्द्रियमनःसन्निकर्षोऽपि कार-



११६

## न्यायदर्शनवाक्यायनभाष्ये

णम् तस्य चावैगपद्यमणुत्वात् मनसः, अवैगपद्यादतुत्यत्तिर्युगपज्-  
ज्ञानानामात्मगुणत्वेऽपीति । यदि पुनरात्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षमात्रादु-  
गम्भादिज्ञानसत्त्वयते ॥

## नोत्पत्तिकारणानपदेशात् ॥ २३ ॥

आत्मेन्द्रियसन्निकर्षमात्रादुगम्भादिज्ञानसत्त्वयत इति नातोत्पत्तिका-  
रणमपदिश्यते येनैतत् प्रतिपद्येमहीति ॥

विनाशकारणानुपलब्धेऽवस्थाने तन्नित्यत्वप्र-  
सङ्गः ॥ २४ ॥

तदात्मगुणत्वेऽपि तत्त्वमित्येतदनेन ससञ्चीयते । द्विविधो हि गुण-  
नाशहेतुः, गुणानामवस्थाभावो विरोधी च गुणः, नित्यत्वादात्मनोऽनुप-  
पन्नः विरोधी च बुद्धेर्गुणो न गृह्यते तस्मादात्मगुणत्वे सति बृद्धेर्नि-  
त्यत्वप्रसङ्गः ॥

## अनित्यत्वग्रहाद्बुद्धेर्बुद्धान्तरादिनाशः शब्दवत् ॥ २५ ॥

अनित्या बुद्धिरिति सर्वशरीरिणां प्रत्यात्मवेदनीयमेतत् गृह्यते च  
बुद्धिसन्तानसत्त्वं बुद्धेर्बुद्धान्तरं विरोधी गुण इत्यनुमीयते, यथा शब्द-  
सन्ताने शब्दः शब्दान्तरविरोधीति, असङ्ख्येषु ज्ञानकारितेषु संस्कारेषु  
स्मृतिहेतुष्व्वात्मसमवेतेष्व्वात्मगुणसोऽव सन्निकर्षे समाने स्मृतिहेतौ सति न  
कारणस्यावैगपद्यमस्तीति युगपत् स्मृत्वः प्रादुर्भवेयुः यदि बुद्धिरात्मगुणः  
स्यादिति । तत्र कश्चिद् सन्निकर्षस्यावैगपद्यमपवादयिष्यन्नाह ॥

ज्ञानसमवेतात्मप्रदेशसन्निकर्षान्मनसः स्मृत्युत्-  
पत्तेर्न युगपदुत्पत्तिः ॥ २६ ॥



## ३ अध्याये २ आङ्गिकम् ।

११७

ज्ञानसाधनः संस्कारो ज्ञानमित्युच्यते ज्ञानसंस्कृतैरात्मप्रदेशैः पर्यायेण  
मनः सन्निकष्यते आत्ममनःसन्निकर्षात् स्मृतयोऽपि पर्यायेन भवन्तीति ॥

**नान्तःशरीरवृत्तित्वान्मनसः ॥ २७ ॥**

सदेहस्यात्मनो मनसा संयोगो विपच्यमानकर्माशयसहितो जीवनमि-  
ष्यते । तत्रास्य प्राक् प्रापणादन्तःशरीरे वर्त्तमानस्य मनसः शरीराद्व-  
हिर्ज्ञानसंस्कृतैरात्मप्रदेशैः संयोगो नोपपद्यत इति ॥

**साध्यत्वादहेतुः ॥ २८ ॥**

विपच्यमानकर्माशयमात्रं जीवनम्, एवञ्च सति साध्यमन्तःशरीर-  
वृत्तित्वं मनस इति ॥

**स्मरतः शरीरधारणोपपत्तेरप्रतिषेधः ॥ २९ ॥**

सुसूक्ष्मया खल्वयं मनः प्रणिदधानः चिरादपि कश्चिदर्थं स्मरति  
स्मरतश्च शरीरधारणं दृश्यते आत्ममनःसन्निकर्षजश्च प्रयत्नो द्विविधः  
धारकः प्रेरकश्च, निवृत्ते च शरीराद्वहिर्मनसि धारकस्य प्रयत्नस्याभावा-  
द्गुरुत्वात्पतनं स्यात् शरीरस्य स्मरत इति ॥

**न तदाशुगतित्वान्मनसः ॥ ३० ॥**

आशुगति मनस्तस्य बहिः शरीरादात्मप्रदेशेन ज्ञानसंस्कृतेन सन्नि-  
कर्षः प्रत्यागतस्य च प्रयत्नोत्पादनमुभयं युज्यत इति, उत्पाद्य वा धारकं  
प्रयत्नं शरीरान्निःसरणं मनसोऽतस्तत्त्वोपपन्नं धारणमिति ॥

**न स्मरणकालानियमात् ॥ ३१ ॥**

किञ्चित् क्षिप्रं स्मर्यते किञ्चिच्चिरेण, यदा चिरेण तदा सुसूक्ष्मया  
मनसि धार्यमाणे चिन्ताप्रवन्ने सति कस्यचिदर्थस्य लिङ्गभूतस्य चिन्तन-  
माराधितं स्मृतिहेतुर्भवति तत्रैतच्चिरनिश्चरिते मनसि नोपपद्यते इति,



शरीरसंयोगानपेक्षयात्मन संयोगो न सृष्टिहेतुः शरीरस्य भोगायतन-  
त्वात् उपभोगायतनं पुरुषस्य ज्ञातुः शरीरं न ततो निश्चरितस्य मनस  
आत्मसंयोगमात्रं ज्ञानसुखादीनामुत्पत्तौ कल्पते, कृप्तौ वा शरीरवैय-  
र्थ्यमिति ॥

### आत्मप्रेरणयदृच्छाज्ञताभिश्च न संयोगविशेषः ३२

आत्मप्रेरणेन वा मनसो बहिः शरीरात् संयोगविशेषः स्यात्, यदृच्छया  
वाकस्मिकतया, ज्ञतया वा मनसः सर्वथा चानुपपत्तिः, कथम् सत्तैव्य-  
त्वादिच्छातः स्मरणज्ञानासंभवाच्च, यदि तावदात्माऽसुध्यार्थस्य सृष्टिहेतुः  
संस्कारः असुध्निन्नात्मप्रदेशे समवेतस्तेन मनः संयुज्यतामिति मनः प्रेर-  
यति तदा सृष्टेः एवासावर्थो भवति न सत्तैव्यः । न चात्मप्रत्यक्षआत्म-  
प्रदेशः संस्कारोवा तत्त्वानुपपन्नात्मप्रत्यक्षेण संवित्तिरिति, सुसूक्ष्मयां पाथं  
मनः प्रणिदधानश्चिरादपि कश्चिदर्थं स्मरति नाकस्मात्, ज्ञत्वञ्च मनसो-  
नास्ति ज्ञानप्रतिषेधादिति, एतच्च ॥

### व्यासक्तमनसः पादव्यथनेन संयोगविशेषेण समानम् ॥ ३३ ॥

यदा खल्वयं व्यासक्तमनाः कचिद्देशे शर्करया कण्टकेन वा पादव्यथ-  
नमाप्नोति तदात्मनः संयोगविशेष एषितव्यः, दृष्टं हि दुःखं दुःखवेद-  
नञ्चेति तत्त्वायं समानः प्रतिषेधः, यदृच्छया तु विशेषो नाकस्मिकी  
क्रिया, नाकस्मिकः संयोगः इति, कर्मादृष्टसुपभोगार्थं क्रियाहेतुरितिवेत्  
समानम्, कर्मादृष्टं पुरुषस्यं पुरुषोपभोगार्थमनसि क्रियाहेतुरेवं दुःखं  
दुःखसंप्रेदनञ्च सिध्यतीत्येवञ्चेन्नन्यसे समानं सृष्टिहेतावपि संयोगविशेषो  
भविष्येति । तत्र यदुक्तंमात्मप्रेरणयदृच्छाज्ञताभिश्च न संयोगविशेष-  
इत्ययमप्रतिषेध इति पूर्वस्तु प्रतिषेधो नान्तःशरीरवृत्तित्वात्मनस इति कः  
खल्विदानीं कारणयोगपदसद्भावे युगपदस्मरणस्य हेतुरिति ॥

### प्रणिधानलिङ्गादिज्ञानानामयुगपद्भावादयुग- पदस्मरणम् ॥ ३४ ॥



## ३ अध्याये २ आङ्गिकम् ।

११६

यथा खत्वात्ममनसोः सन्निकर्षः संस्कारश्च स्मृतिहेतुरेवं प्राणिधानं  
लिङ्गादिज्ञानानि तानि च न युगपद्व्यवन्ति तत्कृता स्मृतीनां युगपद-  
नुत्पत्तिरिति ॥

**प्रातिभवत्तु प्राणिधानाद्यनपेक्षे स्मार्त्ते यौगपद्य-  
प्रसङ्गः ॥ ३५ ॥**

यत् खल्विदं प्रतिभमिव ज्ञानं प्राणिधानाद्यनपेक्षं स्मार्त्तमुत्पद्यते  
कदाचित्तस्य युगपदुत्पत्तिप्रसङ्गो हेत्वभावात् सतः स्मृतिहेतोरसम्भेदनात्  
प्रातिभेज समानाभिमानः, बह्वर्धविषये वै चिन्ताप्रबन्धे कश्चिदेवार्थः कस्य-  
चित् स्मृतिहेतुः तस्यानुचिन्तनात् तस्य स्मृतिर्भवति, नचायं स्मार्त्ता सर्वं  
स्मृतिहेतुं संवेदयते, एवं मे स्मृतिरुत्पन्नेत्यसंवेदनात्, प्रातिभमिवज्ञान-  
मिदं स्मार्त्तमिति । प्रातिभे कथमिति चेत् पुरुषकर्म्मविशेषादुपभोगवन्नि-  
ग्रमः । प्रातिभमिदानीं ज्ञानं युगपत् कस्मात् नोत्पद्यते यद्युपभोगार्थं  
कर्म्म युगपदुपभोगं न करोति । एवं पुरुषकर्म्मविशेषः प्रातिभाहेतुर्न युग-  
पदनेकं प्रातिभं ज्ञानमुत्पादयति, हेत्वभावादयुक्तमेतदिति चेत् न कर-  
णस्य प्रत्ययपर्याये सामर्थ्यात्, उपभोगवन्निग्रमइत्यस्ति दृष्टान्तः, हेतुर्ना-  
स्तीति चेन्नन्यसे न करणस्य प्रत्ययपर्याये सामर्थ्यात् नैकस्मिन् ज्ञेये युग-  
पदनेकं ज्ञानमुत्पद्यते, नचानेकस्मिन्स्तदिदं दृष्टेन प्रत्ययपर्यायेषामु-  
भेयं करणसामर्थ्यमित्यस्मूतमिति न ज्ञातृविकरणधर्म्मिणो देहनानात्वे  
प्रत्यययौगपद्यादिति, अथ द्वितीयः प्रतिषेधः अवस्थितशरीरस्य चानेकज्ञान-  
समवायादेकप्रदेशे युगपदनेकार्थस्मरणं स्यात् क्वचिद्देशवस्थितशरीरस्य  
ज्ञातृरिन्द्रियार्थप्रबन्धेन ज्ञानमनेकमेकस्मिन्नात्मप्रदेशे समवैति तेन यदा  
मनःसंयुज्यते तदा ज्ञातपूर्वस्थानेकस्य युगपत् स्मरणं प्रसज्यते प्रदेशस्य  
संयोगपर्यायाभावोदिति आत्मप्रदेशानामद्रव्यान्तरत्वादेकार्थसमवायस्या-  
विशेषे स्मृतियौगपद्यप्रतिषेधातुपपत्तिः, शब्दसन्ताने तु श्रोताधिष्ठान-  
प्रत्यासत्त्या शब्दश्रवणवत् संस्कारप्रत्यासत्त्या मनसः स्मृत्युत्पत्तेर्न युगपदुत्प-  
त्तिप्रसङ्गः, पूर्वं एव तु प्रतिषेधो नानेकज्ञानसमवायादेकप्रदेशे युगपत्



वृत्तिप्रसङ्ग इति, यत्पुरुषधर्माज्ञानमन्तः करणस्येच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखानि धर्मा इति कस्यचिद्दर्शनं तत् प्रतिषिध्यते ॥

**ज्ञास्येच्छाद्वेषनिमित्तत्वादारम्भनिवृत्त्योः ॥ ३६ ॥**

अयं खलु जानीते तावत् इदं मे सुखसाधनमिदं मे दुःखसाधनमिति, ज्ञातं सुखसाधनमाप्नुमिच्छति दुःखसाधनं हातुमिच्छति, प्राप्तुं इच्छाप्रयुक्तस्यास्य सुखसाधनाविषये समीहाविशेषआरम्भः जिहासाप्रयुक्तस्य दुःखसाधनपरिवर्जनं निवृत्तिरेव ज्ञानेच्छाप्रयत्नसुखदुःखानामेकेनाभिसम्बन्धः एककर्तृकत्वं ज्ञानेच्छाप्रवृत्तीनां समानाश्रयत्वञ्च, तस्माज्ज्ञास्येच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखानि धर्माः नाचेतनस्येति, आरम्भनिवृत्त्योश्च प्रत्यगात्मनि दृष्टत्वात्परत्वानुमानं वेदितव्यमिति । अत्र भूतचैतनिक आह ॥

**तल्लिङ्गत्वादिच्छाद्वेषयोः पार्थिवाद्येष्वप्रतिषेधः ॥ ३७ ॥**

आरम्भनिवृत्तिलिङ्गाविच्छाद्वेषाविति यस्यारम्भनिवृत्ती तस्येच्छाद्वेषौ तस्य ज्ञानमिति प्राप्तं पार्थिवाप्यतैजसवायवीयानां शरीराणामारम्भनिवृत्तिदर्शनादिच्छाद्वेषज्ञानैर्योग इति चैतन्यम् ॥

**परश्चादिष्वारम्भनिवृत्तिदर्शनात् ॥ ३८ ॥**

शरीरेष्वैतन्यनिवृत्तिरारम्भनिवृत्तिदर्शनादिच्छाद्वेषज्ञानैर्योग इति प्राप्तम् परश्चादेः करणास्यारम्भनिवृत्तिदर्शनाच्चैतन्यमिति । अथ शरीरस्येच्छादिभिर्योगः परश्चादेस्तु करणस्यारम्भनिवृत्ती व्यभिचरतः न तर्ह्युभयं हेतुः पार्थिवाप्यतैजसवायवीयानां शरीराणामारम्भनिवृत्तिदर्शनादिच्छाद्वेषज्ञानैर्योग इति । अयन्तर्ह्यन्योऽर्थः तल्लिङ्गत्वादिच्छाद्वेषयोः पार्थिवाद्येष्वप्रतिषेधः पृथिव्यादीनां भूतानामारम्भस्तावत् त्वसस्यावरशरीरेषु तदवयवव्यूहलिङ्गः प्रवृत्तिविशेषः, लोष्टादिषु च लिङ्गाभावात् प्रवृत्तिविशेषाभावात् निवृत्तिः आरम्भनिवृत्तिलिङ्गाविच्छाद्वेषाविति पार्थिवाद्येष्वनुषु तद्दर्शनादिच्छाद्वेषयोस्तद्योगाज्ज्ञानयोग इति सिद्धं भूतचैतन्यमिति ॥



३ अध्याये २ आङ्गिकम् ।

१२१

कुम्भादिष्वनुपलब्धे रहेतुः ॥ ३६ ॥

कुम्भादिष्टदवयवानां व्यूहलिङ्गः प्रवृत्तिविशेष आरम्भः, सिकता-  
दिषु प्रवृत्तिविशेषाभावोनिवृत्तिः, न च ऋत्सिकतानामारम्भनिवृत्ति-  
दर्शनादिच्छादेषप्रयत्नज्ञानैर्योगः, तस्मात् तल्लिङ्गत्वादिच्छादेषयोरित्य-  
हेतुरिति ॥

नियमानियमौ तु तद्विशेषकौ ॥ ४० ॥

तयोरिच्छादेषयोरनियमानियमौ विशेषकौ भेदकौ तस्येच्छादेषनि-  
मित्ते प्रवृत्तिनिवृत्तौ न स्वाश्रये किन्तर्हि प्रयोज्याश्रये, तत्र प्रयुज्यमानेषु  
भूतेषु प्रवृत्तिनिवृत्तौ स्तः न सर्वेषु इत्यनियमोपपत्तिः । यस्य तु ज्ञानाद्-  
भूतानामिच्छादेषनिमित्ते आरम्भनिवृत्तौ स्वाश्रये तस्य नियमः स्यात् ।  
यथा भूतानां गुणान्तरनिमित्ता प्रवृत्तिर्गुणप्रतिबन्धाच्च निवृत्तिर्भूतमात्रे  
भवति नियमेन एवं भूतमात्रे ज्ञानेच्छादेषनिमित्ते प्रवृत्तिनिवृत्तौ स्वा-  
श्रये स्याताम् । तस्मात् प्रयोजकाश्रिताज्ञानेच्छादेषप्रयत्नाः प्रयोज्याश्रये  
तु प्रवृत्तिनिवृत्तौ इति सिद्धम् । एकशरीरे तु ज्ञातवज्ज्वलं निरनुमा-  
मानम् । भूतचैतनिकस्यैकशरीरे बहूनि भूतानि ज्ञानेच्छादेषप्रयत्नगुणा-  
नीति ज्ञातवज्ज्वलं प्राप्तम्, कोमिति ब्रुवतः प्रमाणं नास्ति । यथा नाना-  
शरीरेषु नाना ज्ञातारो बुद्धादिगुणव्यवस्थानात्, एवमेकशरीरेऽपि बु-  
द्धादिव्यवस्थानुमानं स्यात् ज्ञातवज्ज्वलस्येति दृष्टवान्यगुणनिमित्तः प्र-  
वृत्तिविशेषो भूतानाम् सोऽनुमानमन्यत्वापि दृष्टः करणलक्षणेषु भूतेषु  
परश्चादिपूपादानलक्षणेषु च ऋत्प्रभृतिष्वन्यगुणनिमित्तः प्रवृत्तिविशेषः  
सोऽनुमानम् अन्यत्वापि च । तस्यस्यावरशरीरेषु तदवयवव्यूहलिङ्गः प्रवृ-  
त्तिविशेषो भूतानामन्यगुणनिमित्त इति स च गुणः प्रयत्नसमानाश्रयः, सं-  
स्कारो धर्माधर्मसमाख्यातः सर्वार्थः पुरुषार्थाराधनाय प्रयोजको भूतानां  
प्रयत्नवदिति । आत्मास्तित्वहेतुभिरात्मनिव्यवस्थितत्वहेतुभिश्च भूतचैतन्यप्रति-  
षेधः कृतो वेदितव्यः, नेन्द्रियार्थयोस्तद्विनाशेऽपि ज्ञानावस्थानादिति च  
समानः ५ तिषेध इति, क्रियामात्रं क्रियोपरममात्रञ्च प्रवृत्तिनिवृत्तौ इत्य-

१ १



भिप्रेत्योक्तनल्लिङ्गत्वादच्छादोपयोः पार्थिवाद्येष्वप्रतिषेधः, अन्यथात्वमे  
आरम्भनिवृत्ती आख्याते न च तथाविधे पृथिव्यादिषु दृश्येते, तस्माद-  
युक्तं तल्लिङ्गत्वादच्छादोपयोः पार्थिवाद्येष्वप्रतिषेध इति । भूतेन्द्रिय-  
मनसां ममानः प्रतिषेधोमनस्तूदाहरणमात्रम् ॥

यथोक्तहेतुत्वात् पारतन्त्र्यादकृताभ्यागमाच्च न  
मनसः ॥ ४१ ॥

दच्छादोपप्रवृत्तसुखदुःखज्ञानान्यात्मनोलिङ्गमित्यतः प्रभृति यथोक्तं  
संगृह्यते तेन भूतेन्द्रियमनसाञ्चैतन्य प्रतिषेधः । पारतन्त्र्यात् परतन्त्राणि  
भूतेन्द्रियमनांसि धारणप्रेरणव्यूहनक्रियासु प्रयत्नवशात् प्रवर्तन्ते चैतन्ये  
पुनः स्वतन्त्राणि स्युरिति । अकृताभ्यागमाच्च प्रवृत्तिर्वागबुद्धिशरीरागम  
इति चैतन्ये भूतेन्द्रियमनसां परकृतं कर्म पुरुषेण भुज्यत इति स्यात्  
अचैतन्ये तु तत्त्वाधनस्य स्वकृतकर्मफलोपभोगः पुरुषस्येत्युपपद्यत इति,  
अथायं सिद्धोपसंग्रहः ॥

परिशेषाद्यथोक्तहेतूपपत्तेश्च ॥ ४२ ॥

आत्मगुणोद्धानमिति प्रकृतम्, परिशेषो नाम प्रसक्तप्रतिषेधेऽन्यत्वा-  
प्रसङ्गाच्छिष्यमाणे सम्यक्तयः, भूतेन्द्रियमनसां प्रतिषेधे द्रव्यान्तरं न प्रस-  
ज्यते शिष्यते चात्मा तस्य गुणोद्धानमिति ज्ञायते, यथोक्तहेतूपपत्तेश्चेति  
दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणादित्येवमादीनामात्मप्रतिपत्तिहेतूनामप्रति-  
षेधादिति परिशेषज्ञापनार्थं प्रकृतस्थापनादिज्ञानार्थञ्च यथोक्तहेतूप-  
पत्तिवचनमिति । अथवोपपत्तेश्चेति हेतुन्तरमेवेदम् नित्यः खल्वयमात्मा  
यस्मादेकस्मिन् शरीरे धर्मश्चरित्वा कायभेदात् स्वर्गे देवेषूपपद्यते अधर्म-  
श्चरित्वा देहभेदाच्चरन्नेषूपपद्यत इति उपपत्तिः शरीरान्तरप्राप्तिवश्या-  
सा सति सत्ये नित्ये चाययवती बुद्धिप्रवन्धमात्रे तु निरात्मके निराश्रया  
नोपपद्यत इति । एकसत्त्वाधिष्ठानज्ञानेकशरीरयोगः संसार उपपद्यते ।  
शरीरप्रवन्धोच्छेदश्चापवर्गो मुक्तिरित्युपपद्यते, बुद्धिसन्नतिसात्वे त्वेक-



## ३ अध्याये २ आह्निकम् ।

१२३

सत्त्वानुपपत्तेर्न कश्चिद्दीर्घमध्वानं सन्धावति न कश्चिच्छरीरप्रवन्धाद्विसृ-  
ज्यत इति संसारापवर्गानुपपत्तिरिति बुद्धिसन्ततिमात्रे च सत्वभेदात्  
सर्वमिदं प्राणिव्यवहारजातमप्रतिमंहितमव्यावृत्तमपरिनिष्ठनञ्च स्यात्,  
ततः स्मरणाभावाच्चान्यदृष्टमन्यः स्मरतीति, स्मरणञ्च खलु पूर्वज्ञातस्य  
समानेन ज्ञात्वा ग्रहणम् अज्ञासिषमसुमर्थं ज्ञेयमिति, सोऽयमेको ज्ञाता  
पूर्वज्ञातमर्थं गृह्णाति तच्चास्य ग्रहणं स्मरणमिति, तद्बुद्धिप्रवन्धमात्रे  
निरात्मके नोपपद्यते ॥

## स्मरणत्वात्मनोऽज्ञस्वाभाव्यात् ॥ ४३ ॥

उपपद्यत इति, आत्मन एव स्मरणं न बुद्धिसन्ततिमात्रस्येति,  
तद्वद्देवधारणे, कथम् ज्ञस्वभावत्वात् ज्ञदत्तस्य स्वभावः स्वोऽर्थः । अयं  
खलु ज्ञास्यति जानाति अज्ञासीदिति त्रिकालविषयेणानेकेन ज्ञानेन  
सम्बध्यते तच्चास्य त्रिकालविषयं ज्ञानं प्रत्यात्मवेदनीयम् ज्ञास्यामि जा-  
नामि अज्ञासिषमिति वर्त्तते तदस्यायं स्वोऽर्थस्तस्य स्मरणं न बुद्धिप्रवन्ध-  
मात्रस्य निरात्मकस्येति । स्मृतिहेतूनामयोगपद्याद्युपपदस्मरणमित्युक्तम्,  
अथ केभ्यः स्मृतिरुत्पद्यते इति, स्मृतिः खलु ॥

प्रणिधाननिबन्धाभ्यासलिङ्गलक्षणसादृश्यपरि-  
ग्रहाश्रयाश्रितसम्बन्धानन्तर्यवियोगैककार्यविरो-  
धातिशयप्राप्तिव्यवधानसुखदुःखेच्छाद्वेषभयाऽर्थि-  
त्वक्रियारागधर्माधर्मनिमित्तेभ्यः ॥ ४४ ॥

सुसमूर्धया मनसो धारणं प्रणिधानम्, सुसमूर्धितलिङ्गचिन्तनञ्चार्थ-  
स्मृतिकारणम्, निबन्धः खल्वेकग्रन्थोपयमोऽर्थानाम् एक ग्रन्थोपयताः  
खल्वर्था अन्योऽन्यस्मृतिहेतव आसुपूर्वोत्तरतया वा भवन्तीति । धारणा-  
यास्त्वक्तो वा, प्रज्ञातेषु वस्तुषु स्मर्त्तव्यानामुपनिक्षेपोनिबन्ध इति,



अभ्यासस्तु समाने विषये ज्ञानानामस्यावृत्तिरभ्यासजनितः संस्कार आत्म-  
गुणोऽभ्यासशब्देनोच्यते स च स्मृतिहेतुः समान इति, लिङ्गं पुनः संयो-  
गिसमवायेकार्थसमवायिविरोधिचेति, संयोगी यथा धूमोऽग्नेः, गो-  
विषाणं, पाणिः पादस्य, रूपं स्पर्शस्य, अभूतं भूतस्येति । लक्षणं  
पञ्चवयवस्य गोत्रस्य स्मृतिहेतुः विदानामिदं गर्गाणामिदमिति, सादृश्यं  
चित्तगतं प्रतिरूपकं देवदत्तस्येत्येवमादि, परिग्रहात् स्वेन वा स्वामो  
स्वामिना वा स्वं स्मर्यते, आश्रयात् ग्रामण्या तदधीनं स्मरति । आश्रि-  
तात् तदधीनेन ग्रामण्यमिति, सम्बन्धात् अन्तेवासिना गुरुं स्मरति  
ऋत्विजा याज्यमिति, आनन्तर्यात् इति करणीयेष्वर्थेषु, विद्योगात् येन  
विप्रयुज्यते तद्विद्योगप्रतिसम्बेदी भृशं स्मरति, एककार्यात् कर्त्तृन्तर-  
दर्शनात् कर्त्तृन्तरे स्मृतिः, विरोधात् विजिगोषमाणयोरन्यतरदर्शनादन्य-  
तरः स्मर्यते, अतिशयात् येनातिशय उत्पादितः, प्राप्ते, यतो येन किञ्चित्  
प्राप्तमाप्तव्यं वा भवति तमभीक्ष्णं स्मरति, व्यवधानात् कोशादिभिरसि-  
प्रभृतीनि स्मर्यन्ते, सुखदुःखाभ्यां तद्भेदः स्मर्यते, इच्छाद्वेषाभ्यां यमिच्छति  
यच्च द्वेष्टि तं स्मरति, भयात् यतो बिभेति, अर्थित्वात् येनार्थी भोजने-  
नाच्छादनेन वा, क्रियाया रथेन रथकारं स्मरति, रागात् यस्यां स्त्रियां  
रक्तो भवति तामभीक्ष्णं स्मरति, धर्मात् जात्यन्तरस्मरणमिह चाधीत-  
श्रुतावधारणमिति, अधर्मात् प्रागनुभूतदुःखसाधनं स्मरति, न चैतेषु  
निमित्तेषु युगपत्संवेदनानि भवन्तीति युगपदस्मरणमिति, निदर्शनञ्चेदं  
स्मृतिहेतूनां न परिसङ्ख्यानमिति, अनित्यायाञ्च बुद्ध्यावुत्पन्नापवर्गित्वात्  
कालान्तरावस्थानाच्चा नित्यानां संशयः । किमुत्पन्नापवर्गिणी बुद्धिः शब्द-  
वत् आहोस्वित् कालान्तरावस्थायिनी कुम्भवदिति, उत्पन्नापवर्गिणीति  
पक्षः परिगृह्यते कस्मात् ॥

## कर्मणवस्थायिग्रहणात् ॥ ४५ ॥

कर्मणोऽनवस्थायिनो ग्रहणादिति क्षिप्रस्वेषोरापतनात् क्रिया-  
सन्तानो गृह्यते प्रत्यर्थनियमाच्च बुद्धीनां क्रियासन्तानवद्बुद्धिसन्तानोप-  
पत्तिरिति अवस्थितग्रहणे च व्यवधीयमानस्य प्रत्यक्षनिवृत्तेः अवस्थिते



## ३ अध्याये २ आह्निकम् ।

१२५

च कुम्भे गृह्यमाणेन सन्नानेनैव बुद्धिर्वर्त्तते प्राग्व्यवधानात् तेन व्यवहिते प्रत्यक्षं ज्ञानं निवर्त्तते कालान्तरावस्थाने तु बुद्धेर्दृश्यव्यवधानेऽपि प्रत्यक्ष-  
मवतिष्ठेतेति, स्मृतियालिङ्गं बुद्ध्यावस्थाने संस्कारस्य बुद्धिजस्य स्मृतिहेतु-  
त्वात्, यच्च मन्येतावतिष्ठते बुद्धिः दृष्टाहि बुद्धिविषये स्मृतिः सा च बुद्ध्या-  
वनित्यायां कारणाभावान्नस्यादिति, तदिदमलिङ्गं कस्मात् बुद्धिजो हि  
संस्कारो गुणान्तरं स्मृतिहेतुर्न बुद्धिरिति हेत्वभावादयुक्तमिति चेत् ॥

**बुद्ध्यावस्थानात् प्रत्यक्षत्वे स्मृत्यभावः ॥ ४६ ॥**

यावदवतिष्ठते बुद्धिस्तावदसौ बोद्धव्योऽर्थः प्रत्यक्षः, प्रत्यक्षे च स्मृति-  
रनुपपन्नेति ॥

**अव्यक्तग्रहणमनवस्थायित्वात् विद्युत्सम्पाते रू-  
पाव्यक्तग्रहणवत् ॥ ४७ ॥**

यद्युत्पन्नाऽपवर्गिणी बुद्धिः प्राप्तमव्यक्तं बोद्धव्यस्य ग्रहणम्, यथा  
विद्युत्सम्पाते वैद्युतस्य प्रकाशस्यानवस्थानादव्यक्तं रूपमग्रहणमिति व्यक्तं न  
द्रव्याणां ग्रहणं तस्मादयुक्तमेतदिति ॥

**हेतूपादानात् प्रतिषेद्धव्याम्यनुज्ञा ॥ ४८ ॥**

उत्पन्नापवर्गिणी बुद्धिरिति प्रतिषेद्धव्यन्तदेवाभ्यनुज्ञायते विद्युत्सम्पाते  
रूपाव्यक्तग्रहणवदिति यत्पाव्यक्तं ग्रहणं ततोत्पन्नापवर्गिणी बुद्धिरिति  
ग्रहणहेतुविकल्पाद्ग्रहणविकल्पो न बुद्धिविकल्पात्, यदिदं कचिदव्यक्तं  
ग्रहणमयं विकल्पो ग्रहणहेतुविकल्पात्, यत्तानवस्थितो ग्रहणहेतुत्वा-  
व्यक्तं ग्रहणम् यत्तावस्थितस्तत्तव्यक्तं न तु बुद्धेरस्थानानवस्थानाभ्यामिति,  
कस्मात् अर्थग्रहणं हि बुद्धिः यत्तदर्थग्रहणमव्यक्तं व्यक्तं वा बुद्धिः  
सेति विशेषाग्रहणे च सामान्यग्रहणमात्रमव्यक्तग्रहणम् तत्र विषयान्तरे



१२६

## न्यायदर्शनवाक्योपनिषद्भाष्ये

बुद्धान्तरानुत्पत्तिर्निमित्ताभावात्, यत् समानधर्मयुक्तश्च धर्मो गृह्यते  
विशेषधर्मयुक्तश्च तद्व्यक्तं ग्रहणम्, यत् तु विशेषेऽगृह्यमाणे सामान्य-  
ग्रहणमात्रं तदव्यक्तं ग्रहणम्, समानधर्मायोगाच्च विशिष्टधर्मयोगो  
विषयान्तरम् तत् यद्ग्रहणं न भवति तद्ग्रहणनिमित्ताभावात् न बुद्धेरनव-  
स्थानादिति यथाविषयञ्च ग्रहणं व्यक्तमेव प्रत्यर्थनियतत्वाच्च बुद्धीनाम्  
सामान्यविषयञ्च ग्रहणं स्वविषयं प्रत्यव्यक्तं विशेषविषयञ्च ग्रहणं स्ववि-  
षयं प्रत्यव्यक्तं विशेषविषयञ्च ग्रहणं स्वविषयं प्रति व्यक्तम्, प्रत्यर्थनिय-  
ताहि बुद्धयः, तदिदमव्यक्तग्रहणं देशितं क्व विषये बुद्धानवस्थानकारितं  
स्यादिति धर्मिणस्तु धर्मभेदे बुद्धिनानात्वस्य भावाभावाभ्यां तदुपपत्तिः  
धर्मिणः स्वत्वर्थस्य समानाच्च धर्माविशिष्टाश्च तेषु प्रत्यर्थनियता नानाबुद्ध-  
यस्ता उभयो यदा धर्मिणि वर्तन्ते तदा व्यक्तं ग्रहणम् धर्मिणमभिप्रेत्य  
यदा तु सामान्यग्रहणमात्रं तदाऽव्यक्तं ग्रहणमिति, एवं धर्मिणमभिप्रेत्य  
व्यक्ताव्यक्तयोर्ग्रहणयोरुपपत्तिरिति, नवेदमव्यक्तं ग्रहणं बुद्धेर्बोद्धव्यस्य  
वा नवस्थायित्वादुपपद्यत इति इदं हि न ॥

**प्रदीपार्चिः सन्तत्यभिव्यक्तग्रहणवत्तद्ग्रहणम् ॥४८॥**

अनवस्थायित्वेऽपि बुद्धेस्तेषां द्रव्याणां प्रतिपत्तव्यम्, कथम् प्रदी-  
पार्चिः सन्तत्यभिव्यक्तग्रहणवत् प्रदीपार्चिषां सन्तत्या वर्तमानानां ग्रह-  
णानवस्थानं ग्राह्यानावस्थानञ्च प्रत्यर्थनियतत्वात् बुद्धीनां यावन्ति प्रदी-  
पार्चीं पि तावन्त्यो बुद्धय इति दृश्यते चात्र व्यक्तं प्रदीपार्चिषां ग्रहण-  
मिति, चेन्न शरीरगुणः सति शरीरे भावादसति चाभावादिति ॥

**द्रव्ये स्वगुणपरगुणोपलब्धेः संशयः ॥ ५० ॥**

सांशयिकः सति भावः स्वगुणोऽसु द्रवत्वमुपलभ्यते परगुणसोपलब्धता,  
तेनायं संशयः किं शरीरगुणश्चेतना शरीरे गृह्यते अथ द्रव्यान्तरगुण  
इति न शरीरगुणश्चेतना कस्मात् ॥



## यावच्छरीरभावित्वादूपादीनाम् ॥ ५१ ॥

न रूपादिहीनं शरीरं गृह्यते चेतनाहीनन्तु गृह्यते । यद्येषा ता-  
हीना आपः, तस्मान्न शरीरगुणश्चेतनेति, संस्कारवदिति चेन्न कारणानु-  
च्छेदात् यथाविधे द्रव्ये संस्कारस्तथाविधे एवोपरमो न तत्र कारणो-  
च्छेदादत्यन्तं संस्कारानुपपत्तिर्भवति यथाविधे शरीरे चेतुना गृह्यते  
तथाविध एवात्यन्तोपरमश्चेतनाया गृह्यते, तस्मात् संस्कारवदित्यसमः  
समाधिः, अथापि शरीरस्थञ्चेतनोत्पत्तिकारणं स्यात् द्रव्यानरस्यं  
वोभयस्य वा, तत्र नियमहेत्वभावात् शरीरस्थेन कदाचिञ्चेतनोत्पद्यते  
कदाचिन्नेति नियमहेतुर्नास्तीति द्रव्यानरस्थेन शरीर एव चेतनोत्प-  
पद्यते न लोटादिषु इत्यत्र न नियमहेतुरस्तीति उभयस्य निमित्तत्वे  
शरीरसमानजातीये द्रव्ये चेतना नोत्पद्यते शरीर एव चोत्पद्यते इति  
नियमहेतुर्नास्तीति, यच्च मन्येत सति श्यामादिगुणे द्रव्ये श्यामाद्युपरमो  
दृष्टः एवं चेतनोपरमः स्यादिति ॥

## न पाकजगुणान्तरोत्पत्तेः ॥ ५२ ॥

नात्यन्तं रूपोपरमोद्रव्यस्य श्यामे रूपे निवृत्ते पाकजं गुणान्तरं रक्तं  
रूपमुत्पद्यते शरीरेतु चेतनामालोपरमोऽत्यन्तमिति, अथापि ॥

## प्रतिद्वन्द्वसिद्धेः पाकजानामप्रतिषेधः ॥ ५३ ॥

यावत्सु द्रव्येषु पूर्वगुणप्रतिद्वन्द्वसिद्धिस्तावत्सु पाकजोत्पत्तिर्दृश्यते  
पूर्वगुणैः सह पाकजानामवस्थानस्याग्रहणात्, न च शरीरे चेतनाप्रति-  
द्वन्द्वसिद्धौ सहानवस्थायिगुणान्तरं गृह्यते येनानुमीयेत तेन चेतनाया  
विरोधः, तस्मादप्रतिषेद्धा चेतना यावच्छरीरं वर्त्तते न तु वर्त्तते तस्मान्न-  
शरीरगुणश्चेतना इति, इतश्च न शरीरगुणश्चेतना ॥

## शरीरव्यापित्वात् ॥ ५४ ॥

शरीरं शरीरावयवाश्च सर्वे चेतनोत्पत्त्या व्याप्ता इति न कचिदनुत-



१२८

न्यायदर्शनवात्स्यायनभाष्ये

पत्तिश्चेतनायाः, शरीरवच्छरीरावयवाश्चेतना इति प्राप्तं चेतनवृद्धत्वम्,  
तत्र यथा प्रतिशरीरं चेतनवृद्धत्वे सुखदुःखज्ञानानां व्यवस्थालिङ्गमेव-  
मेकशरीरेऽपि स्यात् न तु भवति तस्मान्नशरीरगुणश्चेतनेति, यदुक्तं न  
कचिच्छरीरावयवे चेतनाया अनुत्पत्तिरिति सा न ॥

**केशनखादिष्वनुपलब्धेः ॥ ५५ ॥**

केशेषु नखादिषु चानुत्पत्तिश्चेतनाया इति । अनुपपन्नं शरीरव्या-  
पित्वमिति ॥

**त्वक्पथ्यन्तत्वाच्छरीरस्य केशनखादिष्वप्रसङ्गः ॥ ५६ ॥**

इन्द्रियाश्रयत्वं शरीरलक्षणं त्वक्पथ्यन्नं जीवमनःसुखदुःखसंविच्याय-  
तनभूतं शरीरम्, तस्मान्न केशादिषु चेतनोत्पद्यते । अर्थकारितस्तु शरी-  
रोपनिबन्धः केशादीनामिति, इतश्च न शरीरगुणश्चेतना ॥

**शरीरगुणवैधर्म्यात् ॥ ५७ ॥**

द्विविधश्च शरीरगुणः अप्रत्यक्षश्च गुरुत्वम् इन्द्रियग्राह्यश्च रूपादिः,  
विधानरन्तु चेतना प्रत्यक्षा संवेद्यत्वात् नेन्द्रियग्राह्या मनोविषयत्वात्,  
तस्मात् द्रव्यान्तरगुण इति ॥

**न रूपादीनामितरेतरवैधर्म्यात् ॥ ५८ ॥**

यथेतेरेतरविधर्माणो रूपादयो न शरीरगुणत्वं जहति एवं रूपादि-  
वैधर्म्याच्चेतना शरीरगुणत्वं न हास्यतीति ॥

**ऐन्द्रियकत्वाद्व्यापादीनामप्रतिषेधः ॥ ५९ ॥**

अप्रत्यक्षत्वाच्चेति । यथेतेरेतरविधर्माणो रूपादयो न द्वैविध्यमति-  
वर्त्तेत यदि शरीरगुणः स्यादिति, अतिवर्त्तते तु, तस्मान्न शरीरगुण-  
इति । भूतेन्द्रियमनसां ज्ञानप्रतिषेधात् सिद्धे सत्यारम्भोविशेषशाय-



## ३ अध्याये २ आङ्गिकम् ।

१२६

नार्थम् वक्ष्यते परीक्ष्यमाणं तत्त्वं सुनिश्चिततरं भवतीति परीक्षिता बुद्धिः, मनस इदानीं परीक्षाक्रमः तत् किं प्रतिशरीरमेकमनेकमिति विचारे ॥

## ज्ञानायौपपद्यादेकं मनः ॥ ६० ॥

अस्ति खलु वै ज्ञानायौगपद्यमेकैकस्येन्द्रियस्य यथाविषयम् करण-  
स्यैकप्रत्ययनिर्दृष्टौ सामर्थ्याच्च तदेकत्वे मनसोल्लङ्घनम्, यत्तु खल्विदमि-  
न्द्रियान्तराणां विषयान्तरेषु ज्ञानायौगपद्यमिति तद्विज्ञं कस्मात् सम्भ-  
वति खलु वै वक्ष्यते मनःसु इन्द्रियमनःसंयोगयौगपद्यमिति ज्ञानयौगपद्यं  
स्यात् न तु भवति तस्माद्विषये प्रत्ययपर्यायादेकं मनः ॥

## न युगपदनेकक्रियोपलब्धेः ॥ ६१ ॥

अयं खल्वध्यापकोऽधीते व्रजति कमण्डलुं धारयति पान्यान् पश्यति  
शृणोत्यरण्यजान् शब्दान् विभ्यत् व्याललिङ्गानि बुभुक्षते स्मरति च  
गन्तव्यं स्वानीयमिति क्रमस्याग्रहणाद्युपपदेताः क्रियाः इति प्राप्तं  
मनसो वक्ष्यत्वमिति ॥

## अलातचक्रदर्शनवत्तदुपलब्धिराशुसञ्चरात् ॥ ६२ ॥

आशुसञ्चारादलातस्य संभ्रमतो विद्यमानः क्रमो न गृह्यते क्रमस्याग्र-  
हणादविच्छेदबुद्ध्या चक्रवद्बुद्धिर्भवतीति तथा बुद्धीनां क्रियाणाञ्चाशु-  
त्तित्वाद्विद्यमानः क्रमो न गृह्यते क्रमस्याग्रहणाद्युपलब्धिरिति तद्वि-  
मानो भवति । किं पुन क्रमस्याग्रहणाद्युपपत् क्रियाभिमानः अथ युग-  
पद्भावादेव युगपदनेकक्रियोपलब्धिरिति नात्रविशेष प्रतिपत्तेः कारण-  
मुच्यते इति उक्तमिन्द्रियान्तराणां विषयान्तरेषु पर्यायेण बुद्ध्यो भवन्तीति  
तच्चाप्रत्याख्येयमात्मप्रत्यक्षत्वात् । अथापि दृष्टश्रुतानर्थान्श्रित्यतः क्रमेण  
बुद्ध्यो वर्तन्ते न युगपदनेकानुमातव्यमिति वर्णपदवाक्यबुद्धीनां तदर्थ-  
बुद्धीनाञ्चाशुत्तित्वात् क्रमस्याग्रहणम् कथम् वाक्यस्येव खलु वर्णपञ्चरत्न  
प्रतिवर्णं तावत् अवश्यं भवति श्रुतं वर्णमेकमनेकं वा पदभावेन स प्रतिष-



अन्ते प्रतिसन्धाय यदं व्यवस्यति पदव्यवसायेन स्मृत्या पदार्थमप्रतिपद्यते  
पदसमूहप्रतिसन्धानाच्च वाक्यं व्यवस्यति सम्बद्धांश्च पदार्थान् गृहीत्वा  
वाक्यार्थं प्रतिपद्यते न चासां क्रमेण वर्त्तमानानां बुद्धीनामाशुश्रुत्तित्वात्  
क्रमो गृह्यते तदेतदनुमानमतन्त्रं बुद्धिक्रियायौगपद्याभिमानस्येति न  
चास्ति सुक्तसंशया युगपदुत्पत्तिर्बुद्धीनां यया मनसां बद्धत्वमेकशरीरे-  
नमीयत इति ॥

यथोक्तहेतुत्वाच्चाण ॥ ६३ ॥

अणु मन एकञ्चेति धर्मसमुच्चयो ज्ञानायौगपद्यात् महत्त्वे मनसः सर्वेन्द्रियसंयोगाद्युपहितप्रयत्नहणं स्यादिति मनसः खलु भोः सेन्द्रियस्य शरीरे वृत्तिलभो नान्यत्र शरीरात् ज्ञातव्य पुरुषस्य शरीरायतना बुद्ध्यादयो विषयोपभोगो जिह्वासितहानमोक्षितावाप्तिश्च सर्वे च शरीराश्रया व्यवहाराः, तत्र खलु विप्रतिपत्तेः संशयः किमयम्पुरुषकर्मनिमित्तः शरीरसर्ग आहोस्वित् भूतमात्वादकर्मनिमित्त इति श्रूयते खल्वत्र विप्रतिपत्तिरिति तत्वेदलक्ष्म ॥

पर्वकृतफलानुबन्धात्तदुत्पत्तिः ॥ ६४ ॥

पूर्वशरीरे या प्रवृत्तिर्व्यावृद्धिशरीरारम्भलक्षणा तत् पूर्वकृतं कर्मोक्तं तस्य फलं तज्जनितौ धर्माधर्मौ तत्फलस्यानुबन्धः आत्मसमवेतस्यावस्थानं तेन प्रयुक्तेभ्यो भूतेभ्यस्तस्योत्पत्तिः शरीरस्य न स्वतन्त्रेभ्य इति यदधिष्ठानोऽयमात्मा यस्य ह्यस्ति मन्वमानो यत्वाभिद्युक्तो यत्नोपभोगद्वेष्या विषयानुपलभमानो धर्माधर्मौ संस्कारोति तदस्य शरीरम्, तेन संस्कारेण धर्माधर्मलक्षणेन भूतसहितेन पतितेऽस्मिन् शरीरे उत्तरं निष्पाद्यते निष्पन्नस्य चास्य पूर्वशरीरवत् पुरुषार्थक्रिया पुरुषस्य च पूर्वशरीरवत् प्रवृत्तिरिति कर्मापेक्षेभ्यो भूतेभ्यः शरीरसर्गे सत्येतदुपपद्यते इति । इहा च पुरुषगुणेन प्रयत्नेन प्रयुक्तेभ्यो भूतेभ्यः पुरुषार्थक्रियासमर्थानां द्रव्याणां रथप्रभृतोनामुत्पत्तिः तथानुमातव्यं शरीरमपि पुरुषार्थक्रियासमर्थस्य तद्वत्मानं पुरुषस्य गुणान्तरापेक्षेभ्यो भूतेभ्य उत्पद्यते इति । अत्र नास्तिक आह ॥



३ अध्याये २ आङ्गिकम् ।

१३१

भूतेभ्योमूर्त्युपादानवत् तदुपादानम् ॥ ६५ ॥

यथा कर्मनिरपेक्षेभ्यो भूतेभ्यो निवृत्ता मूर्त्तयः सिकताशर्करापाषाण-  
गैरिकोज्जनप्रभृतयः पुरुषार्थकारित्वादुपादीयन्ते तथा कर्मनिरपेक्षेभ्यो  
भूतेभ्यः शरीरस्य च पुरुषार्थकारित्वदुपादीयत इति ॥

न साध्यसमत्वात् ॥ ६६ ॥

यथा शरीरोत्पत्तिरकर्मनिमित्ता साध्या तथा सिकताशर्करापाषाण-  
गैरिकोज्जनप्रभृतीनामप्यकर्मनिमित्तः सर्गः साध्यः साध्यसमत्वादसाधनमिति ।  
भूतेभ्योमूर्त्युपादानवत् तदिति चानेन साध्यम् ॥

नोत्पत्तिनिमित्तत्वान्मातापित्रोः ॥ ६७ ॥

विषमश्चायमुपन्यासः कस्मात् निर्वीजाः इमाः मूर्त्तयः उत्पद्यन्ते  
बीजपूर्विका तु शरीरोत्पत्तिः, मातापितृशब्देन लोहितरेतसो बीजभूते  
गृह्येते, तत्र सत्वस्य गर्भवासानुभवनीयं कर्म पितृश्च पुत्रफलानुभवनीये  
कर्मणि मातुर्गर्भाशये शरीरोत्पत्तिं भूतेभ्यः प्रयोजयन्तीत्युपपन्नं बीजा-  
नुविधानमिति ॥

तथाहारस्य ॥ ६८ ॥

उत्पत्तिनिमित्तत्वादिति प्रकृतम्, भुक्तं पीतमाहारस्तस्य पक्षिनि-  
वृत्तं रसद्रव्यं मातृशरीरे चोपचीयते बीजे गर्भाशयस्य बीजसमानपाकं  
मातृया चोपचयो बीजे या वह्नूहसमर्थः सद्भय इति सञ्चितं चार्बुदमांसपे-  
शिकलकण्डराशिरःपाणिपादादिना च व्यूहेनेन्द्रियाधिष्ठानभेदेन व्यूह्यते  
व्यूहे च गर्भनाड्यावतारितं रसद्रव्यमुपचीयते यावत्प्रसवसमर्थमिति, न चा-  
वसन्नपानस्य स्यात्त्वादिगतस्य कल्पात इति एतस्मात् कारणान् कर्मनिमि-  
त्तत्वं शरीरस्य विज्ञायत इति ॥

प्राप्तौ चानियमात् ॥ ६९ ॥



न सर्वो दसात्योः संयोगो गर्भाधानहेतुर्दृश्यते तत्तासति कर्मणि न भवति सति च भवतीत्यनुपपन्नोऽनियमाभाव इति, कर्मनिरपेक्षेषु भूतेषु शरीरोत्पत्तिहेतुष्वनियमः स्यात् न ह्यत्र कारणाभाव इति, अथापि ।

**शरीरोत्पत्तिनिमित्तवत् संयोगोत्पत्तिनिमित्तं कर्म ॥ ७० ॥**

यथा खल्विदं शरीरं धातुप्राणसंवाहिनीनां नाडीनां शुक्रानानां धातुमाञ्च स्नाय्वस्त्रिशिरापेशीकलकण्डराणाञ्च शिरोवाहदराणां शक्याञ्च कोष्ठगानां वातपित्तकफानाञ्च सुखकण्ठहृदयमाशयपक्वाशयाधःस्रोतसाञ्च परमदुःखसम्पादनीयेन सन्निवेशेन व्यूहनमशक्यं पृथिव्यादिभिः कर्मनिरपेक्षैरुत्पादयितुमिति कर्मनिमित्ता शरीरोत्पत्तिरिति विज्ञायते, एवञ्च प्रत्यात्मनियतस्य निमित्तस्याभावाच्चिरतिशयैरात्मभिः संवन्धात् सर्वात्मनाञ्च समानैः पृथिव्यादिभिरुत्पादितं शरीरं पृथिव्यादिगतस्य च नियमहेतोरभावात् सर्वात्मनां सुखदुःखसंवित्त्यायतनं समानं प्राप्तम्, यत्तु प्रत्यात्मं व्यवतिष्ठते तत्र शरीरोत्पत्तिनिमित्तं कर्म व्यवस्थाहेतुरिति विज्ञायते परिपच्यमानो हि प्रत्यात्मनियतः कर्माशयो यस्मिन्नात्मनि वर्तते तस्मैवोपभोगायतनं शरीरमुत्पाद्य व्यवस्थापयति । तदेवं शरीरोत्पत्तिनिमित्तवत् संयोगनिमित्तं कर्म इति विज्ञायते । प्रत्यात्मव्यवस्थानन्तु शरीरस्यात्मना संयोगं प्रचक्ष्यहे इति ॥

**एतेनानियमः प्रत्युक्तः ॥ ७१ ॥**

योऽयमकर्मनिमित्ते शरीरसर्गे सत्यनियम इत्युच्यते अयं शरीरोत्पत्तिनिमित्तवत् संयोगोत्पत्तिनिमित्तं कर्मेत्यनेन प्रत्युक्तः, कस्तावदयं नियमः यथैकस्यात्मनः शरीरं तथा सर्वेषामिति नियमः, अन्यस्याऽन्येत्यनियमो भेदो व्यावृत्तिर्विशेष इति । दृष्टा च जन्मव्यावृत्तिश्चाभिजनो निष्कृष्टाभिजनः इति, प्रशस्तं निन्दितमिति, व्याधिवद्धं लमरोगमिति, समयं विकलमिति, पीडावद्धं सुखवद्धमिति,



## ३ अध्याये २ आङ्गिकम् ।

१३३

पुरुषातिशयलक्षणेपपन्नं विपरीतमिति, प्रशस्तलक्षणं निन्दितलक्ष-  
णमिति, पद्विन्द्रियं षट्पिन्द्रियमिति, सूक्ष्मं भेदोऽपरिमेयः ।  
सोऽयं जन्मभेदः प्रत्यात्मनियतात् कर्मभेदादुपपद्यते, असति कर्मभेदे  
प्रत्यात्मनियतात् कर्मभेदादुपपद्यते, असति कर्मभेदे प्रत्यात्मनियते  
निरतिशयित्वादात्मनां समानत्वाच्च पृथिव्यादीनां पृथिव्यादिगतस्य  
नियमहेतोरभावात् सर्वं सर्वात्मनां प्रसज्येत नत्विदमित्यभूतं जन्म त-  
स्मात् कर्मनिमित्ता शरीरोत्पत्तिरिति ॥

## उपपन्नश्च तद्वियोगः कर्मक्षयोपपत्तेः ॥ ७२ ॥

कर्मनिमित्ते शरीरसर्गे तेन शरीरेणात्मनो वियोगः उपपन्नः,  
कस्मात् कर्मक्षयोपपत्तेः उपपद्यते खलु कर्मक्षयः सस्यगदर्शनात् प्रक्षीये  
मोहे वीतरागः पुनर्भवहेतुकर्मकायवाङ्मनोभिर्न करोति इत्युत्तर-  
स्यानुपचयः पूर्वापचितस्य विपाकप्रतिसंवेदनात् प्रक्षयः । एवं प्रसवहेतो-  
रभावात् प्रतिते ऽस्मिन् शरीरे पुनः शरीरान्तरानुपपत्तेरप्रतिसम्बिः  
अकर्मनिमित्ते तु शरीरसर्गे भूतक्षयानुपपत्तेस्तद्वियोगानुपपत्तिरिति ॥

## तद्दृष्टकारितमिति चेत् पुनस्तत्प्रसङ्गोऽपवर्गे ॥ ७३ ॥

अदर्शनं खलु अदृष्टमित्युच्यते अदृष्टकारिता भूतेभ्यः शरीरोत्पत्तिः, न  
जात्यनुत्पन्ने शरीरे दृष्टा निरायतनोदृश्यं पश्यति, तच्चास्य दृश्यं द्विवि-  
धम् विषयश्च नानात्वज्ञाव्यक्तात्मनोस्तदर्थः शरीरसर्गः तस्मिन्नवसिते  
चरितार्थानि भूतानि न शरीरसत्त्वादयन्तीत्युपपन्नः शरीरवियोग  
इति । एवं चेन्नान्यस्य पुनस्तत्प्रसङ्गोऽपवर्गे पुनः शरीरोत्पत्तिः प्रसज्यते  
इति, या चानुत्पन्ने शरीरे दर्शनानुत्पत्तिरदर्शनाभिमतता या चापवर्गे  
शरीरनिवृत्तौ दर्शनानुत्पत्तिरदर्शनभूता नैतयोरदर्शनयोः क्वचिद्विशेष  
इत्यदर्शनस्यानिवृत्तेरपवर्गे पुनः शरीरोत्पत्तिप्रसङ्ग इति । चरितार्था-  
विशेष इति चेत् ॥



## न करणाकरणयोरारम्भदर्शनात् ॥ ७४ ॥

चरितार्थानि भूतानि दर्शनावसानान्न शरीरान्तरमारभन्ते इत्ययं विशेष एवं चेदुच्यते करणाकरणयोरारम्भदर्शनात् चरितार्थानां भूतानां विषयोपलब्धिकरणात् पुनः पुनः शरीरारम्भो दृश्यते प्रकृतिपुरुषयोर्नानात्वदर्शनस्यैकरणाच्चिरर्थकः शरीरारम्भः पुनः पुनर्दृश्यते । तस्मादकर्मनिमित्तान्यां भूतस्यैव न दर्शनार्था शरीरोत्पत्तिर्युक्ता युक्तातु कर्मनिमित्ते सग्रे दर्शनार्था शरीरोत्पत्तिः । कर्मविपाकसम्बेदनं दर्शनमिति तददृष्टकारितमिति चेत् कस्यचिद्दर्शनमदृष्टं नाम परमाणूनां गुणविशेषः क्रियाहेतुस्तेन प्रेरिताः परमाणवः सम्मूर्च्छिताः शरीरस्य त्वादयन्तीति तन्मनः समाविशति स्वगुणेनादृष्टेन प्रेरिते समनस्के शरीरे द्रष्टुं पलब्धिर्भवतीति एतस्मिन् वै दर्शने गुणानुच्छेदात् पुनस्तत्प्रसङ्गोऽप्यवगं अपवर्गे शरीरोत्पत्तिः परमाणुगुणस्यादृष्टस्यानुच्छेद्यत्वादिति ॥

## मनःकर्मनिमित्तत्वाच्च संयोगानुच्छेदः ॥ ७५ ॥

मनोगुणेनादृष्टेन समावेशिते मनसि संयोगानुच्छेदो न स्यात् तच्च किङ्कृतं शरीरादपसर्पणं मनस इति । कर्माशयक्षये तु कर्माशयान्तराविपक्ष्यमानादपसर्पणोपपत्तिरिति । अदृष्टादेवापसर्पणमिति चेत् योदृष्टः शरीरोपसर्पणहेतुः स एवापसर्पणहेतुरपीति नैकस्य जीवनप्रायणहेतुत्वानुपपत्तेः, एवं च सति एकोऽदृष्टः जीवनप्रायणयोर्हेतुरिति प्राप्सु नैतदुपपद्यते ॥

## नित्यत्वप्रसङ्गश्च प्रायणानुपपत्तेः ॥ ७६ ॥

विपाकसंबेदनात् कर्माशयक्षये शरीरपातः प्रायणम् कर्माशयान्तराच्च पुनर्जन्म । भूतमात्रात्तु कर्मनिरपेक्षात् शरीरोत्पत्तौ कस्य क्षयात् शरीरपातः प्रायणमिति । प्रायणानुपपत्तेः खलु वै नित्यत्वप्रसङ्गं विद्मः



## ३ अध्याये २ आह्निकम् ।

१३५

आह्निककेतु प्रायणे प्रायणभेदाद्युपपत्तिरिति, पुनस्तत्प्रसङ्गोऽपवर्गे इत्ये-  
तत् समाधिसुराह ॥

**अणुश्यामतानित्यत्ववदेतत् स्यात् ॥ ७७ ॥**

यथाऽणोः श्यामतो नित्या अग्निसंयोगेन प्रतिविद्धा न पुनरुत्पद्यते  
एवमदृष्टकारितं शरीरमपवर्गे पुनर्नोत्पद्यते इति ॥

**नाकताभ्यागमप्रसङ्गात् ॥ ७८ ॥**

नायमस्ति दृष्टान्तः कस्मात् अकताभ्यागमप्रसङ्गात् अकतं प्रमाणतो-  
ऽनुपपन्नं तस्याभ्यागमोऽभ्युपपत्तिर्व्यवसायः एतच्छब्दानेन प्रमाणतोऽनुप-  
पन्नं मन्तव्यम् तस्माच्चायं दृष्टान्तो न प्रत्यक्षं न चानुमानं किञ्चिदुच्यत  
इति । तदिदं दृष्टान्तस्य साध्यसम्बन्धमभिधीयत इति । अथवा नाकताभ्या-  
गमप्रसङ्गात् अणुश्यामतादृष्टान्तेनाकर्म्मनिमित्तं शरीरोत्पत्तिं समाद-  
धानस्याकताभ्यागमप्रसङ्गः अकते सुखदुःखहेतौ कर्मणि पुरुषस्य सुखं  
दुःखमभ्यागच्छतीति प्रसज्येत, ओमितिब्रुवतः प्रत्यक्षानुमानागमविरोधः  
प्रत्यक्षविरोधस्तावत् भिन्नमिदं सुखदुःखं प्रत्यात्मवेदनीयत्वात् प्रत्यक्षं सर्व-  
शरीराणां को भेदः तीव्रमन्दश्चिरमाशु नानाप्रकारमेक प्रकारमिति  
एवमादिर्विशेषः, नचास्ति प्रत्यात्मनियतः सुखदुःखहेतुविशेषः नचास्ति  
हेतुविशेषे फलविशेषो दृश्यते कर्मनिमित्ते तु सुखदुःखयोगे कर्मणां ती-  
व्रमन्दतोपपत्तेः कर्मसञ्चयानाञ्चोत्कर्षापकर्षभावाच्चानाविधैकविधभावाच्च  
कर्मणां सुखदुःखभेदोपपत्तिः । सोऽयं हेतुभेदाभावात् दृष्टः सुखदुःखभेदो न-  
स्यादिति प्रत्यक्षविरोधः । तथानुमानविरोधः दृष्टं हि पुरुषगुणव्यवस्था-  
नात् सुखदुःखव्यवस्थानम्, यः खलुचेतनावान् साधननिर्वर्त्तनीयं सुखं  
बुद्धा तदोप्सन् तदार्त्तसाधनावाप्तये प्रयतते स सुखेन युज्यते न विपरीतः  
यश्च साधननिर्वर्त्तनीयं दुःखं बुद्धा तज्जिहासुः साधनपरिवर्त्तनाय  
यतते स दुःखेन परित्यज्यते न विपरीतः अस्ति चेदं यत्प्रमत्तरेण चेतनानां  
सुखदुःखव्यवस्थानम् तेनापि चेतनगुणान्तरव्यवस्थानकतेन भूतितव्यमित्य-  
नुमानम् । तदेतदकर्म्मनिमित्ते सुखदुःखयोगे विरुध्यत इति, तच्च गुणा-



नन्तरमसंवेद्यत्वाद्दृष्टं विपाककालानियमाच्चाव्यवस्थितम् बुद्ध्यादयस्तु संवे-  
द्याश्चापवर्गिणश्चेति । अथागमविरोधः । वक्तुं खल्विदमार्थस्तृणीणामु-  
पदेशजातमनुष्ठानपरिवर्जनाश्रयमुपदेशफलञ्च शरीरिणां वर्णाश्रमविभा-  
गेनानुष्ठानलक्षणा प्रवृत्तिः परिवर्ज्य नलक्षणा निवृत्तिः, तच्चोभयमेतस्यां  
दृष्टौ नास्ति कर्मसुचरितं दुश्चरितं वा, कर्मनिमित्तः पुरुषाणां सुखदुःख-  
योगः इति विरूढ्यते, सेयं पापिष्ठानां मिथ्यादृष्टिरकर्मनिमित्ता शरीर-  
दृष्टिरकर्मनिमित्तः सुखदुःखयोगः इति ॥

इति वात्स्यायनीये न्यायभाष्ये तृतीयाऽध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ॥

समाप्तश्चायं तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

मनसोऽन्तरं प्रवृत्तिः परीक्षितव्या तत्र खलु यावद्वर्माधर्माश्रयश्च  
रीरादि परीक्षितम् पूर्वा सा प्रवृत्तेः परीक्षा इत्याह ॥

प्रवृत्तिर्यथोक्ता ॥ १ ॥

तथा परीक्षितेति प्रवृत्त्यनन्तरास्तिर्ह दोषाः परीक्ष्यन्तामित्यत आह ॥

तथा दोषाः ॥ २ ॥

परीक्षिता इति बुद्धिसमानाश्रयत्वादात्मगुणाः, प्रवृत्तिहेतत्वात्  
युनर्भवप्रतिसम्भानसामर्थ्याच्च संसारहेतवः, संसारक्षानादित्वादानादिना  
प्रवञ्चेन प्रवर्तन्ते, मिथ्याज्ञाननिवृत्तिस्तत्त्वज्ञानात् तन्निवृत्तौ रागद्वेष-  
प्रवञ्चोच्छेदेऽपवर्ग इति प्रादुर्भावनिरोधधर्मका इत्येवमाद्युक्तं दोषाणा-  
मिति प्रवर्तनलक्षणा दोषा इत्युक्तं तथा चेमे मानेष्ट्यास्त्रयाविचिकित्सा-  
मत्सरादयः ते कस्मान्नोपसङ्गयन्ते इत्यत आह ॥



तत्त्वैराशयं रागद्वेषमोहार्थान्तरभावात् ॥ ३ ॥

तेषां दोषाणां त्वयोराशयस्तयः पक्षाः, रागपक्षाः कामो मत्सरः  
सृष्टा लब्धा लोभ इति, द्वेषपक्षाः क्रोधः ईर्ष्याऽसूया द्रोहोऽमर्ष इति,  
मोहपक्षाः मिथ्याज्ञानं विचिकित्सा मानः प्रमादः इति त्वैराश्यान्तोपसङ्ख्या-  
यन्ते इति, लक्षणस्य तर्ह्यभेदात् त्वित्वमनुपपन्नम्, नानुपपन्नं रागद्वेष-  
मोहार्थान्तरभावात् आसक्तिलक्षणे रागः, अमर्षलक्षणे द्वेषः, मिथ्या-  
प्रतिपत्तिलक्षणे मोह इति, एतत् प्रत्यात्मवेदनीयं सर्वशरीरिणाम्,  
विजानात्यंशरीरी रागमुत्पन्नम्, अस्तिमेऽध्यात्मं रागधर्म इति, विरा-  
गञ्च विजानाति नास्तिमेऽध्यात्मं रागधर्म इति । एवमितरयोरपीति ।  
मानेर्ष्याऽसूयाप्रभृतयस्तु त्वैराशयमनुपपतिता इति नोपसङ्ख्यायन्ते ॥

नैकप्रत्यनीकभावात् ॥ ४ ॥

नार्थान्तरं रागादयः कस्मात् एकप्रत्यनीकभावात् तत्त्वज्ञानं सम्य-  
ङ्मतिरार्थप्रज्ञा सम्बोध इत्येकमिदं प्रत्यनीकं त्वयाणामिति ॥

व्यभिचारादहेतुः ॥ ५ ॥

एकप्रत्यनीकाः पृथिव्यां श्यामादयोऽग्निसंयोगेनैकेन, एकयोनयश्च  
पाकजा इति, सति चार्थान्तरभावे ॥

तेषां मोहः पापीयान्नामूढस्येतरोत्पत्तेः ॥ ६ ॥

मोहः पापः पापतरो वा हावभिप्रेत्युक्तम्, कस्मात् नामूढस्येतरो-  
त्पत्तेः अमूढस्य रागद्वेषौ नोत्पद्येते मूढस्य तु यथासङ्कल्पसृष्टत्तिः, विषयेषु  
रञ्जनीयाः सङ्कल्पाः रागहेतवः, कोपनीयाः सङ्कल्पा द्वेषहेतवः, उभये च  
सङ्कल्पा न मिथ्याप्रतिपत्तिलक्षणत्वान्नोहादन्ते ताविसौ मोहयोनी रा-  
गद्वेषाविति तत्त्वज्ञानाच्च मोहनिवृत्तौ रागद्वेषानुत्पत्तिरित्येकप्रत्यनी-  
कभावोपपत्तिः । एवञ्च क्त्वा तत्त्वज्ञानाद् दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञा-  
नानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तराभावादपवर्ग इति व्याख्यातमिति ॥



प्राप्तस्तर्हि निमित्तनैमित्तिकभावादर्थान्तरभावो  
दोषेभ्यः ॥ ७ ॥

अन्यद्वि निमित्तमन्यच्च नैमित्तिकमिति दोषनिमित्तत्वाददोषो-  
मोह इति ॥

न दोषलक्षणावरोधान्मोहस्य ॥ ८ ॥

प्रवर्तनालक्षणा दोषो इत्यनेन दोषलक्षणेनावरुध्यते दोषेषु मोह  
इति ॥

निमित्तनैमित्तिकोपपत्तेश्च तुल्यजातीयानामप्र-  
तिषेधः ॥ ९ ॥

द्रव्याणां गुणानां वाऽनेकविधविकल्पो निमित्तनैमित्तिकभावे  
तुल्यजातीयानां दृष्ट इति । दोषान्तरं प्रेत्यभावस्तस्यासिद्धिः आत्मनो  
नित्यत्वात्, न खलु नित्यं किञ्चिज्जायते म्रियते इति जन्ममरणयोर्नि-  
त्यत्व दात्मनोऽनुपपत्तिः उभयञ्च प्रेत्यभाव इति तत्रायं सिद्धान्तवादः ॥

आत्मनित्यत्वे प्रेत्यभावसिद्धिः ॥ १० ॥

नित्योऽयमात्मा प्रैति पूर्वशरीरं जहाति म्रियत इति । प्रेत्य च  
पूर्वशरीरं हित्वा भवति जायते शरीरान्तरमुपादत्ते इति । तच्चैत-  
दुभयं पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभाव इत्यत्रोक्तं पूर्वशरीरं हित्वा शरीरान्तरो-  
पादानं प्रेत्यभाव इति तच्चैतन्नित्यत्वे सम्भवतीति यस्य तु सत्त्वात्मादः  
सत्वनिरोधः प्रेत्यभावस्तस्य कृतज्ञानमकृताभ्यागमस्य दोषः । उच्छेदहेतु-  
वादे ऋष्युपदेशाश्चानर्थका इति, कथमुत्पत्तिरिति चेत् ॥

व्यक्ताद्यक्तानां प्रत्यक्षप्रामाण्यात् ॥ ११ ॥

केन प्रकारेण किं धर्मकात् कारणाद्यक्तं शरीराद्युत्पद्यते इति,  
व्यक्ताद्भूतसमाख्यातात् पृथिव्यादितः परमसूक्ष्मान्नित्याद्यक्तं शरीरे-



## ४ अध्याये १ आह्निकम् ।

१३१

न्द्रियविषयोपकरणाधारं प्रज्ञातं द्रव्यसत्पद्यते । व्यक्तञ्च खल्विन्द्रिय-  
ग्राह्यं तत्त्वामान्यात् कारणमपि व्यक्तम्, किं सामान्यं रूपादिगुणयोगः,  
रूपादिगुणयुक्तेभ्यः पृथिव्यादिभ्यो नित्येभ्यो रूपादिगुणयुक्तं शरीरा-  
द्युत्पद्यते प्रत्यक्षप्र सागत्यात् । दृष्टोहि रूपादिगुणयुक्तेभ्यो मृत्पृथ्वीभ्य  
स्तथाभूतस्य द्रव्यस्योत्पादः, तेन चादृष्टस्यानुमानमिति, रूपादीनामन्वय-  
दर्शनात् प्रकृतिविकारयोः पृथिव्यादीनामतोन्द्रियाणां कारणभावोऽनु-  
मीयते इति ॥

## न घटाह्वटानिष्पत्तेः ॥ १२ ॥

इदमपि प्रत्यक्षम् न खलु व्यक्ताह्वटाद्यक्तौघट उत्पद्यमानो दृश्यत इति  
व्यक्ताह्वक्तस्यानुत्पत्तिदर्शनान्न व्यक्तं कारणमिति ॥

## व्यक्ताह्वटानिष्पत्तेरप्रतिषेधः ॥ १३ ॥

न ब्रूमः सर्वं सर्वस्य कारणमिति किन्तु यदुत्पद्यते व्यक्तं द्रव्यं तत्  
तथाभूतादेवोत्पद्यते इति । व्यक्तञ्च तन्मृदद्रव्यं कपालसंज्ञकं यतो घट  
उत्पद्यते नचैतन्निष्ठवानः क्वचिदभ्यनुज्ञां लब्धुमर्हतीति । तदेतत् तत्त्वम्,  
अतः परं प्रावादुक्तानां दृष्टयः प्रदर्श्यन्ते ॥

## अभावाद्भावोत्पत्तिर्नानुपमृद्यप्रादुर्भावात् ॥ १४ ॥

असतः सदुत्पद्यते इत्ययं पक्षः कस्मात् उपमृद्य बीजमङ्कुर उत्पद्यते  
नानुपमृद्य नचेद्बीजोपमर्दोऽङ्कुरोत्पत्तिः स्यादिति, अवाभिधीयते ॥

## व्याघातादप्रयोगः ॥ १५ ॥

उपमृद्य प्रादुर्भावादित्युक्तः प्रयोगी व्याघातात् यदुपमृद्वनाति न  
तदुपमृद्य प्रादुर्भवितुमर्हति विद्यमानत्वात् यच्च प्रादुर्भवति न तेनाप्रादु-  
र्भूतेनाविद्यमानेनोपमर्द इति ।

## नातीतानागतयोः कारकशब्दप्रयोगात् ॥ १६ ॥



अतीते चानागते चाविद्यमाने कारकशब्दाः प्रयुज्यन्ते पुत्रो जनि-  
ष्यते जनिष्यमाणं पुत्रमभिनन्दति पुत्रस्य जनिष्यमाणस्य नाम करोति ।  
अभूत् कुम्भो भिन्नं कुम्भमनुशोचति । भिन्नस्य कुम्भस्य कपालानि, अजा-  
ताः पुत्राः पितरन्तापयन्तीति वज्रलं भाक्ताः प्रयोगाः दृश्यन्ते, का पुन-  
रियं भक्तिः आनन्तर्यभक्तिः आनन्तर्यसामर्थ्यादुपमृद्य प्रादुर्भावार्थः प्रादु-  
र्भविष्यदङ्कुर उपमृदुनातीति भाक्तं कर्तृत्वमिति ॥

न विनष्टेभ्योऽनिष्पत्तेः ॥ २७ ॥

न विनष्टाद्बीजादङ्कुर उत्पद्यत इति तस्मान्नाभावाद्भावोत्पत्ति-  
रिति ॥

क्रमनिर्देशादप्रतिषेधः ॥ १८ ॥

उपमर्द्दप्रादुर्भावयोः पौर्वापर्यनियमः क्रमः स खल्वभावाद्भावोत्प-  
त्तेर्हेतुर्निर्दिश्यते स च न प्रतिषिध्यत इति । व्याहृतव्यूहानामवयवानां  
पूर्वव्यूहनिवृत्तौ व्यूहान्तरादुद्व्यनिष्पत्तिर्नाभावात् । बीजावयवाः कुत-  
श्चिन्मितात् प्रादुर्भूतक्रियाः पूर्वव्यूहं जहति व्यूहान्तरश्चापद्यन्ते  
व्यूहान्तरादङ्कुर उत्पद्यते । दृश्यन्ते खल्ववयवास्तत्संयोगाच्चाङ्कुरोत्पत्ति-  
हेतवः । नचानिष्टे पूर्वव्यूहे बीजावयवानां शक्यं व्यूहान्तरेण भवि-  
तमित्युपमर्द्दप्रादुर्भावयोः पौर्वापर्यनियमः क्रमः, तस्मान्नाभावाद्भावो-  
त्पत्तिरिति । न चान्यद्बीजावयवयोऽङ्कुरोत्पत्तिकारणमित्युपपद्यते बीजो-  
पादाननियम इति । अथापर आह ॥

ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात् ॥ १९ ॥

पुरुषोऽयं समीहमानो नावश्यं समीहाफलीभाप्रोति तेनानुमीयते  
पराधीनं पुरुषकर्मफलाराधनमिति यदधीनं स ईश्वरः तस्मादीश्वरः  
कारणमिति ॥

न पुरुषकर्माभावे फलानिष्पत्तेः ॥ २० ॥



## ४ अध्याये ३ आह्निकम् ।

१४१

ईश्वराधीना चेत् फलनिष्पत्तिः स्यादपि तर्हि पुरुषस्य समीहान-  
न्तरेण फलं निष्पद्येतेति ॥

## तत्कारितत्वादहेतुः ॥ २१ ॥

पुरुषकारमीश्वरोऽनुगृह्णाति फलाय पुरुषस्य यतमानस्वैश्वरः फलं  
सम्पादयतीति । यदा न सम्पादयति तदा पुरुषकर्मफलम्भवतीति तस्मा-  
दीश्वरकारितत्वादहेतुः पुरुषकर्मभावे फलानिष्पत्तेरिति, गुणविशि-  
ष्टमात्मान्तरमीश्वरः तस्यात्मवत्त्वात् कल्पान्तरानुपपत्तिः । अधर्मं मित्या-  
ज्ञानप्रमादहान्या धर्मज्ञानसमाधिसम्पदा च विशिष्टमात्मान्तरमीश्वरः  
तस्य च धर्मसमाधिफलमग्निसाद्यष्टविधमैश्वर्यम् सङ्ख्यानुविधायी चास्य  
धर्मः प्रत्यात्मवृत्तीन् धर्मधर्मसञ्चयान् पूयिव्यादीनि च भूतानि प्रव-  
र्त्तयति, एवञ्च स्वकृताभ्यागमस्यालोपेन निर्माणप्राकाश्यमीश्वरस्य स्वकृतक-  
र्मफलं वेदितव्यम्, आप्रकल्पसाध्यं यथा पिताऽपत्यानां तथा पितृभूत  
ईश्वरो भूतानाम्, न चात्मवत्त्वादयः कल्पः सम्भवति न तावदस्य बुद्धिं  
विना कश्चिद्धर्मो लिङ्गभूतः शक्यः उपपादयितुम्, आगमाच्च दृष्टा बोद्धा  
सर्वज्ञातेश्वर इति बुद्ध्यादिभिश्चात्मलिङ्गैर्निष्ठरूपाख्यमीश्वरं प्रत्यक्षानु-  
मानागमविषयातीतं कः शक्त उपपादयितुम् ॥ स्वकृताभ्यागमलोपेन च  
प्रवर्त्तमानस्यास्य यदुक्तं प्रतिषेधजातमकर्मनिमित्ते शरीरसर्गे तत् सर्वम्-  
सञ्ज्यते इति । अपरं इदानीमाह ॥

अनिमित्ततो भावोत्पत्तिः कण्टकतैक्ष्ण्यादि-  
दर्शनात् ॥ २२ ॥

अनिमित्ता शरीराद्युत्पत्तिः कण्टकतैक्ष्ण्यादिदर्शनात् कण्टकस्य  
तैक्ष्ण्यं पर्वतधातूनां चिद्वता यावः स्रज्ज्ञता निर्निमित्तञ्चोपादानं  
दृष्टं तथा शरीरसर्गोऽपीति ॥

## अनिमित्तनिमित्तत्वान्नानिमित्ततः ॥ २३ ॥



अनिमित्ततो भावोत्पत्तिरित्युच्यते यतश्चोत्पद्यते तन्निमित्तमनिमित्तं  
तस्य निमित्तत्वान्नानिमित्ता भावोत्पत्तिरिति ॥

**निमित्तानिमित्तयोरर्थान्तरभावादप्रतिषेधः ॥२४**

अन्यद्वि निमित्तमन्यच्च निमित्तप्रत्याख्यानम्, न च प्रत्याख्यानमेव  
प्रत्याख्येयम्, यथातुदकः कमण्डलुरिति नोदकप्रतिषेध उदकम्भवतीति, स  
खत्वं वादोऽकर्मनिमित्तः शरीरादिसर्ग इत्येतस्मान्न भिद्यते । अभेदा-  
त्प्रतिषेधेनैव प्रतिषिद्धो वेदितव्य इति, अन्येऽनुमन्यन्ते ॥

**सर्वमनित्यमुत्पत्तिविनाशधर्मकत्वात् ॥ २५ ॥**

किमनित्यत्वात् यस्य कदाचिद्भावस्तदनित्यम् उत्पत्तिधर्मकमनुत्पत्ति-  
नास्ति विनाशधर्मकमविनष्टं नास्ति किं पुनः सर्वम्, भौतिकञ्च शरीरादि  
अभौतिकञ्च बुद्ध्यादि तदुभयमुत्पत्तिविनाशधर्मकं विज्ञायते तस्मात्तत्सर्वम-  
नित्यमिति ॥

**नानित्यतानित्यत्वात् ॥ २६ ॥**

यदि तावत्सर्वस्यानित्यता नित्या, तन्नित्यत्वाच्च सर्वमनित्यम्, अर्था-  
नित्या तस्यामविद्यमानायां सर्वं नित्यमिति ॥

**तदनित्यत्वमग्नेर्दाह्यं विनाश्यानुविनाशवत् ॥२७॥**

तस्या अनित्यताया अथनित्यत्वम् कथम्, यथाग्निर्दाह्यं विनाश्यानु-  
विनश्यति एवं सर्वस्यानित्यता सर्वं विनाश्यानुविनश्यतीति ॥

**नित्यस्याप्रत्याख्यानं यथोपलब्धिव्यवस्थानात् ॥२८॥**

अयं खलु वादो नित्यं प्रत्याचष्टे नित्यस्य च प्रत्याख्यानमनुपपन्नम् कस्मात्,  
यथोपलब्धिव्यवस्थानात् यतोत्पत्तिविनाशधर्मकत्वमुपलभ्यते प्रमाणतस्तद-  
नित्यम्, यस्य नोपलभ्यते तद्विपरीतम्, न च परमसूक्ष्माणां भूतानामा-



## ४ अध्याये १ आह्निकम् ।

१४३

काशकालदिगात्मनसां तद्गुणानाञ्च केषाञ्चित् सामान्यविशेषसमावा-  
नाञ्चोत्पत्तिविनाशधर्मकत्वं प्रमाणत उपलभ्यते तस्माच्चित्तान्येतानीति ।  
अयमन्य एकान्तः ॥

**सर्वं नित्यं पञ्चभूतनित्यत्वात् ॥ २९ ॥**

भूतमात्रमिदं सर्वं तानि च नित्यानि भूतोच्छेदानुपपत्तेरिति ॥

**नोत्पत्तिविनाशकारणोपलब्धेः ॥ ३० ॥**

उत्पत्तिकारणञ्चोपलभ्यते विनाशकारणञ्च तत् सर्वनित्यत्वे व्याह-  
न्यत इति ॥

**तल्लक्षणावरोधादप्रतिषेधः ॥ ३१ ॥**

यस्योत्पत्तिविनाशकारणमुपलभ्यत इति मन्यसे तद्भूतलक्षणाहीनम-  
र्थान्तरं गृह्यते भूतलक्षणावरोधाद्भूतमात्रमिदमित्युक्तोऽयं प्रतिषेधः  
इति ॥

**नोत्पत्तितत्कारणोपलब्धेः ॥ ३२ ॥**

कारणसमानगुणस्योत्पत्तिः कारणञ्चोपलभ्यते । न चैतदुभयं नित्य-  
विषयं नचोत्पत्तितत्कारणोपलब्धिः शक्या प्रत्याख्यातम्, नचाविषया  
काचिदुपलब्धिः उपलब्धिसामर्थ्यात् कारणेन समानगुणं कार्यमुत्पद्यत  
इत्युभयोपलब्धेः स खलूपलब्धेर्विषय इति । एवञ्च तल्लक्षणावरोधोपपत्ति-  
रिति, उत्पत्तिविनाशकारणप्रयुक्तस्य ज्ञातुः प्रयत्नो दृष्ट इति, प्रसि-  
द्धावयवी तद्वर्मा उत्पत्तिविनाशधर्मा चावयवी सिद्ध इति । शब्दकर्म-  
बुद्ध्यादीनां चाव्याप्तिः पञ्चभूतनित्यत्वात्तल्लक्षणावरोधाच्चेत्यनेन शब्दकर्म-  
बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्च न व्याप्तास्तस्मादनेकान्तः, स्वप्रविषयाभिमा-  
नवन्निष्ठोपलब्धिरिति चेत् भूतोपलब्धौ तल्लक्षणावरोधोऽप्युक्तः । यथा स्वप्ने विषयाभि-  
मान एवमुत्पत्तिकारणाभिमानः इति एवञ्चैतद्भूतोपलब्धौ तल्लक्षणावरोधोऽप्युक्तः, यदृ-  
ष्टिव्याद्युपलब्धिरपि स्वप्रविषयाभिमानवत् प्रसज्यते, पृथिव्याद्यभावे सर्व-



व्यवहारविलोप इति चेत् तदितरत्र समानम् उत्पत्तिविनाशकारणो-  
पलब्धिविषयस्याप्यभावे सर्वव्यवहारविलोप इति सोऽयं नित्यानामवोन्दि-  
यत्वादविषयत्वाच्चोत्पत्तिविनाशयोः स्वप्नविषयाभिमानवदनित्यहेतुरिति ।  
अवस्थितस्योपादानस्य धर्ममात्रं निवर्त्तते धर्ममात्रमुपजायते स खलूत्पत्ति-  
विनाशयोर्विषयः । युञ्जोपजायते तत् प्रागप्युपजननादस्ति । यच्च निव-  
र्त्तते तन्निरुत्तमप्यस्तीति । एवञ्च सर्वस्य नित्यत्वमिति ॥

### न व्यवस्थानुपपत्तेः ॥ ३३ ॥

अयमुपजनः इयं निवृत्तिरिति व्यवस्था नोपपद्यते उपजातनिवृत्त-  
योर्विद्यमानत्वात् अयं धर्म उपजातोऽयं निवृत्त इति सङ्गावान्विशेषाद-  
व्यवस्था । इदानीमुपजननिवृत्ती नेदानीमिति कालव्यवस्था नोपपद्यते  
सर्वदा विद्यमानत्वात् अस्य धर्मस्योपजज्ञनिवृत्ती नास्तीति व्यवस्थानुपप-  
त्तिरुभयोरविशेषात् । अनागतोऽतीत इति कालव्यवस्थानुपपत्तिः वर्त्त-  
मानस्य सङ्गावलक्षणत्वात् अविद्यमानस्यात्मलाभ उपजनोविद्यमानस्यात्म-  
हानं 'निवृत्तिरित्येतस्मिन् सति नैते दोषाः तस्माद्युक्तं प्रागप्युपजनना-  
दस्ति निवृत्तश्चास्ति तदयुक्तमिति अयमन्य एकान्तः ॥

### सर्वं पृथग्भावलक्षणपृथक्त्वात् ॥ ३४ ॥

सर्वं नात्रा न कश्चिदेको भावो विद्यते कस्मात् भावलक्षणपृथक्त्वात्  
भावस्य लक्षणमभिधानं येन लक्ष्यते भावः स समाख्याशब्दः तस्य पृथग्वि-  
यत्वात् सर्वोभावः समाख्याशब्दः समूहवाची कुम्भ इति संज्ञाशब्दो गन्ध-  
रसरूपस्यार्थसमूहे बुध्नपार्श्वयोवादिसमूहे च वर्त्तते निदर्शनमात्रञ्चेदमिति ॥

### नानेकलक्षणैरेकभावनिरूप्यतेः ॥ ३५ ॥

अनेकविधलक्षणैरिति मध्यमपदलोपी समासः । गन्धादिभिश्च  
गुणैर्बुद्धादिभिश्चावयवैः सम्बद्ध एकोभावो निरूप्यते गुणव्यतिरिक्तञ्च  
द्रव्यमवयवातिरिक्तश्चावयवीति विभक्तन्यायञ्चैतदुभयमिति । अथापि ॥



## लक्षणव्यवस्थानादेवाप्रतिषेधः ॥ ३६ ॥

न कश्चिदेकोभाव इत्युक्तः प्रतिषेधः कस्मात् लक्षणव्यवस्थानादेव यदिह लक्षणं भावस्य संज्ञाशब्दभूतं तदेकस्मिन् व्यवस्थितम् यं कुम्भमद्राजं तं स्पृशामि यमेवास्मान् तं पश्यामीति, नाणुसमूहे गृह्यते इति । अणुसमूहे चागृह्यमाणे यद्गृह्यते तदेकमेवेति । अथाप्येतदुक्तं नास्त्येको भावो यस्मात् समुदायः । एकादुपपत्तेर्नास्त्येव समूहः नास्त्येको भावो यस्मात् समूहे भावशब्दप्रयोगः एकस्य चानुपपत्तेः समूहो नोपपद्यते । एकसमुच्चयोहि समूह इति व्याहृतत्वादनुपपन्नं नास्त्येको भाव इति यस्य प्रतिषेधः प्रतिज्ञायते समूहे भावशब्दप्रयोगादिति हेतुं ब्रुवता स एवाभ्यनुज्ञायते एकसमुच्चयोहि समूह इति समूहे भावशब्दप्रयोगादिति च समूहमाश्रित्य प्रत्येकं समूहप्रतिषेधो नास्त्येकोभाव इति सोऽयमुभयतो व्याघाताद्यत्किञ्चनवाद इति । अयमपर एकान्तः ॥

## सर्वमभावो भावेष्वितरेतराभावसिद्धेः ॥ ३७ ॥

यावद्भावजातं तत्सर्वमभावः कस्मात् भावेष्वितरेतराभावसिद्धेः असन् गौरश्चात्मनानश्चो गौः । असन्नश्चोगवात्मनाऽगौरश्च इत्यसत्प्रत्ययस्य प्रतिषेधस्य च भावशब्देन सामानाधिकरण्यात् सर्वमभाव इति प्रतिज्ञावाक्ये पदयोः प्रतिज्ञाहेत्वोश्च व्याघातादयुक्तम्, अनेकस्याशेषता सर्वशब्दस्यार्थोभावप्रतिषेधश्चाभावशब्दस्यार्थः पूर्वसोपाख्यमुत्तरं निरुपाख्यमुतव समुपाख्यायमानं कथं निरुपाख्यमभावः स्यादिति न जात्वभावो निरुपाख्योऽनेकतयाऽशेषतया शक्यः प्रतिज्ञातमिति, सर्वमेतदभाव इति चेत् यदिदं सर्वमिति मन्यसे तदभाव इति एवं चेदनिवृत्तो व्याघातः अनेकमशेषश्चेति नाभावप्रत्ययेन शक्यं भवितुम्, अस्ति चायं प्रत्ययः सर्वमिति तस्मान्नाभाव इति, प्रतिज्ञाहेत्वोश्च व्याघातः सर्वमभाव इति भावप्रतिषेधः प्रतिज्ञा भावेष्वितरेतराभावसिद्धेरिति हेतुः । भावेष्वितरेतराभावसमुज्ञायाश्रित्य चेतरेतराभावसिद्ध्या सर्वमभाव इत्युच्यते यदि सर्वमभा-



वो भावेऽप्यतरेतराभावसिद्धेरिति नोपपद्यते अथ भावेऽप्यतरेतराभाव-  
सिद्धिः सर्वमभावः इति नोपपद्यते सूत्रेण चाभिसम्बन्धः ॥

## न स्वभावसिद्धेर्भावानाम् ॥ ३८ ॥

न सर्वभावः कस्मात् स्वेन भावेन सद्भावात् भावानाम्, स्वेन  
धर्मेण भावास्यवन्तीति प्रतिज्ञायते कश्च स्वोधर्मो भावानां द्रव्यगुणकर्मणां  
सदादिसामान्यम् द्रव्याणां क्रियावदित्येवमादिर्विशेषः, स्वर्णपर्यन्ताः  
पृथिव्यादिति च प्रत्येकज्ञानन्तोभेदः । सामान्यविशेषरूपमवायानाञ्च  
विशिष्टा धर्मा गृह्यन्ते सोऽयमभावस्य निरुपाख्यत्वात् सम्प्रत्ययकोऽर्थ-  
भेदो न स्यात्, अस्तित्ववन्तस्मान्न सर्वमभाव इति । अथवा न स्वभावसिद्धे-  
र्भावानामिति । स्वरूपसिद्धेरिति गौरिरिति प्रयुज्यमाने शब्दे जातिविशिष्ट-  
द्रव्यं गृह्यते नाभावमात्रम् यदि च सर्वमभावः गौरित्यभावः प्रतीयते  
गोशब्देन चाभावः उच्येत, यस्मात्तु गोशब्दप्रयोगे द्रव्यविशेषः प्रतीयते  
नाभावस्तस्मादयुक्तमिति, अथवा न स्वभावसिद्धेरिति । असन् गौरश्चा-  
त्मनेति गवात्मना कस्मान्नोच्यते अवचनात् गवात्मना गौरस्तीति स्वभाव-  
सिद्धिः, अनश्वोऽश्व इति वा अगौर्गौरिति वा कस्मान्नोच्यते अवचनात्  
स्वेन रूपेण विद्यमानता द्रव्यस्वेति विज्ञायते अव्यतिरेकप्रतिषेधे च भावा-  
नामसंयोगादिसम्बन्धो व्यतिरेकः, अत्राव्यतिरेकोऽभेदाख्यसम्बन्धः । प्रत्य-  
यसामानाधिकरण्यम् यथा न सन्ति कुण्डे वदराणीति असन् गौरश्चात्म-  
नामनश्वे गौरिति च गवाश्वयोरव्यतिरेकः प्रतिषिध्यते गवाश्वयोरैकत्वं  
नास्तीति । तस्मिन् प्रतिषिध्यमाने भावेन गवा सामानाधिकरण्यमस-  
त्प्रत्ययस्यासन् गौरश्चात्मनेति, यथा न सन्ति कुण्डे वदराणीति कुण्डे वद-  
रसंयोगे प्रतिषिध्यमाने सद्भिरसत्प्रत्ययस्य सामानाधिकरण्यमिति ॥

## न स्वभावसिद्धिरापेक्षिकत्वात् ॥ ३९ ॥

अपेक्षाकृतमापेक्षिकम् ह्यपेक्षाकृतं दीर्घं दीर्घापेक्षाकृतं ह्रस्वं,  
न स्वेनात्मनावस्थितं किञ्चित्, कस्मात् अपेक्षामासयात् तस्मान्न स्वभा-  
वसिद्धिर्भावानामिति ॥



## व्याहतत्वादयुक्तम् ॥ ४० ॥

यदि ह्रस्वापेक्षाकृतं दीर्घं किमिदानीमपेक्ष्य ह्रस्वमिति गृह्यते, अथ दीर्घापेक्षाकृतं ह्रस्वं दीर्घमनापेक्षिकम्, एवमितरेतराश्रययोरेकाभावेऽन्यतराभावादुभयाभाव इति अपेक्षाव्यवस्थानुपपत्त्या, स्वभावसिद्धावस्थायाम् समयोः परिमण्डलयोर्वा द्रव्ययोरापेक्षिके दीर्घत्वह्रस्वत्वे कस्मान्न भवतः । अपेक्षायामनपेक्षयाश्च द्रव्ययोरभेदः, यावती द्रव्ये अपेक्षमाणे तावती एवानपेक्षमाणे नान्यतरत्वं भेदः आपेक्षिकत्वे तु सत्यन्यतरत्वं विशेषोपजनः स्यादिति, किमपेक्षासामर्थ्यमिति चेत् द्वयोर्ग्रहणेऽतिशयग्रहणोपपत्तिः । द्वे द्रव्ये पश्यन्नेकत्वं विद्यमानमतिशयं गृह्णाति, तद्दीर्घमिति व्यवस्यति, यच्च हीनं गृह्णाति तद्रहस्यमिति व्यवस्यतीति । एतच्चापेक्षासामर्थ्यमिति । अथेमे सङ्घैकान्ताः । सर्वमेकं सद्विशेषात्, सर्वं द्वेषा नित्यानित्यभेदात् सर्वं त्वेषा ज्ञाता ज्ञानं ज्ञेयमिति, सर्वं चतुर्धा प्रमाता प्रमाणं प्रमेयं प्रमितिरिति, एवं यथासम्भवमन्येऽपीति । तत्र परीक्षा ॥

## सङ्घैकान्ता सिद्धिः कारणानुपपत्त्युपपत्तिभ्याम् ॥ ४१ ॥

यदि साध्यसाधनयोर्नातात्वमेकान्तो न सिद्ध्यति व्यतिरेकात् अथ साध्यसाधनयोरभेदः एवमप्येकान्तो न सिद्ध्यति साधनाभावात् नहि तन्मन्तरेण कस्यचित् सिद्धिरिति ॥

## न कारणावयवभावात् ॥ ४२ ॥

न सङ्घैकान्तानामसिद्धिः, कस्मात् कारणस्यावयवभावात् अवयवः कश्चित् साधनभूत इत्यव्यतिरेकः, एवं द्वैतादीनामपीति ॥

## निरवयवत्वादहेतुः ॥ ४३ ॥

कारणस्यावयवभावादित्यहेतुः कस्मात् सर्वमेकमित्यनपवर्गेण प्रति-



ज्ञाय कस्यचिदेकत्वमृच्यते तत्र व्यपट्टत्तोऽवयवः साधनभूतो नोपपद्यते एवं  
 द्वैतादिष्वपीति । ते खल्विमे सङ्ख्यैकान्ताः विशेषकारितस्यार्थविस्तारस्य  
 प्रत्याख्यानं न वर्तन्ते प्रत्यक्षानुमानागमविरोधान्निश्चयावादा भवन्ति ।  
 अथाभ्यनुज्ञानेन वर्तन्ते समानधर्मकारितार्थसंप्रहो विशेषकारितस्यार्थभेद  
 इति एवमेकान्तत्वं जहतीति । ते खल्वेते तच्च ज्ञानप्रविवेकार्थमेकान्ताः  
 परीक्षिता इति । प्रेत्यभावानन्तरं फलं तस्मिन् ॥

**सद्यः कालान्तरे च फलनिष्पत्तेः संशयः ॥४४॥**

पचति दोग्धोति सद्यः फलमोदनपयसी, कषति वपतीति कालान्तरे  
 फलं शस्याधिगम इति । अस्ति चेयं क्रिया अग्निहोतृ ऊवान् स्वर्ग-  
 काम इति, एतस्याः फले संशयः ॥

**न सद्यः कालान्तरोपभोग्यत्वात् ॥ ४५ ॥**

स्वर्गः फलं श्रूयते तच्च भिक्षेऽस्मिन् देहभेदादुत्पद्यत इति, न सद्यो-  
 यामादिकामानामारम्भफलमिति ॥

**कालान्तरेणानिष्पत्तिर्हेतुविनाशात् ॥ ४६ ॥**

धस्तायां प्रवृत्तौ प्रवृत्तेः फलं न कारणमन्तरेणोत्पत्तुमर्हति, न खलु  
 वै विनष्टात्कारणात् किञ्चिदुत्पद्यतइति ॥

**प्राङ्निष्पत्तेर्दक्षफलवत्तत् स्यात् ॥ ४७ ॥**

यथा फलार्थिना दृक्षमूले सेकादिपरिकर्म क्रियते तस्मिंश्च प्रध्वस्ते  
 पृथिवीधातुरध्यातुना सङ्गृहीतः आन्तरेण तेजसा पच्यमानो रसद्रव्यं  
 निर्वर्त्तयति स द्रव्यभूतो रसोद्विज्ञानगतः पाकविशिष्टो व्यूहविशेषेण सन्नि-  
 विशमानः पर्णादिफलं निर्वर्त्तयति । एवं परिषेकादि कर्म चार्थवत् न च  
 विनष्टान् फलनिष्पत्तिः, तथा प्रवृत्त्या संस्कारो धर्माधर्मलक्षणोजन्वते स



## ४ अध्याये १ आह्निकम् ।

१४८

जातो निमित्तान्तरानुगृहीतः कालान्तरे फलं निष्पादयतीति । उक्तञ्चै-  
तत्पूर्वकतफलानुबन्धात्तदुत्पत्तिरिति तदिदं प्राङ्निष्पत्तेर्निष्पद्यमानम् ॥

**नासन्नसन्नसदसदस्यतोर्वैधर्म्यात् ॥ ४८ ॥**

प्राङ्निष्पत्तेर्निष्पत्तिधर्मकं नासत् उपादाननियमात् कस्यचिदुत्-  
पत्तये किञ्चिदुपादेयं न सर्वं सर्वस्येत्यसद्भावे नियमो नोपपद्यत इति, न  
सत् प्रागुत्पत्तेर्विद्यमानस्योत्पत्तिरनुपपन्नेति, न सदसत् सदस्यतोर्वैधर्म्यात्  
सदित्यर्थाभ्यनुज्ञा असदित्यर्थप्रतिषेधः एतयोर्व्याघातोर्वैधर्म्यं व्याघाताद-  
व्यतिरेकानुपपत्तिरिति प्रागुत्पत्तेरुत्पत्तिधर्मकमसदित्यङ्गा कस्मात् ॥

**उत्पादव्ययदर्शनात् ॥ ४९ ॥**

यत्पुनरुक्तं प्रागुत्पत्तेः कार्य्यन्नसदुपादाननियमादिति ॥

**बुद्धिसिद्ध्यन्तु तदसत् ॥ ५० ॥**

इदमस्योत्पत्तये समर्थं न सर्वमिति प्रागुत्पत्तेर्नियतकारणं कार्य्यं  
बुद्ध्या सिद्धस्युत्पत्तिनियमदर्शनात् तस्मादुपादाननियतस्योपपत्तिः सति तु  
कार्य्यं प्रागुत्पत्तेरुत्पत्तिरेव नास्तीति ॥

**आश्रयव्यतिरेकाद्गृह्यफलोत्पत्तिवदित्यहेतुः ॥ ५१ ॥**

मूलसेकादि परिकर्म फलञ्चोभयं वृत्ताश्रयम्, कर्म चेह शरीरे फल-  
ञ्चासत्तेत्याश्रयव्यतिरेकादहेतुरिति ॥

**प्रतिरात्माश्रयत्वादप्रतिषेधः ॥ ५२ ॥**

प्रतिरात्मप्रत्यक्षात्वादात्माश्रया तदाश्रयमेव कर्म धर्मसंज्ञितम् धर्म-  
स्यात्मगुणत्वात् । तस्मादाश्रयव्यतिरेकानुपपत्तिरिति ॥

**न पुत्रपशुस्त्रीपरिच्छदहिरण्यान्नादिफलनिर्ह-  
शात् ॥ ५३ ॥**



पुत्रादि फलं निर्दिश्यते न प्रीतिः ग्रामकामो यजेत पुत्रकामो यजे-  
तेति । तत्र यदुक्तं प्रीतिः फलमित्येतदयुक्तमिति ॥

## तत्सम्बन्धात् फलनिष्पत्तेस्तेषु फलवदुपचारः ॥५४॥

पुत्रादिसम्बन्धात् फलं प्रीतिवत्तत्पद्यत इति पुत्रादिषु फलवदुप-  
चारः यथाऽन्ये प्राणशब्दोऽन्नं वै प्राणा इति । फलानन्तरं दुःखमुद्दिष्टम्,  
उक्तञ्च बाधनालक्षणं दुःखमिति । तत् किसिद् प्रत्यात्मवेदनीयस्य सवेजन्तु  
प्रत्यक्षस्य सुखस्य प्रत्याख्यानम्, आहोस्विदन्त्यः कल्प इति, अन्यइत्याह  
कथम् न वै सर्वलोकसाक्षिणं सुखं शक्यं प्रत्याख्यातम्, अयन्तु जन्ममरण-  
प्रबन्धानुभवनमित्यादुदुःखान्निर्विषयस्य दुःखमिहासतो दुःखसंज्ञाभावनोप-  
देशो दुःखज्ञानार्थ इति, कथा युक्त्या सर्वे खलु सत्यनिकायाः सर्वान्युत्पत्ति-  
स्थानानि सर्वैः पुनर्भवो बाधनानुपपत्तो दुःखसाहचर्याद्बाधनालक्षणं दुःख-  
मित्युक्तम् ऋषिभिर्दुःखसंज्ञाभावनमुपदिश्यते अत्र च हेतुरुपादीयते ॥

## विविधबाधनायोगाद्दुःखमेव जन्मोत्पत्तिः ॥५५॥

जन्म जायत इति शरीरेन्द्रियबुद्धयः, शरीरादीनाञ्च संस्थानविशि-  
ष्टानां प्रादुर्भाव उत्पत्तिः । विविधा च बाधना हीना मध्यमोत्कृष्टा  
चेति । उत्कृष्टा नारकिणाम्, तिरश्चालु मध्यमा, मनुष्याणाम् हीना,  
देवानां हीनतरा वीतरागाणाञ्च, एवं सर्वमत्युत्पत्तिस्थानं विविधबाधनानु-  
पपत्तं पश्यतः सुखे तत्बाधनेषु च शरीरेन्द्रियबुद्धिषु दुःखसंज्ञा व्यवतिष्ठते,  
दुःखसंज्ञाव्यवस्थानात् सर्वलोकेष्वनभिरतिसंज्ञा भवति, अनभिरतिसंज्ञा-  
मुपासीनस्य सर्वलोकविषया तृष्णा विच्छिद्यते, तृष्णाप्रहायात् सर्व-  
दुःखाद्विमुच्यत इति । यथा विषयोपात्तं पयोर्विषमिति बुध्यमानो  
नोपादत्ते, अनुपाददानो मरणदुःखं नाप्नोति, दुःखोद्देशस्तु न सुखस्य  
प्रत्याख्यानम्, कस्मात् ॥

## न सुखस्यान्तरालनिष्पत्तेः ॥५६॥



## ४ अध्याय १ आह्निकम् ।

१५१

न खल्वयं दुःखोद्देशः सुखस्य प्रत्याख्यानम् । कस्मात् सुखस्यान्तराल-  
निष्पत्तेः । निष्पद्यते खलु बाधनान्तरालेषु सुखं प्रत्यात्मवेदनीयं शरीरि-  
णाम्, तदशक्यं प्रत्याख्यातुमिति, अत्रापि ॥

## बाधनाऽनिवृत्तेर्वेदयतः पर्येषणदोषादप्रतिषेधः ॥ ५७ ॥

सुखस्य दुःखोद्देशेनेतिप्रकरणात् पर्येषणं प्रार्थनाविषयोर्जनहृणा-  
पर्येषणस्य दोषो यदयं वेदयमानः प्रार्थयते तस्य प्रार्थितं न सम्पद्यते,  
सम्पद्य वा विपद्यते, न्यूनं वा सम्पद्यते, वृद्धं प्रलनीकं वा सम्पद्यते  
इत्येतस्मात् पर्येषणदोषान्नानाविधो मानसः सन्नापो भवति । एवं वेद-  
यतः पर्येषणदोषाद्बाधनाया अनिवृत्तिः । बाधनानिवृत्तेर्दुःखसंज्ञाभावन-  
उद्दिश्यते, अनेन कारणेन दुःखं जन्म न तु सुखस्याभावादिति । अत्रा-  
येतदनुक्तम् । कामं कामयमानस्य यदा कामः सम्पद्यति, अथैनमपरः  
कामः क्षिप्रमेव प्रवाधते । अपि चेदुदनेमिं समन्ताद्भूमिमिमां लभते स  
गवाश्वाम्, न स तेन धनेन धनैषी लभ्यति किन्तु सुखं धनकाम इति ॥

## दुःखविकल्पे सुखाभिमानाच्च ॥ ५८ ॥

दुःखसंज्ञाभावनोपदेशः क्रियते, अयं खलु सुखसंवेदने व्यवस्थितः  
सुखं परमपुरुषार्थं मन्यते न सुखादन्यन्निःश्रेयसमस्ति सुखे प्राप्ते चरि-  
तार्थः कृतकरणीयो भवति । मिथ्यासङ्ख्यात् सुखे तत्त्वाधनेषु च विष-  
येषु संरज्यते संरक्तः सुखाय घटते घटमानस्याऽस्य जन्मजराव्याधिप्रायणा-  
निवसंयोगेष्टवियोगप्रार्थितानुपपत्तिनिमित्तमनेकविधं यावद्दुःखमुत्पद्यते  
तं दुःखविकल्पं सुखमित्यभिमान्यते, सुखाङ्गभूतं दुःखम्, न दुःखमनापाद्य-  
शक्यं सुखमवाप्नुम्, तादर्थ्यात् सुखमेवेदमिति सुखसंज्ञोपहतपक्षो जा-  
यस्व म्रियस्व सन्भावतीति संसारं नातिवर्त्तते, तदस्याः सुखसंज्ञायाः  
प्रतिपक्षो दुःखसंज्ञाभावनमुपदिश्यते दुःखानुपपन्नाद् दुःखं जन्मेति न  
सुखस्याभावात् यद्येवं कस्माद्दुःखं जन्मेति नोच्यते सोऽयमेवं वाच्ये यदेव-  
माह दुःखमेव जन्मेति तेन सुखाभावं ज्ञापयतीति । जन्मनिग्रहार्थं यो



१५२

## न्यायदर्शनवाक्यायनभाष्ये

वै खल्वयमेवशब्दः, कथं न दुःखं जन्म स्वरूपतः किन्तु दुःखोपचारात्,  
एवं सुखमपीति, एतदनेनैव निवर्त्यते न तु दुःखमेव जन्मेति । दुःखो-  
द्देशानन्तरमपवर्गः स प्रत्याख्यायते ।

## ऋणानुबन्धादपवर्गाभावः ॥ ५६ ॥

ऋणानुबन्धाच्चास्यपवर्गः, जायमानो ह वै ब्राह्मणस्त्रिभक्त्यैर्ऋण-  
वान् जायते ब्रह्मचर्येण ऋक्स्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य इति, ऋ-  
णानि तेषामनुबन्धः स्वकर्मभिः सम्बन्धः कर्मसम्बन्धवचनात् । जरामर्थं  
वा एतत् सत्त्वं यदग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ चेति जरया ह एष तस्मात्  
सत्त्वाद्विसृज्यते मृत्युना ह चेति, ऋणानुबन्धादपवर्गानुष्ठानकाखो नास्ती-  
त्यपवर्गाभावः । क्लेशानुबन्धाच्चास्यपवर्गः, क्लेशानुबन्धश्च जायते न-स्य  
क्लेशानुबन्धविच्छेदो गृह्यते । प्रवृत्त्यनुबन्धाच्चास्यपवर्गः । जन्मप्रभृत्यं  
यावत् प्रायणं वागबुद्धिशरीरारम्भेणाविसृक्तो गृह्यते तत्र यदुक्तं दुःख-  
जन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तराभावादपवर्ग  
इति तदनुपपन्नमिति । अत्राभिधीयते, यत्तावद्विज्ञानानुबन्धादिति ऋणै-  
रिव ऋणैरिति ॥

प्रधानशब्दानुपपत्तेर्गुणशब्देनानुवादो निन्दाप्र-  
शंसोपपत्तेः ॥ ६० ॥

ऋणैरिति नायं प्रधानशब्दः यत्र खल्वेकः प्रत्यादेयं ददाति द्वितीयश्च  
प्रतिदेयं गृह्णाति तत्रास्य दृष्टत्वात् प्रधानमृणशब्दः, न चैतदिहोपपद्यते  
प्रधानशब्दानुपपत्तेर्गुणशब्देनायमनुवादः ऋणैरिव ऋणैरिति प्रयुक्तोप-  
पत्तौ तत् अग्निर्माणवक इति । अन्यत्र दृष्ट्वायमृणशब्द इह प्रयुज्यते  
यथाऽग्निशब्दो माणवको, कथं गुणशब्देनानुवादः निन्दाप्रशंसोपपत्तेः  
कर्मलोपे ऋणीव ऋणादानाच्चिन्द्यते, कर्मानुष्ठाने च ऋणीव ऋणदत्तात्  
प्रशस्यते । जायमान इति गुणशब्दो विपर्यये ऽनधिकारात् । जायमानो  
ह वै ब्राह्मण इति च शब्दो गृह्यस्यः सम्पद्यमानो जायमान इति । यदायं  
गृह्यस्यो जायते तदा कर्मभिरधिक्रियते मातृतो जायमानस्यानधिकारात्.



## ४ अध्याये १ आह्निकम् ।

१५३

यदा तु माततो जायते कुमारो न तदा कर्मभिरधिक्रियते, अर्थिनः शक्तस्य चाधिकारात् । अर्थिनः कर्मभिरधिकारः कर्मविधौ कामसंयोगस्युतेः अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः इत्येवमादि, शक्तस्य च प्रवृत्तिसम्भवात् शक्तस्य कर्मभिरधिकारः प्रवृत्तिसम्भवात्, शक्तः खलु विहिते कर्मणि प्रवर्तते नेतर इति, उभयाभावस्तु प्रधानशब्दार्थे माततो जायमाने कुमारे उभयमर्थिता शक्तिश्च न भवतीति । न भिद्यते च लौकिकाद्वाक्याद्बैदिकं वाक्यम् प्रेक्षापूर्वकारिपुरुषप्रणीतत्वेन तत्र लौकिकसावदपरीक्षकोऽपि न जातमात्रं कुमारकमेव ब्रूयादधीष्व यजस्व ब्रह्मचर्यं चरेति । कुतएवं ऋषिरुपपन्नानवद्यवादी उपदेशार्थेन प्रयुक्त उपदिशति । न खलु वै नर्त्तकोऽन्त्रेषु प्रवर्तते न गायनो वधिरेष्विति, उपदिष्टार्थविज्ञानञ्चोपदेशविषयः यद्योपदिष्टमर्थं विजानाति तं प्रत्युपदेशः क्रियते न चैतदस्ति जायमानकुमारके इति गार्हस्थ्यलिङ्गञ्च मन्त्रब्राह्मणं कर्माभिवदति यच्च मन्त्रब्राह्मणं कर्माभिवदति तत्पत्नीसम्बन्धिना गार्हस्थ्यलिङ्गेनोपपन्नम् । तस्माद्गृहस्थोऽयं जायमानोऽभिधीयत इति । अर्थित्वस्य चाविपरिणामे जरामर्थवादोपपत्तिः, यावच्चास्य फलेनार्थित्वं न विपरिणमते न निवर्तते तावदनेन कर्मानुष्ठेयमित्युपपद्यते जरामर्थवादस्तप्रतीति, जरया ह वेत्यायुपस्तुरीयस्य चतुर्थस्य प्रब्रज्यायुक्तस्य वचनम्, जरया ह वा एष एतस्माद्विसृज्यत इति, आयुपस्तुरीयं चतुर्थं प्रब्रज्यायुक्तं जरेत्युच्यते तत्र हि प्रब्रज्या विधीयते अत्यन्तजरामयोगे जरया ह वेत्यनर्थकम् अशक्तो विसृज्यत इत्येतदपि नोपपद्यते स्वयमशक्तस्य बाह्यां शक्तिमाह । अन्तेवासी वा जुहुयाद्ब्राह्मणा स परिक्रीतः क्षीरहोता वा जुहुयाद्धनेन स परिक्रीत इति । अथापि विहितं वानूद्येत कामादार्थः परिकल्प्येत विहितानुवचनं न्याय्यमिति ऋणवानिवास्ततन्त्रो गृहस्थः कर्मसु प्रवर्तते इत्युपपन्नं वाक्यस्य सामर्थ्यम्, फलस्य हि साधनानि प्रयत्नविषयो न फलम्, तानि सम्पन्नानि फलाय कल्पन्ते, विहितञ्च जायमानं विधीयते च जायमानं तेन यः सम्बध्यते सोऽयं जायमान इति । प्रत्यक्षविधानाभावादिति चेत् न प्रतिषेधस्यापि प्रत्यक्षविधानाभावादिति । प्रत्यक्षतो विधीयते गार्हस्थ्यं ब्राह्मणेन, यदि चाश्रमान्तरमभविष्यत् तदपि व्यधा-



स्यत प्रत्यक्षतः, प्रत्यक्षविधानाभावाच्चास्याश्रमान्तरमिति न प्रतिषेधस्य  
प्रत्यक्षविधानाभावात् न प्रतिषेधोऽपि वै ब्राह्मणेन प्रत्यक्षतो विधीयते न  
सन्त्याश्रमान्तराणि एक एव गृहस्याश्रम इति प्रतिषेधस्य प्रत्यक्षतोऽश्रव-  
णादयुक्तमेतदिति ॥

## अधिकाराच्च विधानं विद्यान्तरवत् ॥ ६१ ॥

यथा शास्त्रान्तराणि स्वे स्वेऽधिकारे प्रत्यक्षतो विधायकानि नार्था-  
न्तराभावात्, एवमिदम् ब्राह्मणं गृहस्यशास्त्रं स्वेऽधिकारे प्रत्यक्षतो विधा-  
यकं नाश्रमान्तराणामभावादिति । ऋग्ब्राह्मणञ्चापवर्गाभिधाय्यभिधी-  
यते । ऋचश्च ब्राह्मणानि चापवर्गाभिवादीनि भवन्ति । ऋचश्च तावत्,  
कर्मभिर्नृत्युष्टपयो निषेधः प्रजावन्तो द्रविणमिच्छमानाः, अथापरे ऋपयो  
मनीषिणः परं कर्मभ्योऽमृतत्वमानयुः, न कर्मणा न प्रजया धनेन, त्यागे-  
नैके अमृतत्वमानयुः । परेण नाकं निहितं गुहायां विस्माजते यद्यतयो-  
विशन्ति, वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णन्तमसः परस्तात् । तमेव  
विदित्वातिमृत्युमेति नात्यः पन्था विद्यतेऽयनाय । अथ ब्राह्मणानि, तयो  
धर्मस्तस्माः यज्ञोऽध्ययनं दानमिति, प्रथमस्तपएव, द्वितीयो ब्रह्मचार्या-  
चार्यकुलवासी, तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलोऽवसादयन्, सर्व एवैते  
पुण्यलोका भवन्ति । ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति । एतमेव प्रव्राजिनो लोक-  
मभीक्ष्णतः प्रव्रजन्तीति अथो खल्लाहुः काममयएवायं पुरुष इति स  
यथाकामो भवति तथा क्रतुर्भवति तथा तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तद-  
भिसम्पद्यते इति कर्मभिः संसरणसङ्गा प्रकृतमन्यदुपदिशन्ति इति त  
कामयमनो योऽकामोनिष्काम आत्मकामो भवति न तस्य प्राणा उत्क्रा-  
मन्ति इहैव समवलीयन्ते ब्रह्मैव सन् ब्रह्माय्येतीति । तत्र यदुक्तमृणातु-  
वन्वाद्बर्गाभाव इत्येतद् युक्तमिति ये चत्वारः पथयो देवयाना इति च  
चातुराश्रम्यन्तरेकाश्रम्यानुपपत्तिः, फलार्थिनश्चेदं ब्राह्मणञ्जुरामर्थं  
वा एतत् सत्तं यदग्निहोतं दर्श पूर्णमासौ चेति, कथम् ॥

## समारोपणादात्मन्यप्रतिषेधः ॥ ६२ ॥



## ४ अध्याये १ आह्निकम् ।

१५५

प्राजापत्यामिदिं निरूप्य तस्यां सर्ववेदसं कृत्वा आत्मन्यग्नीन्  
समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेदिति श्रूयते, तेन विजानीमः प्रजावित्तलोके-  
प्रणयाश्च व्युत्थावाथ भिक्षाचर्यं चरन्तीति, एषणाभ्यश्च व्युत्थितस्य पात्र-  
चयान्तानि कर्माणि नोपपद्यन्त इति नाविशेषेण कर्तुः प्रयोजकफलं  
भवतीति । चातुराश्रम्यविधानाच्चेतिहासपुराणधर्मशास्त्रेष्वाकाशस्यानु-  
पपत्तिः । तदप्रमाणमिति चेत् न प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्य  
प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते, ते वा खल्वेते अथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणम-  
भ्यवदन् इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेद इति । तस्मादयुक्तमेतदप्रामा-  
ण्यमिति । अप्रामाण्ये च धर्मशास्त्रस्य प्राणभृतां व्यवहारलोपाह्नोको-  
च्छेदप्रसङ्गः । दृष्टप्रवक्तृसामान्याच्चाप्रामाण्यानुपपत्तिः, य एव मन्त्रब्राह्म-  
णस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति ।  
विषयव्यवस्थानाच्च यथाविषयं प्रामाण्यम् अन्यमन्त्रब्राह्मणस्य विषयोऽन्य-  
च्चेतिहासपुराणधर्मशास्त्राणामिति । यज्ञो मन्त्रब्राह्मणस्य, लोकवृत्तमि-  
तिहासपुराणस्य लोकव्यवहारव्यवस्थानं धर्मशास्त्रस्य विषयः । तत्रैकेन  
सर्वं व्यवस्थाप्यत इति, यथाविषयमेतानि प्रमाणानीन्द्रिवादिवदिति ।  
यत्पुनरेतत् क्लेशानुबन्धस्याविच्छेदादिति ॥

**सुषुप्तस्य स्वप्नादर्शने क्लेशाभावादपवर्गः ॥ ६३ ॥**

यथा सुषुप्तस्य खलु स्वप्नादर्शने रागादुबन्धः सुखदुःखादुबन्धश्च  
विच्छिद्यते तथा ऽपवर्गेऽपीति । एतच्च ब्रह्मविदो मुक्तस्यात्मनो रूपमुदा-  
हरन्तीति । यदपि प्रवृत्त्यनुबन्धादिति ॥

**न प्रवृत्तिः प्रतिसन्धानाय हीनक्लेशस्य ॥ ६४ ॥**

प्रचीणेषु रागद्वेषमोहेषु प्रवृत्तिर्न प्रतिसन्धानाय, पूर्वसन्धिसु  
पूर्वजन्मनिवृत्तौ पुनर्जन्म तच्चावृत्तकारितम्, तस्यां प्रहीणायां पूर्वज-  
न्माभावे जन्मान्तराभावोऽप्रतिसन्धानमपवर्गः । कर्मवैकल्यप्रसङ्ग  
इति चेत् न कर्मविपाकप्रतिसंवेदनस्याप्रत्याख्यानात् पूर्वजन्मनिवृत्तौ



१५६

## न्यायदर्शनवात्स्यायनभाष्ये

पुनर्जन्म न भवतीत्युच्यते न तु कर्मविपाकप्रतिसंवेदनं प्रत्याख्यायते ।  
सर्वाणि पूर्वकर्माणि ह्यन्ते जन्मानि विपच्यन्त इति ॥

न क्लेशसन्ततेः स्वाभाविकत्वात् ॥ ६५ ॥

नोपपद्यते क्लेशानुबन्धविच्छेदः, कस्मात् क्लेशसन्ततेः स्वाभाविकत्वात्  
अनादिरित्यं क्लेशसन्ततिः न चानादिः शक्यः उच्छेत्तुमिति । अत्र कश्चित्  
परीहारमाह ॥

प्रागुत्पत्तेरभावानित्यत्ववत्स्वाभाविकेऽप्यनित्य-  
त्वम् ॥ ६६ ॥

यथाऽनादिः प्रागुत्पत्तेरभाव उत्पन्नेन भावेन निवर्त्यते एवं स्वाभा-  
विको क्लेशसन्ततिरनित्येति ॥

अणुश्यामताऽनित्यत्ववद्वा ॥ ६७ ॥

अपरव्याह तथाऽनादिरणुश्यामता अथ चाग्निसंयोगादनित्या  
तथा क्लेशसन्ततिरपीति, सतः खलु धर्म्मोऽनित्यत्वमनित्यत्वञ्च तत्त्वभावे भावे  
भाक्त्वमिति । अनादिरणुश्यामतेति हेत्वभावादयुक्तम्, अणुत्पत्तिधर्ममनि-  
त्यमिति नात्र हेतुरस्तीति । अयन्तु समाधिः ॥

न सङ्कल्पनिमित्तत्वाच्च रागादीनाम् ॥ ६८ ॥

कर्मनिमित्तत्वादितरेतरनिमित्तत्वाच्चेति समुच्चयः । मिथ्यासङ्क-  
ल्पेभ्यो रञ्जनोयक्रोपनीयमोहनीयेभ्यो रागद्वेषमोहा उत्पद्यन्ते कर्म च  
सत्त्वनिकायनिर्वर्त्तकं नैयमिकान् रागद्वेषमोहान् निर्वर्त्तयति निय-  
मदर्शनात्, दृश्यते हि कश्चित्त्वन्निकायोरागवृद्धलः कश्चिद्वेषवृद्धलः  
कश्चिन्मोहवृद्धल इति । इतरेतरनिमित्ता च रागादीनामुत्पत्तिः मूढो-  
रज्यति, मूढः कुप्यति, रक्तोमुह्यति, कुपितोमुह्यति । सर्वमिथ्यासङ्कल्पानां  
तत्त्वज्ञानादुत्पत्तिः । कारणादुत्पत्तौ च कार्यादुत्पत्तेरिति, रागादीना-



## ४ अध्याये २ आह्निकम् ।

१५७

अत्यन्तमनुत्पत्तिरिति । अनादिश्च क्लेशसन्ततिरित्युक्तम् । सर्वे इमे  
खल्वध्यात्मिका भावा अनादिना प्रवन्धेन प्रवर्तन्ते शरीरादयः, न  
जातव्य कश्चिदनुत्पन्नपूर्वः प्रथमत उल्लिख्यते अन्यत्र तत्त्वज्ञानात्, नचैवं  
सत्यनुत्पत्तिधर्मकं किञ्चिद्व्ययधर्मकं प्रतिज्ञायत इति । कर्म च सत्त्वनिष्ठा-  
यनिर्वर्तकम् तत्त्वज्ञानकृतात् मिथ्यासङ्कल्पविषातान्न रागाद्युत्पत्तिनि-  
मित्तं भवति सुखदुःखसम्बन्धित्तिफलन्त भवतीति ॥

इति वात्स्यायनीये न्यायभाष्ये चतुर्थाध्यायस्याद्यमाह्निकम् ॥

किन्तु खलु भी यावन्तो विषयास्तावत्सु प्रत्येकं ज्ञानसुत्यद्यते । अथ  
क्वचिदुत्पद्यत इति कश्चात् विशेषः, नतावदेकैकत्र यावद्विषयसुत्यद्यते  
ज्ञेयानामानन्यात्, नापि क्वचिदुत्पद्यते, यत्र नोत्पद्यते तत्रानिष्टतो मोह  
इति मोहशेषप्रसङ्गः । न चान्यविषयेण तत्त्वज्ञानेनान्यविषयोमोहः शक्यः  
प्रतिषेद्धुमिति । मिथ्याज्ञानं वै खलु मोहो न, तत्त्वज्ञानस्यानुत्पत्तिमात्रं, तच्च  
मिथ्याज्ञानं यत्र विषये प्रवर्तमानं संसारबीजं भवति स विषयसत्त्वतो ज्ञेय  
इति, किं पुनस्तन्मिथ्याज्ञानम् अनात्मन्यात्मग्रहः, अहमस्मीति मोहोऽहङ्कार  
इति । अनात्माहं खल्वहमस्मीति पश्यतो दृष्टिरहङ्कार इति, किं  
पुनस्तदर्थजातं यद्विषयोऽहङ्कारः शरीरेन्द्रियमनोवेदानाबुद्धयः, कथं  
तद्विषयोऽहङ्कारः संसारबीजं भवति । अयं खलु शरीराद्यर्थजातमह-  
मस्मीति व्यवसितस्तदुच्छेदेनेनालोच्छेदं मन्यमानोऽनुच्छेदतप्णापरिभूतः  
पुनः पुनस्तदुपादत्ते तदुपाददानो जन्ममरणाय यतते तेनावियोगाच्चा-  
त्यन्तं दुःखादिमुच्यते इति । यस्तु दुःखं दुःखायतनं दुःखानुपपत्तं सुखञ्च  
सर्वमिदं दुःखमिति पश्यति, स दुःखं परिजानाति परिज्ञातञ्च दुःखं  
प्रहीणं भवत्यनुपादानात् सविषान्नवत्, एवं दोषान् कर्म च दुःखहेतु-  
रिति पश्यति, न वा प्रहीणेषु दोषेषु दुःखप्रवन्धोच्छेदेन शक्यम्भवितुमिति  
दोषान् जहाति, प्रहीणेषु च दोषेषु न प्रवृत्तिः प्रतिसम्भवायेत्युक्तम्,



प्रेत्यभावफलदुःखानि च ज्ञेयानि व्यवस्थापयति कर्म च दोषांश्च प्रहेवान्  
अपवर्गोऽधिगन्तव्यस्तस्याधिगमोपायस्तत्त्वज्ञानम्, एवं च तत्त्वभिर्विधाभिः  
प्रमेयं विभक्तमासेवमानस्याभ्यस्यतो भावयतः सम्यग्दर्शनम् यथाभूतावबोध-  
स्तत्त्वज्ञानमुत्पद्यते, एवं च ॥

## दोषनिमित्तानां तत्त्वज्ञानादहङ्कारनिवृत्तिः ॥१॥

शरीरादि दुःखानां प्रमेयं दोषनिमित्तं तद्विषयत्वान्निष्ठज्ञानस्य,  
तदिदं तत्त्वज्ञानं तद्विषयसुखन्नमहङ्कारं निवर्त्तयति, समानविषये तयो-  
र्विरोधात्, एवं तत्त्वज्ञानाद्दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषान्निष्ठज्ञानानामुत्तरोत्त-  
रापाये तदनन्तराभावादपवर्गे इति, स चायं शास्त्रार्थसङ्ग्रहोऽनूद्यते नापू-  
र्वो विधीयत इति । प्रसङ्गानामुपूर्व्या तु खलु ॥

## दोषनिमित्तं रूपादयो विषयाः सङ्कल्पकताः ॥२॥

कामविषया इन्द्रियार्था इति रूपादय उच्यन्ते ते मिथ्यासङ्कल्पा-  
माना रागद्वेषमोहान् प्रवर्त्तयन्ति तान् पूर्वस्यसञ्चक्षीत, तांश्च प्रसञ्चक्षा-  
णस्य रूपादिविषयो मिथ्यासङ्कल्पो निवर्त्तते, तन्निवृत्तावध्यात्मं शरी-  
रादि प्रसञ्चक्षीत, तत्प्रसङ्गज्ञानाद्ध्यात्मविषयोऽहङ्कारो निवर्त्तते, सोऽयम-  
ध्यात्मं ब्रह्म विविक्तचित्तो विहरन् सुक्त इत्युच्यते । अतः परं काचित्  
संज्ञा हेया, काचिद्भाषयितव्येत्युपदिश्यते, नार्थनिराकरणमर्थोपादनं  
वा कथमिति ॥

## तन्निमित्तत्ववयव्यभिमानः ॥ ३ ॥

तेषां दोषाणां निमित्तत्ववयव्यभिमानः सा च खलु स्त्रीसंज्ञा सप-  
रिक्ताः पुरुषस्य, पुरुषसंज्ञा च स्त्रियाः । परिक्ताश्च निमित्तसंज्ञा  
अनुव्यञ्जनसंज्ञा च, निमित्तसंज्ञा दन्तोष्ठं चक्षुर्नासिकम्, अनुव्यञ्जन-  
संज्ञा इत्थं दन्तौ इत्थमोष्ठाविति, सेयं संज्ञा कामं वर्द्धयति तदनुष-  
क्तांश्च दोषान् विवर्जनीयान्, वर्जनन्त्वस्याः भेदेनावयवसंज्ञा केश-



## ४ अध्याये २ आङ्गिकम् ।

१५८

लोमसांसशोणितास्थिस्नायुशिराकफपित्तोच्चारदिसंज्ञा, तामशुभसंज्ञे-  
त्याचक्षते, तामस्य भावयतः कामरागः प्रहीयते, सत्ये च द्विविधे विषये  
काचित् संज्ञा भावनीया काचित् परिवर्जनीयेत्युपदिश्यते यथा  
विषममृतोऽन्नेऽन्नसंज्ञोपादानाय विषसंज्ञा प्रहाणयेति । अथेदानीमर्थं  
निराकरिष्यतामवयव्युपपाद्यते ॥

**विद्याऽविद्याद्वैविध्यात् संशयः ॥ ४ ॥**

सदसतोरुपलम्भाद्विद्या द्विविधा, सदसतोरनुपलम्भादविद्यापि  
द्विविधा, उपलभ्यमानेऽवयविनि विद्याद्वैविध्यात् संशयः, अनुपलभ्यमाने  
चाविद्याद्वैविध्यात् संशयः सोऽयमवयवी यद्युपलभ्यते अद्यापि नोपल-  
भ्यते न कथञ्चन संशयात् सूच्यते इति ॥

**तदसंशयः पूर्वहेतुप्रसिद्धत्वात् ॥ ५ ॥**

तस्मिन्ननुपपन्नः संशयः, कस्मात् पूर्वोक्तहेतुनामप्रतिषेधादस्ति  
द्रव्यान्तरारम्भ इति ॥

**वृत्त्यनुपपत्तेरपि तर्हि न संशयः ॥ ६ ॥**

वृत्त्यनुपपत्तेरपि तर्हि संशयानुपपत्तिर्नास्त्यवयवीति तद्विभजते ॥

**कृत्स्नैकदेशावृत्तित्वादवयवानामवयव्यभावः ॥ ७ ॥**

एकैकोऽवयवी न तावत् कृत्स्नेऽवयविनि वर्त्तते तयोः परिमाणभेदा-  
दवयवान्तरसम्बन्धाभावप्रसङ्गाच्च, नाप्यवयव्यैकदेशेन, नह्यस्यान्येऽवयवाः  
एकदेशभूताः । सन्तीति । अथावयवेष्तेषावयवी वर्त्तते ॥

**तेषु चावृत्तेरवयव्यभावः ॥ ८ ॥**

न तावत् प्रत्यवयवं वर्त्तते तयोः परिमाणभेदात् द्रव्यस्य चैकद्रव्य-  
त्वप्रसङ्गात्, नाप्येकदेशैः सर्वेषु अन्यावयवाभावात्, तदेवं यतः संशयो  
नास्त्यवयवीति ॥



पृथक् चावयवेभ्योऽवृत्तेः ॥ ९ ॥

पृथक् चावयवेभ्यो धर्मिभ्यो धर्मस्वामहणादिति समानम् ॥

नचावयव्यवयवाः ॥ १० ॥

एकस्मिन् भेदाभावाद्भेदशब्दप्रयोगानुपपत्तेर-  
प्रश्नः ॥ ११ ॥

किं प्रत्यवयवं कृत्स्नोऽवयवी वर्त्तते अथैकदेशेनेति नोपपद्यते प्रश्नः,  
कस्मात् एकस्मिन् भेदाभावाद्भेदशब्दप्रयोगानुपपत्तेः । कृत्स्नमित्यनेक-  
स्याशेषाभिधानम्, एकदेशइति नानात्वे कस्यचिदभिधानम्, ताविसौ  
कृत्स्नैकदेशशब्दौ भेदविषयौ नैकस्मिन्नवयविविन्ध्युपपद्येते भेदाभावादिति,  
अन्यावयवाभावान्नैकदेशेन वर्त्तते इत्यहेतुः ॥

अवयवान्तराभावेऽप्यवृत्तेरहेतुः ॥ १२ ॥

अवयवान्तराभावादिति यद्यप्येकदेशोऽवयवान्तरभूतः स्यात् तथाप्य-  
वयवेऽवयवान्तरं वर्त्तते नावयवीति, अन्यावयवभावेऽप्यवृत्तेरवयविनो नैक-  
देशेन वृत्तिरन्यावयवाभावादित्यहेतुः, वृत्तिः कथमिति चेत् एकस्थाने-  
कत्वान्श्रयाश्रितसम्बन्धलक्षणा प्राप्तिः, आश्रयाश्रितभावः कथमिति चेत्  
यस्य यतोऽन्यत्वात्मलाभानुपपत्तिः स आश्रयः, न कारणद्रव्येभ्योऽन्यत्र  
कार्यद्रव्यमात्मानं लभते, विपर्ययस्तु कारणद्रव्येष्विति, नित्येषु कथमिति  
चेत् अनित्येषु दर्शनात् सिद्धम् । नित्येषु द्रव्येषु कथमाश्रयाश्रयिभाव  
इतीति चेत् अनित्येषु द्रव्यगुणेषु दर्शनादाश्रयाश्रितभावस्य नित्येषु  
सिद्धिरिति । तस्मादवयव्यभिमानः प्रतिपिद्यते निःश्रेयसकामस्य नाव-  
यवी यथा रूपादिषु मिथ्यासङ्ख्यो न रूपादय इति । सर्वाग्रहणमवयव्य-  
सिद्धेरिति प्रत्यवस्थितोऽप्येतद् ह ॥

केशसमूहे तैमिरिकोपलब्धिवत्तदुपलब्धिः ॥ १३ ॥



## ४ अध्याये २ आह्निकम् ।

१६१

यथैकैकः केशस्तेमिरिकेण नोपलभ्यते, केशसमूहस्तूपलभ्यते, तथैकैको-  
ऽणुर्नोपलभ्यते अणुसञ्चयस्तूपलभ्यते, तदिदमणुसमूहविषयं ग्रहणमिति ॥

**स्वविषयानतिक्रमेणेन्द्रिय पटुमन्दभावाद्विषय-  
ग्रहणस्य तथाभावो नाविषये प्रवृत्तिः ॥ १४ ॥**

यथा विषयमिन्द्रियाणां पटुमन्दभावाद्विषयग्रहणानां पटुमन्दभावो  
भवति, चक्षुः खलु प्रकृष्यमाणं नाविषयङ्गत्वं गृह्णाति, निक्षेपमाणञ्च न  
स्वविषयात् प्रच्यवते, सोऽयं तैमिरिकः कश्चिच्चक्षुर्विषयं केशं न गृह्णाति  
कश्चित् गृह्णाति केशसमूहम्, उभयं ह्यतैमिरिकेण चक्षुषा गृह्यते, पर-  
माणवस्त्वतीन्द्रियाः इन्द्रियाविषयाभूता न केनचिदिन्द्रियेण गृह्यन्ते,  
समुदितास्तु गृह्यन्त इत्यविषये प्रवृत्तिरिन्द्रियस्य प्रसज्येत, न जात्यर्थान्तर-  
मणुभ्यो गृह्यत इति, ते खल्विमे परमाणवः सम्मिता गृह्यमाणा अती-  
न्द्रियत्वं जहति, वियुक्ताश्चागृह्यमाणा अतीन्द्रियत्वं जहति इति सोऽयं  
द्रव्यान्तरानुत्पत्तावतिमहान् व्याघातः, इत्युपपद्यते द्रव्यान्तरम्, यत्  
ग्रहणस्य विषय इति, सञ्चयभावं विषय इति चेत् न सञ्चयस्य संयोग-  
भावात्तस्य चातीन्द्रियस्याग्रहणादयुक्तम्, सञ्चयः खल्वनेकस्य संयोगः स च  
गृह्यमाणान्त्रयो गृह्यते नातीन्द्रियान्त्रयः । भवति ह्रीदमनेन संयुक्तमिति,  
तस्मादयुक्तमेतदिति । गृह्यमाणस्य चेन्द्रियेण विषयस्यावरणाद्यनुपलब्धि-  
कारणमुपलभ्यते तस्मान्नेन्द्रियदौर्बल्यादनुपलब्धिरणूनाम् । यथा नेन्द्रिय-  
दौर्बल्याच्चक्षुषाऽनुपलब्धिर्गन्धादीनामिति ॥

**अवयवावयविप्रसङ्गश्चैवमाप्रलयात् ॥ १५ ॥**

यः खल्ववयविनोऽवयवेषु वृत्तिप्रतिषेधादभावः सोऽयमवयवस्यावयवेषु  
प्रसज्यमानः, सर्वप्रलयाय वा कल्पेयत, निरवयवाद्वा परमाणुत्वं निवर्त्तते,  
उभयथा चोपलब्धिविषयस्याभावः, तदभावादुपलब्ध्याभावः । उपलब्ध्या-  
श्रयश्चायं वृत्तिप्रतिषेधः स आश्रयं व्याप्तन्नात्मदोषाय कल्पयत इति ।  
अथापि ॥



न प्रलयोऽणुसङ्गावात् ॥ १६ ॥

अवयवविभागमाश्रित्य वृत्तिप्रतिषेधादभावः प्रसज्यमानो निरवयवात् परमाणो निर्वर्तते न सर्वप्रलयाय कल्प्यते । निरवयवत्वं तु खलु परमाणो-  
र्विभागैरत्यन्तरप्रसङ्गस्य यतो नात्पीदस्तत्वावस्थानात् लोपस्य खलु प्रवि-  
भज्यमानावयवस्यात्यन्तरमल्पतमसुत्तरसुत्तरं भवति स चायमल्पतरप्रसङ्गः  
यस्मान्नात्यन्तरमस्ति यः परमोऽल्पस्तत्र निवर्तते, यतश्च नात्पीवोऽस्ति तं  
परमाणुं प्रचक्ष्महे इति ॥

परं वा चुटेः ॥ १७ ॥

अवयवविभागस्यानवस्थानाद्द्व्याणामसङ्ख्येयत्वात् त्वुचिनिवृत्तिरिति ।  
अथेदानीमानुपलम्बिकः सर्वं नास्तीति मन्यमान आह ॥

आकाशव्यतिभेदात् तदनुपपत्तिः ॥ १८ ॥

तस्याणोर्निरवयवस्यानुपपत्तिः, कस्मात् आकाशव्यतिभेदात् । अन्त-  
र्वहिक्षाणुराकाशेन समाविष्टो व्यतिभिन्नः व्यतिभेदात् सावयवः, साव-  
यवत्वदनित्य इति ॥

आकाशासर्वगतत्वं वा ॥ १९ ॥

अथैतन्नेष्यते परमाणोरन्तर्नास्त्याकाशमित्यसर्वगतत्वं प्रसज्यत इति ॥

अन्तर्वहिस्र कार्यद्रव्यस्य कारणान्तरवचना-  
दकार्ये तदभावः ॥ २० ॥

अन्तरिति पिहितं कारणान्तरैः कारणमुच्यते, वहिरिति च व्यव-  
धायकमव्यवहितं कारणमेवोच्यते, तदेतत्कार्यद्रव्यस्य सम्भवति नाणोर-  
कार्यत्वात् अकार्ये हि परमाणावन्तर्वहिरित्यस्याभावः । यत्र चास्य  
भावोऽणुकार्यं तन्न परमाणुः यतो हि नात्यन्तरमस्ति स परमाणुरिति ॥



## सर्वसंयोगशब्दविभवाच्च सर्वगतम् ॥ २१ ॥

यत् कचिदुपनाः शब्दा विभवन्याकाशे तदाश्रयाभवन्ति मनोभिः परमाणुभिः स्वात्कार्यैश्च संयोगा विभवन्याकाशे नासंयुक्ताकाशेन किञ्चित्-  
मूर्त्तद्रव्यसुपलभ्यते तस्माच्चासर्वगतमिति ॥

## अव्यूहाविष्टस्मविभुत्वानि चाकाशधर्माः ॥ २२ ॥

संयताप्रतिघातिना द्रव्येण न व्यूह्यते यथा काष्ठेनोदकम्, कस्मात्  
निरवयवत्वात् सर्पञ्च प्रतिघाति द्रव्यं न विष्टभ्नाति, नास्य क्रियाहेतुं  
गुणं प्रतिवैभ्नाति, कस्मात् अस्पर्शत्वात् विपर्यये हि विष्टम्भो दृष्ट इति । स  
भवान् स्पर्शवति द्रव्ये दृष्टं धर्मं विपरोते नाशङ्कितमर्हति । अणववयव-  
स्याणुतरत्वप्रसङ्गादणुकार्यप्रतिषेधः । सावयवत्वे चाणोरणववयोऽणुतर-  
इति प्रसज्यते, कस्मात् वार्यकारणद्रव्ययोः परिमाणभेददर्शनात् ।  
तस्मादणववयवस्याणुतरत्वम्, यस्तु सावयवोऽणुकार्यं तदिति, तस्मादणु-  
कार्यमिदं प्रतिषिध्यत इति, कारणविभागाच्च कार्यस्थानित्वं नाकाश-  
व्यतिभेदात् लोष्ठस्यावयवविभागादनित्यत्वं नाकाशसमावेशादिति ॥

## मूर्त्तिमताञ्च संस्थानोपपत्तेरवयवसङ्गावः ॥ २३ ॥

परिच्छिन्नानां हि स्पर्शवतां संस्थानं त्रिकोणं चतुरस्रं समं परि-  
मण्डलमित्युपपद्यते, यत् तत्स्थानं सोऽवयवसन्निवेशः, परिमण्डलाश्चा-  
णवस्तस्मात् सावयवा इति ॥

## संयोगोपपत्तेश्च ॥ २४ ॥

मध्ये सन्नणुः पूर्वापराभ्यामणुभ्यां संयुक्तस्तयोर्व्यवधानं कुरुते व्यव-  
धानेनानुमीयते, पूर्वभागेन पूर्वैणाणुना संयुज्यते, परभागेणापरेणाणुना  
संयुज्यते, यौ तौ पूर्वापरौ भागौ तावत्सावयवौ, एवं सर्वतः संयुज्यमानस्य  
सर्वतोभागा अवयवा इति, यत् तावन्मूर्त्तिमतां संस्थानोपपत्तेरवयवस-



ज्ञाव इति, अतोक्तं किमुक्तम् विभागाल्पतरप्रसङ्गस्य यतो नाल्पीयस्तत्  
निवृत्तेरखवयवस्य चाणुतरत्व प्रसङ्गादणुकार्यप्रतिषेध इति । यत् पुन-  
रेतत् संयोगोपपत्तेश्चेति स्पर्शवत्त्वाद्यवधानमाश्रयस्य चाव्याप्ता भाग-  
भक्तिः, उक्तञ्चाव स्पर्शवानणुः स्पर्शवतोरखोः प्रतिघाताद्यवधायको न  
सावयवत्वात्, स्पर्शवत्त्वात्, स्पर्शवत्त्वाच्च व्यवधाने सत्यणुसंयोगो नाश्रयं  
व्याप्नोतीति भागभक्तिर्भवति । भागवानिवायमिति, उक्तञ्चाव विभागे-  
ऽल्पतरप्रसङ्गस्य यतो नाल्पीयस्तत्त्वावस्थानात् तदवयवस्य चाणुतरत्वप्रस-  
ङ्गादणुकार्यप्रतिषेध इति मूर्त्तिमताञ्च संस्थानोपपत्तेः संयोगोपपत्तेश्च  
परमाणूनां सावयवत्वमिति हेत्वोः ॥

### अनवस्थाकारित्वादनवस्थानुपपत्तेश्चाप्रतिषेधः २५

यावन्मूर्त्तिमद्यावच्च संयुज्यते तत्सर्वं सावयवमित्यनवस्थाकारिणा-  
विमौ हेतुः, सा चानवस्था नोपपद्यते सत्यामवस्थायां सत्यौ हेतुः स्याताम् ।  
तस्मादप्रतिषेधोऽयं निरवयवत्वस्येति । विभागस्य च विभज्यमानहाने-  
र्नोपपद्यते तस्मात् प्रलयान्तता नोपपद्यत इति । अनवस्थायाञ्च प्रत्य-  
धिकरणं द्रव्यावयवानामानन्त्यात् परिमाणभेदानां गुरुत्वस्य चाग्रहणम्,  
समानपरिमाणत्वं चावयवावयविनोः परमाण्ववयवविभागादूर्द्ध्वमिति ।  
यदिदं भावान् बुद्धीराश्रित्य बुद्धिविषयाः सन्तीति मन्यते । मिथ्याबु-  
द्धय एताः । यदिहि तत्त्वबुद्धयः सुबुद्ध्या विवेचने क्रियमाणे याथात्म्यं  
बुद्धिविषयाणामुपलभ्येत ॥

बुद्ध्याविवेचनात्तु भावानां याथात्म्यानुपलब्धि-  
स्तन्वपकर्षणे षट्सङ्गावानुपलब्धिवत् तदनुपलब्धिः

॥ २६ ॥

यथायं तन्तुरयं तन्तुरिति प्रत्येकं तन्तुषु विविध्यमानेषु नार्थान्तरं  
किञ्चिदुपलभ्यते यत्तद्बुद्धेर्विषयः स्यात् याथात्म्यानुपलब्धेरसति विषये  
षट्बुद्धिर्भवतीति मिथ्याबुद्धिर्भवति एवं सर्वत्रेति ॥



४ अध्याये २ आह्निकम् ।

१६५

व्याहृतत्वादहेतुः ॥ २७ ॥

यदि बुद्ध्या विवेचनं भावानाम्, न सर्वभावानां याथाक्यानुपलब्धिः ।  
अथ सर्वभावानां याथाक्यानुपलब्धिर्न बुद्ध्या विवेचनं भावानां याथाक्या-  
नुपलब्धिश्चेति व्याहन्यते, तदुक्तमवयवावयविप्रसङ्गश्चैवमाप्रलयादिति ॥

तदाश्रयत्वादपृथग्ग्रहणम् ॥ २८ ॥

कार्यद्रव्यं कारणद्रव्याश्रितं तत् कारणेभ्यः पृथङ् नोपलभ्यते विप-  
र्यये पृथग्ग्रहणात्, यत्वाश्रयाश्रितभावो नास्ति तत्र पृथग्ग्रहणमिति बुद्ध्या  
विवेचनात् त्व भावानां पृथग्ग्रहणमतीन्द्रियेष्वणुषु, यदिन्द्रियेण गृह्यते  
तदेतया बुद्ध्या धिविच्यमानमन्यदिति ॥

प्रमाणतच्चाऽर्थप्रतिपत्तेः ॥ २९ ॥

बुद्ध्या विवेचनाद्भावानां याथाक्योपलब्धिः । यदस्ति यथा च तत्  
सर्वप्रमाणत उपलब्ध्या सिद्ध्यति । या च प्रमाणत उपलब्धिस्तद्बुद्ध्या विवे-  
चनं भावानाम्, तेन सर्वशास्त्राणि सर्वकर्माणि सर्वे च शरीरिणां  
व्यवहाराः व्याप्ताः । परीक्षमाणो हि बुद्ध्याध्यवस्यति इदमस्तीदं नास्तीति  
तत्र न सर्वभावानुपपत्तिः ॥

प्रमाणानुपपत्तुपपत्तिभ्याम् ॥ ३० ॥

एवञ्च सति सर्वज्ञास्तीति नोपपद्यते, कस्मात् प्रमाणानुपपत्त्युपप-  
त्तिभ्याम्, यदि सर्वज्ञास्तीति प्रमाणानुपपद्यते सर्वं नास्तीत्येतद्व्याहन्यते ।  
अथ प्रमाणं नोपपद्यते सर्वं नास्तीत्यस्य कथं सिद्धिः, अथ प्रमाणमनन्तरेण  
सिद्धिः, सर्वमस्तीत्यस्य कथं न सिद्धिः ॥

स्वप्नविषयाभिमानवदयं प्रमाणप्रमेयाभिमानः ३१

यथा स्वप्ने न विषयाः सन्त्यथ चाभिमानो भवति, एवं न प्रमाणानि  
प्रमेयाणि च सन्ति, अथ च प्रमाणप्रमेयाभिमानो भवति ॥



१६६

न्यायदर्शनवात्स्यायनभाष्ये

मायागन्धर्वनगरस्तुगट्टिणिकावद्धा ॥ ३२ ॥

हेत्वभावादसिद्धिः ॥ ३३ ॥

स्वप्नान्ते विषयाभिमानवत् प्रमाणप्रमेयाभिमानो न पुनर्जागरितान्ते विषयोपलब्धवदित्यत्र हेतुर्नास्ति हेत्वभावादसिद्धिः । स्वप्नान्ते चासन्नो विषया उपलब्धन्त इत्यत्रापि हेत्वभावः । प्रतिबोधेऽनुपलम्भादिति चेत् प्रतिबोधविषयोपलम्भादप्रतिषेधः, यदि प्रतिबोधेऽनुपलम्भात् स्वप्ने विषया न सन्तीति तर्हि य इमे प्रतिबुद्धेन विषया उपलब्धन्ते उपलम्भात्सन्तीति विपर्यये हि हेतुसामर्थ्यम्, उपलम्भाभावे सत्यनुपलम्भादभावः सिद्ध्यति, उभयथा त्वभावे नानुपलम्भस्य सामर्थ्यमस्ति, यथा प्रदीपस्थाभावादूपस्थादर्शनमिति, तत्र भावेनाभावः समर्थ्यत इति, स्वप्नान्तविल्ले च हेतुवचनम् स्वप्नविषयाभिमानवदिति ब्रुवता स्वप्नान्तविकल्पो हेतुर्वाच्यः, कश्चित् स्वप्नोभयोपसंहितः, कश्चित् प्रमोदोपसंहितः, कश्चिदुभयविपरीतः कदाचित् स्वप्नमेव न पश्यतीति, निमित्तवतस्तु स्वप्नविषयाभिमानस्य निमित्तविकल्पाद्विकल्पोपपत्तिः ॥

स्रुतिसङ्कल्पवच्च स्वप्नविषयाभिमानः ॥ ३४ ॥

पूर्वोपलब्धो विषयो यथा स्रुतिश्च सङ्कल्पश्च पूर्वोपलब्धविषयो न तस्य प्रत्याख्यानार्थवत्पत्तेः । तथा स्वप्ने विषयग्रहणं पूर्वोपलब्धविषयं न तस्य प्रत्याख्यानार्थकल्पते । एवं दृष्टविषयश्च स्वप्नान्तोजागरितान्तान्ते यः सुप्तः स्वप्नं पश्यति स एव जाग्रत् स्वप्नदर्शनानि प्रतिसन्धत्ते इदमद्राक्ष्यमिति । तत्र जाग्रद्वुद्धिदृष्टिवशात् स्वप्नविषयाभिमानो मिथ्येति व्यवसायः, सति च प्रतिसन्धाने या जाग्रतो बुद्धिदृष्टिस्तद्वशादयं व्यवसायः स्वप्नविषयाभिमानो मिथ्येति । उभयाविशेषे तु साधनानर्थक्यम्, यस्य स्वप्नान्तजागरितान्तयोरविशेषस्तस्य स्वप्नविषयाभिमानवदिति साधनमनर्थकम्, तदाश्रयप्रत्याख्यानात् । अतस्मिंस्तदिति च व्यवसायः प्रधानाश्रयः, अपुरुषे स्थाणौ पुरुष इति व्यवसायः स प्रधानाश्रयो न खलु पुरुषेऽनुपलब्धे पुरुषे



## ४ अध्याये २ आह्निकम् ।

१६७

इत्यपुरुषे व्यवसायो भवति, एवं स्वप्नविषयस्य व्यवसायो हस्तिनसद्राजं पर्वतसद्राजमिति प्रधानाश्रयो भवितुमर्हति । एवञ्च सति ॥

**मिथ्योपलब्धिविनाशस्तत्त्वज्ञानात् स्वप्नविष-  
याभिमानप्रणाशवत् प्रतिबोधे ॥ ३५ ॥**

स्थायौ पुरुषोऽयमिति व्यवसायो मिथ्योपलब्धिरतस्मिंस्तदिति ज्ञानम्, स्थायौ स्थायुरिति व्यवसायस्तत्त्वज्ञानम्, तत्त्वज्ञानेन च मिथ्योपलब्धिर्निवर्त्यते नार्थः स्थायुपुरुषसामान्यलक्षणः, यथा प्रतिबोधे या ज्ञानवृत्तिस्तथा स्वप्नविषयाभिमानो निवर्त्यते नार्थो विषयसामान्यलक्षणः, तथा सायागन्धर्वनगरमृगटण्डिकाणामपि या बुद्धयोऽतस्मिंस्तदिति व्यवसायास्तत्वाप्यनेनैव कल्पेन मिथ्योपलब्धिविनाशस्तत्त्वज्ञानान्नार्थप्रतिषेध इति । उपादानवच्च सायादिषु मिथ्याज्ञानम् । प्रज्ञापनीयस्वरूपञ्च द्रव्यसुपादाय साधनवान् परस्य मिथ्याध्यवसायं करोति सा मया । नीहारप्रभृतीनां नगरस्वरूपसन्निवेशे दूरान्नगरबुद्धिरुत्पद्यते, विपर्यये तदभावात्, सूर्यमरीचिषु भौमेनोपगमा संसृष्टेषु सन्दमानेपूदकबुद्धिर्भवति, सामान्यग्रहणात् अन्तिकस्थस्य, विपर्यये तदभावात्, क्वचित् कदाचित्कस्यचित्च भावान्नानिमित्तं मिथ्याज्ञानम् । दृष्टञ्च बुद्धिद्वैतं सायाप्रयोक्तुः परस्य च दूरान्तिकस्थयोग्यगन्धर्वनगरमृगटण्डिकासु, स्वप्नप्रतिबुद्धयोश्च स्वप्नविषये तदेतत्सर्वस्याभावे निरुपाख्यतायां निरात्मकत्वेनोपपद्यत इति ॥

**बुद्धेर्ज्ञैवं निमित्तसद्भावोपलम्भात् ॥ ३६ ॥**

मिथ्याबुद्धेश्चार्थवदप्रतिषेधः कस्मात् निमित्तोपलम्भात् सद्भावोपलम्भाच्च, उपलभ्यते मिथ्याबुद्धिनिमित्तम्, मिथ्याबुद्धिश्च प्रत्यात्मसत्यज्ञा गृह्यते संवेद्यत्वात्, कस्मात् मिथ्याबुद्धिरप्यस्तीति ॥

**तत्त्वप्रधानभेदाच्च मिथ्याबुद्धेर्द्वैविध्योपपत्तिः ॥ ३७ ॥**



तत्त्वं स्थाणुरिति प्रधानं पुरुष इति । तत्त्वप्रधानयोरलोपाङ्गेदात्  
स्थाणौ पुरुष इति मिथ्याबुद्धिरुत्पद्यते सामान्यग्रहणात्, एवं पताकायां  
बलाकेति, लोछे कपोतइति, न तु समाने विषये मिथ्याबुद्धीनां समावेशः,  
सामान्यग्रहणाव्यवस्थानात् । यस्य तु निरात्मकं निरुपाख्यं सर्वं तस्य  
समावेशः प्रसज्यते, गश्पादौ च प्रमेये गश्पादिबुद्धयो मिथ्याभिमतस्तत्त्व-  
प्रधानयोः सामान्यग्रहणस्य चाभावात् तत्त्वबुद्धय एव भवन्ति । तस्माद-  
युक्तमेतत् प्रमाणप्रमेयबुद्धयो मित्येति, दोषनिमित्तानां तत्त्वज्ञानाद-  
हङ्कारनिवृत्तिरित्युक्तम् अथ कथं तत्त्वज्ञानमुत्पद्यत इति ॥

**समाधिविशेषाभ्यासात् ॥ ३८ ॥**

स तु प्रत्याहृतस्येन्द्रियेभ्यो मनसो धारकेण प्रयत्नेन ध्यायेमाणस्या-  
त्मना संयोगस्तत्त्वबुद्ध्याविशिष्टः, सति हि तस्मिन्निन्द्रियार्थेषु बुद्धयो  
नोत्पद्यन्ते, तदभ्यासवशात् तत्त्वबुद्धिरुत्पद्यते, यदुक्तं सति हि तस्मि-  
न्निन्द्रियार्थेषु बुद्धयो नोत्पद्यन् इत्येतत् ॥

**नार्थविशेषप्रावल्यात् ॥ ३९ ॥**

अनिच्छतोऽपि बुद्ध्युत्पत्तेर्नैतदुक्तम्, कस्मात् अर्थविशेषप्रावल्यात् अबु-  
भुत्स मानस्यापि बुद्ध्युत्पत्तिर्दृष्टा । यथा स्तनयितुशब्दप्रभृतिषु । तत्र  
समाधिविशेषो नोपपद्यते ॥

**क्षुदादिभिः प्रवर्त्तनाच्च ॥ ४० ॥**

क्षुत्पिपासाभ्यां शीतोष्णाभ्यां व्याधिभिश्चानिच्छतोऽपि बुद्ध्यः प्रव-  
र्त्तन्ते । तस्मादैकाग्रानुपपत्तिरिति । अस्वेतत् समाधिव्युत्थाननिमित्तं  
समाधिप्रत्यनोकञ्च सति त्वेतस्मिन् ॥

**पूर्वकृतफलानुबन्धात् तदुत्पत्तिः ॥ ४१ ॥**

पूर्वकृतो जन्मान्तरोपचितस्तत्त्वज्ञानहेतुर्धर्मप्रविवेकः फलानुबन्धो  
योगाभ्याससामर्थ्यम्, निष्फले हि अभ्यासेनाभ्यास आद्रिषेरन् । दृष्टं हि  
लौकिकेषु कर्मसम्याससामर्थ्यम् प्रत्यनोकपरिहारार्थञ्च ॥



## अरण्यगुहापुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशः ॥४२॥

योगाभ्यासजनितो धर्मो जन्मान्तरेऽप्यनुवर्तते प्रवयकाष्टागते तत्त्व-  
ज्ञानहेतौ धर्मे प्रकृष्टायां समाधिभावनायां तत्त्वज्ञानसुखद्वय इति,  
दृष्ट्य समाधिर्नार्थविशेषप्रावल्याभिभवः । नाहमेतदशौचं नाहमेतदज्ञा-  
सिपमन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह लौकिक इति । यदर्थविशेषप्रावल्याद-  
निच्छतोऽपि वृद्धत्यतिरुज्जायते ॥

## अपवर्गेऽप्येवं प्रसङ्गः ॥ ४३ ॥

सुक्तस्यापि बाह्यार्थसामर्थ्यादुबुद्धय उत्पद्येरन्निति ॥

## न निर्मन्नावश्यम्भावित्वात् ॥ ४४ ॥

कर्मवशान्निष्पन्नशरीरे चेष्टेन्द्रियार्थाश्रये निमित्तभावादवश्यम्भावी  
बुद्धीनासत्पादः न च प्रवर्तोऽपि सन् बाह्योऽर्थ आत्मनो बुद्धुत्पादे समर्थो  
भवति । तस्येन्द्रियेण संयोगादुबुद्धुत्पादे सामर्थ्यं दृष्टमिति ॥

## तदभावश्चापवर्गे ॥ ४५ ॥

तस्य बुद्धिनिमित्ताश्रयस्य शरीरेन्द्रियस्य धर्माधर्माभावादभावोऽप-  
वर्गे तत्र यदुक्तमपवर्गेऽप्येवं प्रसङ्ग इति तदयुक्तम् । तस्मात् सर्वदुःख-  
विमोक्षोऽपवर्गः यस्मात् सर्वदुःखबीजं सर्वदुःखायतनं चापवर्गे विच्छिद्यते,  
तस्मात् सर्वेण दुःखेन विमुक्तिरपवर्गे न निर्वीजं निरायतनञ्च दुःखसु-  
पद्यत इति ॥

## तदर्थं यमनियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चा- ध्यात्मविध्युपायैः ॥ ४६ ॥

तस्यापवर्गस्याधिगमाय यमनियमाभ्यामात्मसंस्कारः । यमः समान-  
मात्रमिषां धर्मसाधनम्, नियमस्तु विशिष्टम्, आत्मसंस्कारः पुनरधर्मा-



ज्ञानं धर्मोपचयश्च, योगशास्त्राच्चाध्यात्मविधिः प्रतिपत्तव्यः । स पुन-  
स्तपःप्राणायामः प्रत्याहारो ध्यानधारणेति इन्द्रियविषयेषु प्रसङ्गाना-  
भ्यासो रागद्वेषप्रहणार्थः । उपायस्तु योगचारविधानमिति ॥

**ज्ञानग्रहणाभ्यासस्तद्विद्यैश्च सह संवादः ॥४७॥**

तदर्थासिद्धिमिति प्रकृतम्, ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानमात्मविद्याशास्त्रान्तस्य ग्रहण-  
मध्ययनधारणे अभ्यासः सततक्रियाध्ययनश्रवणचिन्तनानि तद्विद्यैश्च सह  
संवाद इति प्रज्ञापरिपाकार्थम्, परिपाकस्तु संशयच्छेदनसविज्ञातार्थाव-  
बोधोऽध्यवसिताभ्यस्तु ज्ञानमिति । समायवादः संवादः । तद्विद्यैश्च सह  
संवाद इत्याविभक्तार्थं वचनं विभज्यते ॥

**तं शिष्यगुरुसब्रह्मचारिविशिष्टश्चे योऽर्थिभिरन-  
सूयिभिरभ्युपेयात् ॥ ४८ ॥**

एतन्निगदेनैव नीतार्थमिति यदिदं मन्येत पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहः  
प्रतिकूलः परस्मैति ॥

**प्रतिपक्षहीनमपि वा प्रयोजनार्थमर्थित्वे ॥४९॥**

तमुपेयादिति वर्त्तते परतः प्रज्ञासुपादिद्विमानस्तत्त्वबुद्ध्याप्रकाश-  
नेन स्वपक्षमनवस्थापयन् स्वदर्शनम् परिशोधयेदिति । अन्योऽन्यप्रत्यनी-  
कानि च प्रावादुकानां दर्शनानि स्वपक्षरागेण चैके न्यायमतिवर्त्तन्ते तत्र ॥

**तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थं जल्पवितण्डे वीज-  
प्ररोहसंरक्षणार्थं कण्टकशाखावरणवत् ॥ ५० ॥**

असुलभतत्त्वज्ञानानामप्रहीणदोषाणां तदर्थं घटमानानामेतदिति ।  
विद्यानिर्वेदादिभिश्च परेणाविज्ञायमानस्य, ताभ्यां विगृह्य कथनम् ।



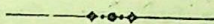
## ५ अध्याये ? आह्निकम् ।

१७१

विष्टहेति विजिगीषया न तत्त्वबुभुक्षयेति । तदेतद्विद्यापालनार्थं न  
लाभपूजाख्यात्यर्थमिति ॥

इति वात्स्यायनीये न्यायभाष्ये चतुर्थाऽध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ॥ ० ॥

समाप्तश्चायं चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥



साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानस्य विकल्पाज्जातिवृद्धत्वमिति संज्ञे-  
पेणोक्तं तद्विस्तरेण विभज्यते, ताः खल्विमाः जातयः स्थापनाहेतौ प्रयुक्ते  
चतुर्विंशतिः प्रतिषेधहेतवः ॥

साधर्म्यवैधर्म्याभ्यामुपसंहारे तद्वैधर्म्यविपर्ययो-  
पपत्तेः साधर्म्यवैधर्म्यसमौ ॥ १ ॥

साधर्म्येण प्रत्यवस्थानमविशिष्यमाणं स्थापनाहेतुतः साधर्म्यसमः ।  
अविशेषं तत्र ततोदाहरिष्यामः । एवं वैधर्म्यसमप्रवृत्तयोऽपि निर्वर्तक्याः ।  
लक्षणम् ॥

साधर्म्यवैधर्म्याभ्यामुपसंहारे तद्वैधर्म्यविपर्ययो-  
पपत्तेः साधर्म्यवैधर्म्यसमौ ॥ २ ॥

साधर्म्येणोपसंहारे साध्यधर्मविपर्ययोपपत्तेः साधर्म्येणैव प्रत्यव-  
स्थानमविशिष्यमाणं स्थापनाहेतुतः साधर्म्यसमः प्रतिषेधः । निर्दर्शनम्,



क्रियावानात्मा द्रव्यस्य क्रियाहेतुगुणयोगात् द्रव्यं लोष्टः क्रियाहेतुगुण-  
युक्तः क्रियावान् तथा चात्मा तस्मात् क्रियावानिति, एवमुपसंहृते परः  
साधर्म्येणैव प्रत्यवतिष्ठते निष्क्रिय आत्मा विभुनो द्रव्यस्य निष्क्रियत्वात् विभु  
चाकाशं निष्क्रियञ्च तथा चात्मा तस्मान्निष्क्रिय इति, न चास्ति विशेषहेतुः  
क्रियावत्साधर्म्यात् क्रियावता भवितव्यम् न पुनरक्रियसाधर्म्यानिष्क्रियेणेति  
विशेषहेत्वभावात् साधर्म्यसमः प्रतिषेधो भवति, अथ वैधर्म्यसमः । क्रिया-  
हेतुगुणयुक्तो लोष्टः परिच्छिन्नो दृष्टो न च तथात्मा तस्मान्न लोष्टवत्  
क्रियावानिति । न चास्ति विशेषहेतुः । क्रियावत्साधर्म्यात् क्रियावता  
भवितव्यम् न पुनः क्रियावद्वैधर्म्यादक्रियेणेति । विशेषहेत्वभावाद्वैधर्म्य-  
समः । वैधर्म्येण चोपसंहारे निष्क्रियः आत्मा विभुत्वात् क्रियावद्द्रव्यमविभु  
दृष्टम्, यथा लोष्टः न च तथात्मा तस्मान्निष्क्रिय इति वैधर्म्येण प्रत्यवस्था-  
नम् निष्क्रियं द्रव्यमकाशं क्रियाहेतुगुणरहितं दृष्टम् न तथात्मा तस्मान्न  
निष्क्रिय इति न चास्ति विशेषहेतुः, क्रियावद्वैधर्म्यान्निष्क्रियेण भवितव्यं  
न पुनरक्रियवैधर्म्यात् क्रियावतेति । विशेषहेत्वभावाद्वैधर्म्यसमः, क्रियावान्  
लोष्टः क्रियाहेतुगुणयुक्तो दृष्टस्तथा चात्मा तस्मात् क्रियावानिति न  
चास्ति विशेषहेतुः । क्रियावद्वैधर्म्यान्निष्क्रियो न पुनः क्रियावत्साधर्म्यात्  
क्रियावानिति विशेषहेत्वभावात् साधर्म्यसमः अनयोरुत्तरम् ॥

गोत्वाद्गोसिद्धिवत् तत्सिद्धिः ॥ ३ ॥

साधर्म्यमात्रेण वैधर्म्यमात्रेण च साध्यसाधने प्रतिज्ञायमाने स्याद-  
व्यवस्था, सा तु धर्मविशेषे नोपपद्यते गोसाधर्म्यात् गोत्वाज्जातिविशे-  
षाद्गोः सिद्धति न तु साम्रादिसम्बन्धात्, अश्वादिवैधर्म्याद्गोत्वादेव न गोः  
सिद्धति न गुणादिभेदात् तच्चैतत्कृतव्यवस्थानसवयवप्रकरणे प्रमाणाना-  
मभिसम्बन्धाच्चैकैर्धर्माकारित्वं समानं वाक्य इति हेत्वाभासाश्रया खल्वि-  
यमव्यवस्थेति ॥

साध्यदृष्टान्तयोर्धर्मविकल्पादुभयसाध्यत्वाच्चोक्त-  
र्षाप्रकर्षवर्ण्यवर्ण्यविकल्पसाध्यसमाः ॥ ४ ॥



## ५ अध्याये १ आह्निकम् ।

१७३

दृष्टान्तधर्मं साध्येन समासञ्जन्तुत्कर्षसमः । यदि क्रियाहेतुगुणयोगा-  
 क्लोष्टवत् क्रियावानेवात्मा लोष्टवदेव स्पर्शवानपि प्राप्नोति, अथ न स्पर्श-  
 वान् लोष्टवत् क्रियावानपि न प्राप्नोति विपर्यये वा विशेषो वक्तव्य इति  
 साध्ये धर्माभावं दृष्टान्तात् प्रसजतोऽपकर्षसमः, लोष्टः खलु क्रियावान-  
 विमुहृष्टः काममात्मापि क्रियावानविभुरस्तु विपर्यये वा विशेषो वक्तव्य  
 इति । ख्यापनीयो वर्या विपर्ययादवर्याः । तावेतौ साध्यदृष्टान्तधर्मौ  
 विपर्ययस्य तौ वर्यावर्यासमौ भवतः, साधनधर्मयुक्ते दृष्टान्ते धर्मान्तर-  
 विकल्पात् साध्यधर्मविकल्पं प्रसजतो विकल्पसमः । क्रियाहेतुगुणयुक्तं  
 किञ्चिद्गुरु यथा लोष्टः किञ्चिद्विषु यथा वायुः एवं क्रियाहेतुगुणयुक्तं  
 किञ्चित् क्रियावत् स्यात् यथा लोष्टः किञ्चिदक्रियम् यथात्मा विशेषो  
 वा वाच्य इति हेत्वाद्यवयवसामर्थ्ययोगी धर्मः साध्यः । तं दृष्टान्ते प्रस-  
 जतः साध्यसमः । यदि यथा लोष्टस्तथात्मा प्राप्नोति यथात्मा तथा लोष्टः  
 इति साध्यश्चायमात्मा क्रियावानिति कामं लोष्टोऽपि साध्यः । अथ नैवं  
 न तर्हि यथा लोष्टस्तथात्मा एतेषामुत्तरम् ॥

## किञ्चित्साधर्म्यादुपसंहारसिद्धेर्वैधर्म्यादप्रतिषेधः ५

अलभ्यः सिद्धस्य निजवः सिद्धञ्च किञ्चित्साधर्म्यादुपमानं यथा गौस्तथा  
 गवय इति । तत्र न लभ्यो गोगवययोर्धर्मविवल्यञ्चोदयितम् । एवं साधके  
 धर्मे दृष्टान्तादिसामर्थ्ययुक्ते न लभ्यः साध्यदृष्टान्तयोर्धर्मविकल्पाद्वैधर्म्यात्  
 प्रतिषेधो वक्तुमिति ॥

## साध्यातिदेशाच्च दृष्टान्तोपपत्तेः ॥ ६ ॥

यत्र लौकिकपरीक्षकाणां बुद्धिसाम्यं तेनाविपरीतोऽर्थोऽतिदिश्यते  
 प्रज्ञापनार्थमेवं साध्यातिदेशाद्दृष्टान्त उपपद्यमाने साध्यत्वमुपपन्नमिति ॥

प्राप्य साध्यमप्राप्य वा हेतोः प्राप्या अविशिष्ट-  
 त्वादप्राप्या असाधकत्वाच्च प्राप्यप्राप्तिसमौ ॥ ७ ॥



हेतुः प्राप्य वा साध्यं साधयेदप्राप्य वा, न तावत्प्राप्य, प्राप्यामवि-  
शिष्टत्वादसाधकः । द्वयोर्विद्यमानयोः प्राप्तौ सत्यां किं कस्य साधकं साध्यं  
वा । अप्राप्य साधकं न भवति नाप्राप्तः प्रदीपः प्रकाशयतीति प्राप्या  
प्रत्यवस्थानं प्राप्तिरसमः । अप्राप्या प्रत्यवस्थानमप्राप्तिरसमः । अनयोरुत्तरम् ॥

घटादिनिष्पत्तिदर्शनात् पीडने चाभिचाराद-  
प्रतिषेधः ॥ ८ ॥

उभयथा खल्वयुक्तः प्रतिषेधः, कर्तृकरणाधिकरणानि प्राप्य नृदं  
घटादिकार्यं निष्पादयन्ति चाभिचाराच्च पीडने सति दृष्टमप्राप्य साध-  
कत्वमिति ॥

दृष्टान्तस्य करणानपदेशात् प्रत्यवस्थानाच्च प्रति-  
दृष्टान्तेन प्रसङ्गप्रतिदृष्टान्तसमौ ॥ ९ ॥

साधनस्यापि साधनं वक्तव्यमिति प्रसङ्गे प्रत्यवस्थानं प्रसङ्गरसमः प्रति-  
षेधः क्रियाहेतुगुणयोगी क्रियावान् लोष्ट इति हेतुर्नापदिश्यते न च  
हेतुमन्तरेण सिद्धिरस्तीति प्रतिदृष्टान्तेन प्रत्यवस्थानं प्रतिदृष्टान्तसमः ।  
क्रियावानात्मा क्रियाहेतुगुणयोगात् लोष्टवदित्युक्ते प्रतिदृष्टान्त उपा-  
दीयते क्रियाहेतुगुणयुक्तमाकारं निष्क्रियमिति कः पुनराकाशस्य क्रिया-  
हेतुर्युगो वायुना संयोगः संस्कारापेक्षः वायुवनस्य तिसंयोगवदिति,  
अनयोरुत्तरम् ॥

प्रदीपादानप्रसङ्गनिवृत्तिवत्तद्विनिवृत्तिः ॥ १० ॥

इदं तावदयं पृष्टो वक्तुमर्हति अथ के प्रदीपमुपाददते किमर्थं वेति  
दिदृक्षमाणदृश्यदर्शनार्थमिति । अथ प्रदीपं दिदृक्षमाणः प्रदीपान्तरं  
कस्मान्नोपाददते, अन्तरेणापि प्रदीपान्तरं दृश्यते प्रदीपः, तत्र प्रदीप-  
दर्शनार्थं प्रदीपोपादानं निरर्थकम् अथ दृष्टान्तः किमर्थमुच्यत इति ।



## ५ अध्या १ येच्चाङ्गिकम् ।

१७५

अप्रज्ञातस्य ज्ञापनार्थमिति, अथ दृष्टान्ते कारणापदेशः, किमर्थं दृश्यते यदि प्रज्ञापनार्थम् प्रज्ञातो दृष्टान्तः, स खलु लौकिकपरोक्षकाणां यस्मिन्नर्थे बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्त इति तत्प्रज्ञानार्थः कारणापदेशो निरर्थक इति प्रसङ्गसमस्योत्तरम् । अथ प्रतिदृष्टान्तसमस्योत्तरम् ॥

**प्रतिदृष्टान्तहेतुत्वे च नाहेतुर्दृष्टान्तः ॥ ११ ॥**

प्रतिदृष्टान्तं ब्रुवता न विशेषहेतुरपदिश्यते अनेन प्रकारेण प्रतिदृष्टान्तः साधकः न दृष्टान्त इति एवं प्रतिदृष्टान्तहेतुत्वेनाहेतुर्दृष्टान्त इत्युपपद्यते स च कथमहेतुर्न स्याद्यद्यप्रतिपिद्धः साधकः स्यादिति ॥

**प्रागुत्पत्तेः कारणाभावादनुत्पत्तिसमः ॥ १२ ॥**

अनित्यः शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वात् घटवदित्युक्ते अपर आह प्रागुत्पत्तेरनुत्पत्तेः शब्दे प्रयत्नानन्तरीयकत्वमनित्यत्वकारणं नास्ति तदभावाच्चित्यत्वं प्राप्तं नित्यस्य चोत्पत्तिर्नास्ति अनुत्पत्त्या प्रत्यवस्थानमनुत्पत्तिसमः अस्योत्तरम् ॥

**तथाभावादुत्पन्नस्य कारणोपपत्तेर्नकारणप्रतिषेधः ॥ १३ ॥**

तथा भावादुत्पन्नस्येति उत्पन्नः खल्वयं शब्द इति भवति प्रागुत्पत्तेः शब्द एव नास्ति उत्पन्नस्य शब्दभावात् शब्दस्य सतः प्रयत्नानन्तरीयकत्वमनित्यकारणमुपपद्यते कारणोपपत्तेरयुक्तोऽयं दोषः प्रागुत्पत्तेः कारणाभावादिति ॥

**सामान्यदृष्टान्तयोरैन्द्रियकत्वे समाने नित्यानित्यसाधर्म्यात् संशयसमः ॥ १४ ॥**

अनित्यः शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वात् घटवदित्युक्ते हेतौ संशयेन प्रत्यवतिष्ठते सति प्रयत्नानन्तरीयकत्वे अस्यैवास्ति नित्येन सामान्येन साधर्म्यमैन्द्रियकत्वमस्ति च घटेनानित्येन । अतो नित्यानित्यसाधर्म्यादनिवृत्तः संशय इति । अस्योत्तरम् ॥



साधर्म्यात्संशये न संशयो वैधर्म्यादुभयथा वा  
संशयो ऽत्यन्तसंशयप्रसङ्गो नित्यत्वान्नाभ्युपगमाच्च  
सामान्यस्याप्रतिषेधः ॥ १५ ॥

विशेषाद्वैधर्म्यादवधार्यमाणेऽर्थे पुरुष इति न स्यात्पुरुषसाधर्म्यात्  
संशयोऽवकाशं लभते एवं वैधर्म्याद्विशेषात्प्रयत्नानन्तरीयकत्वादवधार्य-  
माणे शब्दस्यानित्यत्वे नित्यानित्यसाधर्म्यात् संशयोऽवकाशं न लभते, यदि  
वै लभेत ततः स्यात्पुरुषसाधर्म्यानुक्ते दादत्यन्तं संशयः स्यात् गृह्यमाणे च  
विशेषे नित्यसाधर्म्यं संशयहेतुरिति नाभ्युपगम्यते न हि गृह्यमाणे पुरु-  
षस्य विशेषे स्यात्पुरुषसाधर्म्यं संशयहेतुर्भवति ॥

उभयसाधर्म्यात् प्रक्रियासिद्धेः प्रकरणसमः ॥ १६ ॥

उभयेन नित्येन चानित्येन साधर्म्यात् पक्षप्रतिपक्षयोः प्रवृत्तिः प्र-  
क्रिया, अनित्यः शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वाद्दृष्टवदित्येकः पक्षं प्रवर्त्तयति ।  
द्वितीयश्च नित्यसाधर्म्यात् एवञ्च सति प्रयत्नानन्तरीयकत्वादिति हेतुर-  
नित्यसाधर्म्येणोच्यमानेन हेतौ तदिदं प्रकरणानतिवृत्त्या प्रत्यवस्थानं  
प्रकरणसमः, समानञ्चैतद्वैधर्म्येऽपि उभयवैधर्म्यात् प्रक्रियासिद्धेः प्रकरण-  
सम इति । अस्योत्तरम् ॥

प्रतिपक्षात् प्रकरणसिद्धेः प्रतिषेधानुपपत्तिः  
प्रतिपक्षोपपत्तेः ॥ १७ ॥

उभयसाधर्म्यात् प्रक्रियासिद्धिं ब्रुवता प्रतिपक्षात् प्रक्रियासिद्धिरुक्ता  
भवति यदुभयसाधर्म्यं तत्रैकतरः प्रतिपक्ष इत्येवं सत्युपपन्नः प्रतिपक्षो  
भवति प्रतिपक्षोपपत्तेरनुपपन्नः प्रतिषेधो यतः प्रतिपक्षोपपत्तिः प्रतिषे-  
धापपत्तिश्चेति विप्रतिषिद्धमिति तत्त्वानवधारणाच्च प्रक्रियासिद्धिर्विप-  
र्यये प्रकरणावसानात् तत्त्वावधारणे ह्यवसितं प्रकरणं भवतीति ॥



५ अध्याये १ आह्निकम् ।

१७७

नैकाल्यासिद्धेर्हेतोरहेतुसमः ॥ १८ ॥

हेतुः साधनं तत्साध्यात् पूर्वम् पश्चात् सह वा भवेत् यदि पूर्वं साधनमसति साध्ये कस्य साधनम् । अथ पश्चात् असति साधने कस्येदं साध्यम् । अथ युगपत्साध्यसाधने द्वयोर्विद्यमानयोः किं कस्य साधनं किं कस्य साध्यमिति हेतुना न विशिष्यते अहेतुता साधस्यात् प्रत्यवस्थानमहेतुसमः । अस्योत्तरम् ॥

न हेतुतः साध्यसिद्धे स्तैकाल्यासिद्धिः ॥ १९ ॥

न त्वैकाल्यासिद्धिः कस्मात् हेतुतः साध्यसिद्धेः । निर्वर्त्तनीयस्य निर्वर्त्तिः विज्ञेयस्य विज्ञानम् उभयं कारणतो दृश्यते सोऽयं महान् प्रत्यक्षविषय उदाहरणमिति । यत् खलूक्तमसति साध्ये कस्य साधनमिति यत्तु निर्वर्त्त्यते यच्च विज्ञाप्यते तस्येति ॥

प्रतिषेधानुपपत्तेः प्रतिषेड्व्याप्रतिषेधः ॥ २० ॥

पूर्वं पश्चाद्युगपद्वा प्रतिषेध इति नोपपद्यतै प्रतिषेधानुपपत्तेः स्थापनाहेतुः सिद्ध इति ॥

अर्थापत्तितः प्रतिपक्षसिद्धेरर्थापत्तिसमः ॥ २१ ॥

अनित्यः शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वद्वयवदिति स्थापिते पक्षे अर्थापत्त्या प्रतिपक्षं साधयतोऽर्थापत्तिसमः, यदि प्रयत्नानन्तरीयकत्वादनित्यसाधस्यादनित्यः शब्दः इत्यर्थादापद्यते नित्यसाधस्यान्नित्य इति अस्तित्वस्य नित्येन साधस्यमस्यत्वमिति । अस्योत्तरम् ॥

अनुक्तस्यार्थापत्तेः पक्षहानेरुपपत्तिरनुक्तत्वादनैकान्तिकत्वाच्चापत्तेः ॥ २२ ॥

अनुपपाद्य सामर्थ्यमनुक्तमर्थादापद्यत इति ब्रुवतः पक्षहानेरुपपत्तिरनुक्तत्वात् अनित्यपक्षसिद्धावर्थादापन्नमनित्यपक्षस्य हानिरिति,



१७८

## न्यायदर्शनवाक्यायनभाष्ये

अनैकान्तिकत्वाच्चाधीपत्तेः उभयपक्षसमा चेयमर्थापत्तिः, यदि नित्यसाध्यादस्य श्रुत्यादाकाशवच्च नित्यः शब्दः अर्थादापन्नमनित्यसाध्यात् प्रयत्नानन्तरीयत्वादनित्य इति, न चेयं विपर्ययमात्रादेकान्तेनार्थापत्तिः, न खलु वै घनस्य ग्रावणः पतनमित्यर्थादापद्यते द्रवाणामपां पतनाभाव इति ॥

**एकधर्मीपपत्तेरविशेषे सर्वाविशेषप्रसङ्गात् सद्भावोपपत्तेरविशेषसमः ॥ २३ ॥**

एको धर्मः प्रयत्नानन्तरीयकत्वं शब्दघटयोरुपपद्यत इत्यविशेषे उभयोरनित्यत्वे सर्वस्याविशेषः प्ररुज्यते कथम् सद्भावोपपत्तेः एको धर्मः सद्भावः सर्वस्योपपद्यते सद्भावोपपत्तेः सर्वाविशेषप्रसङ्गात् प्रत्यवस्थानमविशेषसमः। अस्योत्तरम् ॥

**क्वचिद्धर्मानुपपत्तेः क्वचिच्चोपपत्तेः प्रतिषेधाभावः ॥ २४ ॥**

यथा साध्यदृष्टातयोरेकधर्मस्य प्रयत्नानन्तरीयकत्वस्योपपत्तेरनित्यत्वधर्मान्तरमविशेषेण, एवं सर्वभावानां सद्भावोपपत्तिनिमित्तं धर्मान्तरमस्ति येनाविशेषः स्यात् अथ मतमनित्यत्वमेव धर्मान्तरं सद्भावोपपत्तिनिमित्तं भावानां सर्वत्र स्यादित्येवं खलु वै कल्प्यमाने अनित्याः सर्वे भावाः सद्भावोपपत्तेरिति पक्षः प्राप्नोति तत्र प्रतिज्ञार्थव्यतिरिक्तमन्यदाहरणं नास्ति अनुदाहरणश्चेतर्नास्तीति प्रतिज्ञैकदेशस्य च उदाहरणत्वमनुपपन्नं न हि साध्यमुदाहरणं भवति ततश्च नित्यानित्यभावान्नित्यनित्यत्वानुपपत्तिः तस्मात् सद्भावोपपत्तेः सर्वाविशेषप्रसङ्ग इति निरभिधेयमेतद्वक्तव्यमिति सर्वभावानां सद्भावोपपत्तेरनित्यत्वमिति त्रुवताऽनुज्ञातं शब्दस्यानित्यत्वं त्वानुपपन्नः प्रतिषेध इति ॥

**उभयकारणोपपत्तेरुपपत्तिसमः ॥ २५ ॥**



यद्यनित्यत्वकारणमुपपद्यते शब्दस्त्वनित्यः शब्दो नित्यत्वकारणमप्यु-  
पपद्यते अस्यास्यैवंत्वमिति नित्यत्वमप्युपपद्यते उभयस्यानित्यत्वस्य नित्यत्वस्य  
च कारणोपपत्त्या प्रत्ययस्थानमुपपत्तिसमः । अस्योत्तरम् ॥

**उपपत्तिकारणाभ्यनुज्ञानादप्रतिषेधः ॥ २६ ॥**

उभयकारणोपपत्तेरिति ब्रुवता नानित्यत्वकारणोपपत्तेरनित्यत्वं  
प्रतिषिध्यते यदि प्रतिषिध्यते नोभयकारणोपपत्तिः स्यात् उभयकारणोपप-  
त्तिवचनादनित्यत्वकारणोपपत्तिरभ्यनुज्ञायते अभ्यनुज्ञानादुपपन्नः प्रति-  
षेधः, व्याघातात् प्रतिषेध इति चेत् समानो व्याघातः एकस्य नित्यत्वानि-  
त्यत्वसङ्गं व्याहृतम् ब्रुवतोक्तः प्रतिषेधः इति चेत् स्वपक्षपरपक्षयोः  
समानो व्याघातः स च नैकतरस्य साधक इति ॥

**निर्दिष्टकारणाभावेऽप्युपलम्भादुपलब्धिसमः २७**

निर्दिष्टप्रयत्नानन्तरीयकत्वस्यानित्यत्वकारणस्याभावेऽपि वायुनोद-  
नाद्वज्रशाखाभङ्गजस्य शब्दस्यानित्यत्वमुपलभ्यते निर्दिष्टस्य साधनस्याभावे-  
ऽपि साध्यधर्म्मोपलब्ध्याप्रत्ययस्थानमुपलब्धिसमः । अस्योत्तरम् ॥

**कारणान्तरादपि तद्वध्मोपपत्तेरप्रतिषेधः २८**

प्रयत्नानन्तरीयकत्वादिति ब्रुवता कारणत उत्पत्तिरभिधीयते न  
कार्यस्य कारणनियमः यदि च कारणान्तरादप्युपपद्यमानस्य शब्दस्य  
तदनित्यत्वमुपपद्यते किमत्र प्रतिषिध्यत इति न प्रागुक्तकारणादविद्यमानस्य  
शब्दस्यानुपलब्धिः कस्मात् आवरणाद्यनुपलब्धेः, यथा विद्यमानस्योदकादे-  
रर्थस्यावरणादेरनुपलब्धिः नैवं शब्दस्याग्रहणकारणेनावरणादिनानु-  
पलब्धिः गृह्येत चैतदस्याग्रहणकारणमुदकादिवन्न गृह्यते, तस्मादुदका-  
कादिविपरीतः शब्दोऽनुपलब्धमान इति ॥

**तदनुपलब्धेरनुपलम्भादभावसिद्धौ तद्विपरीतो-  
पपत्तेरनुपलब्धिसमः ॥ २९ ॥**



तेषामावरणादीनामनुपलब्धिर्नोपलभ्यते अनुपलम्भान्नास्तीत्यभावो-  
ऽस्याः सिद्धति, अभावसिद्धौ हेत्वभावात्तद्विपरीतमस्तित्वमावरणादीना-  
मवधार्यते तद्विपरीतोपपत्तेर्यत् प्रतिज्ञातं न प्रागुच्चारणाद्विद्यमानस्य  
शब्दस्यानुपलब्धिरित्येतन्न सिद्धति सोऽयं हेतुरावरणाद्यनुपलब्धेरित्या-  
वरणादिषु चावरणाद्यनुपलब्धौ च ससयानुपलब्ध्या प्रत्यवस्थितोऽनु-  
पलब्धिसमो भवति । अस्योत्तरम् ॥

**अनुपलम्भात्मकत्वादनुपलब्धेरहेतुः ॥ ३० ॥**

आवरणाद्यनुपलब्धिर्नास्त्यनुपलम्भादित्यहेतुः कस्मात् अनुपल-  
म्भात्मकत्वादनुपलब्धेः, उपलम्भाभावमात्रत्वादनुपलब्धेः, यदस्ति तदुपल-  
ब्धेर्विषयः उपलब्ध्या तदस्तीति प्रतिज्ञायते, यन्नास्ति तदनुपलब्धेर्विषयः  
अनुपलब्धमानं नास्तीति प्रतिज्ञायते । सोऽयमावरणाद्यनुपलब्धेरनुप-  
लम्भाभावोऽनुपलब्धौ स्वविषये प्रवर्त्तमानो न स्वविषयं प्रतिषेधति ।  
अप्रतिषिद्धा चावरणाद्यनुपलब्धिर्हेतुत्वाय कल्प्यते, आवरणादीनि तु  
विद्यमानत्वादुपलब्धेर्विषयास्तेषामुपलब्ध्या भवितव्यम्, यत्तानि नोप-  
लब्धन्ते तदुपलब्धेः स्वविषयप्रतिपादिकाया अभावादनुपलम्भादनुपल-  
ब्धेर्विषयो गम्यते न सन्त्यावरणादीनि शब्दस्याग्रहणकारणानीति अनु-  
पलम्भादनुपलब्धिः सिद्धति, विषयः स तस्येति ॥

**ज्ञानविकल्पानाञ्च भावाभावसंवेदनादध्यात्मम्  
॥ ३१ ॥**

अहेतरिति वर्त्तते । शरीरे शरीरिणां ज्ञानविकल्पानां भावा-  
भावौ संवेदनोयौ, अस्ति मे संशयज्ञानं नास्ति मे संशयज्ञानमिति, एवं-  
प्रत्यक्षानुमानागमसृष्टिज्ञानेषु सेयमावरणाद्यनुपलब्धिरुपलब्धभावः स्वसं-  
वेदो नास्ति मे शब्दस्यावरणाद्यनुपलब्धिरिति नोपलब्धन्ते शब्दस्याग्र-  
हणकारणान्यावरणादीनीति, तत्र यदुक्तं तदनुपलब्धेरनुपलम्भादभाव-  
सिद्धिरिति एतन्नोपपद्यते ॥



५ अध्याये १ आह्निकम् ।

१८१

साधर्म्यात्तुल्यधर्मोपपत्तेः सर्वानित्यत्वप्रसङ्गा-  
दनित्यसमः ॥ ३२ ॥

अनित्येन घटेन साधर्म्यादनित्यः शब्द इति ब्रुवतोऽस्ति घटेनानि-  
त्येन सर्वभावानां साधर्म्यमिति सर्वस्यानित्यत्वमनित्यं सम्पद्यते, सोऽय-  
मनित्यत्वेन प्रत्यवस्थानादनित्यसम इति । अस्योत्तरम् ॥

साधर्म्यादसिद्धेः प्रतिषेधासिद्धिः प्रतिषेध्यसा-  
धर्म्याच्च ॥ ३३ ॥

प्रतिज्ञाद्यवयवयुक्तं वाक्यं पक्षनिर्वर्तकं प्रतिपक्षलक्षणं प्रतिषेधस्तस्य  
पक्षेण प्रतिषेध्येन साधर्म्यं प्रतिज्ञादियोगः तद्यद्यनित्यसाधर्म्यादनित्यत्व-  
स्यासिद्धिः साधर्म्यादसिद्धेः प्रतिषेधस्याप्यसिद्धिः प्रतिषेध्येन साधर्म्यादिति ॥

दृष्टान्ते च साध्यसाधनभावेन प्रज्ञातस्य धर्मस्य  
हेतुत्वात्तस्य चोभयथाभावान्नाविशेषः ॥ ३४ ॥

दृष्टान्ते यः खलु धर्मः साध्यसाधनभावेन प्रज्ञायते स हेतुत्वेनाभि-  
धीयते स चोभयथा भवति, केनचित् समानः कुतश्चिद्विशिष्टः, सामान्यात्  
साधर्म्यम् विशेषाच्च वैधर्म्यम् एवं साधर्म्यविशेषो हेतुः नाविशेषेण  
साधर्म्यमात्रं वैधर्म्यमात्रं वा, साधर्म्यमात्रं वैधर्म्यमात्रं चात्रित्य भवानाह ।  
साधर्म्यात्तुल्यधर्मोपपत्तेः सर्वानित्यत्वप्रसङ्गादनित्यसम इति एतदयुक्त-  
मिति अविशेषसमप्रतिषेधे च यदुक्तं तदपि वेदितव्यम् ॥

नित्यमनित्यभावादनित्ये नित्यत्वोपपत्तेर्नित्य-  
समः ॥ ३५ ॥

१६



अनित्यः शब्द इति प्रतिज्ञायते तदनित्यत्वं किं शब्दे नित्यमथानि-  
त्यम्, यदि तावत् सदा भवति धर्मस्य सदाभावाद्धर्मिणीऽपि सदाभाव  
इति नित्यः शब्द इति । अथ न सर्वदा भवति अनित्यत्वस्याभावान्नित्यः  
शब्दः । एवं नित्यत्वेन प्रत्यवस्थानान्नित्यसमः । अख्योत्तरम् ॥

**प्रतिषेध्ये नित्यमनित्यभावादनित्ये नित्यत्वोप-  
पत्तेः प्रतिषेधाभावः ॥ ३६ ॥**

प्रतिषेध्ये शब्दे नित्यमनित्यत्वस्य भावादित्युक्तमानेऽनुज्ञातं शब्दस्या-  
नित्यत्वम्, अनित्यत्वोपपत्तेश्च नानित्यः शब्द इति प्रतिषेधो नोपपद्यते,  
अथ नाभ्युपगम्यते नित्यमनित्यत्वस्य भावादिति हेतुर्न भवतीति हेत्व-  
भावात्प्रतिषेधानुपपत्तिरिति, उत्पन्नस्य निरोधादभावः शब्दस्यानित्यत्वं  
तत्र परिग्रहानुपपत्तिः, सोऽयं ग्रन्थः तदा नित्यत्वं किं शब्दे सर्वदा भवति  
अथ नेत्यनुपपन्नः, कस्मात् उत्पन्नस्य यो निरोधादभावः शब्दस्य तदनित्य-  
त्वम्, एवञ्च सत्यधिकरणाधेयविभागो व्याघाताद्भास्तीति नित्यानित्य-  
विरोधाच्च नित्यत्वमनित्यत्वं चैकस्य धर्मिणो धर्मो विरुध्येते न सम्भवतः  
तत्र यदुक्तम् नित्यमनित्यत्वस्य भावान्नित्य एव तदवर्त्तमानार्थमुक्तमिति ॥

**प्रयत्नकार्यानेकत्वात्कार्यसमः ॥ ३७ ॥**

प्रयत्नानन्तरीयकत्वादनित्यः शब्द इति, यस्य प्रयत्नानन्तरमात्मलाभ-  
स्तत्खल्वभूत्वा भवति यथा घटादिकार्यमनित्यमिति च भूत्वा न भवतीत्ये-  
तद्विज्ञायते । एवमवस्थिते प्रयत्नकार्यानेकत्वादिति प्रतिषेध उच्यते ।  
प्रयत्नानन्तरमात्मलाभश्च दृष्टो घटादीनाम् व्यवधानापोहान्नाभिव्यक्ति-  
व्यवहितानाम्, तत् किं प्रयत्नानन्तरमात्मलाभः शब्दस्य आहोऽभिव्यक्ति-  
रिति विशेषोनास्तिः कार्याविशेषेण प्रत्यवस्थानं कार्यसमः अख्योत्तरम् ॥

**कार्यान्यत्वे प्रयत्नाहेतुत्वमनुपलब्धिकारणोप-  
पत्तेः ॥ ३८ ॥**



सति कार्यान्त्यत्वे अनुपलब्धि कारणोपपत्तेः प्रयत्नस्यो हेतुत्वं शब्द-  
स्याभिव्यक्त्ये यत् प्रयत्नानन्तरमभिव्यक्तिस्तत्त्वानुपपत्तिः कारणं व्यवधान-  
मुपपद्यते । व्यवधानापोहाच्च प्रयत्नानन्तरभाविनोऽर्थस्योपलब्धिलक्षणा-  
भिव्यक्तिर्भवतीति नतु शब्दस्यानुपलब्धि कारणं किञ्चिदुपपद्यते, यस्य  
प्रयत्नानन्तरमपोहाच्छब्दस्योपलब्धिलक्षणाभिव्यक्तिर्भवतीति तस्मादुत्पद्यते  
शब्दी नाभिव्यज्यत इति हेतोश्चेदनैकान्तिकत्वमुपपाद्यते अनैकान्तिक-  
त्वादसाधकः स्यात् इति, यदि चानैकान्तिकत्वादसाधकम् ॥

**प्रतिषेधेऽपि समानो दोषः ॥ ३६ ॥**

प्रतिषेधोऽप्यनैकान्तिकः किञ्चित् प्रतिषेधति किञ्चिन्नेति अनैकान्ति-  
कत्वादसाधक इति, अथ वा शब्दस्यानित्यत्वपक्षे प्रयत्नानन्तरमुत्पादे-  
नाभिव्यक्तिरिति विशेषहेत्वभावः, नित्यत्वपक्षेऽपि प्रयत्नानन्तरमभिव्यक्तिर्गोत्यादइति विशेषहेत्वभावः, सोऽयमुभयपक्षरूपो विशेषहेत्वभाव-  
इत्युभयमप्यनैकान्तिकमिति ॥

**सर्वत्रैवम् ॥ ४० ॥**

सर्वेषु साधनप्रभृतिषु प्रतिषेधहेतुषु यत्र विशेषो दृश्यते तत्रोभयोः  
पक्षयोः समः प्रसज्यत इति ॥

**प्रतिषेधविप्रतिषेधे प्रतिषेधदोषवद्दोषः ॥ ४१ ॥**

योऽयं प्रतिषेधेऽपि समानो दोषोऽनैकान्तिकत्वमापाद्यते सोऽयं  
प्रतिषेधस्य प्रतिषेधेऽपि समानः, तत्त्वानित्यः शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वा-  
दिति साधनवादिनः स्थापना प्रथमः पक्षः, प्रयत्नकार्यानेकत्वात् का-  
र्यसम इति दूषणवादिनः प्रतिषेधहेतुना द्वितीयः पक्षः, स च प्रतिषेध  
इत्युच्यते, तस्मिन् प्रतिषेधविप्रतिषेधेऽपि समानो दोषोऽनैकान्तिकत्वम्  
चतुर्थः पक्षः ॥



प्रतिषेधं सदोषमभ्युपेत्य प्रतिषेधविप्रतिषेधे  
समानो दोषप्रसङ्गोमतानुज्ञा ॥ ४२ ॥

प्रतिषेधं द्वितीयं पक्षं सदोषमभ्युपेत्य तदुद्धारमनुज्ञा व्युत्पाद्य प्रति-  
षेधविप्रतिषेधे तृतीये पक्षे समानमनेकान्तिकत्वमिति समानं दूषणं प्रस-  
जतोदूषणवादिनो मतानुज्ञा प्रसज्यत इति पञ्चमः पक्षः ॥

स्वपक्षलक्षणापेक्षोपपत्त्युपसंहारे हेतुनिर्द्देशे  
परपक्षदोषाभ्युपगमात्समानोदोष इति ॥ ४३ ॥

स्थापनापक्षे प्रयत्नकार्यानेकत्वादिति दोषः स्थापनाहेतुवादिनः  
स्वपक्षलक्षणो भवति, कस्मात् स्वपक्षसत्यत्वात्, सोऽयं स्वपक्षलक्षणं दोष-  
मपेक्षमाणोऽनुद्धृत्यानुज्ञाय प्रतिषेधेऽपि समानो दोष इत्युपपद्यमानं  
दोषं परपक्ष उपसंहरति इत्थं वानैकान्तिकः प्रतिषेध इति हेतुं निर्द्दि-  
शति तत्र स्वपक्षलक्षणापेक्षयोपपद्यमानदोषोपसंहारे हेतुनिर्द्देशे च  
सत्यनेन परपक्षोऽभ्युपगतो भवति, कथं कृत्वा यः परेण प्रयत्नकार्याने-  
कत्वादित्यादिनाऽनैकान्तिकदोष उक्तस्तमनुद्धृत्य प्रतिषेधेऽपि समानो  
दोषो भवति यथा परस्य प्रतिषेधं सदोषमभ्युपेत्य प्रतिषेधेऽपि समानं  
दोषं प्रसजतः परपक्षाभ्युपगमात् समानो दोषो भवति, यथा परस्य प्रति-  
षेधं सदोषमभ्युपेत्य प्रतिषेधेऽपि समानं दोषं प्रसजतो मतानुज्ञा प्रसज्यत  
इति, स खल्वयं पक्षः पक्षः, तत्र खलु स्थापनाहेतुवादिनः प्रथमतोऽप्य-  
सपक्षाः, प्रतिषेधहेतुवादिनो द्वितीयचतुर्थपक्षपक्षाः, तेषां साध्यसाधु-  
तायां सीमांस्थमानायां चतुर्थपक्षयोरविशेषात् पुनरुक्तदोषप्रसङ्गः । चतुर्थ-  
पक्षे समानदोषत्वं परस्योच्यते प्रतिषेधविप्रतिषेधे प्रतिषेधदोषवद्दोष इति,  
षष्ठेऽपि परपक्षाभ्युपगमात् समानो दोष इति समानदोषत्वमेवोच्यते,  
नार्थविशेषः कश्चिदस्ति समानस्तृतीयपञ्चमयोः पुनरुक्तदोषप्रसङ्गः, तृतीय-  
पक्षेऽपि प्रतिषेधेऽपि समानो दोष इति समानत्वमभ्युपगम्यते, पञ्चम-



## ५ अध्याये २ आह्निकम् ।

१८५

पक्षेऽपि प्रतिषेधप्रतिषेधे समानो दोषप्रसङ्गेऽभ्युपगम्यते नार्थविशेषः  
 कश्चिदुच्यते इति, तत्र पञ्चमपठपक्षयोरर्थाविशेषात् पुनरुक्तदोषः, तृतीय-  
 चतुर्थयोर्मतानुज्ञा, प्रथमद्वितीययोर्विशेषहेत्वभावइति, षट्पक्ष्यासुभयोर-  
 सिद्धिः, कदा षट्पक्षो यदा प्रतिषेधेऽपि समानो दोष इत्येवं प्रवर्तते  
 तदोभयोः पक्षयोरसिद्धिः, यदा तु कार्यान्त्यत्वे प्रयत्नाहेतुत्वमनुपलब्धि-  
 कारणोपपत्तेरित्यनेन तृतीयपक्षो युज्यते तदा विशेषहेतुवचनात् प्रयत्ना-  
 नन्तरमात्मलाभः शब्दस्य नाभिव्यक्तिरिति सिद्धिः प्रथमपक्षो न षट्पक्षो  
 प्रवर्तते इति ॥

इति वात्स्यायनीये न्यायभाष्ये पञ्चमाध्यायस्याद्यमाह्निकम् ॥



विप्रतिपत्त्यप्रतिपत्त्योर्विकल्पाद्विग्रहस्यानवच्छेदत्वमिति सङ्क्षेपेणोक्तं  
 तदिदानीं विभजनीयम् नियग्रहस्थानानि खलु पराजयवस्तून्यपराधाधि-  
 करणानि प्रायेण प्रतिज्ञाद्यवयवाश्रयाणि तत्त्ववादिनमतत्त्ववादिनज्ञाभि-  
 संभवन्ते तेषां विभागः ॥

प्रतिज्ञाहानिः प्रतिज्ञान्तरं प्रतिज्ञाविरोधः  
 प्रतिज्ञासन्नप्राप्तो हेत्वन्तरमर्थान्तरं निरर्थकम-  
 विज्ञातार्थमपार्थक्यमप्राप्तकालं न्यूनमधिकं पुनरु-  
 क्तमननुभाषणमज्ञानमप्रतिभा विक्षेपो मतानुज्ञा  
 पर्यनुयोज्योपेक्षणं निरनुयोज्यानुयोगोऽपसि-  
 द्धान्तो हेत्वाभासाश्च निग्रहस्थानानि ॥ १ ॥



तानीमानि द्वाविंशतिधा विभज्य लक्ष्यन्ते ॥

प्रतिदृष्टान्तधर्माभ्यनुज्ञा स्वदृष्टान्ते प्रतिज्ञा-  
हानिः ॥ २ ॥

साध्यधर्मप्रत्यनीकेन धर्मेण प्रत्यवस्थिते प्रतिदृष्टान्तधर्मं स्वदृष्टान्ते-  
ऽभ्यनुज्ञानं प्रतिज्ञां जहातीति प्रतिज्ञाहानिः, निदर्शनम् ऐन्द्रिय-  
कत्वादित्यः शब्दो घटवदिति कृते अपर आह दृष्टमैन्द्रियकत्वं सामान्ये  
नित्ये कस्मान्न तथा शब्द इति प्रत्यवस्थिते इदमाह यद्वैन्द्रियकं सामान्यं  
नित्यं कामं घटो नित्योऽस्त्विति स खल्वयं साधकस्य दृष्टान्तस्य नित्यत्वं  
प्रसञ्जयन्निगमनान्तमेव पक्षं जहाति पक्षं जहत् प्रतिज्ञां जहातीत्युच्यते  
प्रतिज्ञा श्रयत्वात् पक्षस्येति ॥

प्रतिज्ञातार्थप्रतिषेधे धर्मविकल्पात्तदर्थनिर्देशः  
प्रतिज्ञान्तरम् ॥ ३ ॥

प्रतिज्ञातार्थोऽनित्यः शब्द ऐन्द्रियकत्वात् घटवदित्युक्ते योऽस्य प्रति-  
षेधः प्रतिदृष्टान्तेन हेतुव्यभिचारः सामान्यमैन्द्रियकं नित्यमिति तस्मिंश्च  
प्रतिज्ञातार्थप्रतिषेधे धर्मविकल्प इति दृष्टन्तप्रतिदृष्टान्तयोः साधर्म्ययोगे  
धर्मभेदात् सामान्यमैन्द्रियकं सर्वगतम् ऐन्द्रियकस्त्वसर्वगतो घट इति  
धर्मविकल्पात् तदर्थं निर्देश इति साध्यसिद्ध्यर्थम्, कथम् यथा घटोऽसर्वगत  
एवं शब्दोऽस्यसर्वगतो घटवदेवानित्य इति, तत्रानित्यः शब्द इति पूर्वा  
प्रतिज्ञा, असर्वगत इति द्वितीया प्रतिज्ञा प्रतिज्ञान्तरम्, तत्कथं निग्रह-  
स्थानमिति, न प्रतिज्ञायाः साधनं प्रतिज्ञान्तरं, किन्तु हेतुदृष्टान्तौ  
साधनं प्रतिज्ञायाः, तदेतदसाधनोपादानमनर्थकमिति आनर्थक्यानि-  
ग्रहस्थानमिति ॥

प्रतिज्ञाहेत्वोर्विरोधः प्रतिज्ञाविरोधः ॥ ४ ॥

गुणव्यतिरिक्तं द्रव्यमिति प्रतिज्ञा, रूपादितोऽर्थान्तरस्यानुपलब्धे-  
रिति हेतुः, सोऽयं प्रतिज्ञाहेत्वोर्विरोधः, कथम् यदि गुणव्यतिरिक्तं



## ५ अध्याये २ आह्निकम् ।

१८७

द्रव्यं रूपादिभ्योऽर्थान्तरस्यानुपलब्धिर्नोपपद्यते, अथ रूपादिभ्योऽर्थान्तरस्यानुपलब्धिः, गुणव्यतिरिक्तं द्रव्यमिति नोपपद्यते, गुणव्यतिरिक्तञ्च द्रव्यं रूपादिभ्यर्थान्तरस्यानुपलब्धिरिति विरुध्यते व्याह्र्यते न सम्भवतीति ॥

## पक्षप्रतिषेधे प्रतिज्ञातार्थापनयनं प्रतिज्ञासन्त्रासः ५

अनित्यः शब्द ऐन्द्रियकत्वादित्युक्ते परे ब्रूयात् सामान्यमैन्द्रियकं न च अनित्यमेवं शब्दोऽथैन्द्रियको न चानित्य इति, एवमप्रतिषिद्धे पक्षे यदि ब्रूयात् कः पुनराह अनित्यः शब्द इति, सोऽयं प्रतिज्ञातार्थनिष्ठः प्रतिज्ञासन्त्रास इति ॥

अविशेषोक्ते हेतौ प्रतिषिद्धे विशेषमिच्छतो-  
हेत्वन्तरम् ॥ ६ ॥

निदर्शनम् एकप्रकृतीदं व्यक्तमिति प्रतिज्ञा, कस्माद्धेतोः एकप्रकृतीनां विकाराणां परिमाणात् कृत्यैकाणां शरावादीनां दृष्टं परिमाणम्, यावान् प्रकृत्यैर्ब्रूहो भवति तावान् विकार इति, दृष्टञ्च प्रतिविकारं परिमाणम्, अस्ति चेदस्परिमाणं प्रतिव्यक्तम्, तदेकप्रकृतीनां विकाराणां परिमाणात्यस्य सो व्यक्तमिदमेकप्रकृतीति । अस्य व्यभिचारेण प्रत्यवस्थानम्, नानाप्रकृतीनामेकप्रकृतीनाञ्च विकाराणां दृष्टं परिमाणमिति, एवं प्रत्यवस्थिते व्याह्र एवप्रकृतिसमन्वये सति शरावादिविकाराणां परिमाणदर्शनात् सुखदुःखमोहसमन्वितं हृदं व्यक्तं परिमितं गृह्यते तत्र प्रकृत्यन्तररूपसमन्वयाभावे सत्येकप्रकृतित्वमिति, तदिदमविशेषोक्ते हेतौ प्रतिषिद्धे विशेषं ब्रूवतो हेत्वन्तरमवति, सति च हेत्वन्तरभावे पूर्वस्य होतोरसाधकत्वान्निग्रहस्यानम्, हेत्वन्तरवचने सति यदि हेत्वर्थनिदर्शनी दृष्टान्त उपादीयते नेदं व्यक्तमेकप्रकृति भवति प्रकृत्यन्तरोपादानात्, अथ नोपादीयते दृष्टान्ते हेत्वर्थस्यानिर्देशास्य साधकभावानुपपत्तेरानर्थक्याद्देतोरनिवृत्तं निग्रहस्यानमिति ॥



## प्रकृतादर्थादप्रतिसम्बद्धान्यर्थान्तरम् ॥ ७ ॥

यथोक्तलक्षणे पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहे हेतुतः साध्यसिद्धौ प्रकृतायां  
ब्रूयात् नित्यः शब्दोऽस्पर्शत्वादिति हेतुः, हेतुर्नाम हिनोतेर्धातोस्तुनिप्र-  
त्यये कदन्तपदम्, पदञ्च नामाख्यातोपसर्गनिपाताः अभिधेयस्य क्रिया-  
न्तरयोगाद्विशिष्टाणुरूपः शब्दो नाम, क्रियाकारकसमुदायः, कारक-  
सङ्ख्याविशिष्टक्रियाकालयोगाभिधाय्याख्यातम्, धात्वर्थमात्रञ्च कालाभि-  
धानविशिष्टम्, योगेष्वर्थादभिद्यमनरूपानिपाताः उपसृज्यमानाः क्रिया-  
वद्योतका उपसर्गा इत्येवमादि, तदर्थान्तरं वेदितव्यमिति ॥

## वर्णक्रमनिर्देशवन्तिरर्थकम् ॥ ८ ॥

यथा नित्यः शब्दः कचटतपाः जवगडदशत्वात् भ्रमज्वडधष्वटिति  
एवम्भवारं निरर्थकम्, अभिधानाभिधेयभावानुपपत्तौ अर्थगतेरभावाद्-  
वर्णाएव क्रमेण निर्दिश्यन्त इति ॥

## परिषत्प्रतिवादिभ्यां विरभिहितमप्यविज्ञातम- विज्ञातार्थम् ॥ ९ ॥

यद्वाक्यं परिषदा प्रतिवादिना च विरभिहितमपि न विज्ञायते  
क्लिष्टशब्दमप्रतीतप्रयोगमतिद्रुतोच्चारितमित्येवमादिना कारणेन तद-  
विज्ञातमविज्ञातार्थमसामर्थ्यसम्बरणाय प्रयुक्तमिति निग्रहस्थानमिति ॥

## पौर्वापर्यायोगादप्रतिसम्बद्धान्यर्थमपार्थकम् ॥ १० ॥

यत्रानेकस्य पदस्य वाक्यस्य वा पौर्वापर्येणान्वययोगोनास्तीत्यसम्ब-  
न्धार्थत्वम् गृह्यते तत्समुदायोऽर्थस्यापायादपार्थकम् । यथा दश दाडि-  
सानि षड्रूपाः कुण्डमजाजिनमललपिण्डः । अथ रौक्मेतत्कुमार्थाः  
सत्यम् तस्याः पिता अप्रतिशीन इति ॥



५ अध्याये २ आह्निकम् ।

१८१

अवयवविपर्य्यासवचनमप्राप्तकालम् ॥ ११ ॥

प्रतिज्ञादीनामवयवानां यथालक्षणसर्ववशात् क्रमः, तत्रावयवविपर्य्यासेन वचनमप्राप्तकालमसम्बन्धार्थकालं निग्रहस्थानमिति ॥

हीनमन्यतमेनाप्यवयवेन न्यूनम् ॥ १२ ॥

प्रतिज्ञादीनामवयवानामन्यतमेनाप्यवयवेन हीनं न्यूनं निग्रहस्थानम्, साधनाभावे साध्यासिद्धिरिति ॥

हेतूदाहरणाधिकमधिकम् ॥ १३ ॥

एकेन कृतत्वादन्यतरस्थानर्थक्यमिति तदेतन्नियमाभ्युपगमे वेदितव्यमिति ॥

शब्दार्थयोः पुनर्वचनं पुनरुक्तमन्यचानुवादात् ॥ १४ ॥

अन्यत्वानुवादात् शब्दपुनरुक्तमर्थपुनरुक्तं वा, नित्यः शब्दो नित्यः शब्द इति शब्दपुनरुक्तम्, अर्थपुनरुक्तमनित्यः शब्दो निरोधधर्मकोध्वानइति ॥

अनुवादे त्वपुनरुक्तं शब्दाभ्यासादर्थविशेषोपपत्तेः ॥ १५ ॥

यथा हेत्वपदेशात् प्रतिज्ञायाः पुनर्वचनं निगमनमिति ॥

अर्थादापन्नस्य स्वशब्देन पुनर्वचनम् ॥ १६ ॥

पुनरुक्तमिति प्रकृतम्, निदर्शनम् उत्पत्तिधर्मकत्वादनित्यमित्युक्त्वा अर्थादापन्नस्य योऽभिधायकः शब्दस्तेन स्वशब्देन ब्रूयादनुत्पत्तिधर्मकं नित्यमिति । तच्च पुनरुक्तस्वेदितव्यम्, अर्थसम्प्रत्ययार्थे शब्दप्रयोगे प्रतीतः सोऽर्थोऽर्थापत्त्येति ॥

विज्ञातस्य परिषदा विरभिहितस्याप्यनुच्चारणमननुभाषणम् ॥ १७ ॥



विज्ञातस्य वाक्यार्थस्य परिषदा प्रतिवादिना विरभिहितस्य यद-  
प्रत्युच्चारणनन्दननुभाषणं नाम निग्रहस्थानमिति, अप्रत्युच्चारयन् किमा-  
श्रयं परपक्षप्रतिषेधं ब्रूयात् ॥

**अविज्ञातञ्चाज्ञानम् ॥ १८ ॥**

विज्ञातार्थस्य परिषदा प्रतिवादिना विरभिहितस्य यदविज्ञान-  
नदज्ञानं निग्रहस्थानमिति । अयं खल्वविज्ञाय कस्य प्रतिषेधं  
ब्रूयादिति ॥

**उत्तरस्याप्रतिपत्तिरप्रतिभा ॥ १९ ॥**

परपक्षप्रतिषेधः उत्तरम् तद्व्यदा न प्रतिपद्यते तदा निगृहीतो  
भवति ॥

**कार्यव्यासङ्गात् कथाविच्छेदो विक्षेपः ॥ २० ॥**

यत्र कर्तव्यं व्यासज्य कथां व्यवच्छिनत्ति इदं मे करणीयं विद्यते  
तस्मिन्नवसिते कथयिष्यामीति विक्षेपो नाम निग्रहस्थानम् । एकनिग्रहा-  
वसानायां कथायां स्वयमेव कथान्तरं प्रतिपद्यत इति ॥

**स्वपक्षदोषाभ्युपगमात् परपक्षदोषप्रसङ्गो म-  
तानुज्ञा ॥ २१ ॥**

यः परेण चोदितं दोषं स्वपक्षेऽभ्युपगम्यानुद्धृत्य वदति भवत्यक्षे समानो  
दोष इति स स्वपक्षे दोषाभ्युपगमात्परपक्षे दोषं प्रसञ्जयन् परमत-  
मनुजानातीति मतानुज्ञा नाम निग्रहस्थानमापद्यत इति ॥

**निग्रहस्थानप्राप्तस्यानिग्रहः पर्यनुयोज्योपेक्ष-  
णम् ॥ २२ ॥**



## ५ अध्याये २ आह्निकम् ।

१८१

पर्यनुयोज्यो नाम नियमोपपत्त्या चोदनीयस्तस्योपेक्षणम् नियम-  
स्यानं प्राप्तोऽसीत्यनुरयोगः, एतच्च कस्य पराजय इत्यनुरुक्त्या परिपदा  
वचनीयम्, न खलु नियमं प्राप्तः स्वकौपीनं विवृणुयादिति ॥

**अनियमहस्याने नियमहस्यानाभियोगो निरनु-  
योज्यानुयोगः ॥ २३ ॥**

नियमहस्यानलक्षणस्य मित्याध्यवसायादनियमहस्याने निम्नहीतोऽ-  
सीति परं ब्रुवन् निरनुयोज्यानुयोगान्निम्नहीतो वेदितव्य इति ॥

**सिद्धान्तमभ्युपेत्यानियमात्कथाप्रसङ्गोऽपसिद्धान-  
न्तः ॥ २४ ॥**

कस्यचिदर्थस्य तथाभावं प्रतिज्ञाय प्रतिज्ञातार्थविपर्ययादनियमात्  
कथां प्रसञ्जयतोऽपसिद्धान्तो वेदितव्यः यथा न सददात्मानञ्जहाति न सतो  
विनाशो नासदात्मानं लभते नासदुत्पद्यत इति, सिद्धान्तमभ्युपेत्य स्वपक्षं  
व्यवस्थापयति एकप्रकतीदं व्यक्तं विकाराणामन्वयदर्शनात् नृदन्वितानां  
शरावादीनां दृष्टमेकप्रकतित्वम् तथा चायं व्यक्तभेदः सुखदुःखमोहान्वितो  
दृश्यते तस्मात् समन्वयदर्शनात् सुखादिभिरेकप्रकतीदं शरीरमिति एव-  
मुक्तवाननुरुज्यते । अथ प्रकृतिविकार इति कथं लक्षितव्यमिति । यस्या-  
वस्थितस्य धर्मान्तरनिवृत्तौ धर्मान्तरं प्रवर्तते सा प्रकृतिः । यच्च धर्मान्तरं  
प्रवर्तते स विकार इति, सोऽयं प्रतिज्ञातार्थविपर्ययादनियमात् कथां  
प्रसञ्जयति प्रतिज्ञातं खल्वनेन नासदाविर्भवति सत् तिरोभवतीति ।  
सदसतोश्च तिरोभावाविर्भावमन्तरेण न कस्यचित्प्रवृत्तिः प्रवृत्त्युपरमश्च  
भवति, नृदि खल्ववस्थितायाम् विध्यति शरावादिलक्षणं धर्मान्तरमिति  
प्रवृत्तिर्भवति, अभूदिति च प्रवृत्त्युपरमः, तदेतन्मृद्धर्माणामपि न स्यात्  
एवं प्रत्यवस्थितो यदि सतश्चात्मज्ञानमसतश्चात्मलाभमभ्युपैति, तदस्या-  
पसिद्धान्तोऽनियमहस्यानम्भवति । अथ नाभ्युपैति पक्षोऽस्य न सिध्यति ॥



हेत्वाभासाश्च यथोक्ताः ॥ २५ ॥

हेत्वाभासाश्च निग्रहस्यानानि किं पुनर्लक्षणान्तरयोगात् हेत्वा-  
भासाः निग्रहस्यानत्वमापन्नाः यथा प्रमाणानि प्रमेयत्वमित्यत आह ।  
यथोक्ता इति । हेत्वाभासलक्षणेनैव निग्रहस्यानभाव इति । त इमे  
प्रमाणादयः पदार्था उद्दिष्टा लक्षिताः परोक्षिताश्चेति ॥

इति वात्स्यायनीये न्यायभाष्ये पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकं समा-  
प्तञ्चायं पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ समाप्तञ्चेदं शास्त्रम् ॥



योगेशाय नमः ।

## न्यायसूचष्टिः ।

वपुर्लीलालक्ष्मीजितमदनकोटिर्ब्रजवधू-  
जनानामानन्दं कमपि कमनीयं विरचयन् ।  
सकोऽपि प्रेमाणं प्रथयतु मनोमन्दिरचर-  
त्तिलोकीलोकानां सजलजलदश्यामलतनुः ॥ १ ॥  
संयुक्तायुक्तरूपामभिनवनिहितालक्तकारक्तभासा  
सन्ध्यापीयूषभानोरतिरुचिरतरां चूर्णयन्तीमभिख्यां  
मानव्यामोहनमन्त्रिपुरहरशिरोरम्यभूषाविशेषं  
भूयोभव्यं विधातुं चरणनखरुचं भावयामोभवान्याः  
यदीयतर्ककिरणैरान्तरध्वान्तसन्ततिम् ।  
सन्तस्तरन्तिभास्वन्तमक्षपादं नमामि तम् ॥ ३ ॥  
अद्वैतं गुरुधर्मयोरिव लसत्क्षामगडलीमगडनं  
रूपं किञ्चन पौरुषं गिरइव प्रागल्भ्यसम्पादकम् ।  
दाने कर्णमिवावतीर्णमपरं दीने दयादक्षिणं



तातं विश्वविस्तारिचारुयशसं विद्यानिवासं नमः॥४॥

अलसमतिरपीदं विस्तृतं न्यायशास्त्रं

विरहितवज्जयन्तोलीलया वेत्तुविन्नः ।

इति विनिहितचेताःकौशलं कर्तुकामो

गुरुचरणरजोऽहं कर्णधारौकरोमि ॥५॥

विद्यानिवाससूनोः कृतिरेषा विश्वनाथस्य ।

विदुषामति सूक्ष्मधियाममत्सराणां मुदे भविता॥६॥

प्रयोजनमनभिसम्भाय प्रेक्षावन्तो न प्रवर्तन्ते अतः प्रथमं प्रयोजन-  
मभिधानीयं तथावाहुः सिद्धार्थं सिद्धसम्बन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्तते । शा-  
स्त्रादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनः ॥ सिद्धो ज्ञातोऽर्थः प्रयोजनं यस्य  
तत्तथा एवं सिद्धसम्बन्धमित्यपि अतस्तत्प्रतिपादनाय भगवानक्षपादः प्रथमं  
सूचयति । अत तत्त्वज्ञाननिःश्रेयसयोः शास्त्रतत्त्वज्ञानयोश्च हेतु हेतुमद्भावः  
प्रमाणादितत्त्वज्ञानयोर्विषयविषयिभावः प्रमाणादिशास्त्रयोः प्रतिपाद्य-  
प्रतिपादकभावः शास्त्रनिःश्रेयसयोश्च प्रयोज्यप्रयोजकभावः सम्बन्धः तत्त्व-  
ज्ञायतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या तत्त्वज्ञानं शास्त्रं तथा च शास्त्रनिःश्रेयसयोरपि  
तत्त्वज्ञानद्वारकहेतु हेतुमद्भाव एव सम्बन्धइति सम्प्रदायविदः, अत च  
सर्वपदार्थप्रधानोद्वहः समासः यद्यपि भेदे द्वन्द्वविधानादत च बहूनां  
पदार्थानामभेदान्न द्वन्द्वसम्भवस्तथापि पदार्थतावच्छेदकभेदादेव द्वन्द्वइति  
न दोषइत्यन्यत्र विस्तरः तत्र च निर्देशे यथा वचनं विग्रहइति यथाश्रुत-  
भाष्यानुसारिणः प्रमाणानि च प्रमेयञ्च संशयश्च प्रयोजनञ्च दृष्टान्तश्च सिद्धा-  
न्तश्च अवयवाश्च ठर्कश्च निर्णयश्च वादश्च जल्पश्च वितण्डा च हेत्वाभासाश्च  
छलश्च जातयश्च निग्रहस्थानानि चेति विग्रहं वर्णयन्ति । सम्प्रदायविदस्तु  
भाष्यस्थवचनपदेन क्वचित्कौतवं क्वचिदार्थं वचनं गृह्यते तत्र प्रमाणे



## १ अध्याये १ आङ्गिकम् ।

१८५

प्रमेये च सौत्वं वचनं गृह्यते सप्रयोजनत्वात् तच्च वक्ष्यते ननु दृष्टान्तादा-  
 वेककचनं सप्रयोजनं तथाच दृष्टान्ते द्विवचनम् अन्यव्यतिरेकिभेदेन  
 दृष्टान्तद्वैविध्यस्य वक्ष्यमाणत्वात् । संशये सिद्धान्ते क्वले च वज्रवचनं  
 संशये क्वले च त्रैविध्यस्य सिद्धान्ते चातुर्विध्यस्य वक्ष्यमाणत्वात्, अन्यथा  
 जातिनिग्रहस्थानयोर्वज्रवचनं तवापि व्याहृत्येक एकवचनस्यैव लक्ष-  
 णसूत्रे सत्त्वादिति वदन्ति । नव्यास्तु सर्वत्र प्रथमोपस्थितैकवचनेनैव  
 विग्रहः, नह्यत्र वज्रवचनेनैव प्रमाणादीनां वज्रत्वं परिच्छिद्यते किन्तु-  
 ग्रिमविभागेन, नह्येकद्वित्वं धवखदिरादौ धवश्च खदिरश्च पलाशश्चेति न  
 पिगृह्यते अतएव प्रयोजनस्यैकवचनान्तत्वेऽपि तद्विभागाकरणेऽपि सुख-  
 दुःखाभावतद्वाधनभेदेन तस्य वज्रत्वं न विरुध्यत इति प्राहुः । अत्र च  
 निःशेषेयस्य सिद्धं पठादिवत्तप्राप्तये न प्रयत्नान्तरमपेक्षितमिति प्रतिपाद-  
 नायाधिगमपदम् । ननु प्रमाणादयः पदार्था इति शब्दात् प्रथमसूत्रादेव  
 वा तत्त्वज्ञानं स्यादिति चेन्न तेषां विशिष्यज्ञानं हि तत्त्वज्ञानं तच्चेद्देश-  
 लक्षणपरीक्षाप्रकाशकाः स्यादेव, शास्त्रं हि विशिष्टानुपूर्विका पञ्चा-  
 ध्यायी अध्यायस्त्वाङ्गिकसमूहः आङ्गिकस्तु तादृशप्रकरणसमूहः, प्रकरणस्तु  
 तादृशसूत्रसमूहः सूत्रस्तु तादृशवाक्यसमूहः वाक्यस्तु तादृशपदसमूह इति  
 वदन्ति । अत्र समूहशब्देनानेकत्वं विवक्षितं तेनाध्यायादेराङ्गिकादि-  
 द्वयात्मकत्वेऽपि न क्षतिः । अत्र च यद्यपि मोक्षजनकज्ञानविषयत्वेन प्रमे-  
 यमेवादौ निरूपयितुं मर्ह्यं तथापि प्रमाणस्य सकलपदार्थव्यवस्थापकत्वेन  
 प्राधान्यात्प्रथमसुद्देशः । ततोऽवसरतो बुभुक्षितप्रमेयस्य ततश्च पदार्थव्यव-  
 स्थापनस्यन्यायाधीनतया न्याये निरूपणीयेऽभ्यर्हितयोर्न्यायपूर्व्याङ्गयोः सं-  
 शयप्रयोजनयोः तत्वाभ्यर्हिततया संशयस्य प्रथमं नच निर्णीतेऽपि मनन-  
 विधानान्न संशयस्य न्यायाङ्गत्वमिति वाच्यम् । आह्वार्यसंशयोपगमात्  
 यद्यपि प्रयोजनं न न्यायाङ्गमपि तु तज्ज्ञानं तथापि तदेव निरूपणीयं  
 न तु ज्ञाननिरूपणापेक्षेति । परप्रत्यायने दृष्टान्तस्य मूलत्वादनन्तरं दृष्टा-  
 न्तस्य दृष्टान्तमूलको न्यायः सिद्धान्तविषय इत्यतोऽनन्तरं सिद्धान्तस्य, ततश्चाव-  
 खरतः सिद्धान्ताधीनस्य, पञ्चावयवरूपस्य न्यायस्य ततश्चैककार्यतया न्याय-  
 सङ्कारिणसर्कस्य, ततश्च तर्कजन्यतया निर्णयस्य, ततश्च निर्णयं तु कूलत्वा-



दादस्य, जल्पस्यापि वादकार्यकारित्वादनन्तरं जल्पस्य, ततश्च विजयरूपैक-  
 कार्यानुकूलतया वितण्डायाः कथावयस्यापि दूषणसापेक्षतयानन्तरं  
 दूषणेषु निरूपणीयेषु वादे देशनीयत्वरूपोत्कर्षवत्त्वाद्धेतुवदाभासमानत्वा-  
 द्वादौ हेत्वाभासानां, ततश्च हेत्वाभासोपजीवनेन छलस्य, स्वव्याघातकत्वेन  
 अत्यन्तासदुत्तरत्वात्ततो जातेः कथावसानत्वेनार्थादनन्तरं निग्रहस्थाना-  
 नामिति, अत्र च प्रमेयान्तःपातिबुद्धिरूपस्यापि संशयादेर्निरनुयोज्यानु-  
 योगरूपनिग्रहस्थानान्तःपातिनोऽखलजात्योश्च प्रकारभेदेन प्रतिपादनं  
 शिष्यबुद्धिवैशद्यार्थमस्तु निग्रहस्थानान्तःपातिनां हेत्वाभासानां पृथगभि-  
 धानप्रयोजनन्तु जानाति भगवानक्षपादएव । भाष्ये तु वादे देशनीयतया  
 हेत्वाभासानां पृथगुपन्यासद्व्युक्तम् अत्र वार्तिकं, यदि वादे देशनीयत्वात्  
 पृथगभिधानं तदा न्यूनाधिकापसिद्धान्तानां वादे देशनीयत्वात्पृथगभि-  
 धानं स्यात्, यदि पृथगभिधानाद्वादे देशनीयत्वं तदा संशयादीनामपि वादे  
 देशनीयत्वं स्यात् । तस्मादान्वोक्तिकीदृशीवार्त्तादण्डनीतिरूपविद्याप्र-  
 स्थानभेदज्ञापनार्थं संशयादेर्हेत्वाभासस्य च पृथग्वचनमिति तदप्यसत्  
 निग्रहस्थानान्तर्गतत्वेनैव तन्निरूपणेन प्रस्थानभेदसम्भवात् । वयन्तु हेत्वा-  
 भासानां न निग्रहस्थानत्वं तथा सति सर्वत्र हेत्वाभाससत्त्वात् सर्वस्यैव  
 निगृहीतत्वापत्तेः । तस्मात् हेत्वाभासप्रयोगो निग्रहस्थानं तद्विभाजक-  
 सूत्रस्य हेत्वाभासपदञ्च तद्व्ययोगपरं, तत्र च प्रयोगस्य न लक्षणसापेक्षणीयं  
 अपि तु हेत्वाभासानामित्यत उक्तं हेत्वाभासाश्च यथोक्ता इति चरमसूत्रं, न  
 च हेत्वाभासस्यावच्छेदकप्रवेशादेव पृथङ्निरूपणापेक्षेति वाच्यं तथा  
 सति प्रमाणतर्कसाधनोपलब्ध इति वादाद्यवच्छेदकप्रमाणादेरपि पृथङ्-  
 निरूपणापत्तेरिति युक्तमुत्पश्यामः । अत्र केचित् सूत्रादौ मङ्गलाकर-  
 णेन मङ्गलं न प्रामाणिकमित्यत्र सूत्रकृतां तात्पर्यं वर्णयन्ति, तदसत् कृत-  
 स्थाप्यनिबन्धनसम्भवात् विघ्नाभावनिरूपयेनाकरणसम्भवाच्च वयन्तु प्रमाणं  
 प्राणनिलय इति भगवन्नामगणान्तःपातिप्रमाणशब्दस्योच्चारणमेव मङ्गल-  
 मिति ब्रूमः, अत्र च उद्देशलक्षणपरीक्षाणां पूर्वपूर्वसापेक्षतया प्रथम-  
 उद्देशोऽनन्तरं लक्षणं प्रसङ्गाच्छलपरीक्षेति सोद्देशपदार्थलक्षणलक्ष-  
 णीक्षा प्रथमाध्यायार्थः तत्र च सपरिकरन्यायलक्षणं प्रथमाह्वयार्थः, तत्र



## १ अध्याये १ आह्निकम् ।

१२०

च संयोजनाभिधेयप्रतिपादकं प्रथमद्वितीयसूत्राभ्यामेकं प्रकरणं, ततः प्रमाणलक्षणप्रकरणं ततः प्रमेयलक्षणप्रकरणं ततो न्यायपूर्वाङ्गप्रकरणं ततो न्यायसिद्धान्तप्रकरणं ततो न्यायस्वरूपप्रकरणं ततो न्यायोत्तराङ्गप्रकरणमिति प्रथमाह्निके सप्तप्रकरणानि । अथवा दनु पश्चादीनां अन्वीक्षा उन्नयनन्तर्निर्वाहिका सेयमान्वीक्षिकी न्यायतर्कादिशब्दैरपि व्यवहियते तथा च “न्यायो मीमांसा धर्मशास्त्राणीति,, श्रुतिः, पुराणन्यायमीमांसेत्यादि स्मृतिः । मीमांसा न्यायतर्कश्च उपाङ्गः परिकीर्तित इति पुराणम् । त्वैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनोतिच्च शाश्वतोम् । आन्वीक्षिकी-श्चात्मविद्यां वात्तारम्भांश्च लोकोक्त इति मनुः, तथा-यस्तर्केणानुसन्वत्ते स-धर्मं वेदनेतर इत्यादि मीमांसधर्मे तत्रोपनिषदं तात ! परिशेषन्तु पार्थिव ! । मन्नामि मनसा तात ! इहा चान्वीक्षिकीं परामित्युपनिषदर्थश्चान्वीक्षिक्यनु-सारी प्राह्य इत्युक्तमिति ॥ १ ॥

ननु तत्त्वज्ञानस्य न साक्षादेव निःश्रेयसहेतुत्वं निःश्रेयसं ताव-द्विविधं परापरभेदात् तत्रापरं जीवन्मुक्तिलक्षणं तत्त्वज्ञानानन्तरमेव तदध्यवधारितात्मतत्त्वस्य नैरन्तर्याभ्यासापहृतमिथ्याज्ञानस्य प्रारब्ध-कर्मापभुञ्जानस्य परन्तु क्रमेण, तत्र क्रमप्रतिपादनायेदं सूत्रमिति दुःखादीनां मध्ये यत्तत्तरोत्तरं तेषामपाये तदनन्तरस्य तत्त्वनिहितस्य पूर्वपूर्वस्यापायादपवर्गः प्रयोजकत्वं प्रयोज्यत्वं वा पञ्चमर्थः दण्डा-भावाद्दृष्टाभाव इति वत्स्वरूपसम्बन्धविशेष एव तत् तदयमर्थः तत्त्व-ज्ञानेन विरोधितयापहृते मिथ्याज्ञाने कारणाभावाच्च निवृत्ते राग-द्वेषात्मके दोषे तदभावाच्च प्रवृत्तेर्धर्माधर्मात्मिकाया अद्वैततौ तदभावाच्च जन्मनीविशिष्टशरीरसम्बन्धस्याभावे दुःखाभावः दपवर्गः । यद्यपि ज्ञानि-नोऽपि रागः दयस्तिष्ठन्ति तथाप्युत्पटारागाद्यभावे तात्पर्यम् । यद्यपि दो-षाणां न धर्मादिजनकेत्वं व्यभिचारात्तथापि तत्तद्दोषाणां तत्तद्दधर्मादि-हेतुत्वाद्दोषाण्ये धर्माद्यपायः वस्तुतोविनापीच्छां गङ्गाजलसंयोगादितो धर्मादिसम्भवाद्वाभ्यभिचारः तस्मात् मिथ्याज्ञानजवासनैवाव दोषः, तस्यास्य मिथ्याज्ञाननाशात् तत्कालीनतत्त्वज्ञानजवासनातो वा नाश इत्याशय इत्यपि वदन्ति । यद्यपि दुःखापायान्नापवर्गः किन्तु स एव सः तथा-



अभेद एव तत्र पञ्चमर्थः, अपवर्गपदं वा तद्व्यवहारपरम् अनन्तर-  
पदेन जन्मान्तरमेव परास्म्यत इति तु न व्याख्यानं दुःखपदवैयर्थ्या-  
पत्तेः दुःखानुत्पत्तेश्चरमदुःखध्वंसप्रयोजकत्वं कल्प्यत इत्याशयेनेदमित्यपि  
कश्चित् ॥ २ ॥

इति सूत्रवृत्तौ सप्रयोजनाभिधेयप्रकरणम् ।

अथ यथोद्देशं लक्षणस्यापेक्षितत्वात् प्रथमोद्दिष्टप्रमाणं लक्षयति विभ-  
जते च । अत्र तद्वति तत्प्रकारकत्वरूपप्रकर्षविशिष्टज्ञानं प्रशब्दविशिष्टेन  
माधातुना प्रत्याख्यते तत्करणत्वं प्रमाणत्वं ज्ञानं चात्रानुभवे विवक्षित-  
स्तेन स्मृतिकरणे नातिव्याप्तिः लक्षितानां प्रमाणाणां विभागः प्रत्यक्षानु-  
मानोपमानशब्दादिति विभागस्योद्देश एवान्तर्भूतत्वादयं विशेषोद्देशः ॥  
प्रत्येकलक्षणन्तु वक्ष्यते । इति तिस्रस्त्री वृत्तिः समाप्ता ॥ ३ ॥

अथ विभक्तानि यथात्मं लक्षयितुमारभते । अत्र प्रतिगतमक्षं  
प्रत्यक्षमिति योगादिन्द्रियवाचकत्वात् प्रत्यक्षशब्दस्य प्रस्तुतत्वाच्च करण-  
लक्षणस्य प्रमितिलक्षणं यद्यप्यनुचितं तथापि यत इत्यध्याहारेण प्रत्यक्ष-  
प्रमाकरणलक्षणे वाच्ये तदेकदेशप्रमास्वरूपे ज्ञाते तत्करणत्वं सुज्ञेय  
मित्याशयेन वा सङ्गमनीयम् । आत्मनःसंयोगजन्यसुखादिवारणाय  
ज्ञानमिति यद्यपि तज्जन्यत्वात् ज्ञानमात्रेऽतिव्याप्तिरीश्वरप्रत्यक्षे चा-  
व्यभिक्तथापि साक्षात्करोमीत्यनुव्यवसायसिद्धसाक्षात्त्वजात्यवच्छिन्ने ज्ञा-  
नमित्यन्तस्य तात्पर्यं, यद्वा इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नमिति सावधारणं  
इन्द्रियार्थसन्निकर्षातिरिक्तानुत्पन्नं अतिरिक्तं चात्र ज्ञानं तेन ज्ञाना-  
करणकमित्यर्थः, अमवारकमव्यभिचारीति अभैभिन्नमित्यर्थः, इद-  
ञ्चांशिकभ्रमस्यालक्ष्यत्वेन लक्ष्यत्वे तु तद्वति तत्प्रकारकत्वं निर्विकल्पकस्य  
लक्ष्यत्वे तदभाववति तदप्रकारकत्वमर्थः तस्य विभागः अव्यपदेश्यं  
व्यवसयः, आत्मकमिति निर्विकल्पकं सर्विकल्पकं चेति द्विविधं प्रत्यक्षमि-  
त्यर्थः ॥ ४ ॥



## १ अध्याये १ आह्निकम् ।

१२२

अनुमानं लक्षयति विभजते च । आनन्त्यबोधकायशब्दो हेतुहेतु-  
मङ्गावसङ्गतिस्त्वचनाय तत्पूर्वकं प्रत्यक्षपूर्वकं प्रत्यक्षं प्रत्यक्षविशेषो व्या-  
ख्यादिविषयकस्तेन व्याप्तिविशिष्टपञ्चधर्माज्ञानजन्यत्वं लभ्यते अनु-  
मानम् अनुमिति र्यत इत्यध्याहारेण च करणलक्षणं अथ वा करण-  
लक्षणमेवेदं तत्त्वानुमानमिति करणल्युटा अनुमिति करणमिति समा-  
ख्यावलादेव लभ्यं, तच्च व्याप्तिज्ञानं प्रत्यक्षपूर्वकं सङ्गचारप्रत्यक्षपूर्वकं  
विभजते त्रिविधमिति पूर्वं कारणं तद्वत् तस्मिन्नङ्गं यथा मेघोन्नति-  
विशेषेण दृष्टानुमानं शेषः कार्यं तस्मिन्नङ्गं शेषवत् यथा नदीदृष्ट्या  
दृष्टानुमानं सामान्यतो दृष्टं कार्यकारणभिन्नलिङ्गकं यथा पृथिवीत्वेन  
द्रव्यत्वानुमानम् अथ वा पूर्वम् अन्यस्तद्वत्केवलान्वयीत्यर्थः यथा अभि-  
प्रेयं प्रमेयत्वादित्यादि शेषो व्यतिरेकस्तद्वत्केवलव्यतिरेकीत्यर्थः यथा  
पृथिवी इतरेभ्योभिद्यते गन्धवत्त्वादित्यादि सामान्यतो दृष्टं अन्यव्यति-  
रेकि यथा वज्रिमानु धूमादित्यादि ॥ ५ ॥

उपमानं लक्षयति । प्रसिद्धस्य पूर्वप्रमितस्य गवादेः साधर्म्यात्सादृश्यात्  
तज्ज्ञानात् साध्यस्य गवयादिपदवाच्यत्वस्य साधनं सिद्धिरूपमानमुपमिति-  
र्यत इत्यध्याहारेण च करणलक्षणं अथ वा साध्यसाधनमिति करणल्युटा  
करणलक्षणमेवेदम् अत्र च वैधर्म्योपमितिमपि मन्यन्ते टीकाकृतः, यथा च  
अतिदीर्घमीवत्वादि पञ्चत्वरवैधर्म्यज्ञानादुद्वेगं करमपदवाच्यताग्रहः । एव-  
मन्योऽप्युपमानस्य विषयइति भाष्यं, तथा मुद्रपणीसदृशी ओषधी विषं  
हन्तीत्यतिदेशवाक्यार्थे ज्ञाते मुद्रपणीसादृश्यज्ञाने जाते इयमोषधी  
विषहरणीत्युपमित्या विषयीक्रियतइत्यादि ॥ ६ ॥

शब्दं लक्षयति । शब्दइति लक्ष्यकथनं तदर्थः प्रमाणशब्द इति आप्तोपदेश  
इति लक्षणं आप्तः प्रकृतवाक्यार्थयथार्थज्ञानवान् तस्योपदेश इत्यर्थः प्रकृत-  
वाक्यार्थयथार्थज्ञानप्रयुक्तः शब्द इति फलितार्थः अथ वा आप्तो यथार्थउप-  
देशः शाब्दबोधोयस्मात् । शाब्दत्वञ्च जातिविशेषस्तथा च यथार्थशाब्दज्ञा-  
नकरणत्वमर्थः । अत्र च विशेष्यादृत्यप्रकारकत्वतद्वति तत्प्रकारकत्वादि-  
प्रमाणज्ञानामेकं लक्षणे परञ्च लक्ष्यताच्छेदके निवेशनीयमतो ना-  
भेदः ॥ ७ ॥



विभजते । सप्रमाणशब्दः शब्दतदुपजीविप्रमाणातिरिक्तप्रमाणगम्यार्थको दृष्टार्थकः शब्दतदुपजीविप्रमाणमात्रगम्यार्थकोऽदृष्टार्थकः तथा च दृष्टार्थकत्वादृष्टार्थकत्वभेदात्प्रमाणशब्दस्य द्वैविध्यमित्यर्थः ॥ ८ ॥

समाप्तं प्रमाणलक्षणप्रकरणम् ॥ २ ॥

प्रमेयं विभजते लक्षयति च । अत्र तु शब्दः पुनरर्थे तथाचै-  
तेषां पुनः प्रमेयत्वं न तु प्रमा विषयत्वेन संयोगादीनामपि प्रमेय-  
शब्दो हि वादादिशब्दवत् परिभाषाविशेषेण हादशसु प्रवर्तते तत्र च  
प्रकटं मेयं प्रमेय मिति योगार्थः प्रकर्षश्च संसारहेतुमिथ्याज्ञानविष-  
यत्वं मोक्षहेतुधीविषयत्वं वा रूढ्या च तावदन्यान्यत्वमर्थः लक्षण-  
मपि तदेव प्रमेयं किमित्याकाङ्क्षायामात्मादयो दर्शिता इत्यतो वचन-  
भेदेऽपि नानन्वयः वेदाः प्रमाणमित्यादावप्येवं, अन्यथा आत्मसूत्रे  
विगतिः स्यात्तथा च वक्ष्यते प्रमेयत्वेनैक्यमिति प्रतिपादनाय अन्यत-  
माज्ञानेऽपि नापवर्ग इति प्रतिपादनाय वा प्रमेयमित्येकवचनमि-  
त्यन्ये, तच्चिन्त्यं, अत्रापि आत्मा च शरीरञ्च इन्द्रियाणि च अर्थाश्च बुद्धिश्च  
मनश्च प्रवृत्तिश्च दोषाश्च प्रेत्यभावश्च फलञ्च दुःखञ्च अपवर्गश्चेति यथावचनं  
विग्रहं वर्णयन्ति, अत्र प्राधान्यात्कारणरूपषट्कमभिधाय कार्यरूप-  
प्रमेयषट्कमभिहितं तत्र पूर्वपूर्वस्य प्रधान्यात् प्रथममुद्देश इति  
वदन्ति ॥ ९ ॥

तत्र प्रथमोद्दिष्टमात्मानं लक्षयति । अत्र चात्मनः प्रत्यक्षत्वा-  
ल्लिङ्गकथनमसङ्गतं न च शरीरातिरिक्तात्मव्युत्पादनार्थं तदतिवाच्यं  
अग्निमपरीक्षावैयर्थ्यापत्तेः लक्षणाकथनेन न्यूनत्वं चेति चेन्न तल्लिङ्ग-  
पदस्य लक्षणार्थत्वात् न च लिङ्गमित्येकवचनेन मिलितानां लक्षणत्वं  
प्रतीयते तच्चायुक्तं वैयर्थ्यादिति वाच्यं किं लक्षणमित्याकाङ्क्षायाभि-  
च्छादीनामभिधानान्मिलितं लक्षणमिति प्रत्यायकाभावात्, तथा च  
प्रत्येकमेव लक्षणं अत्र ज्ञानेच्छाप्रयत्नानामात्ममात्रस्य लक्षणत्वं सुख-  
दुःखद्वेषाणां संसारिणो लक्षणत्वमिति ॥ १० ॥



## १ अध्याये १ आङ्गिकम् ।

२५१

क्रमप्राप्तं शरीरं लक्षयति । अत्र चेष्टादीनां मिलितानां आश्रयत्वं न लक्षणं वैयर्थ्यादपि त्वाश्रयदस्य प्रत्येकमन्वयाच्चेष्टाश्रयत्वादिलक्षणत्वये तात्पर्यं चेष्टात्वञ्च प्रयत्नजन्यतावच्छेदको जातिविशेषः न च शरीरावयवेऽतिव्याप्तिः अन्यथावयवित्वेन विशेषणात् न च निष्क्रियशरीरेऽव्याप्तिस्तादृशे मानाभावात् अतएवाह इन्द्रियाश्रय इति इन्द्रियाश्रयत्वञ्च अवच्छेदकतारक्ष्यस्वरूपसम्बन्धविशेषेण चक्षुःश्रोत्रादेव दत्तोऽयमित्यादिप्रतीतेः, अर्थाश्रयत्वमित्यतार्थशब्दो न रूपादिपरस्तादाश्रयत्वस्य घटादावतिव्याप्तेः किन्तु सुखदुःखान्यतरपरः अतएव भाष्यं यस्मिन्नायतने सुखदुःखयोः प्रतिसम्बेदनं प्रवर्तते स एषामाश्रयस्तच्छरीरमिति, वस्तुतस्तन्व्यतराश्रयत्वमपि न लक्षणं, किन्तु सुखाश्रयत्वं दुःखाश्रयत्वञ्चेति लक्षणद्वये तात्पर्यं शरीरस्य तदाश्रयत्वमवच्छेदकतासम्बन्धेन हस्तादेरलक्ष्यत्वे त्वन्याश्रयवित्वेन विशेषणोयं स्वर्गिशरीरे नारकिशरीरे हृत्तादौ च सुखदुःखस्वीकाराच्चाव्याप्तिः, न च तच्छून्यखण्डशरीरेऽव्याप्तिः सुखाद्याश्रयवृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यव्ययजातिमत्त्वस्य विवक्षितत्वात् तादृशजातिस्य मनुष्यत्वचैतत्वादित्वात् नरसिंहशरीरणां भेदान्नरसिंहत्वजातिमादाय नरसिंहशरीरे लक्षणसमन्वय इति ॥ ११ ॥

इन्द्रियं विभजते लक्षयति च । यद्यपि मनसोऽपीन्द्रियत्वमस्यैव तथापि प्राणेत्यादेरुपलक्षणपरत्वान्न दोषः वस्तुतस्तन्दिन्द्रियाणीत्यस्य बहिरिन्द्रियाणीत्यर्थः तेन भूतेभ्य इत्यस्य नासङ्गतिः अत्र चैतानीन्द्रियाणीति वदता प्राणाद्यन्यान्यत्वं लक्षणमिति सूचितं, प्रत्यक्षजनकतावच्छेदकतया इन्द्रियत्वमखण्डोपाधिरूपमित्यन्ये, प्राणत्वादिकं जातिविशेषरूपं कर्णशक्कुल्यवच्छिन्नं नभः श्रोत्रं प्राणादीनि किं प्रकृतिकानीत्याकाङ्क्षायामाह भूतेभ्य इति तेनेन्द्रियाणामहङ्कारप्रकृतिकत्वं नेति मन्तव्यं व्युत्पादयिष्यते चेदं तृतीयाध्याये, अत्र प्राणादीनां चतुर्णां पृथिव्यादिजन्यत्वं सम्भवति श्रोत्रस्य कर्णशक्कुल्यवच्छिन्नाकाशस्य कर्णशक्कुल्यजन्यत्वादेव जन्यत्वव्यपदेशः अथवा अभिन्नानीति पूरयित्वा भूताभिन्नानीति व्याख्येयम् । प्राणादीत्यस्योपलक्षणपरत्वे तु भूतेभ्य इति बहिरिन्द्रियपरम् ॥ १२ ॥



भूतान्येव कानीत्याकाङ्क्षायाः साह । आरम्भे परस्परानपेक्षत्वसू-  
चनायासमासकरणं भूतत्वन्तु बहिरिन्द्रियग्रहणयोग्यविशेषगुणवत्त्व एधि-  
वीत्वादयस्तु जातिविशेषा इति ॥ १३ ॥

क्रमप्राप्तमर्थं विभजते लक्षयति च । वैशेषिकाणां द्रव्यगुणकर्म-  
स्वार्थशब्दाभिधेयत्वमतः पञ्चानां गन्धादीनामेव कथं तत्त्वमित्याशङ्कानिरा-  
साय तदर्था इत्युक्तं तेषामिन्द्रियाणामर्था विषया उद्दिष्टा अपि त एवेत्या-  
शयः इत्यञ्च तदर्थत्वं लक्षणमिति मन्तव्यं तच्छब्देन बहिरिन्द्रियाणि  
परास्मृश्यन्ते तथा चैकबहिरिन्द्रियमात्रग्राह्यविशेषगुणत्वं बहिरि-  
न्द्रियग्राह्यबहिरिन्द्रियाग्राह्यगुणत्वं वा तदर्थः । एधिव्यादिगुणा इति  
लक्ष्यनिर्देशस्ते के गुणा इत्याकाङ्क्षायां गन्धेत्यादि एधिव्यादीनां  
गुणा इति षष्ठीसमसो भाष्यादिसम्मतस्तेन गुणगुणिनोरभेदो नेति  
सूचितम् ॥ १४ ॥

बुद्धिं लक्षयितुमाह । अनर्थान्तरं समानार्थकं न तु साङ्ख्यानमिव  
बुद्धितत्त्वं स महत्त्वत्वापरपर्यायस्य परिणामविशेषो ज्ञानं यथा चैतत्तथा  
वक्ष्यते तथाव बुद्ध्यादिपदवाच्यत्वमनुभव सिद्धज्ञानत्वजातिरेव वा लक्ष-  
णमिति भावः ॥ १५ ॥

मनो लक्षयति । युगपत् एककाले एकात्मनीति पूरणीयं ज्ञानानामनुत्पत्ति  
र्यतः स एव धर्मो ज्ञानकरणाणुत्वं मनसोलिङ्गं लक्षणमित्यर्थः । तथाहि  
चक्षुरादिषु विषयसम्बद्धेष्वपि यस्यासत्त्वभावादेकं न ज्ञानं जनयति यत्स्व-  
भ्यादपरञ्च ज्ञानं जनयति तदेव चाणु निखिलज्ञानजनकं सुखादिसाक्षात्-  
कारासाधारणकारणं तदेकमेव लाघवात्सिद्धं मन इत्यर्थः एवमव्याख्याने  
च लक्षणप्रकरणे प्रमाणोपन्यासोऽसङ्गतः स्यादिति अन्ये तु सति धर्मिणि  
लक्षणचिन्तेत्यतो मनःसाधनाय युगपदिति सूत्रं इत्यञ्च मनःसिद्धौ निष्कर्षा-  
णुत्वादिकं लक्षणं सुकरमित्याशय इति वदन्ति ॥ १६ ॥

प्रवृत्तं लक्षयति विभजते च । अत्र च प्रवृत्तित्वं रागजन्यता-  
वच्छेदको जातिविशेषः स एव लक्षणं ईश्वरकृतेरपि लक्ष्यत्वे यत्नत्व-  
मेव तथा । जीवनयोनियत्ने निवृत्तौ च मानाभावात् तत्सद्भावे-  
ऽपि प्रवृत्तित्वं नित्ययत्नसाधारणं तद्वावृत्तं वा तथा, इन्द्रानन्तरश्रुता-



## १ अध्याय १ आङ्गिकम् ।

२०३

रम्भपदस्य प्रत्येकमन्वयाद्वागारम्भादिभेदेन त्रिविधा प्रवृत्तिः बुद्धि-  
शब्देनात्र मनोऽभिप्रेतमिति शरीरशब्दश्च चेष्टावत्त्वेन हस्तादिसाधा-  
रणः तथा च वचनानुकूली यत्नोवागारम्भः शरीरगोचरो यत्नश्चेष्टानु-  
कूलयत्नोवा शरीरारम्भः एतद्वयमिदो यत्नोबुद्ध्यारम्भः स च ध्यानोदया-  
देव दर्शनाद्यनुकूलः पर्यवस्यति प्राञ्चस्तु सामान्यविशेषलक्षणे चादृष्ट-  
जनकत्वं निवेशयन्ति इत्यञ्च कारणरूपा प्रवृत्तिः कार्यरूपा तु धर्मा-  
धर्मात्मिकेति ॥ १७ ॥

दोषं लक्षयति । दोषा इति वज्रवचनं रागद्वेषमोहात्मकलक्ष्य-  
त्वयज्ञापनाय प्रवर्त्तना प्रवृत्तिजनकत्वं तदेव लक्षणं येषां यद्यपीदं  
शरीरादृष्टेश्वरेच्छादावतिव्याप्तं तथापि लौकिकप्रत्यक्षसविषयत्वे  
सतीति विशेषणीयं यागादिगोचरप्रमावारणाय प्रमान्यत्वे सतीति  
विशेषयन्ति ॥ १८ ॥

प्रेत्यभावं लक्षयति । प्रेत्य सृत्वा भावो जननं प्रेत्यभावः । तत्र पुन-  
रित्यनेनाभ्यासकथनात् प्रायुत्पत्तिस्ततोमरणं तत उत्पत्तिरिति प्रेत्य-  
भावोऽयमनादिरपवर्गान्तः एतज्ज्ञानञ्च वैराग्य उपयुज्यते इति प्रेत्येति  
न व्यर्थं तदीयमरणञ्च तदीयजीवनादृष्टनाशस्तदीयचरमप्राणसंयोगध्वंस-  
स्तदीयप्राणध्वंसो वा तदीयोत्पत्तिस्तु तदीयविजातीयशरीराद्यप्राण-  
संयोग इति ॥ १९ ॥

फलं लक्षयति । अत्र च मुख्यं कालं सुखदुःखोपभोगः तथाच भाष्यं सुख-  
दुःखसंवेदनं फलं, तत्र च धर्माधर्मात्मकप्रवृत्तेः प्रयोजकत्वात्तत्र च दोषस्य  
हेतुत्वात् प्रवृत्तिदोषजनितेत्युक्तं लक्षणन्तु सुखदुःखान्यतरसाक्षात्कार इति  
गौणं फलन्तु शरीरादिकं सर्वमेव तथा च भाष्यं तत्पुनर्देहेन्द्रियबुद्धिषु  
सतीषु भवतीति सह देहेन्द्रियादिभिः फलमभिप्रेतं तथाहि प्रवृत्तिदोष-  
जनितोऽर्थः फलमेतत्सर्वं भवतीति इत्यञ्च जन्यत्वमेव फलत्वं प्रवृत्तिदोष-  
जनित इति तु निर्वेदोपयोगादुक्तम् ॥ २० ॥

दुःखं लक्षयति । बन्धना पीडा तदेव लक्षणं स्वरूपं यस्य तथाचानु-  
भवसिद्धदुःखत्वजातिरेव लक्षणं शरीरेन्द्रियार्थेषु दुःखसाधनत्वात्सुखे च



दुःखानुपङ्गात् दुःखव्यवहारो गौण इति अतएवाग्निसूत्रे तत्पदेन मुख्य दुःखपरामर्शः ॥ २१ ॥

अपवर्गं लक्षयति । तस्य दुःखस्य अत्यन्तविमोचः स्वसमानाधिकरण-  
दुःखासमानकालीनो ध्वंसः तस्य च जन्मापायादेव सम्भव इत्याशयेन  
दुःखेन जन्मनात्यन्तं विमुक्तिरपवर्ग इति भाष्यं दुःखेन दुःखानुस-  
ङ्गित्वर्थः ॥ २२ ॥

समाप्तं प्रमेयलक्षणप्रकरणम् ॥

क्रमप्राप्तं संशयं लक्षयति । संशय इति लक्ष्यनिर्देशः विमर्श इत्यत्र  
विशब्दो विरोधार्थः सृष्टिज्ञानार्थः एकस्मिन् धर्मिणीति पूरणाय तेन  
एकधर्मिणि विरोधेन भावाभावप्रकारकं ज्ञानं संशयः तत्र कारणमुखेन  
विशेषलक्षणान्याह समानेत्यादि उपपत्तिज्ञानं तथाच समानस्य विरुद्ध-  
कोटिद्वयसाधारणधर्मस्य ज्ञानादित्यर्थः अनेकधर्मः असाधारणधर्मः तज्-  
ज्ञानादित्यर्थः तथाच साधारणधर्मवद्भिर्ज्ञानजन्योऽसाधारणधर्मवद्भिर्मि-  
ज्ञानजन्यश्चेत्यर्थः, विप्रतिपत्तिर्विरुद्धकोटिद्वयोपस्थापकः शब्दस्तस्मादि-  
त्यर्थः यद्यपि शब्दस्य न संशयकत्वं तथापि शब्दात्कोटिद्वयोपस्थितौ मा-  
नसः संशय इति वदन्ति उपलब्धेर्ज्ञानस्य अनुपलब्धेर्व्यतिरेकज्ञानस्य या-  
व्यवस्था सद्विषयकत्वानिर्द्धारणं प्राप्ताय संशय इति फलितोऽर्थः, अन्ये तु  
उपलब्धव्यवस्थाप्राप्ताय संशयः अनुपलब्धिरुपलब्धिविरोधिभ्रमत्वं तद-  
व्यवस्था तत्संशय इत्याहुः । वस्तुतस्तु प्राप्ताय संशयस्य न संशयहेतुत्वं किं  
त्वगृहीताप्राप्ताय कज्ञानस्य विरोधितया सति प्राप्ताय संशये तज्ज्ञान-  
स्याविरोधितया साधारणधर्मदर्शनादित एव संशयोत्पत्तिरिति उप-  
लब्धीत्यादिकं तादृशस्थले संशयोभवतीत्येतावन्मात्रपरं चकारो व्याप्यसंश-  
यस्य व्यापकसंशयहेतुत्वं समुच्चीनोतीति वदन्ति, विशेषापेक्षः कोटि-  
स्मरणसापेक्षः वस्तुतस्तु संशयधारावाहिकत्वं स्यात्त आह विशेषेति  
विशेषं विशेषदर्शनं अपेक्षते निवर्त्तकत्वेन तथाच विशेषदर्शननिवर्त्यत्व-  
कथनमुखेन विशेषादर्शनजन्यसंशय इत्युक्तम् ॥ २३ ॥



## १ अध्याय १ आङ्गिकम् ।

२०५

क्रमप्राप्तं प्रयोजनं लक्षयति । अधिष्ठत्य उद्दिश्य तथाच प्रवृत्तिहेत्व-  
च्छाविषयत्वं प्रयोजनत्वं विषयत्वं साध्यताख्य विषयताविशेषः तेन ज्ञान-  
सुखत्वादिवारणं प्रवृत्तिहेत्विति स्वरूपकथनं तच्चकचूडामणिसुषेर्वादि-  
माप्तिवारकं तदिति केचित् अत्र निरुपाधीच्छाविषयत्वात् सुखदुःखाभा-  
वयोर्मुख्यप्रयोजनत्वं तदुपायस्य तु तदिच्छाधीनेच्छाविषयत्वाद्वा प्रयो-  
जनत्वमिति ॥ २४ ॥

क्रमप्राप्तं दृष्टान्तं लक्षयति । लौकिकोऽप्राप्तशास्त्रपरिशोदनजन्य-  
बुद्धिप्रकर्षः प्रतिपाद्य इति फलितोऽर्थः परीक्षकः शास्त्रपरिशोदन-  
प्राप्तबुद्धिप्रकर्षः प्रतिपादक इति फलितार्थः तथाच प्रतिपाद्यप्रतिपाद-  
कयोरिति पर्यवसन्नं वज्रवचनं कथावज्रत्वमभिप्रेत्य बुद्धेः साध्यसाधनोभ-  
यविषयिण्यास्तदभावविषयिण्या वा सास्यं अविरोधो यस्मिन्नर्थे सोऽर्थो-  
दृष्टान्तः वादिप्रतिवादिनोः साध्यसाधनोभयप्रकारकतदभावद्वयप्रकारका-  
न्यतरनिश्चयविषयोदृष्टान्त इति पर्यवसितोऽर्थः । समाप्तं न्यायपूर्वार्द्ध-  
प्रकरणम् ॥ २५ ॥

क्रमप्राप्तं सिद्धान्तं लक्षयति । तन्त्रं शास्त्रं तदेवाधिकरणं ज्ञापक-  
तया यस्य तादृशस्य योऽभ्युपगमस्तस्य समीचीनतयाऽऽशयरूपेतया  
स्थितिस्तथाच शास्त्रितार्थनिश्चयः सिद्धान्तः अत्र चाभ्युपगम्यमानोऽर्थः सि-  
द्धान्त इति भाष्यम् अभ्युपगमः सिद्धान्त इति वार्त्तिकटीका, नचात्रविरोधः  
शङ्कनीयः आचार्यैः परिहृतत्वम् तथाच तिस्रस्तृतीनिवन्धः अर्थाभ्युप-  
गमयोरुण्णप्रधानभावस्य विवक्षा तन्त्रत्वादार्थाभ्युपगमोऽभ्युपगम्यमानो-  
वार्थः सिद्धान्तस्तेन सूत्रभाष्यवार्त्तिकटीकासु न विरोधः अत्र च भाष्यानु-  
सारासर्वतन्त्रप्रतितन्त्राधिकरणाभ्युपगमः सिद्धान्तान्यतमः सिद्धान्त इति  
सूत्रार्थ इति तु न युक्तं अपिसूत्राहत्यानापत्तेः तन्त्रसिद्धान्तत्वेन द्वय-  
मनुगमस्य तन्त्राधिकरणाभ्युपगमान्यतमः सिद्धान्त इति कश्चित् ॥ २६ ॥

विभजते । स चतुर्विध इति शेषः सर्वतन्त्रादिसंस्थितानामर्थान्तर-  
भावात् भेदादित्यर्थः ॥ २७ ॥

सर्वतन्त्रसिद्धान्तं लक्षयति । सर्वतन्त्राविरुद्धः सर्वशास्त्राभ्युपगत इति  
वह्वः वस्तुनो यथाश्रुतएवार्थः अन्यथा तन्त्रेऽधिकृत इत्यस्य वैयर्थ्यापत्तेरत



एव च जात्यादेरसदुत्तरत्वमपि सर्वतन्त्रसिद्धान्तः न च तन्त्रेऽधिकृत इति  
स्मरणं लक्षणे तु न देयमेवेति वाच्यं मनस इन्द्रियत्वस्यापि सर्वतन्त्रसि-  
द्धान्ततापत्तेः नव्यास्तु सूत्रस्योपलक्षणमात्रत्वाद्वादिप्रतिवाद्युभयाभ्युपगतः  
कथं तु कुत्रोऽर्थः स इति वदन्ति ॥ २८ ॥

प्रतितन्त्रसिद्धान्तं लक्षयति । समानशब्द एकार्थस्तेनैकतन्त्रसिद्ध इ-  
त्यर्थः स्वतन्त्रसिद्ध इति पर्यवसितोऽर्थः तथा च वादिप्रतिवाद्येकतरमात्रा-  
भ्युपगतस्तदेकतरस्य प्रतितन्त्रसिद्धान्त इति फलितार्थः यथा मीमांस-  
कानां शब्दनिवृत्त्यम् ॥ २९ ॥

अधिकरणसिद्धान्तं लक्षयति ॥ यथार्थस्य सिद्धौ जायमानायामेवा-  
न्यस्य प्रकरणस्य प्रस्तुतस्य सिद्धिर्भवति सोऽधिकरणसिद्धान्त इत्यर्थः यथा  
तद्वृणुकादिकं पञ्जीकृत्योपादानगोचरापगोचज्ञानचिकीर्षाकृतिसञ्जन्यत्वे  
साध्यमाने सर्वज्ञत्वमीशस्य एवं हेतुवत्तादपि यथा दर्शनस्य र्शनाभ्यामेकार्थ-  
ग्रहणादिन्द्रियादिव्यतिरिक्त आत्मनि साधिते इन्द्रियनानात्वं तथा च  
यदर्थसिद्धिं विना योऽर्थः शब्दादनुमानाद्वा न सिध्यति सोऽधिकरणसि-  
द्धान्त इति, वस्तुतस्तु शब्दत्वमनुमानत्वं चाविवक्षितं प्रमाणमात्रमपेक्षितं  
अतएव प्रत्यक्षेण स्थूलत्वसाधनानन्तरमुक्तमात्रतत्त्वविवेके सोऽयमधि-  
करणसिद्धान्तन्यायेन स्थूलत्वसिद्धौ क्षणभङ्गभङ्ग इति तत्र च वक्ष्यार्थसिद्धौ  
तदनुषङ्गी यो यः सोऽधिकरणसिद्धान्त इति वार्तिकं फक्किं लिखित्वा  
येन केनापि प्रमाणेन वाक्यार्थसिद्धौ जन्यमानायां योऽन्यार्थः सिध्यति  
स तथेत्यर्थः, इति व्याख्यातं, दीधितिकता, एवं हेतुरीदृशः पक्षश्च वा-  
क्यार्थ इति टीकावचने च उपलक्षणमेतदित्युक्तं तत्र तत्र विशिष्टैव  
लक्षणं कार्यं यत्तु जनकीभूतव्यापकताज्ञाने व्यापककोटावेव विषयः प्रक-  
तानुमित्वा व्यापककोटौ विषयीकृतः शाब्दजनकपदार्थज्ञानविषयत्वे सति  
शाब्दविषयश्चेति द्वयमधिकरणसिद्धान्त इति तत्र इन्द्रियनानात्वादौ  
भाष्याद्युदाहृतेऽव्याप्तेरिति ॥ ३० ॥

अभ्युपगमसिद्धान्तं लक्षयति । अपरीक्षितस्य साक्षादसूत्रितस्य  
विशेषपरीक्षण विशेषधर्मकथनं च अभ्युपगमादिति ज्ञापकत्वे पञ्चमी अभ्यु-  
पगमज्ञापकमित्यर्थः विशेषपरीक्षणाज्जायते सूत्रकतोऽभ्युपगतसिद्धि-



## १ अध्याये १ आह्निकम् ।

२०७

मिति तथा च साक्षादस्त्वितिभ्युपगमोऽभ्युपगमसिद्धान्तः यथा मनस-  
इन्द्रियत्वमिति ॥ ३१ ॥ समाप्तं न्यायान्वयसिद्धान्तलक्षणप्रकरणम् ॥ ५ ॥

क्रमप्राप्तानवयवोक्तयितुं विभजते । अनेन विभागेन प्रतिज्ञाद्यन्य-  
तमत्वमवयवत्वमिति लक्षणं सूचितं, अतः च प्रतिज्ञादीनां पञ्चानामवय-  
वत्वकथनाद्दशावयववादो व्युदस्त इति मन्तव्यं, ते च यथा दर्शिता भाष्ये  
जिज्ञासासंशयः शक्यप्राप्तिः प्रयोजनं संशयव्युदासश्चेति एते, प्रतिज्ञादि-  
सहिता दश व्याख्याताश्च ते तात्पर्यटीकायां प्रयोजनं हानादिवृद्धयः  
तत्रवर्तिका जिज्ञासा तज्जनकः संशयः शक्यप्राप्तिः प्रमाणानां ज्ञान-  
जननसामर्थ्यं संशयव्युदासस्तर्कः अयमेवाद्योनिवन्धे निवृद्धितः जिज्ञासा  
विप्रतिपत्तिरिति कश्चित् एतेषाञ्च न न्ययावयवत्वं न्ययाघटत्वात्  
नच न्यायजन्यबोधास्तु कूलत्वेनैवावयवत्वं एकदेशस्यापि तत्त्वज्ञानात् प्रयो-  
जनेऽव्याप्तेश्च ॥ ३२ ॥

प्रतिज्ञां लक्षयति । साधनीयस्यार्थस्य योनिर्देशः स प्रतिज्ञा साध-  
नीयश्च वङ्गिमत्त्वादिना पर्वतादिस्तथा च पक्षतावच्छेदकविशिष्टपक्षे  
साध्यतावच्छेदकविशिष्टवैशिष्ट्यबोधकशब्द इत्यर्थः निगमनवारणाय च  
साध्यां साध्यतावच्छेदकातिरिक्ताप्रकारकत्वं वाच्यं तदर्थं साध्यतावच्छे-  
दकप्रकारताविलक्षणप्रकारताभ्युपगमत्वे तेन प्रमेयवतः साध्यत्वे नासिद्धिः उ-  
दासीनवाक्यवारणाय च न्यायान्तर्गतत्वे सतीति विशेषणीयम्, न्यायान्त-  
र्गतत्वे सति प्रकृतपक्षतावच्छेदतावच्छिन्नपक्षकप्रकृतसाध्यतावच्छेदकाव-  
च्छिन्नसाध्यविषयताविलक्षणविषयताकबोधाजनकत्वे सति प्रकृतपक्षे प्रकृत-  
साध्यबोधजनकत्वं तत्रप्रतिज्ञात्वावयवत्वादिकं परिभाषाविशेषविषयत्वरूपं  
तत्तद्व्यक्तित्वरूपं चेत्यपि वदन्ति ॥ ३३ ॥

क्रमप्राप्तं हेतुं लक्षयति विभजते च सूत्राभ्याम् । अतः साध्यसाधनं  
हेतुरिति सामान्यलक्षणं साध्यसाधनं साध्यसिद्धान्तकूलज्ञापकत्वबोधक  
इत्यर्थः तथा च साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्यान्वितज्ञापकत्वबोधकः साध्या-  
न्वितस्वार्थबोधकोवाऽवयव इति फलितार्थः तस्य द्वैविध्यमाह उदाहरण-  
साधर्म्यात्तथा वैधर्म्यादिति साधर्म्यमन्वयः वैधर्म्यं व्यतिरेकः तादृशव्याप्ति-  
रिति फलितार्थः उदाहरणसाधर्म्यं उदाहरणबोध्यन्वयव्याप्तिस्ततोऽन्वयी



हेतुर्ज्ञातव्यउदाहरणेति स्पष्टार्थं तथा च ज्ञातान्वयव्याप्तिरहेतुबोधको  
हेत्ववयवः अज्ञातव्यतिरेकव्याप्तिरहेतुबोधकोहेत्ववयव इति फलितार्थः  
एवमप्रतीतान्वयव्याप्तिरहेतुबोधको हेत्ववयवो व्यतिरेकी हेतुः इत्यमेव  
प्रतीतान्वयव्यतिरेकव्याप्तिरहेतुबोधको हेत्ववयवोऽन्वयव्यतिरेकीत्यपि  
सूचितमिति वदन्ति ॥ ३४, ३५ ॥

क्रमप्राप्तसुदाहरणं लक्षयति । दृष्टान्तउदाहरणमिति लक्षणं दृष्टान्तो  
दृष्टान्तवचनं दृष्टान्तकथनयोग्यावयवइत्यर्थः तेन दृष्टान्तस्य सामयिकत्वेना-  
सार्वत्रिकत्वेऽपि न क्षति योग्यतावच्छेदकन्तु अवयवान्तरार्थानन्वितार्थ-  
कावयवत्वं; तच्च द्विविधं अन्वयव्यतिरेकिभेदात्तत्वात्न्युदाहरणं लक्षयति  
साध्यसाधस्योत्तिष्ठन्निभावीति अन्वयुदाहरणमिति शेषः परे तु सम्पूर्णसू-  
त्रमन्वयुदाहरणमेव सामान्यलक्षणं तद्वृत्तिरित्याहुः, साध्यसाधस्योत्तिष्ठन्नि-  
हचरितधर्मात् प्रकृतसाधनादित्यर्थः तं साध्यरूपं धर्मं भावयति तथा च  
साधनवत्ताप्रयुक्तसाध्यवत्ताउभावकोऽवयवः साध्यसाधनव्याप्तिप्रदर्शको-  
दाहरणमिति यावत् ॥ ३६ ॥

व्यतिरेक्युदाहरणं लक्षयति । तद्विपर्ययात् साध्यसाधनव्यतिरेक-  
व्याप्तिप्रदर्शनात्तथा च साध्यसाधनव्यतिरेकव्याप्तिप्रदर्शकोदाहरणं व्यति-  
रेक्युदाहरणं यथा जीवच्छरीरं सात्मकं प्राणादिरुक्त्यात् यन्नैवं तन्नैवं  
यथा घट इति वाकारः प्रयोगमपेक्ष्य तथा चान्वयुदाहरणं व्यतिरेक्युदा-  
हरणं वा प्रयोक्तव्यमित्यर्थः ॥ ३७ ॥

क्रमप्राप्तपुनयं लक्षयति । साध्यस्य पक्षस्य उदाहरणपक्षउदा-  
हरणानुसारी य उपसंहार उपन्यासः प्रकृतोदाहरणोपदर्शितव्याप्ति-  
विशिष्टहेतुविशिष्टपक्षविषयकबोधजनको न्यायावयवइत्यर्थः निगमनं  
हेतुविशिष्टत्वेन न पक्षबोधकं किन्तु पक्षवृत्तिहेतुबोधकमिति तदुदासः  
अत्र चान्वयव्यतिरेकव्याप्तिरन्वतरत्वादिनानुगमः कार्यउदाहरणो-  
पदर्शितेति तु परिचायकमात्रमिति तु न वाच्यं उदाहरणविपरीतव्या-  
प्तिप्रदर्शकोपनयवारकत्वात् वस्तुतोऽवयवपदेनैव तदुदासः सचोपनयो द्वि-  
विधोऽन्वयव्यतिरेकिभेदात् तथेति साध्यस्योपसंहारोऽन्वयुपनयः न  
तथेति साध्यस्योपसंहारो व्यतिरेक्युपनयः अत्र च तथाप्युपयोगावश्यकः



## १ अध्याये १ आह्निकम् ।

२०६

त्वेन तात्पर्यं किन्तु व्याप्तिविशिष्टवत्त्वबोधे तथा च वज्रिव्याप्य धूमवांश-  
यमिति वा तथा चायमिति बोधन्यासः एवं व्यतिरेकिण्यपि वज्रप्रभाव-  
व्यापकीभूताभावप्रतियोगिधूमवांशायमिति वा न तथेति बोधन्यासः ॥३८॥

निगमनं लक्षयति । हेतोर्व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मस्य अपदेशः कथनं  
प्रतिज्ञायाः प्रतिज्ञार्थस्य साध्यविशिष्टपक्षस्य वचनं निगमनं तथा च व्याप्ति-  
विशिष्टपक्षधर्महेतुकथनपूर्वकसाध्यविशिष्टपक्षप्रदर्शकः व्याप्तपक्षधर्महे-  
तुज्ञाप्यसाध्यविशिष्टपक्षबोधकस्तादृशसाध्यबोधको वा न्यायावयवो निगमन  
मिति अस्य त्वन्वयिव्यतिरेकिभेदान्न भेदइत्याशयः व्यतिरेकिणि तु  
तस्मान्न तथेत्येवाकारइत्यपरे ॥ ३९ ॥ समाप्तं न्यायस्वरूपप्रकरणम् ॥ ६ ॥

क्रमप्राप्तं तर्कं लक्षयति । तर्क इति लक्ष्यनिर्देशः कारणोपपत्ति-  
त ऊह इति लक्षणं अविज्ञाततत्त्वेऽर्थे तत्त्वज्ञानार्थमिति प्रयोजनकथनं  
कारणं व्याप्यं तस्योपपत्तिरारोपस्तस्मात् ऊहआरोपः अर्थाद्यापकस्य  
तथाच व्यापकाभावदत्त्वेन निर्णीते व्याप्यस्याह्यारोपाद्यो व्यापकस्याह्य-  
र्यारोपः स तर्क यथा निर्वर्जित्वारोपान्निर्धूमत्वारोपः निर्वर्जितः स्यान्नि-  
र्धूमः स्यादित्यादि हृदोनिर्वर्जितः स्यान्निर्धूमः स्यादित्यादिवारणाय  
व्यापकाभावदत्त्वेन निर्णीत इति निर्वर्जितः स्यात् अद्वयं स्यादित्यादि-  
वारणाय व्याप्यस्येति तद्व्याप्यारोपाधीनस्तदारोपइत्यर्थलाभाय व्यापकेति  
न चानुमानादितोऽर्थसिद्धेस्तर्कोऽर्थ इति वाच्यं अप्रयोजकत्वादिशङ्का-  
कलङ्कितेन हेतुनार्थस्य साधयितुमशक्यत्वात्तदेतदुक्तमविज्ञाततत्त्वेऽर्थे  
तत्त्वज्ञानार्थमिति तत्त्वनिर्णयार्थमित्यर्थः यत् नाप्रयोजकत्वाद्याशङ्का  
तत् नापेक्षएवेति भावः । परे तु ऊह इत्येव लक्षणं ऊहत्वञ्च मानसत्व-  
व्याप्यो जातिविशेषस्तर्कयामोत्यनुभवसिद्धः तर्कः किं स्वतएव निर्णायकः  
परम्परया वेत्यत आह कारणेति कारणस्य व्याप्तिज्ञानादेरुपपादनद्वारे-  
त्यर्थः तथा च धूमो यदि वज्रिव्यभिचारो स्यात् वज्रिजन्यो न स्यादित्यनेन  
व्यभिचारशङ्कानिरासे निरङ्कुशेन व्याप्तिज्ञानेनानुमितिरिति परम्पर-  
यैवास्त्योपयोगइत्याहुः स चायं पञ्चविधः आत्माश्रयान्योन्याश्रयचक्रका-  
नवस्यातदन्यवाधितार्थप्रसङ्गभेदात् स्वस्य स्वापेक्षित्वेऽनित्यप्रसङ्गात्माश्रयः  
स च उत्पत्तिस्थितिज्ञप्तिद्वारा त्वेधा यथा यद्ययं घटएतद्वटजन्यः स्यात्त-



दैतहृटानधिकरन्क्षणोत्तरवर्ती न स्यात् यद्ययं घट एतद्वटवृत्तिः स्यात्  
 एतद्वटव्याप्यो न स्यात् यद्ययं घट एतद्वटज्ञानाभिन्नः स्यात् ज्ञानसामग्री-  
 जन्यः स्यात् एतद्वटभिन्नः स्यादिति वा सर्वत्रापाद्यं तदपेक्ष्यापेक्षित्व-  
 निवन्धनोऽनिष्टप्रसङ्गोऽन्योन्याश्रयः सोऽपि पूर्ववत्तेषां तदपेक्ष्यापेक्ष्ये-  
 क्षित्वनिवन्धनोऽनिष्टप्रसङ्गचक्रकं चतुः कक्षादावपि स्वस्य स्वापेक्ष्यापेक्ष्ये-  
 क्षित्वसत्त्वन्नाधिक्यं अस्यापि पूर्ववत्तैविध्यं अव्यवस्थितपरम्परारोपा-  
 धीनानिष्टप्रसङ्गोऽनवस्था यथा यदि घटत्वं घटजन्यत्वव्याप्यं स्यात्कपाल-  
 समवेतत्वव्याप्यं न स्यात् तदन्यवाधितार्थप्रसङ्गस्तु धूमो यदि वह्निव्यभि-  
 चारी स्याद्वह्निजन्यो न स्यादित्यादिः प्रथमोपस्थितत्वोत्सर्गविनिगमना-  
 विरहलाघवगौरवादिकन्तु प्रसङ्गानात्मकत्वात् न तर्कः किन्तु प्रमाणस-  
 ङ्कारित्वरूपसाधर्म्यात्तथा व्यवहार इति संक्षेपः ॥ ४० ॥

क्रमप्राप्तं निर्णयं लक्षयति । विस्तृत्य सन्दिह्य पक्षप्रतिपक्षाभ्यां  
 साधनोपालम्भाभ्यां उपालम्भः परपक्षदूषणं अर्थस्वावधारणं तदभावाप्रका-  
 रकं तत्प्रकारकं ज्ञानं यद्यप्येतावदेव निर्णयसामान्यलक्षणं तथापि विस्त-  
 र्येत्यादिकं जल्पवितण्डस्य लीयनिर्णयमधिकृत्य तदुक्तं भाष्ये शास्त्रे  
 वादे च विमर्शवर्जमिति एवं प्रत्यक्षतः शब्दाच्च निर्णये न विमर्शपक्षप्रति-  
 पक्षापेक्षेति ॥ ४० ॥ समाप्तं न्यायोत्तराङ्गप्रकरणम् ॥ ७ ॥

इति श्रीविश्वनाथभट्टाचार्यकृतायां न्यायसूत्रवृत्तौ प्रथमाध्यायस्य  
 प्रथममाह्निकम् ॥ १ ॥



## २ अध्याये २ आह्निकम् ।

२११

प्रथमाह्निकेन सपरिकरे न्याये लक्षिते वादादिक्रमणाय द्वितीयाह्निकारम्भः च्छलपरीक्षा च प्रसङ्गाद्भविष्यति तथा च च्छलपरीक्षासहित-  
वादादिलक्षणं द्वितीयाह्निकार्थः तत्र चत्वारि प्रकरणानि आदौ वधा-  
प्रकरणं ततो हेत्वाभासप्रकरणं च्छलप्रकरणं दोषलक्षणप्रकरणं चेति अत्र  
कथासामान्यस्यायं विशेषो वादादिस्तथा च त्रिभिः सूत्रैरेकं कथाप्रकरणं  
अन्यथैकसूत्रस्य प्रकरणभावाभावादसङ्गतिः स्यादित्याशयेनोक्तं भाष्यकृता  
तिस्रः सूत्रे कथा भवन्ति वादो जल्पो वितण्डा चेति तत्र तत्त्वनिर्णयविज-  
यान्यतस्त्रिरूपयोग्योन्यायानुगतवचनसन्दर्भः कथा लौकिकविवादवार-  
णाय न्यायेत्यादि, यत्रैकेन न्यायः प्रयुक्तोऽपरेण तु सतपरिग्रहोऽपि न  
कृतस्तद्वारणाय आद्यं विशेषणमिति कथाधिकारिणस्तु तत्त्वनिर्णयविज-  
यान्यतराभिलाषिणः सर्वजनसिद्धानुभवानपलापिनः श्रवणादिपटवः  
अकलहकारिणः कथोपयिक्तव्यापारसमर्था इति ॥

तत्र वादं लक्षयति । अत्र च वाद इति लक्ष्यनिर्देशः पक्षप्रतिपक्षौ  
विप्रतिपक्षिकोटी त्रयोः परिग्रहस्तत्साधनोद्देश्यकोक्तिप्रत्युक्तिरूपवचनस-  
न्दर्भः तावन्नालञ्च कथान्तरसाधारणमतञ्चाह प्रमाणेत्यादि प्रमाणतर्काभ्यां  
तद्रूपेण ज्ञाताभ्यां साधनोपालम्भौ यत्र स तथा उभयत्रापि प्रमाणादि-  
सङ्गावे कोटिद्वयस्यापि सिद्धिः स्यादतस्तद्रूपेण ज्ञाताभ्यामिति ज्ञानमना-  
हार्यं विवक्षितं उपालम्भो दूषणं जल्पादौ तु प्रमाणाभासत्वादिना ज्ञाता-  
भ्यामपि साधनोपालम्भौ भवत इति तद्वारणं तथा इतरथा तु तद्वैतो रेव  
उपलब्ध इत्यञ्च प्रमाणाभासत्वप्रकारकज्ञानविषयकरणकसाधनोपालम्भयो-  
ग्यान्यत्वे सतीत्यर्थस्तेन तादृशजल्पविशेषे नातिव्याप्तिः तत्र च निय-  
हस्यानविशेषनिवमार्थं सिद्धान्तेत्यादिविशेषणद्वयं अन्ये तु तदपि लक्ष-  
णवटकमेव तदर्थं तावन्मन्त्रनियमहस्यानयोग्यत्वं तावदतिरिक्तनियमह-  
स्यानोपन्यासयोग्यत्वं वा नियमहस्यानं प्रतिज्ञाहान्यादीनामेकैकं धृत्वा  
तदुपन्यासायोग्यत्वमिति निष्कर्षः तेनोक्तजल्पविशेषवारणमित्याहुः  
सिद्धान्ताविरुद्धइत्यनेनापिसिद्धान्तोद्भावनं पञ्चावयवोपपन्नइत्यनेन न्यूना-  
धिकोद्भावेन अवयवाभासस्य दृष्टान्तासिद्धादेशोद्भावनं प्रमाणेत्यनेन च  
प्रमाणाभासत्वेन हेत्वाभासानां तर्काभासस्य चोपन्यासो नियम्यते तथा-



चातुहेत्वाभासन् नूनाधिकापसिद्धान्तरूपनिग्रहस्यान चतुष्टयोद्भावनमिति  
वदन्ति वस्तुतस्तु वादस्य वीतरागकथात्वेन तत्त्वनिर्णयस्योद्देश्यतया  
पुरुषदोषस्याविज्ञातार्थादेरिव न्यूनाधिक्योरपि नोद्भावनमुचितमतएव  
पञ्चावयवावश्यकत्वमपि भाष्यकारो नानुमेने हेत्वाभासाद्युद्भावनेनापि च  
तदेव कथाविच्छेदो यदि हेत्वन्तरेणापि साधयितुं न शक्यते इतरथा तु  
तद्वेतोरेव दुष्टत्वं इत्यञ्च पञ्चावयवोपपन्न इति प्रायिकत्वाभिप्रायेणेति तत्त्व-  
वादाधिकारिणस्तु तत्त्वबुभुत्सवः प्रकृतोक्तिकाः अविप्रलम्भाकाः यथा-  
कालस्फूर्त्तिका अनाक्षेपका युक्तिसिद्धप्रत्येतारः अनुविधेयस्येयः सभ्य-  
पुरुषवती जनता सभा अनुविधेयो राजादिः स्वेयान् सभ्यस्यः साच वादे  
नावश्यको वीतरागव्याप्तादिति ॥ ४२ ॥

जल्पं लक्षयति । यथोक्तेषु यदुपपन्नं तेनोपपन्न इत्यर्थः । मध्यपदलोपी  
समासः तथा च प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रह इत्यस्य  
योग्यतया परामर्शः अन्यथा जल्पस्य वादविशेषत्वापत्तिः प्रमाणतर्काभ्यां  
तद्रूपेण ज्ञाताभ्यां न तु ज्ञानेऽनाह्यार्थत्वं विवक्षितं आरोपितप्रमाणाभावेना  
भासेऽपि जल्पनिर्वाहात् यद्यपि कलादिभिरूपालम्भ एव न तु साधनं तथापि  
साधनस्य परकीयानुमानस्योपालम्भो यत्वेत्यर्थान्न दोषः परपक्षद्रूपेण सति  
स्वपक्षसिद्धिरित्यतः साधने तदुपयोग इत्यन्ये उभयपक्षस्यापनावत्त्वेन  
च विशेषणीयमतो वितण्डायान्नातिव्याप्तिः सप्रतिपक्षस्यापनाहोन इत्यु-  
त्तरसूत्रात्प्रकृते उभयपक्षस्यापनावत्त्वशामः स्थापनावत्त्वादेव च पञ्चावयव-  
नियमोऽपि लभ्यत इति वदन्ति अत्र च कलादिभिः सर्वैरूपालम्भो न वि-  
शेषणाय व्याप्तिरपि तु तद्योग्यतयैव योग्यतावच्छेदकन्तु वादभिन्नकथात्वमेव  
तत्र चोक्तवादत्वावच्छिन्नभेदस्तत्तद्वादभेदो वा विशेषणमिति च्छलेत्यादिना  
विजिगीष्कथात्वं बोध्यते विजिगीषुर्हि च्छलादिकं करोति तथाचोभय-  
पक्षस्यापनावती विजिगीष्कथा जल्प इत्यर्थः इत्यपि वदन्ति अत्र चायं  
क्रमः वादिना स्वपक्षसाधनं प्रयुज्य नायं हेत्वाभासस्तत्त्वज्ञानायोगादिति  
सामान्यतो नायमसिद्ध इत्यादि विशेषतो वा प्रतिवादिना स्वस्याज्ञाना-  
दिनिरासय परोक्त सम्यग्वादेव लाभे उच्यमानग्राह्याणाम-  
प्राप्तकालार्थान्तरनिरर्थकानालाभे उक्तग्राह्याणां प्रतिज्ञाहानि



## १ अध्याये १ आह्निकम् ।

२१३

प्रतिज्ञान्तर प्रतिज्ञाविरोध प्रतिज्ञासन्ध्यासहेत्वन्तराविज्ञातार्थविज्ञे-  
 पमतनुज्ञान्यूनधिक पुनरुक्तनिरनुयोज्यानुयोगापसिद्धान्तानामलाभे  
 पर्यनुयोज्योपेक्षणस्य मध्यस्थोद्भाव्यत्वादेवानुपन्यासाहृतया यथा सम्भव-  
 हेत्वाभासेन परोक्तं दूषयित्वा स्वपक्षउपन्यसनीयः ततो वादिना  
 तृतीयकक्षाश्रितेन परोक्तमनूद्य स्वपक्षदूषणसङ्ख्यानुक्तिप्राप्त्योच्य-  
 मानप्राप्त्यहेत्वाभासातिरिक्तोक्तप्राप्त्याणामलाभे हेत्वाभासेन यथा सम्भवं  
 प्रतिपक्षवादिनः स्थापना दूषणीया अन्यथा क्रमविपर्ययसिद्धिप्राप्तकालं  
 अनवसरे दूषणोद्भावने च निरनुयोज्यानुयोगः यथा त्यज्यमि चेत्  
 प्रतिज्ञाहानिर्विशेषयसि चेद्धेत्वन्तरमित्यादि प्रतिज्ञाहान्या दिवद्धेतवाभा-  
 सानासक्त्या प्राप्तिरिति विशेषेऽपि अर्थदोषत्वेन प्रधानत्वाच्चरमसम्भान-  
 मिति ॥ ४३ ॥

वितरणं क्रमेप्राप्तां लक्षयति । यद्यपि तच्छब्देन जल्यो न परा-  
 मर्तुं शक्यते जल्यस्य स्थापनादयवतः प्रतिपक्षस्थापनाहीनत्वस्य विरुद्धत्वात्  
 तथापि स्थापनादयवत्त्वं विहाय जल्यैकदेशः परामर्श्यते प्रतिपक्षो-  
 द्वितीयपक्षस्तथा च प्रतिपक्षस्थापनाहीनं विजिगीषुकथा वितरणेति  
 न च स्वस्य स्थापनीयाभावात् कथमित्यं कथा प्रवर्ततामिति वाच्यं  
 परपक्षखण्डनेन जयस्यैवोद्देश्यत्वात् परे तु यत्परपक्षखण्डनेनैव  
 स्वपक्षसिद्धेरर्थादेव सिद्धिस्तत्त्वाधनाभावेऽपि न प्रवृत्त्यनुपपत्तिरिति  
 वदन्ति ॥ ४४ ॥ समाप्तं समाप्रकरणम् ।

क्रमप्राप्तान् हेत्वाभासांलक्षयति विभजते च । नचात्र लक्षणं न  
 प्रतीयत इति वाच्यं हेत्वाभासशब्दस्य हेतुवदाभासमानार्थकत्वेनैव तत्-  
 सूचनात् सूचनाद्वि सूत्रं तथा हि पक्षरुत्त्वपक्षरुत्त्वविपक्षासत्त्वावा-  
 धितत्वं सत्प्रतिपक्षितत्वोपपन्नो हेतुर्गर्भकः तद्वदाभ सत इत्यत्र वत्त्वार्थ-  
 स्तद्विज्ञेवे सति तद्वर्गवत्त्वं तथा च पञ्चरूपोपपन्नत्वाभावे सति तद्रूपेण  
 भासमान इति फलितार्थः, तत्र च लक्षणं सत्यन्तं तस्यैव दूषकतावासुप-  
 योगत्वं न च अक्षाधकतायां पक्षसत्त्वाद्येकैकाभावस्यैव गनकत्वसम्भवे-  
 ऽधिकवैयर्थ्यं एतेन पञ्चान्यत्वं लक्षणमित्यपि प्रत्युक्तमिति वाच्यं पञ्च-  
 त्वावच्छिन्नाभावस्य पक्षसत्त्वाभावाद्व्यवटितत्वेन वैयर्थ्याभावात् वस्तुतस्तु



पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते स्पर्शवत्त्वत् प्रमेयमाकाशादित्यादौ सपञ्चाद्य-  
प्रसिद्धैर्नैतस्य लक्षणत्वे तत्पर्यं परन्तु विपक्षासत्त्वसपक्षसत्त्वाभ्यामव्यभि-  
चरितसानानाधिकरण्यं पक्षसत्त्वसहितस्य चैतस्य विरोधित्वं त्रिभिर्लक्ष्य-  
तेन व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताविरोधित्वं चरमयोः स्वनुमिति विरोधिरूपा-  
नवच्छिन्नत्वार्थकयोरेभावादेनुमिति विरोधित्वं तेनानुमिति तत्कारणा-  
ज्ञानान्यतरविरोधित्वं पर्यवस्यति ॥ ४५ ॥

सव्यभिचारं लक्षयति । एकस्य साध्यस्य तदभावस्य च च योऽन्तः  
सहचारः अव्यभिचरितसहचारः सोऽन्तः सहचारः अव्यभिचरितसहचारः  
इत्याशयः सचात्यव्याप्तिग्राहकस्तथाचैकमात्र व्याप्तिग्राहकसहचारवानै-  
कान्तिकस्तदन्येऽनैकान्तिकः स च साधारणोऽसाधारणोऽनुपसंहारी  
चेति त्रिविधः साधारणः साध्यवत्तदन्यवृत्तिः यथा शब्दो नित्यः निःस्पर्श-  
त्वात् न च विरुद्धसङ्कीर्णदोषः उपधेयसङ्करेऽप्युपाधेरसङ्करात् असाधा-  
रणः सपक्षविपक्षव्यावृत्तः सपक्षः साध्यवत्त्वनिश्चयविषयः यथा शब्दो-  
नित्यः शब्दत्वादित्यादौ अनुपसंहारी च केवलान्वयिधर्मावच्छिन्नपक्षकः  
यथा सर्वं नित्यं मेवत्वादित्यादि अत्र च साध्यसन्देहाद्याप्तिग्रहो न  
भवतीत्याशयः नव्यास्तु असाधारणः साध्यवदवृत्तिः एतस्य साध्यसहचार-  
ग्रहप्रतिबन्धेन व्याप्तिग्रहप्रतिबन्धो दूषकतावीजं अनुपसंहारी च केव-  
लान्वयिसाध्यकस्तस्य चात्यन्ताभावाप्रतियोगिसाध्यकत्वरूपस्य ज्ञानाद्यति-  
रेकव्याप्तिग्रहप्रतिबन्धो दूषकतावीजं इत्याहुः ॥ ४६ ॥

क्रमप्राप्तं विरुद्धं लक्षयति । अत्र च सिद्धान्तं साध्यं प्रतिज्ञायामि  
हि पक्षस्य सिद्धस्याऽन्ते साध्यमभिधीयते तथा च साध्यमभ्युपेत्य उद्दिश्य  
प्रयुक्तस्तद्विरोधो साध्याभावव्याप्त इति फलितार्थः, यथा वज्रिमान् हुद-  
त्वादिति एतस्य साध्याभावानुमिति सामग्रीत्वेन साध्यानुमिति प्रतिबन्धो  
दूषकतावीजं न च सत्प्रतिपक्षाविशेषः तत्र हेत्वन्तरं साध्याभावसाधकं  
इह त हेतुरेव साध्याभावसाधकः साध्यसाधकत्वेन त्वयोपन्यस्त इत्यश-  
क्तिविशेषोन्नायकत्वेन विशेषात् ॥ ४७ ॥

क्रमप्राप्तं प्रकरणसमं लक्षयति । सहेतुः स्वसाध्यस्य परसाध्याभावस्य  
वा निर्णयार्थमपदिष्टः प्रयुक्तः प्रकरणसम उच्यते स क इत्याकाङ्क्षाया-



## १ अध्याये १ आह्निकम् ।

२१५

म.ह. यस्मात्प्रकरणचिन्तेतिकरणं पक्षप्रतिपक्षाविति भाष्यं साध्यतद-  
भाववन्ताविति तदर्थं स्यात्वा च निर्णयार्थं प्रयुक्तो हेतु र्यत् निर्णयं जन्मयितु  
मशक्तस्तुल्यवन्नेन परेण प्रतिवन्मात् किन्तु धर्मिणः साध्यवत्त्वं तदभाव-  
वत्त्वं वेति चिन्तां जिज्ञासां प्रवर्त्तयति सप्रकरणसमः यद्वा प्रकृतं करणं  
लिङ्गं परामर्शो वा कोहेतुरनयोः साधकः एतयोः कः परामर्शः प्रमेति  
वा यत् जिज्ञासाभावतीत्यर्थः यस्मादित्यादितु वस्तुस्थितमात्रं लक्षणन्तु  
तुल्यबलविरोधिपरामर्शकालीनपरामर्शविषयत्वं स्वसाध्यपरामर्शकालीन  
तुल्यबलविरोधिपरामर्शो वा विरोधिपरामर्शस्य च हेतुनिष्ठत्वमेकज्ञान-  
विषयत्वसम्बन्धेन अन्यथाहेतोर्दुष्टत्वं न स्यात् अथञ्च दशाविशेषे दोषः  
इत्यतः सङ्गे तोरपि विरोधिपरामर्शकाले दुष्टत्वमिदमेवेत्यवधेयम् ॥४८॥

क्रमप्राप्तं साध्यसमं लक्षयति । साध्येन वङ्गादिनाऽविशिष्टः कुत  
इत्यत आह । साध्यत्वादिति साधनीयत्वादित्यर्थः यथा हि साध्यं साध-  
नीयं तथा हेतुरपि चेत्साध्यसम इत्युच्यते अतएव चासिद्ध इति व्यवहियते  
अथञ्चाश्रयासिद्धिस्वरूपासिद्धिव्याप्यत्वासिद्धिभेदात्तिविधः । अश्रया  
सिद्धिश्च पक्षे पक्षतावच्छेदकाभावः यथा काञ्चनमयः पर्वतोवङ्गमानि-  
त्यादौ स्वरूपासिद्धिः पक्षे हेतुतावच्छेदकावाच्छेदनाभावः यथा हृदो-  
द्रव्यं धूमादित्यादौ व्याप्यत्वासिद्धिश्चाव्यभिचरितसामानाधिकरण्यस्याभावः  
न च स्वरूपासिद्धेरेव सूत्रात्तुल्यत्वप्रतीतेर्नोभयोर्नेतरलक्ष्यत्वमिति वाच्यं  
हेतुरिति पदं ह्यत्र पूरणीयं हेतुपदञ्च गमकहेतोर्व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मस्य  
वाचकं व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्म इत्येव वा पूर्यतां तथा च तस्य किञ्चिदंश-  
साध्यत्वेनैव साध्यसमत्वम् अतएव साध्ये साध्यतावच्छेदकाभावः साधने  
साधनतावच्छेदकाभावश्च व्याप्यत्वासिद्धिः यथा पक्षतावच्छेदकाभापक्षताव-  
च्छेदकवङ्गेदादेरन्यतमत्वेनाश्रयासिद्धित्वं यथा च पक्षे हेतुभावहेतुभङ्गेदा-  
देरन्यतमत्वेन स्वरूपासिद्धित्वं तथा साध्यतावच्छेदकाभावादेरन्यतमत्वेन  
व्याप्यत्वासिद्धित्वं त्वितयान्यतमत्वं चासिद्धिसामान्यलक्षणं नीलधूमत्वादे-  
रपि व्याप्यत्वासिद्धावित्तर्भावं वदन्ति तेषामयमाशयः व्याप्तिर्हि साध्य-  
सम्बन्धितावच्छेदकरूपा गुरुधर्मश्च साध्यसम्बन्धितानवच्छेदकोऽतो नील-  
धूमत्वादेः साध्यसम्बन्धितानवच्छेदकत्वान्न व्याप्तिस्वरूपत्वं तथा च साध्य-



तावच्छेदकाभावाद्भिरिव साधनतावच्छेदके व्याप्यतानवच्छेदकत्वमपि भवति  
व्याप्यत्वासिद्धिरिति ॥ ४६ ॥

क्रमप्राप्तमतोक्तकालं लक्षयति । अतीतकालस्य समानाधिकत्वात् काला-  
तीतशब्देनोक्त कालस्य साधनकालस्यात्ययेऽभवेऽपदिष्टः प्रयुक्तो हेतुः एतेन  
साध्याभावप्रमालक्षणार्थं इति सूचित्रं साध्याभावनिरूपये साधनासम्भवा-  
दयमेव बाधितसाध्यक इति गीयते यथा वज्रिरनुष्णः कृतकत्वादित्यादौ  
न च बाधे अवश्यकस्य व्यभिचारस्वरूपा सिद्धान्ततरस्यैव दोषत्वसूचित-  
मिति वाच्यं तदप्रतिसन्धानेन बाधस्य दोषत्वावश्यकत्वात् उपधेयसङ्कोरेऽप्यु-  
पाधेरसङ्करात् उत्पत्तिकालवच्छिन्नो घटो गन्धवान् शिखरावच्छिन्नः पर्वतो-  
वज्रिमानित्यादावसङ्कराच्च साध्याभाववत्प्रत्यक्षतावच्छेदकावच्छिन्नकत्वस्य तत्र  
सत्त्वान् । परेतु घटः सकर्तृकः कार्यत्वादित्यादौ यत्र बाधवोपनीतमेक-  
मात्रकर्तृकत्वं भासत इत्युच्यते तत्र तदभावोऽसङ्कोरोदाहरणमिति-  
वदन्ति ॥ ५० ॥ समाप्तं हेत्वाभासप्रकरणम् ॥ ६ ॥

क्रमप्राप्तं क्लृप्तं लक्षयति । अर्थस्य वाद्यभिमतस्य यो विवक्ष्यो विरुद्धः  
कल्पो अर्थान्तरकल्पनेति यावत् तदुपपत्त्या युक्तिविशेषेण यो वचनस्य  
वाद्युक्तस्य विद्याधातो दूषणं तच्छलमित्यर्थः वक्तृतात्पर्याविषयार्थकल्पने न  
दूषणाभिधानमिति फलितं तात्पर्याविषयत्वं विशेष्ये विशेषण्ये संसर्गे वा  
यथा नेपालादागतोऽयं नवकम्बलवत्त्वादित्यत्र नवसङ्ख्यापरत्वकल्पनयाऽसिद्ध-  
विधानं प्रमेयं धर्मत्वादित्यत्र पुण्यत्वार्थकल्पनया भोगः सिद्धविधानं वज्रि-  
मान् धूमादित्यत्र धूमावयवे व्यभिचाराभिधानम् ॥ ५१ ॥

लक्षितं क्लृप्तं विभजते । तत्र वाक् क्लृप्तं लक्षयति । यत्र शक्त्यर्थद्वये  
सम्भवति एकार्थनिरणायकविशेषाभावादनभिप्रेतशक्त्यर्थकल्पनेन दूषणा-  
भिधानं तद्वाक् क्लृप्तं लक्षणन्तु शक्त्या एकार्थशब्दबोधतात्पर्यकशब्दस्य  
शक्त्यर्थान्तरतात्पर्यकत्वकल्पनया दूषणाभिधानं यथा नेपालादागतोऽयं  
नवकम्बलवत्त्वादित्युक्ते कुतोऽस्य नवसङ्ख्याकाः करुला इति एवं गौर्विषा-  
णीत्युक्ते कुतोगजस्य शृङ्गं श्वेतोधावतीति श्वेतरूपवदभिप्रायेणोक्तश्वेतो  
न धावतीत्यभिधानमित्यादिकमुल्लेखम् ॥ ५२ ॥

सामान्यक्लृप्तं लक्षयति । सामान्यविशिष्टसम्भवदर्थाभिप्रायेणोक्तस्य अति-



## १ अध्याये २ आङ्गिकम् ।

२१७

सामान्ययोगादसम्भवदर्शकत्वकल्पनया दूषणाभिधानं सामान्यच्छलम् ।  
यथा ब्राह्मणोऽयं विद्याचरणसम्पन्न इत्युक्ते ब्राह्मणत्वेन विद्याचरण-  
सम्पद साधयतीति कल्पयित्वा परो वदति कुतो ब्राह्मणत्वेन विद्याचरण-  
सम्पद्वाक्ये व्यभिचारात् ॥ ५४ ॥

उपचारच्छलं लक्षयति । धर्मशब्दस्यार्थेन सम्बन्धस्तस्य विकल्पो विविधः  
कल्पः शक्तिलक्षणादन्यतरूपस्तथा च शक्तिलक्षणयोरेकतत्त्वत्वा प्रयुक्ते  
शब्दे तदपरवृत्त्या यः प्रतिषेधः स उपचारच्छलं यथा मञ्चाः क्रोशन्ति  
नीलो घट इत्यादौ मञ्चस्था एव क्रोशन्ति न तु मञ्चा एवं घटस्य कथं नील-  
रूपभेदः एवम् अहं नित्य इति शक्त्या प्रयुक्ते असुखस्मादुत्पन्नत्वं कथं  
नित्य इति प्रतिषेधोऽप्युपचारच्छलं वाद्यभिप्रेतार्थस्यादूषणेन क्लृप्ता-  
समुत्तरत्वम् । न च श्लिष्टलाक्षणिके प्रयोगाद्वादिन एवापराधः स्यादिति  
वाच्यं तत्तदर्थबोधकतया पक्षिद्वय शब्दस्य प्रयोगे वादिनोऽनपराधात्  
अन्यथा पर्वतोर्वाङ्गिमानित्युक्ते पर्वतोऽयं कथमवङ्गिमानित्यादिदूषणे-  
न अनुमानाद्युच्छेदः स्यात् ॥ ५५ ॥

प्रसङ्गाच्छलं परोक्षितं पूर्वपक्षयति । शब्दस्यार्थान्तरकल्पनाऽवि-  
शेषाद्वाक्छलमेवोपचारच्छलं स्यादिति क्लृप्तं द्वित्वमेव न तु त्वित्वमिति  
शङ्कार्थः ॥ ५६ ॥

समाधत्ते । उपचारच्छलस्य वाक्छलाभेदो न तयोरर्थान्तरभावात्  
भिन्नत्वात् भिन्नतया प्रमाणसिद्धत्वादिति फलितार्थः पूर्वोक्तभेदकधर्मेण  
भेदसम्भवेऽपि यत्किञ्चिद्धर्मेणाभेदे सामान्यधर्मेणाभेदस्य सर्वत्र सम्भवाद्-  
विभागः कुत्रापि न स्यादिति ॥ ५७ ॥

विपक्षे वाधकमभिप्रेत्याह । यत्किञ्चिद्धर्मादविशेषे किञ्चित्वाधर्म्या-  
च्छलत्वादिरूपाच्छलस्यैक्यं स्यात् न तु त्वदभिमतं द्वित्वमपीति भावः ॥ ५८ ॥

समाप्तं च्छलप्रकरणम् ॥ १० ॥

क्रमप्राप्तां जातिं लक्षयति । साधर्म्यवैधर्म्याभ्यामिति सावधारणो-  
निर्देशस्तेन व्याप्तिभिरपेक्षाभ्यां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानं दूषणाभि-  
धानं जातिरित्यर्थः यद्यप्युभाभ्यां प्रत्यवस्थानस्य प्रत्येकप्रत्यवस्थानेऽव्या-  
प्तिरेकप्रत्यवस्थानस्य लक्षणत्वे परप्रत्यवस्थानेऽव्याप्तिर्नवान्यतरप्रत्यवस्थानं



नियतं सर्वत्र जातवभावात्तथापि व्याप्तिनिरपेक्षतया दूषणाभिधान-  
मित्येव वाच्यं तेन च सन्दर्भेण दूषणासमर्थत्वं स्वव्याघातकत्वं वा दर्शितं  
तथा च कृत्वादिभिन्नदूषणासमर्थसुत्तरं स्वव्याघातकसुत्तरं वा जातिरिति  
सूचितं साधर्म्यसमादिचतुर्विंशत्यन्यान्यत्वं तदर्थं इत्यपि वदन्ति ॥ ५६ ॥

क्रमप्राप्तं निग्रहस्थानं लक्षयति । निग्रहस्य खलीकारस्य स्थानं  
तच्च विप्रतिपत्तिरप्रतिपत्तिश्च विप्रतिपत्तिर्विकृष्टा प्रतिपत्तिरप्रतिपत्तिः  
प्रकृताज्ञानं यद्यप्येतदन्यतरत्वं परनिष्ठं नोद्भावायितुमर्हं प्रतिज्ञाहान्यादे-  
र्निग्रहस्थानत्वानुपपत्तिश्च तथापि विप्रतिपत्त्यप्रतिपत्त्यन्यतरोद्भायकधर्म-  
वत्त्वं तदर्थः उद्देश्यानुगुणसम्यक् ज्ञानाभावलिङ्गत्वं प्रतिज्ञाहान्याद्यन्य-  
तमत्वं वा लक्षणमित्यपि वदन्ति ॥ ६० ॥

जातिनिग्रहस्थानयोर्विभागो नास्तीति भ्रमो माभूदित्यत आह । तद्-  
विकल्पात्साधर्म्यादिना प्रत्यवस्थानस्य विप्रतिपत्त्यादुद्भायकव्यापारस्य च  
विकल्पः ज्ञेदानानामप्रकारत्वादिति दावत् इत्यञ्च तयोर्वैकल्येऽपि प्रमा-  
णादिपरीक्षाविषयकशिष्यजिज्ञासया प्रतिवञ्चान्नेदानीं तद्विभागः क्रि-  
यत इति भावः ॥ ६१ ॥

समाप्तं पुरुषशक्ति लिङ्गदोषसानान्यलक्षणप्रकरणम् ॥ ११ ॥

प्रथमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ॥ २ ॥

इति विश्वनाथभट्टाचार्यकृतन्यायसूत्रवृत्तौ प्रथमाध्याय-

वृत्तिः समाप्ता ॥ १ ॥

प्रमाणैः प्रथितैर्दोर्भिर्विवादिषु परीक्षितैः ।

हृदि द्वितीयमध्यायं भासमानमहं भजे ॥ १ ॥

अथ प्रमाणादिषु लक्षितेषु परीक्षणीयेषु संशयं विना परीक्षाया  
असम्भवादादौ संशय एव परिच्छणीयः शिष्यजिज्ञासार्तुसारात्मकीकटाह-  
न्यायः ज्ञातः संशयपरीक्षायाः प्रमाणादिपरीक्षोपयोगित्वात् प्रमाण-  
परीक्षैवाध्यायार्थ इति वदन्ति । वस्तुतस्तु कृत्स्नस्य परीक्षितत्वात् तृतीय-



## २ अध्याये १ चाङ्गिकम् ।

२१८

चतुर्थयोः प्रमेयस्य पञ्चमे च जाते परीक्षिष्यमाणत्वत्तदतिरिक्त्यावत्-  
पदार्थपरीक्षैवाध्यायार्थः ॥ प्रयोजनादिपरीक्षाया अप्यतैवातिदेशेन करि-  
ष्यमाणत्वात् तत्र विभागसापेक्ष प्रमाणपरीक्षातिरिक्तोक्त्यावत्पदार्थ परी-  
क्षाप्रथमाङ्गिकार्थः तत्र च नव प्रकरणानि तत्रादौ संशयपरीक्षाप्रकरणं  
अन्यानि यथायथं वक्ष्यन्ते तत्र संशयपरीक्षणाय पूर्वपक्षसूत्रम् ।

अत्र सूत्रकृता संशयस्याऽदर्शनात् संशयपरीक्षायां संशयो नाङ्गमन-  
वस्थाभवादिद्व्यर्थं सूत्रकृतो वर्णयन्ति तदसत् न ह्यत्र संशयस्वरूपं परी-  
क्षते । येनानवस्था स्यात् अपि तु लक्षणसूत्रोक्तं संशयकारणं तथा च  
संशयः समानधर्मदर्शनादिजन्यो न वेति संशयः सम्भवत्येव । परन्तु  
सूत्रकृतो, निर्णयसूत्रात् पूर्वपक्ष निराससाध्यापेक्षणात् संशयो न  
दर्शित एवमेव प्रमाणादिपरीक्षायांमपि अतएवाभिहितं भाष्ये शास्त्रे-  
वादे च विमर्षैवजमिति तच्च समानादिधर्मदर्शनात् संशयः प्रत्येकं व्यभि-  
चारान् अन्यतरत्वेनानुगतीकृततद्दर्शनादपि न संशयः न हि स्यात्तुधर्म-  
समानधर्मायं पुरुषधर्मसमानधर्मायमिति वा जानन् स्यात्तुर्नवेति सन्दिग्धे  
समानत्वस्य भेदगर्भत्वाद्भिन्नधर्मेन ज्ञाते तद्भेदग्रहस्यैव सम्भवात् यद्वा  
समानातेकधर्मोपपत्तेरिति लक्षणसूत्रे उपपत्तिपदं स्वरूपपरमिति आल-  
स्येयं शङ्का तथाचायमर्थः न संशयः समानधर्मादितः स्वरूपमत इति शेषः  
यतः समानधर्मादेरध्यवसायादन्यतरत्वेनानुगतीकृततदध्यवसायाद्वा संशयः  
अन्यथा संशयस्य सार्वत्रिकत्वापत्तेः ॥ १ ॥

विप्रतिपत्त्यादिजन्यसंशयत्वयं प्रतिक्षिपति । न संशय इत्यनुवर्तते  
विप्रतिपत्तेरुपलब्धव्यवस्थाया अनुपलब्धव्यवस्थायाश्च न संशयजनकत्वं  
प्रत्येकं व्यभिचारादित्यर्थः यद्वा स्वरूपसद्विप्रतिपत्त्यादितो न संशयः किन्तु  
तदध्यवसायादित्यर्थः ॥ २ ॥

विप्रतिपत्तिजसंशयमात्रप्रतिक्षेपाय सूत्रान्तरम् । विप्रतिपत्तो न  
संशयहेतुत्वं संप्रतिपत्तेः निश्चयात् वादिनोर्मध्यस्थस्य च निश्चयसूत्रात्  
नति च निश्चये संशयायोगादिति भावः ॥ ३ ॥

उपलब्धानुपलब्धव्यवस्थातः संशयद्वय निरासय सूत्रम् । उपलब्ध-  
व्यवस्थाया अनुपलब्धव्यवस्थायाश्च संशयजनकत्वं तदा स्यात् यदि



स्वस्मिन्नप्यव्यवस्थितत्वं स्यात् न त्वेवं तथा च स्वात्मनि व्यवस्थितायास्तस्याः  
कथमन्यत्राव्यवस्थितत्वमित्यर्थः ॥ ४ ॥

नन्वव्यवस्थामागम्यसंशयस्तस्य च न स्वसंशयरूपत्वं संशयस्य विषय-  
विशेषघटितत्वात् तस्य चान्यसंशयजनकत्वं न विरुद्धम् । अतो दूषणा-  
न्तरमाह ।

तथा तथैव सति अव्यवस्थया हेतुत्वे सति तथागच्छेऽयं न सूत्रा-  
नर्गतेऽपि तु भाष्यस्य इत्यन्ये अव्यवस्थितसंशयः संशयानुच्छेदः स्यात् तद्वर्त्मस्य  
तज्जनकस्य ज्ञानत्वादिसाधारणधर्मदर्शनस्य सातत्योपपत्तेः सर्वदा सम्भ-  
वाद्यज्ञानत्वादिसाधारणधर्मदर्शनेऽपि कारणान्तरविलम्बाच्च सर्वत्र  
प्रामाण्यसंशय इति यदि तदा तस्यैव विषयसंशयेऽपि हेतुत्वमस्त्विति किं  
प्रामाण्यसंशयस्य साधारणधर्मदर्शनादेर्वा संशयहेतुत्वे नेति भावः ॥ ५ ॥

सिद्धान्तमाह । यथोक्ताध्यवसायात् साधारणादिधर्मदर्शनान् तस्य  
पुरुषत्वादेर्वै विशेष इतरव्यावर्तकोधर्मस्तस्यापगत ईर्ष्येक्षणं ततः विशे-  
षादर्शनादित्यर्थस्तथा च विशेषादर्शनसहितसाधारणधर्मदर्शनादितः  
संशये स्वीकृते न कारणाभावादसंशयो न वा यत्किञ्चित्कारणसत्त्वादत्यन्त-  
संशय इत्यर्थः साधारणधर्मदर्शनादेश्च संशय विशेषे जनकत्वात् संशयत्वाव-  
च्छिन्नप्रतिव्यतिचातेऽपि न क्षतिः विप्रतिपत्तौ च वादिवाक्याभ्यां मध्य-  
स्थस्यैव संशयोपगमात् यच्चोक्तं समानधर्मदर्शनात् कथं संशयः समानत्वस्य  
भेदगर्भत्वादिति तदपि न हि समानधर्मत्वेन तज्ज्ञानं हेतुरपि तु उभ-  
यसहचरितधर्मवत्त्वज्ञानं तथेत्युक्तदोषाभावात् ॥ ६ ॥

सम्प्रति संशयपरीक्षयैव परेषां पदार्थानां परीक्षामतिदिशन्नाह ।  
एवमुक्तरीत्या उत्तरोत्तरेषु प्रयोजनादि प्रसङ्गः प्रकटः सङ्गः परीक्षायाः  
सम्बन्धो बोध्यव्यस्तत्किं प्रयोजनमपि परीक्षणीयं नेत्याह यत्र संशय इति  
यदि तल्लक्षणार्थसंशयस्तदा तदपि परीक्षणीयं अथवा उत्तरोत्तरं उक्ति-  
प्रत्युक्तिरूपं तत्रसङ्गः तद्दूषा परीक्षा संशयितेऽर्थे कर्त्तव्येत्यर्थः । ७ ॥

समाप्तं संशयपरीक्षा प्रकरणम् ॥ १२ ॥



## २ अध्याये १ आह्निकम् ।

२२१

इदानीमवसरतः प्रमाणसामान्यपरीक्षणाय पूर्वोपचयति । काल-  
त्रयेऽपि प्रमाणात्ममायाः सिद्धेर्व्यक्तुमशक्यत्वात् प्रत्यक्षादीनां न प्रामाण्य-  
मित्यर्थः ॥ ८ ॥

विस्मृत्या त्वैकाल्यासिद्धत्वं व्युत्पादयति । प्रमाणस्य पूर्वत्वं तावन्न  
सम्भवति हि यतः प्रमायाः पूर्वं प्रमाणसिद्धौ प्रमाणसत्त्वे इन्द्रियार्थ-  
सन्निकर्षात् प्रत्यक्षं सिध्यतीति न स्यात् प्रत्यक्षप्रमाणतः पूर्वमेव प्रमायाः  
सत्त्वात् प्रमाणत्वं हि प्रमाकरणत्वं पूर्वं प्रमाया अभवे प्रमाकरणत्वमपि  
कथं स्यात् पूर्वमेव प्रमायाः सिद्धिरुपेयेति कथं इन्द्रियार्थसन्निकर्षात्  
इन्द्रियार्थसन्निकर्षादिति प्रत्यक्षोत्पत्तिः प्रत्यक्षाद्युत्पत्तिः परेतु प्रत्यक्षं  
प्रति करणत्वे खण्डिते तद्गीत्या करणान्तरमपि खण्डनीयमित्या-  
शयं सूत्रकृतो वृण्यन्ति प्रमाणस्य प्रमावैशिष्ट्याभावे प्रमाणमिति ज्ञानेऽपि  
प्रमावैशिष्ट्यसंशयः स्यादिति भावः ॥ ९ ॥

प्रमाणस्य प्रमातः पश्चात् सिद्धौ विषयस्य प्रमेयत्वं प्रमाणात्पूर्वमेव  
सिद्धिमिति न प्रमाणतः प्रमाया उत्पत्तिः प्रमेयस्य च क्षमिरिति ॥ १० ॥

इदञ्च सूत्रद्वयं अनुमानाद्यभिप्रायेण चक्षुः श्रोत्रादेः प्रमानन्तः प्रमा-  
समकालं वा सत्त्वस्योत्पत्त्यादुत्पत्तेः शङ्कितुमशक्यत्वात् तदयमर्थः प्रमाण-  
प्रमयोर्युगपत्सत्त्वे युगपदुत्पत्तौ बुद्धीनामर्थविशेषनियतत्वाद्यत्कनटत्तित्वं  
तन्न स्यात् पदज्ञानं हि शब्दविषयकं आवरणप्रत्यक्षरूपं शाब्दबोधश्च  
पदार्थ विषयकः परोक्षरूपो विजातीयइत्यनयोर्न यौगपद्यं सम्भवति  
कार्यकारणभाववत्वात् क्रमिकत्वेनैव सिद्धेरतएवैकमेव ज्ञानसुभयविषयक-  
मित्यपि नाशङ्कनीयं सङ्करप्रसङ्गश्च एवं व्याप्तिज्ञानानुमित्यादावपि द्रष्टव्यं  
परेतु प्रमाणप्रमेययोर्न युगपत्सिद्धिर्न युगपत्ज्ञानं बुद्धीनामर्थविशेष-  
नियतत्वात् क्रमवृत्तित्वं तथा सति न स्यात्तथाहि चक्षुषो ज्ञानसुमित्यादि  
रूपं घटादेश्च प्रत्यक्षादिरूपं न चानयोर्यौगपद्यं सम्भवतीत्यर्थइत्याहुः ॥ ११ ॥

सिद्धान्तसूत्रम् । यदि त्वैकाल्यासिद्ध्या प्रमाणात् प्रमेयसिद्धिर्नोपेयते  
तदा तद्गीत्या त्वशीयः प्रतिषेधोऽप्यनुपपन्न इति जात्युत्तरप्रेतदिति भावः  
किञ्च सर्वप्रमाणप्रतिषेधे प्रतिषेधकं प्रमाणमपि नास्त्युपगन्तव्यम् ॥ १२ ॥



तथा च कथं प्रतिषेधसिद्धिरित्याह । यदि च प्रतिषेधकं प्रमाणमुपे-  
यते तदा कथं सर्वप्रमाणप्रतिषेध इत्याह ॥ १३ ॥

ननु मन्त्रे वस्तुसिद्धिर्नापेक्षिता विश्वस्य शून्यत्वात् प्रमाणप्रमेयभा-  
वोऽपि न वास्तविकस्त्वन्मते च त्वैकाल्यासिद्धिरुक्तैवेत्यतस्तदुद्धरति ॥ १४ ॥

त्वैकाल्यो यः प्रतिषेध उक्तः स न सम्भवति कुत इत्यत आह शब्दादिति  
यथा शब्दात्पञ्चाङ्गाविनः पूर्वसिद्धस्यातोद्यस्य सुरजादेः सिद्धिर्ज्ञेयः यथा  
वा पूर्वसिद्धास्तथादुत्तरकालीनवस्तुप्रकाशनं यथा वा वङ्गिसमकालीनाङ्ग-  
माङ्गसिद्धिसिद्धयत्वापि प्रमा वः सर्वत्र प्रमाणादुत्तरभावित्वेव प्रमाणस्य  
चक्षुरादेः प्रमातः पूर्वभावित्वमस्येव पूर्वं प्रमावैशिष्ट्यान्त तस्य नोपेयते  
यदा कदाचित्प्रमाः सम्बन्धेनैव प्रमाणत्वसम्भवाद्यदा कदाचित् पाक्सम्बन्धे-  
नैव पाचकमानयेत्यादिवदिति भावः अत्र चकारान्तं न स्तुत्वान्तर्गतमिति  
तत्त्वालोके वस्तुतटीकादिस्वरसाय स्तुत्वान्तर्गतमेव ॥ १५ ॥

नन्वनियतत्वादेव प्रमाणप्रमेयव्यवहारो न पारमार्थिकः रज्जौ  
सर्पादिकव्यवहारवदित्याशङ्कयामाह । यथाहि तुलायाः सुवर्णादिगु-  
रुत्वे यत्तापरिच्छेदकत्वात्प्रमाणव्यवहारस्तुत्वान्तरेण च तदीयगुरुत्वेयत्ता-  
परिच्छेदे च प्रमेयव्यवहारस्तथा निमित्तद्वयसमावेशादिन्द्रियादेरपि  
प्रमाणप्रमेयव्यवहार इति यदा प्रमाणता प्रमेयता च प्रमावैशिष्ट्यादिति  
यत्रागाशङ्कितं तत्राह प्रमेयता चेति यथा कदाचिद्गुरुत्वेयत्तापरिच्छेद-  
कत्वात्तुलायाः प्रमाणव्यवहारस्तथेन्द्रियघटादेरपि प्रमाणप्रमेयव्यवहार-  
इति ॥ १६ ॥

अनवस्थया प्रत्यवस्थानपरं पूर्वपक्षसूत्रम् । प्रमाणानां प्रमायतः सिद्धेः  
स्वीकारे प्रमाणान्तरस्वीकारः स्यात् तथाहि प्रमाणस्य तावन्न स्वतः सिद्धि-  
रात्माश्रयापत्तेरतः प्रमाणान्तरं स्वीकार्यं तयोश्च परस्परसाधकत्वेऽन्यो-  
न्याश्रयापत्तिरतस्तत्वापि प्रमाणान्तरमङ्गीकार्यमित्येव मनवस्येति भावः ॥ १७ ॥

न तु प्रमाणसिद्धिः प्रमाणं विनैव स्यादित्वत्वाह । यदि च प्रमाण-  
विनिवृत्तितः प्रमाणव्यतिरेकात् प्रमाणसिद्धिः स्वीक्रियते तदा तद्वदेव  
तत्सिद्धिः स्वीक्रियतां किं प्रमाणाङ्गीकारेण तथा चाव्यवस्थितमेव जगत्-  
स्यादिति शून्यतायां पर्यवसानमिति भावः ॥ १८ ॥



## २ अध्याये १ आह्निकम् ।

२२३

सिद्धान्तसूत्रम् । यथाहि प्रदीपालोकाहटादिप्रकाशस्तथा प्रमा-  
णानां प्रमेयप्रकाशकत्वमन्यथा प्रदीपस्य घटप्रकाशकत्वं प्रदीपप्रकाशकं  
चक्षुस्तज्ज्ञापकमन्यदित्यनवस्थाभयात्प्रदीपोऽपि न घटप्रकाशकः स्याद्-  
यदि च घटप्रत्यक्षे तत्तत्प्रकाशानां नापेक्षेति नानवस्थेत्युच्यते तदा प्रकते-  
ऽपि तुल्यं नहि प्रमाणात्प्रमेयसिद्धौ प्रमाणसिद्धिरपेक्षिता यदा च  
प्रमाणसिद्धिरपेक्षिता तदा तत्रापि प्रमाणमपेक्ष्यतां तच्चानुमानादिकमे-  
वेति न प्रमाणान्तरकल्पना नवानवस्था सर्वत्र प्रमाणसिद्धेरनपेक्षितत्वात्  
क्वचिद्बीजाङ्कुरवदपेक्षापि न क्षतिकरोति भावः प्रदीपस्य प्रदीपान्तरं  
विना प्रकाशकत्ववत्प्रमाणानामपि प्रमाणमन्तरेणैव प्रमेय प्रकाशकत्वमिति  
सूत्रार्थं केचन मन्यन्ते तान् प्रत्याह भाष्यकारः । क्वचिद्विद्वत्तिदर्शनाद-  
निवृत्तिदर्शनाच्च क्वचिदनैकान्तः क्वचित्प्रदीपादौ प्रमाणान्तरान्विद्वत्ति-  
दर्शनात् क्वचिद्वादौ प्रमाणान्तरादनिवृत्तिदर्शनात् प्रमाणान्तरापेक्षा-  
दर्शनात्तदीयो हेतुरनैकान्तः अनियतः तथा च प्रदीपदृष्टान्तात् प्रमाणा-  
न्तरापेक्षा निवृत्तिः साध्यते घटदृष्टान्तेन प्रमाणान्तरापेक्षैव किं न तत्र  
साध्यते तथा च दृष्टान्तसमा जातिरियमिति भावः त्वह्माख्याने कथं नानै-  
कान्त इत्यत्राह भाष्यकारः विशेषहेतुपरिग्रहे भ्रतुपसंहाराभ्यनुज्ञानाद-  
प्रतिषेधः सन्मते विशेषहेतोः व्याप्तिपक्षधर्मताश्रयस्य परिग्रहे सत्पुपसंहा-  
रस्य साध्यसाधनस्याभ्यनुज्ञानादुक्तानैकात्मकः प्रतिषेधो न भवति ॥ १८ ॥

समाप्तं प्रमाणसामान्यपरीक्षा प्रकरणम् ॥ १३ ॥

प्रमाणसामान्यपरीक्षानन्तरं प्रमाणविशेषेषु परीक्षणीयेषु प्रथमो-  
द्दिष्टं प्रत्यक्षं परीक्षणीयं तत्र च फलद्वारकमेव लक्षणं पूर्वसुक्तमतः फल-  
लक्षणं यथाश्रुतमाक्षिपति । प्रत्यक्षस्य यल्लक्षणमिन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नत्वं  
तन्नोपपद्यतेऽसमग्रवचनात् अयमर्थः प्रत्यक्षस्य कारणघटितं लक्षणमभि-  
हितं तत्र कारणकलापघटितायाः सामग्र्या विनिवेशनमतिव्याप्तिनिरा-  
सकं तच्च नाभिहितम् असमग्रम् इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यत्वमात्रं ह्यभि-  
हितम् आत्ममनः संयोगेन्द्रियमनःसंयोगादिकन्त नाभिहितं तथा चात्म-  
मनःसंयोगरूपेन्द्रियार्थसंयोगजन्यतयाभुमित्यादावति व्याप्तिरित्यर्थः ॥ २० ॥



नन्वात्मनोयोगादेः कारणत्वमेव नास्तीत्याशङ्क्यामाह । शरी-  
रावच्छिन्नस्यात्मनो मनसा यः सन्निकर्षस्तदभावे न प्रत्यक्षोत्पत्तिर्यतोऽत  
आत्मनः संयोगस्य कारणत्वमावश्यकम् । प्रत्यक्षोत्पत्तिरिति प्रकृतं  
ज्ञानोत्पत्तिरिति विवक्षितम् ॥ २१ ॥

नन्वेवं दिगादीनामपि कारणत्वं स्यादित्याशङ्कते । यथाकथ-  
ञ्चित्पौर्वापर्यस्य तत्त्वापि सत्त्वात्तेषामन्यथा सिद्धिश्चेत्प्रकृतोऽर्थे-  
वम् ॥ २२ ॥

अतोत्तरमभिधातुमाह । आत्मनो नावरोधोऽसंग्रहः कारणत्वेनेति  
न कुतः ज्ञानलिङ्गत्वात् ज्ञानं लिङ्गं यस्य तत्तथा ज्ञानं हि भावकार्यं  
समवायिकारणं साधयति तच्च परिशेषादात्मैव दिगादीनाञ्च कारणत्वे  
न मानमिति भावः इत्यञ्च समवायिकारणस्यात्मनो मनसा संयोगेऽसम-  
वायिकारणमित्यर्थ्यात् सिद्धम् ॥ २३ ॥

आत्मशरीरादिसंयोगस्य कुतो नामसमवायिकारणत्वमित्यतो मनसः  
प्राधान्ये युक्तिमाह । नानवरोध इत्यनुवर्त्तते इन्द्रियमनोयोगद्वारा  
ज्ञानायौगपद्यनियामकत्वान्ममसोऽपि हेतुत्वमावश्यकमिति शरीरमनो-  
योगादेश्च न तन्नियामकमिति भावः इत्यञ्चात्मनः संयोगस्यासमवायि-  
कारणत्वं युक्तम् ॥ २४ ॥

[प्रत्यक्षनिमित्तत्वाच्चेन्द्रियार्थयोः सन्निकर्षस्य  
पृथग्वचनम् ॥ ]

सिद्धान्तसूत्रम् । प्रत्यक्षनिमित्तत्वात् प्रत्यक्षासाधारणकारणत्वात् अय-  
मर्थः प्रत्यक्षसूत्रे इन्द्रियार्थसन्निकर्षाभिधानं हि न कारणाभिधित्वा  
येनात्मनोयोगाद्यनभिधानेन न्यूनत्वं अपि तु लक्षणाभिप्रायेण तत्र च  
सामग्रीघटितस्वेवासाधारणकारणवटितस्यापि लक्षणस्य सुवचत्वादि-  
न्द्रियार्थसन्निकर्षस्य चासाधारणत्वात् पृथग्वचनम् आत्मनः संयोगादि-  
साधारणकारणाद्यवच्छिद्य लक्षणघटकतया वचनं युक्तम् अयं भावः  
इन्द्रियार्थसन्निकर्षत्वावच्छिन्नकारणताप्रतियोगिककार्यताशालित्वस्य इन्द्रि-



## २ अध्याये १ आह्निकम् ।

२२५

यत्वावच्छिन्नकारणताप्रतियोगिककार्यताशालित्वस्य वा लक्षणस्य सम्यक्त्वे  
कृतमात्मनोयोगाद्यनुप्रवेशेनेति परिष्कृतं चेदमधस्तात् इदं न सूत्रं किन्तु  
भाष्यमिति केचित् ॥ क ॥

[ सुप्तव्यासक्तमनसाञ्चेन्द्रियार्थयोः सन्निकर्षनि-  
मित्तत्वात् ॥ ]

समाध्यन्तरमाह । ज्ञानस्येति शेषः सुप्तानां व्यासक्तमनसाञ्च घन-  
गर्जितादिना श्रोतसन्निकर्षाद्वज्रादिना त्वक्सन्निकर्षाञ्च दूरागेव ज्ञानोत्-  
पत्तेरिन्द्रियार्थसन्निकर्षस्य प्राधान्यम् ॥ ख ॥

युक्त्यन्तरमाह । ज्ञानविशेषाणां तैरिन्द्रियार्थसन्निकर्षैरपदेशो-  
विशेषणं व्याप्तिः आत्मनोयोगादिकं हि न व्यावर्त्तकं तच्चान्यत्वस्य  
ज्ञानान्तरसाधारणत्वात् एवमिन्द्रियमनोयोगजत्वमपि न लक्षणं मानसे-  
ऽव्याप्तेः परे तु तैरिन्द्रियैर्ज्ञानविशेषाणां प्रत्यक्षविशेषाणामपदेशोभाषणं  
यतस्तेनेन्द्रियार्थसन्निकर्षस्य प्राधान्यं भाषन्ते हि चान्द्रिषं प्रत्यक्षं रासनं  
प्रत्यक्षमितीत्याहुः नव्यास्तु प्रत्यक्षविशेषाणामिन्द्रियैरपदेशो यतोऽतश्चा-  
क्षुषादिषट्पटितविशेषलक्षणान्यपि सम्भवन्ति चान्द्रुषट्यनुमित्यवृत्तिजाति-  
मत्त्वादीनि लक्षणान्तराण्यपि द्रष्टव्यानीत्याशयं वर्णयन्ति ॥ २५ ॥

इन्द्रियार्थसन्निकर्षो न हेतुत्वव्यभिचारादित्याशयेन शङ्कते ।  
गीतश्रवणादिकाले चक्षुषट्संयोगादौ विद्यमानेऽपि चान्द्रुषादेर्व्याहृतत्वे  
इन्द्रियार्थसंयोगो न हेतुरित्यर्थः ॥ २६ ॥

समाधत्ते । अर्थविशेषस्य गीतादेः प्रावल्यात् बुभुक्षितत्वज्ञोतादि-  
श्रवणं तथा च गीतशुश्रूषादेश्चान्द्रुषादिप्रतिबन्धकत्वात् प्रतिबन्धकाभावस्य  
च कार्यार्जकत्वात्तत् सहकारेण चेन्द्रियार्थसन्निकर्षस्य हेतुत्वमतः पूर्व-  
पक्षो न युक्त इति परे तु इन्द्रियार्थसन्निकर्षस्य हेतुत्वमित्यत इन्द्रिय-  
मनोयोगादेरहेतुत्वमिति भ्रान्तः शङ्कते व्याहृतत्वादहेतुः इन्द्रियार्थसन्नि-  
कर्षस्यैव हेतुत्वमित्यत यो हेतुरुक्तः स न युक्तः कुतः व्याहृतत्वात् इन्द्रि-  
यमनयोगादेर्हेतुताया अभ्युपगमात्तद्याघातापत्तेः अमं खण्डयति नार्थ-



विशेषप्रावल्यात् नास्ति व्याघातः कुतः अर्थविशेषस्य इन्द्रियार्थस्य प्राव-  
ल्यात् तथा चेन्द्रियार्थसन्निकर्षप्राधान्यार्थं हि पूर्वमुक्तं नत्वितरनिषे-  
धार्थमिति ॥ २७ ॥

ननु सति प्रत्यक्षस्य प्रमाणान्तरत्वे तद्वक्षणपरीक्षासच्छब्दे तदेव तु  
नास्तीत्याशङ्कते । प्रत्यक्षत्वेनाभिसतं घटादिज्ञानमनुमानमनुमितिरेकदेशस्य  
पुरोभागस्य ग्रहणनन्तरमुपलब्धेस्तथाचैकदेशग्रहणात्मकलिङ्गज्ञान-  
जन्यत्वाद् घटादिज्ञानमनुमितिरित्यर्थः ॥ २८ ॥

समाधत्ते । प्रत्यक्षमनुमानमिति न प्रत्यक्षत्वावच्छेदेनानुमितित्वं  
नेत्यर्थः । यावत्तावदुपलब्धात् यावत्तावतोऽपि यस्य कस्यचिद्भागस्य प्रत्य-  
क्षेणेन्द्रियेणोपलब्धादुपलब्धस्य त्वयाध्युपगमात् इदमुपलक्षणं शब्द-  
गम्यादिप्रत्यक्षस्यावारणात् न प्रत्यक्षमात्र निषेध इत्यपि बोध्यम् ॥ २९ ॥

यदपि वृक्षादिज्ञानस्यानुमितित्वमिति तदपि दूषयति । न च नवे-  
त्यर्थः न चैकदेशस्यैवोपलब्धिरित्यपि युक्तं अवयविसङ्गावात् यतोहि  
अवयव्यस्ति अतस्तदवयवप्रत्यक्षकालेऽवयविनोऽपि प्रत्यक्षं न व्याहृतं तेनापि  
सह चक्षुः संयोगादिसत्त्वादिति भावः ॥ ३० ॥

समाप्तं प्रत्यक्षपरीक्षा प्रकरणम् ॥ ३४ ॥

अवयविसङ्गावादिति हेतुसाधनयोपोद्घातसङ्गत्यावयवप्रकरण-  
मारभते । अत्र चावयविनि सन्देहः साध्यत्वादिति यथा श्रुतार्थो न  
सङ्गच्छते वङ्गादौ व्यभिचारान्तस्मादयमर्थः अवयविनि साध्यत्वादसिद्धत्वात्  
सन्देहोऽवयविसङ्गावादित्युक्तहेतोस्तथाच सन्दिग्धा सिद्धो हेतुरित्यर्थः तत्र  
च द्रव्यत्वं स्पर्शवत्त्वं वा अणुत्वव्याप्यं न वेत्यादयोविप्रतिपत्तयः तत्र  
च सकम्पत्वाकम्पत्वरक्तत्वारक्तत्वावृत्तत्वानावृत्तत्वादिलक्षणविरुद्धधर्मा-  
ध्यासादेकोऽवयवी न सम्भवति तथाहि शाखावच्छेदेन कम्पो मूलाव-  
च्छेदेन तदभावोऽप्युपलभ्यते न चैकस्मिन्नेव द्रव्ये एकदेव विरुद्धधर्मद्वय-  
समावेशः सम्भवति तस्मादवयवा एव तथाभूता न त्वन्योऽवयवी मानाभा-  
वान् एवं महारजनरक्तैकदेशस्यांगुकस्य दशावच्छेदेनारक्तत्वोपलब्धा-  
देवं त्याग्यत घटादेरनावृत्तत्वोपलब्धादवसेयं इति बोद्धानां पूर्वपक्षः अत्र



## २. अध्याय १ आङ्गिकम् ।

२२७

च बौद्धानां पूर्वपक्ष सूत्राणि वार्त्तिककृता लिखितानि च विस्तारभ्यान् लिख्यन्ते ॥ ३१ ॥

सिद्धान्तसूत्रम् । अवयविनोऽसिद्धौ तद्गुणकर्मादीनां सर्वेषामग्र-  
हणं तथा च सकम्पाकम्पत्वरक्तारक्तत्वादिकमपि न सुग्रहं परमाणुगत  
त्वात् प्रत्यक्षे महत्त्वस्य हेतुत्वात् ॥ ३२ ॥

हेत्वन्तरमाह । अवयवेभ्योऽवयव्यतिरिच्यते तथा सति धारणाकर्ष-  
णयोरुपपत्तेरन्यथा परमाणु पुञ्जत्वे चैकदेशधारणेन सकलधारण मेक-  
देशाकर्षणेन सकलाकर्षणञ्च न स्यादित्यर्थः ॥ ३३ ॥

इदमवद्यं नौकाघर्षणेन नौकास्याकर्षणवत् कुण्डधारणेन कुण्ड-  
स्यदधिधारणवच्चोपपत्तेर्विजातीयसंयोगवलेनैवावयवावयविभावाभावेऽप्यु-  
पपत्तेरतः पूर्वोक्तां युक्तिमेव साधीयसीं मन्यमानस्तत्र परोक्तं समा-  
धानमाशङ्क्य दूषयति । अतिदूरस्थैकमनुष्यैकवृत्तादेरप्रत्यक्षत्वेऽपि सेना-  
वनादि प्रत्यक्षवदेकपरमाणोरप्रत्यक्षत्वेऽपि तत्समूहरूपवृत्तादेः प्रत्यक्षं  
स्यादिति चेन्न तदपि अणूनामतीन्द्रियत्वात् प्रत्यक्षे महत्त्वस्य हेतुत्वात्तत्-  
सत्त्वात्सेनावनादि प्रत्यक्षं युज्यते न त्वणूनां महत्त्वाभावादिति भावः ॥ ३४ ॥

समाप्तमवयविपरीक्षा प्रकरणम् ॥ १५ ॥

अवसरेण क्रमप्राप्तमनुमानं परीक्षितं पूर्वपक्षयति । अनुमानस्य  
तैविध्यं पूर्वसूक्तं तत्र त्रिविधस्याप्रामाण्ये साधितेऽनुमानमप्रमाणमर्था-  
त्सिद्धमित्याशयेनेदं अनुमानं अनुमानत्वेनाभिमतं न प्रमाणं प्रमितिकरणं  
व्यभिचारिहेतुकत्वात् तत्र त्रिविधे व्यभिचारं दर्शयति रोधेत्यादिना  
नदीवृद्ध्या पिपीलिकाण्डसञ्चारेण मयूररुतेन च वृष्ट्यनुमानं त्रिविधसु-  
दाहणं न सम्भवति नदीरोधाधीननदीवृद्ध्या आश्रमोपघाताधीनपि-  
पीलिकाण्डसञ्चारेण मनुष्यकर्तृकमयूररुतसदृशरुतेन व्यभिचारात् पिपी-  
लिकाण्डसञ्चारस्य वृष्टिहेतुत्वाभिप्रायेणेदं अथवा लक्षणसूत्रे पूर्ववत्  
पूर्वकालीन साध्यानुमापकं शेषवदुत्तरकालीन साध्यानुमापकं सामान्य-  
तो वृष्टं विद्यमानस्य साध्यानुमापकमित्यर्थ इत्याशयः एतेन तैकालि-  
कसाध्यानुमापकत्वं सम्भवति परेत पिपीलिकाण्डसञ्चारेणात्यन्तोष्णानु-  
मानं ततश्च महाभूतजोमानुमानं तस्य च वृष्टिहेतुत्वात्तेन वृष्ट्यनुमान-



मिति वदन्ति एवमन्यत्वापि व्यभिचारशङ्कासमावादव्यभिचारनिश्चयस्या-  
नुमितिहेतोरेव दुर्लभत्वात्तत्प्रामाण्यं न सम्भवतीत्य.शयः ॥ १५ ॥

समाधत्ते । अनुमानाप्रामाण्यं न युक्तं एकदेशरोधजनदीदृङ्गे स्वासज-  
पिपीलिकाण्डसञ्चारात्पूरुषतसदृशरुताञ्च लिङ्गोभूतानां नदीदृष्ट्यादीनां  
भिन्नत्वान्न दोषः न च सर्वत्र व्यभिचारशङ्का सत्याञ्च तस्यान्तर्केण तद-  
पनयनान्न दोष इत्याशयः ॥ १६ ॥ समाप्तमनुमानपरीक्षा प्रकरणम् ॥ १६ ॥

अनुमानस्य त्रिकालविषयत्वमभिमतं तन्न युक्तं वर्त्तमानाभावेन तद-  
धीनज्ञानयोरतीतानागतयोरभावेन कालत्रयः त्रिकविषयाभावादित्याश-  
येनवर्त्तमानपरीक्षाप्रकरणमारभमाणो वर्त्तमानमाक्षिपते । वर्त्तमानाभावः  
अतीतानागतभिन्ने कालत्वाभवाव्युत्पादयति पतत इति पततः फलादे-  
र्द्धावधिकः कञ्चन देशः पतिताध्वा भूम्यवधिकः कञ्चन पतितव्याध्वा  
न तु वर्त्तमानस्य प्रसङ्गोऽपीति भावः ॥ १७ ॥

समाधत्ते । वर्त्तमानाभावे तयोरतीतानागतयोरप्यभावः स्यात्तयो-  
स्तदपेक्षत्वात् वर्त्तमानध्वंसप्रतियोगित्वं ह्यतीतत्वं वर्त्तमान प्रागभाव-  
प्रतियोगित्वं ह्यनागतत्वमिति भावः ॥ १८ ॥

ननु तयोः परस्परापेक्षयैव सिद्धेर्न वर्त्तमानापेक्षेत्यत आह । अन्यो-  
न्याश्रयादिति भावः ॥ १९ ॥

तयोरप्यभावे का क्षतिरती युक्त्यन्तरमाह । वर्त्तमानाभावे प्रत्यक्षं  
नोपपद्यते प्रत्यक्षस्य वर्त्तमानविषयत्वात् अतएवाह सम्बद्धं वर्त्तमानञ्च  
गृह्यते चक्षुरादिनेति प्रत्यक्षाभावे च सर्वमेव ग्रहणं ज्ञानं न स्यात्  
प्रत्यक्षमूलकत्वादितरज्ञानानामिति भावः ॥ २० ॥

ननु यदि वर्त्तमानध्वंसप्रतियोगित्वमतीतत्वं वर्त्तमानप्रागभावप्रति-  
योगित्वञ्च भविष्यत्त्वं तदा वर्त्तमान एव घटे कथं श्याम आसीद्भूतो भवि-  
ष्यतीति धीरत आह । वर्त्तमानस्यापि घटादेः श्यामरक्तरूपादीनां कृतता  
कर्त्तव्यतयोरतीतता भविष्यत्तयोरुपपत्तेर्घटादेरप्यतीतानागतत्वेन व्यव-  
हारः परस्परसम्बन्धादित्यर्थः ॥ २१ ॥

समाप्तं वर्त्तमानपरीक्षाप्रकरणम् ॥ १७

अथावसरेण क्रमप्राप्तोपमानं परीक्षितं पूर्वपक्षयति । प्रसिद्धसाधर्म्या-



## २ अध्याये ? आह्निकम् ।

२२१

दुपमानसुक्तं तच्च युक्तं यतः साधर्म्यसात्यन्तिकं प्रायिकमैकदेशिकं वा न सम्भवति न हि आत्यन्तिकसाधर्म्येण गौरिव गौरित्युपमानं प्रवर्त्तते न वा प्रायिकसाधर्म्येण गौरिव सहिप इति न च यत्किञ्चित्साधर्म्येण मेरुरिव सर्पे इति साधर्म्यस्य चोपलक्षणत्वाद्द्वैधर्म्योपमानमप्येवं खण्डनीयम् ॥४१॥

समाधत्ते । प्रसिद्धं प्रकर्षेण सहिपादिव्यावृत्त्या सिद्धं ज्ञातं यत्साधर्म्यन्तज्ज्ञानस्योपमितिकरणत्वाच्च दोषः साधर्म्यञ्च एकरणाद्यनुसारात्कचिक्किञ्चिदिति ॥ ४३ ॥

अनुमानेन चरितार्थं नोपमानं प्रमाणान्तरमिति वैशेषिकमतमाशङ्कते । प्रत्यक्षेण गोसादृश्यविशेषेण अप्रत्यक्षस्य गवयपदवाच्यत्वस्यानुमितेर्नोपमानं मानान्तरमिति ॥ ४४ ॥

अत्रोत्तरयति । अप्रत्यक्षे व्याप्यवृत्तयाऽप्रत्यक्षे अनुमानत्वेन प्रमाणार्थं प्रमाप्रयोजनं सुपमानस्य न पश्याम इत्यर्थः अथवा गवये गवयवृत्तो अप्रत्यक्षे गवयपदवाच्यत्वे उपमानस्य प्रमाणार्थं प्रमां उपमानजन्यां प्रमां अनुमानत्वेन न पश्यामइत्यर्थः व्याप्तिज्ञानाभावादिति भावः ॥४५॥

ननु व्याप्तिज्ञाननियमः कल्प्यतामित्यनुशयेन युक्त्यन्तरमाह । अनुमानादुपमानस्य नाविशेषः तथेत्युपसंहारात् यथा गौस्तथा गवय इति ज्ञानादुपमानसिद्धेरुपमानाधीनसिद्धेरुपमितेः तथा च व्याप्तिज्ञानानपेक्षसादृश्यज्ञानाधीनोपमिति रित्यनुभवसिद्धं किञ्च नानुमिनोमि किन्तु पमिनोमीत्यनुव्यवसायसिद्धोपमितिर्नापलपितुं शक्यत इत्याशयः ॥४६॥ समाप्तसुपमानप्रामाण्यपरीक्षाप्रकरणम् ॥ १७ ॥

कृत्वा प्राप्तं शब्दं परीक्षितुं पूर्वपक्षयति । शब्दोऽनुमानमित्यस्य शब्दबोधोऽनुमितिरिति पर्यवसितार्थस्तथा च शब्दो लिङ्गविधयानुमितिकरणं अर्थस्य शब्द प्रतिपाद्यस्य अनुपलब्धेरप्रत्यक्षत्वात् अनुमेयत्वादिति तथा च शब्दज्ञानमनुमितिरप्रत्यक्षविषयत्वात् प्रत्यक्षभिन्नत्वादेत्यत्र तात्पर्यम् ॥ ४७ ॥

हेत्वन्तरमाह । उपलब्धेः शब्दबोधत्वेनाभिमतया अनुमितित्वेनाभिमतयाश्च अद्विप्रवृत्तत्वात् अद्विप्रकारत्वात् अनुमितित्वं शब्दत्वञ्च न



जातिद्वयं शब्दस्य लिङ्गविधया बोधकत्वात्तिङ्गान्तरजज्ञानं बहिजातीय-  
त्वाभावात् ॥ ४८ ॥

हेत्वन्तरमाह । सम्बन्धान्नियतसम्बन्धात् ज्ञायमानादितिशेषः  
शब्दो हि व्याप्तिग्रहसापेक्षो बोधयति तेन शब्दबोधोऽनुमितिरिति  
भावः ॥ ४९ ॥

सिद्धान्तसूत्रम् । व्याप्तस्य भ्रमादिभ्रान्त्यस्य य उपदेशः शब्दस्तत्र यत्सा-  
मर्थ्यं आकाङ्क्षायोग्यतादिमत्त्वं ततः अथवा व्याप्तं प्राप्तं यदुपदेशसा-  
मर्थ्यं आकाङ्क्षादिमत्त्वं ततः तत्त्वहकारात्साधारणश्चायं निर्देशस्तेन व्याप्ति-  
निरपेक्षादाकाङ्क्षादिज्ञानादर्थे सम्प्रत्ययः शब्दबोधः सम्भवतीति नानु-  
मानान्तर्भावः शब्दस्येत्यर्थः शब्दादसमर्थं प्रत्येमि न त्वनुमिनोमीत्यनु-  
भवादिति भावः ॥ ५० ॥

शब्दार्थयोः सम्बन्धाभाव इत्यप्याह । शब्देन सहार्थस्य सम्बन्धाभावः  
व्याप्तिभावः हेतुमाह पूरणेति, यदि शब्दस्यार्थेन व्याप्तिः स्यात्तदा द्वाग्नि-  
वासीशब्दैर्मुखपूरणसुखप्रदाहसुखपाटनानि स्युः शब्दस्य व्याप्यस्य सत्वे-  
नान्नादेरर्थस्यापि सत्त्वात् ॥ ५१ ॥

तत्किं शब्दोऽसम्बद्धमेवार्थं प्रत्याययति तथा सत्यतिप्रसङ्ग इत्याशङ्कते ।  
अप्रतिषेधः शब्दार्थयोः सम्बन्धप्रतिषेधो न शब्दार्थयोर्व्यवस्थितत्वात्किञ्चि-  
देव हि शब्दः किञ्चिदेवार्थं बोधयति न सर्वः सर्वमिति इत्यञ्च सम्बन्धे  
स्वीकृते तेन सम्बन्धेन व्याप्तिरप्यावश्यकी स च सम्बन्धो न मुखपूरणादि-  
नियामक इति भावः ॥ ५२ ॥

उत्तरयति । मन्त्रतेऽपि शब्दार्थयोरव्यवस्था न शब्दाधीनस्यार्थ-  
संप्रत्ययस्य सामयिकत्वात् शक्तिग्रहाधीनत्वात् शक्तिरूपसम्बन्धेन न  
च व्याप्तिस्तस्यावृत्तिनियामकसम्बन्धाधीनत्वादिति भावः ॥ ५३ ॥

शब्दस्यार्थेन सह न स्वाभाविकः सम्बन्धः जातिविशेषेऽनियमात्  
शब्दस्यानियतार्थकत्वदर्शनादार्या हि यवशब्दाद्दीर्घम्बूकविशेषं प्रतियन्ति  
स्तेच्छास्तु कङ्कमिति नियमे तु सर्वः सर्वं प्रतीयात् व्यापाततत्त्वेदं नाना-  
शक्तावपि यव यस्य शक्तिग्रहस्तस्य तदर्थोपस्थितेः ॥ ५५ ॥ समाप्तं शब्दसा-  
मान्यपरीक्षाप्रकरणम् ॥ १८ ॥



## २ अध्याये १ आह्निकम् ।

२३१

शब्दस्य दृष्टादृष्टार्थकत्वेन द्वैविध्यमुक्तं तत्र चादृष्टार्थकशब्दस्य वेदस्य  
प्रामाण्यं परीक्षितं पूर्वपक्षयति । तस्य दृष्टार्थकव्यतिरिक्तशब्दस्य वेदस्य  
अप्रामाण्यं कृतः अन्ततत्वादिदोषात् तत्र च पुत्रेष्टिकारी यागादौ कचित्  
फलानुत्पत्तिदर्शनादन्ततत्वं व्याघातः पूर्वपरविरोधः यथा उदिते  
जुहोति अनुदिते जुहोति समयाध्युषिते जुहोति श्यावोऽस्याहुतिम-  
भ्यवहरति यउदिते जुहोति श्वलोऽस्याहुतिमभ्यवहरति योऽनुदिते  
जुहोति श्यावश्वलावस्याहुतिमभ्यवहरतो यः समयाध्युषिते जुहोति  
अत्र चोदितादिवाक्यानां निन्दानुमितानिष्टसाधनताबोधकवाक्येन सह  
विरोधः पौनरुक्त्यादप्रामाण्यं यथा त्रिःप्रथमा मन्वाह त्रिरुक्तमन्वाहेत्य-  
तोत्तमत्वस्य प्रथमत्व पर्यवसानात् त्रिःकथनेन पौनरुक्त्यं एतेषामप्रामाण्ये  
तद्वृत्तान्तेन तदेकर्तृकत्वेन तदेकजातीयत्वेन वा सर्ववेदाप्रामाण्यं साध-  
नीयमिति भावः ॥ ५६ ॥

सिद्धान्तसूत्रम् । न वेदाप्रामाण्यं कर्मकर्तृसाधनवैगुण्यात् फला-  
भावोपपत्तेः कर्मणः क्रियायावैगुण्यमयथाविधित्वादि कर्तुर्वैगुण्यम-  
विद्वत्त्वं हि साधनस्य हविरादेर्वैगुण्यमप्रोज्जितत्वादि यथोक्त कर्मणः फला-  
भावे ह्यन्ततत्वं न चैवमस्तीति भावः ॥ ५७ ॥

व्याघातं परिहरति । न व्याघात इति शेषः अग्न्याधानकाले उदि-  
तहोमादिकमभ्यप्रेत्य स्त्रीकृत्यानुदितहोमादिकरणे पूर्वोक्तदोषकथनान्न  
व्याघात इत्यर्थः ॥ ५८ ॥

पौनरुक्त्यं परिहरति । च पुनरर्थे अनुवादोपपत्तेः पुनर्नपौन-  
रुक्त्यं निष्प्रयोजनत्वे हि पौनरुक्त्यं दोष उक्तस्थले त्वनुवादस्य उपपत्तेः  
प्रयोजनस्य सम्भवात् एकादशसामधेनीनां प्रथमोत्तमयोः त्रिरभिधाने  
हि पञ्चदशत्वं सम्भवति तथा च पञ्चदशत्वं श्रूयते इममहं आहव्यं पञ्च-  
दशावरेण वाग्वज्रेण च वाधे योऽस्मान्हेष्टि यञ्च वयं द्विष्ट इति ॥ ५९ ॥

अनुवादस्य सार्थकत्वं लोकसिद्धमित्याह । वाक्यविभागस्य अनुवा-  
दत्वेन विभक्तवाक्यस्थायिग्रहणात् प्रयोजनस्वीकारात् शिष्टैरिति शेषः  
शिष्टा हि विधायकानुवादकादिभेदेन वाक्यं विभज्यानुवादकस्यापि स-  
प्रयोजनत्वं सन्त्यन्ते वेदेऽप्येवमिति भावः ॥ ६० ॥



वेदे वाक्यविभागं दर्शयति । मन्त्रब्राह्मणभेदाद्विधा वेदस्तत्र ब्राह्म-  
णस्यायं विभागः विधिवचनत्वेनार्थवादवचनत्वेनानुवादवचनत्वेन च  
वेदस्य विनियोगात् विभजनात् अथवा विनियोगात् भेदात् तथा च वि-  
ध्यादिभेदाद्ब्राह्मणभागस्त्विति शेषः ॥ ६१ ॥

तत्र विधिलक्षणमाह । इष्टसाधनताबोधकप्रत्ययसमभिव्याहृतवाक्यं  
विधिः अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकाम इत्यादि अर्थवादः अर्थस्य प्रयोजनस्य  
वदनं विध्यर्थप्रशंसापरं वचनमित्यर्थः अर्थवादोहि स्तुत्यादिद्वारा विध्यर्थं  
शीघ्रं प्रवृत्तये प्रशंसति ॥ ६२ ॥

तत्र स्तुत्यादिभेदादर्थवादं विभजते । स्तुतिः साक्षाद्विध्यर्थस्य प्रशं-  
सार्थकं वाक्यं यथा सर्वाजितायै देवाः सर्वसजयन् सर्वस्य आर्ष्यं सर्वस्य  
जित्ये सर्वमेवैते नाप्नोति सर्वं जयतीत्यादि अनिष्टबोधनद्वारा वि-  
ध्यर्थं प्रवर्त्तकं निन्दा एषवावप्रथमोयज्ञानां यज्जप्नोतिष्टोमोय एनेना-  
निष्टा अन्येन यजते स गर्ते पतत्ययमेवैतज्जीर्यते प्रवामीयत् इत्यादि  
पुरुषविशेषनिष्ठमिष्टविरुद्धकथनं परकृतिः यथा जुत्वा वषामेवाग्नेऽभि-  
घारयत्यथ प्रपदाज्यं तदुहचरकाध्वर्यवः प्रपदाज्यमेवाग्नेभिघारयत्यग्नेः  
प्राणाः प्रपदाज्यमित्यभिदधतीत्यादि ऐतिह्यसमाचरिततयाकीर्त्तनं  
पुराकृत्यः यथा तस्माद्वा एतेनपुराब्राह्मणावहिः पवसानसासस्तो मम  
स्तौपन् यत्तं प्रतनवासुह इत्यादि ॥ ६३ ॥

अनुवादलक्षणमाह । प्र प्रत्यय अनु पञ्चात्कथनं स प्रयोजनमनुवाद  
इति सामान्य लक्षणं तद्विशेषोविधिविहितस्येति विध्यनुवादोविहितानु-  
वादश्चेत्यर्थः अयं चार्थवादानुवादविभागोविधिसमभिव्याहृतवाक्यानां  
तेन भूतार्थवादरूपाणां वेदान्तवाक्यानामपरिग्रहान्न न्यूनता ॥ ६४ ॥

शङ्कते । शब्दाभ्यासस्य बोधिताशेषकशब्दस्य योऽभ्यासः पुनः प्रयोग  
स्तस्योपपत्तेः सत्त्वात् अनुवादः पुनरुक्तान्न भिद्यतइत्यर्थः ॥ ६५ ॥

समाधत्ते । अनुवादस्य पुनरुक्तान्नाविशेषः अभ्यासात् अभ्यासस्य  
सप्रयोजनत्वान् तत्र दृष्टान्तमाह शीघ्रेति यथा लोके गम्यतामित्युक्त्वा पुन-  
र्गम्यतां गम्यतां इत्यादि कर्माविलम्बादिवोधार्थमुच्यते तथा प्रकृते-  
ऽपीति ॥ ६६ ॥



## २ अध्याये १ आह्निकम् ।

२३३

एवमप्रामाण्यसाधकं निरस्य प्रामाण्यं साधयति । आप्तस्य वेदकर्तुः प्रामाण्यात् यथार्थोपदेशकत्वात् वेदस्य तदुक्तत्वमर्थान्तश्च तेन हेतुना वेदस्य प्रामाण्यमनुमेयं तत्र दृष्टान्तमाह मन्त्रायुर्वेदवदिति मन्त्रोविषादिनाशकः आयुर्वेदभागश्च वेदस्य एव तत्र सम्वादेन प्रामाण्यमहात् तद्दृष्टान्तेन वेदत्वावच्छेदेन प्रामाण्यमनुमेयम् आप्तं गृहीतं प्रामाण्यं यत्र स वेदस्ता- दृशेन वेदत्वेन प्रामाण्यमनुमेयमिति केचित् ॥ ६७ ॥

समाप्तं शब्दविशेषपरीक्षाप्रकरणम् ॥ १६ ॥

इति श्रीविश्वनाथभट्टाचार्यकृतायां न्यायसूत्रवृत्तौ विभागपरी-

क्षानिरपेक्षसङ्गप्रमाणपरीक्षणं नाम द्वितीयस्या-

ह्निकाह्निकम् ॥ १ ॥

अथ विभागसापेक्षप्रमाणपरीक्षणं तदेवचाह्निकार्थः चत्वारि चात्र प्रकरणानि तत्रादौ चतुष्टयपरीक्षाप्रकरणम् । अन्यानि च तत्र तत्र व-  
क्ष्यन्ते तत्राक्षेपसूत्रम् । प्रमाणानां न चतुष्टयं प्रमाणत्वं नोक्तचतुष्कान्य-  
तमत्वव्याप्यं उक्तान्यवृत्तित्वात् तत्रान्यवृत्तित्वं व्युत्पादयति ऐतिह्येत्यादि  
ऐतिह्यं इति ह्येचुरित्यनेन प्रकारेण यदुच्यते तद्वि अनिर्दिष्टप्रवक्तृकं  
परम्परागतं वाक्यं यथा वटे वटे यच्च इत्यादि तस्य चाप्नोक्तत्वानिश्चयान्न  
शब्देऽन्तर्भाव इति भावः अर्थापत्तिरनुपपद्यमानेनार्धेनोपपादकवत्त्वं यथा  
वृष्ट्या भेषजानं वृष्ट्या सह भेषस्य वैयधिकरणत्वाच्च व्याप्तिरिति नानुमाने-  
ऽन्तर्भावः सम्भवो भूयः सहचाराधीनज्ञानं यथा सम्भवति ब्राह्मणे विद्या-  
सम्भवति सहस्रे शतं अत्र च व्याप्तिर्नापेक्षितेत्याशयः अभावस्तु विरोध्य-  
भावज्ञानाधीनविरोध्यन्तरकल्पनं यथा नकुलभावज्ञानेन नकुलविरो-  
धिनी व्यालस्य कल्पनम् अत्रापि व्याप्तिर्नापेक्षितेत्याशयः अथवा क-  
र्णभावादिना कार्याभावादिज्ञानम् अभावः भावनिष्ठव्याप्तिरेवानुमाना-  
ह्निकेत्याशयः ॥ १ ॥



सिद्धान्तसूत्रम् । न प्रमाणचतुष्टयस्य प्रतिषेधः शब्दे ऐतिह्यस्या-  
नर्थान्तरभावादन्तर्भावात्प्रामाण्यत आप्रोक्तत्वज्ञानसम्भवादस्तुत आप्रोक्तत्व-  
ज्ञानं न शब्दे कारणं किन्त्वाकाङ्क्षादिज्ञानं योग्यताप्रमाधीना च शब्द-  
प्रमेति अर्थापत्त्यादेरनुमानेऽन्तर्भावः उपपादककल्पनं हि विना व्याप्ति-  
ज्ञानं न सम्भवति वृष्टित्वादावपि मेघजन्यत्वव्याप्तिरस्येव सम्भवोऽपि  
व्याप्तिमूलकत्वादनुमानं व्यत्यनपेक्षित्वे च व्यभिचारादप्रमाणम् एव-  
मभावो व्याप्तिसापेक्षोऽनुमानम् अभावनिष्ठव्याप्तेरनुमानाङ्गत्वे न वि-  
रोध इति भावः ॥ २ ॥

सत्यर्थापत्तेः प्रामाण्ये वह्निर्भावान्तर्भावाचिन्ता तदेव तु नास्तीति  
तटस्थः शङ्कते । असति मेघे वृष्टिर्न भवतीत्यनेन सति मेघे वृष्टिर्भवतीत्य-  
र्थापत्तिविषयस्तत्र च न प्रामाण्यं सत्यपि मेघे वृष्ट्यभावादनैकान्तिक-  
त्वात् ॥ ३ ॥

समाधत्ते । अर्थापत्तेर्नानैकान्तिकत्वमिति शेषः असत्सु मेघेषु न  
वृष्टिरित्यनेन सति मेघे वृष्टिरिति तत्र च वृष्ट्या मेघज्ञानसंभिसतं यत्र च  
मेघे न वृष्टिज्ञानं तत्रानर्थार्थापत्तावर्थापत्तिभ्रमः नचेतावता प्रामाण्यविरोधः  
व्याख्यादिभ्रमाद्भ्रमानुमिति दर्शनादनुमानस्याप्यप्रामाण्यापत्तेः नानै-  
कान्तिकत्वमर्थापत्तेरिति भाष्यस्यावतारणिकां सूत्रादौ केचिन्निखन्ति ॥ ४ ॥

प्रतिबन्धिसम्यक् । त्वदुक्तरीत्या त्वदीयप्रतिषेधस्याप्यप्रामाण्यं स्याद-  
नैकान्तिकत्वात् यत्र कुत्रचिदनैकान्तिकत्वस्य प्रतिषेधासाधकत्वादनैका-  
न्तिकत्वात् ॥ ५ ॥

अथ यत्र कुत्रचिदनैकान्तिकत्वं न दोषाय किन्तु स्वविषये इति यदि  
तदार्थापत्तेरपि नाप्रामाण्यमित्याह । अनैकान्तिकत्वस्य स्वविषये साध-  
कत्वादयदि स्वहेतोः प्रामाण्यं मन्यसे तदार्थापत्तेरपि स्वविषये प्रामाण्य-  
मिति ॥ ६ ॥

अभावस्य न प्रमाणेऽन्तर्भाव इति तटस्थः शङ्कते । अभावनामकं  
प्रमाणं तदा स्याद्यदि तस्य प्रमेयं सिद्धोत्तदेव तु नास्ति अभावस्य तुल्य-  
त्वान्न तत्र प्रमाणप्रवृत्तिरिति भावः ॥ ७ ॥

सिद्धान्तसूत्रम् । तस्याभावप्रमाणस्य प्रमेयसिद्धिः भावप्रधानो निर्देशः



## २ अध्याये २ आह्निकम् ।

२३५

किन्तु प्रमेयमित्यत्राह लक्षितेष्विति लक्षितेषु घटादिष्वलक्षितानां तत्-  
प्रमेयत्वसिद्धिः अलक्षितानां कथं प्रमेयत्वमत आह अलक्षणलक्षितत्वा-  
दिति यद्यप्यभावस्य गुणकर्मादिभिर्लक्षणं न सम्भवति तथाप्यलक्षणेनैव  
तल्लक्षितं भवति अनीलमानयेत्युक्ते नीलाभावो हि इतरव्यावर्तकतया  
लक्षणम् अतोऽभावोनाप्रामाणिक इति भावः ॥ ८ ॥

आक्षिप्य समाधत्ते । असति प्रतियोगिन्यभावो वक्तुं न शक्यते सति  
च प्रतियोगिनि कथं तद्भाव इति चेन्नान्यत्र लक्षणेन सत्त्वेनार्थात्मति-  
योगिनः उपपत्तेरभावोपपत्तेः न हि तत्रैव प्रतियोगिनः सत्त्वमपे-  
क्षितम् ॥ ९ ॥

शङ्कते । लक्षितेषु लक्षणस्य तत्सिद्धेः व्यावर्त्तकत्वसिद्धेरलक्षितेषु  
अभावेपु अहेतुः अहेतुत्वं व्यावर्त्तकहेतुत्वम् अभावस्य लक्षणाभावाद्भिन्न-  
रूपस्य न व्यावर्त्तकत्वमिति भावः ॥ १० ॥

समाधत्ते । पूर्वपक्षो न युक्तः प्रतियोगिनो लक्षणस्य यदवस्थित-  
मवस्थानं तस्यापेक्षाय तद्वशसिद्धेः अयमर्थः प्रतियोगिस्वरूपज्ञानादेवा-  
भावस्वरूपनिरूपणसम्भवान्नाभावलक्षणापेक्षेति भावः ॥ ११ ॥

प्रमेयसिद्धिरिति । मण्डूकप्लुत्यानुवर्त्तते प्रतियोगिन उत्यत्तेः प्राक्  
अभावस्य उपपत्तेः उपलम्भात् घटो भविष्यतीत्यादिप्रागभावविषयकप्रत्य-  
क्षस्य सार्वभौकिकत्वादिति भावः चकारेण ध्वंसादेरपि प्रत्यक्षसिद्धत्वं  
समुच्चीयते चेष्टाया निर्व्यापारत्वेन न प्रामाण्यं वस्तुतो लिप्यादिवत्साङ्केति-  
कत्वात्तस्याप्यनुमाने शब्देवान्तर्भाव इति ॥ १२ ॥

समाप्तं प्रमाणचतुष्टयप्रकरणम् ॥ १० ॥

वेदस्य प्रामाण्यमात्रप्रामाण्यात्सिद्धं न चेदं युज्यते वेदस्य नित्यत्वा-  
दित्याशङ्कायां वर्णानामनित्यत्वात् कथं तत्समुदायरूपस्य वेदस्य नित्यत्व-  
मित्याशयेन शब्दानित्यत्वप्रकरणमारभते तत्र सिद्धान्तस्त्वम् । शब्दोऽनित्य  
इत्यादिः आदिमत्त्वात् सकारणकत्वात् ननु न सकारणकत्वं कण्ठताल-  
द्यभिघातादेर्व्यञ्जकत्वेनाप्युपपत्तेरत आह ऐन्द्रियकत्वादिति सामान्य-  
वत्त्वे सति वहिरिन्द्रियजन्यलौकिकप्रत्यक्षविषयत्वमित्यर्थः परे तु ऐन्द्रि-  
यकत्वं लौकिकप्रत्यक्षविशेष्यत्वं सामान्यसमवाययोस्तु न तथात्वं जाति-



त्वादिना विशेषत्वसम्भवेऽपि जातित्वादेरप्रत्यक्षत्वान्न व्यभिचारः मनस  
इन्द्रियत्वाभावाच्च नात्मनि व्यभिचार आत्मन ऐन्द्रियकत्वाभावाद्धेत्याहुः  
अप्रयोजकत्वमाशङ्क्याह कृतक्रेति कृतके घटादौ यथा उपचारो ज्ञानं  
तथैव कार्यत्वप्रकारकप्रत्यक्षविषयत्वादित्यर्थः तथा च कार्यत्वेनानाहार्य-  
सार्वालौकिकप्रत्यक्षवत्त्वादनित्यत्वमेव सिध्यति केचित्तु उपचाराद्विनाशि-  
त्वात् कृतकवत् इति दृष्टान्त इति परे तु कृतकवदुपचारात् कृतकसुख-  
दुःखादिवह्यवहारात् यथाहि सुखादौ तीव्रमन्दादिव्यवहारः शब्देऽप्येवं  
न तु नित्ये तथेत्याहुः ॥ १४ ॥

यथाश्रुते हेतूनां व्यभिचारमाशङ्कते । नोक्ता हेतवः घटाभावस्य  
घटध्वंसस्य नित्यत्वाद्विनाशित्वादादिभ्यश्च व्यभिचारि ऐन्द्रियकत्वं सा-  
मान्ये व्यभिचारिनित्येष्वनित्यवदुपचारात् यथा घटाकाशसुप्तज्ञम्  
अहं सुखीजात इत्यादि ॥ १५ ॥

प्रथमे व्यभिचारं परिहरति । तत्त्वस्य पारमार्थिकस्य भाक्तस्य च  
नानात्वस्य भेदस्य विभागात् विवेकान्न व्यभिचारः ध्वंसे हि उत्पत्ति-  
मत्त्वलक्षणम् आदिभ्यश्च तैकालिकत्वरूपनित्यत्वाभावरूपञ्चानित्यत्वम-  
स्येवाविनाशित्वान्नित्यत्वमौपचारिकमतो न व्यभिचारः आदिमत्त्वं प्राग-  
भावावच्छिन्नसत्त्वं न चैतदभाव इति वार्थः ॥ १६ ॥

द्वितीये व्यभिचारमुद्धरति । सन्तानस्यानुमानेऽनुमिति करणे लिङ्गे  
विशेषणात् सन्तानः सन्तन्यमानः एकधर्मावच्छिन्नत्वेन ज्ञायमानः तेन  
सामान्यवत्त्वे सतीति विशेषणीयमिति ॥ १७ ॥

तृतीये व्यभिचारं वारयति । आकाशे हेतुर्नास्त्येव आकाशे प्रादे-  
शिकत्वव्यवहारस्तु गौणः प्रदेशशब्देन कारणद्रव्यस्य कारणवतो द्रव्यस्या-  
भिधानान्न चाकाशं तादृशं तादृशत्वे वा साध्यसत्त्वान्न व्यभिचारः एवं  
सुखीजात इत्यादौ सुखाद्युत्पत्तिरेव विषय इति भावः ॥ १८ ॥

न चोक्तहेतूनामप्रयोजकत्वं विपक्षबाधकसत्त्वादित्याह । शब्दो यदि  
नित्यः स्यादुच्चारणात् प्रागप्युपलभ्येत श्रोत्र सन्निकर्षसत्त्वान्नचात्र प्रति-  
बन्धकमस्तीत्याहावरणेति आवरणादेः प्रतिबन्धकस्यानुपलब्ध्याऽभाव-  
निर्णयात् देशान्तरगमनन्तु शब्दसामूर्तत्वाच्च सम्भाव्यते अतीन्द्रियानल-



## २ अध्याय २ आह्निकम् ।

२३७

प्रतिबन्धकत्वकल्पनामपेक्ष्य शब्दानित्यत्वकल्पनेव लघीयसीति भावः ॥ १९ ॥

भ्रान्तस्य पूर्वपक्षपरं स्वरूपवयम् । अनुपलम्भादनुपलब्धिसङ्घातवद्भा-  
वरणानुपपत्तिरनुपलम्भात् यथा त्वया आवरणस्यानुपलब्ध्या अभाव  
इत्युच्यते तथा आवरणानुपलब्धेरनुपलम्भात्तदभाव आवरणोपलब्धिरिव  
स्यात् यदि वा आवरणानुपलब्धेरनुपलब्धेऽपि नावरणानुपलब्धेरभाव-  
स्तदा आवरणस्यानुपलम्भादपि नावरणस्यानुपपत्तिरित्यर्थः ॥ २० ॥

सिद्धान्तस्त्वयम् । आवरणानुपलब्धेरनुपलम्भादावरणोपलब्धिरिति जात्यु-  
त्तरम् अहेतुः न मनसि प्रतिषेधसाधनम् अनुपलब्धेरावरणानुपलब्धेरनुप-  
लम्भात्मकत्वादुपलम्भाभावात्मकत्वात्तस्य च मनसैव सुग्रहत्वात्तदनुपलब्धिर-  
सिद्धेति भावः ॥ २१ ॥

सप्रतिपक्षमाशङ्कते । शब्दो नित्यः अस्मिन् शब्दाद्गगनवदिति भावः ॥ २३ ॥

न सप्रतिपक्षस्त्वदीयहेतोरनैकान्तिकत्वादित्याह । अस्मिन् शब्दे न  
शब्दनित्यत्वसाधकं कर्मणि व्यभिचारात् ॥ २४ ॥

अनैकान्तिकमपि साधकं स्य दत्ताह । अनैकान्तिकस्य साधकत्वेऽणोः  
परमाणोर्नित्यत्वं न ह्यद्रूपत्वादिना तत्त्वानित्यत्वानुमानापत्तेरि-  
त्यर्थः ॥ २५ ॥

शङ्कते । गुरुणा शिष्याय विद्वायाः सम्प्रदानात् तथा च शब्दस्य प्रक-  
सत्त्वसिद्धं तथा च तावत्कालं स्थिरं चैनं कः पञ्चान्नाभ्यसिष्यतीति  
न्यायान्नित्यत्वमर्थसिद्धमिति भावः ॥ २६ ॥

सिद्धान्तस्त्वयम् । शिष्ये उपसन्ने गुरुरध्यापयति यदि च शब्दो नित्यः  
स्यात्तदा शिष्यागमनानन्तरमध्यापनात् पूर्वमपि शब्दोपलब्धेतेत्यनुपल-  
ब्ध्या च नास्ति शब्दइत्यतस्त्वदुक्तो न हेतुः ॥ २७ ॥

पूर्वपक्षस्त्वयम् । सदीयहेतोः प्रतिषेधो न युक्तः कुतः अध्यापनात्  
यद्यनन्तरालकाले शब्दो न स्यात् कथमध्यापनं घटेति अनुपलब्धिस्तु शब्दस्य  
कण्ठतात्वाद्यभिघातरूपव्यञ्जकाभावादुपपद्यत इति भावः आचार्यास्तु  
स्वरूपवयमेवं प्रचक्षते विभक्तिव्यत्यासादहेतोस्तदनन्तरालानुपलब्धिरर्थ-  
स्तथा च हेतोः स्वरूपाभावात्तदनन्तरालस्य स्वरूपसंस्थानुपलब्धिरतो न



दानमित्यर्थः प्रतिषेधो न युक्तः न हि दानं समाभिप्रेतं कित्वध्यापनं  
तच्च विद्यमानस्य शब्दस्यैवेति भावः ॥ २८ ॥

सिद्धान्तसूत्रम् । अन्यतरस्य पक्षस्थानित्वत्वसाधकस्याध्यापनाद्यः  
प्रतिषेधः स न सम्भवति उभयोः पक्षयोरध्यापनस्य समानत्वादिति शेषः  
अध्यापनं हि गुरुच्चारणानूच्चारणं शिष्योच्चारणातुकूलोच्चारणं वा तच्च  
स्थैर्यास्थैर्यपक्षयोस्तुल्यं न शब्दनित्यतायाः साहायकं विधातुमलं न ह्यध्या-  
पनं दानं येन स्वस्वत्वध्वंसपरस्वत्वापादनार्थं तस्य स्थैर्यमाशङ्कनीयं न वा  
सम्भवति बहूनामेकदा स्वत्वविरोधात्परस्वदानासम्भवाच्च अपि तु नृत्या-  
ध्यापनोदाविवोपदेशमात्रमिति भावः ॥ २९ ॥

पूर्वपक्षसूत्रम् । यद्वि स्थिरं तदभ्यस्यमानं दृष्टं यथा दशकत्वोरूपं  
पश्यति एवं शतकत्वोनुवाकमधीत इत्यभ्यासात्स्थैर्यं शब्दस्येति भावः  
॥ ३० ॥

उत्तरयति । पूर्वपक्षेन युक्तः कुतः अन्यत्वे भेदेऽपि शब्दानां अध्य-  
यनाभ्यासस्य उपचारात्सम्भवात् न ह्यभ्यासः स्थैर्यं साधयति द्विर्जुहोति-  
ति नृत्यतीत्यादौ भेदेऽप्यभ्यासदर्शनादिति भावः ॥ ३१ ॥

अन्यतैव जगति नास्तीति कथमन्यत्वेऽप्यभ्यासोपपत्तिरिति तटस्य  
आशङ्कते । यदन्यस्मादन्यदुच्यते तत्स्वस्मादनन्य दभिन्नं तत्कथमन्यङ्गैदा-  
भेदयोर्विरोधादिति भावः स्वाभेदस्यावश्यकत्वमिति हृदयम् ॥ ३२ ॥

समाधत्ते । तदभावेऽन्यत्वस्याभावेऽनन्यतापि नास्ति तयोर्भेदा-  
भेदयोः सिद्धेः परस्परसापेक्षत्वात् वस्तुतस्तु तयोर्मध्यदतरस्य एकतरस्य  
अनन्यत्वस्य इतरापेक्षसिद्धेः इतरत्वस्य भेदस्य ज्ञानापेक्षासिद्धिर्यस्य तादृ-  
शत्वादित्यर्थः ॥ ३३ ॥

शङ्कते । शब्दोनित्यइत्यादिः अनुपलब्धिरप्रत्यक्षमज्ञानं वा ॥ ३४ ॥

आद्ये प्रतिवन्निमाह । यद्यप्रत्यक्षत्वादभावसिद्धिस्तदा अवर्ण-  
कारणस्याप्रत्यक्षत्व दशवर्णं न स्यादिति सततवर्णप्रसङ्गइत्यर्थः ॥ ३५ ॥

द्वितीयेत्याह । अनुमानादिना उपलभ्यमाने विनाशकारणे अनु-  
पलब्धे रभावत्त्वदोयो हेतुरनुपदेशः असाधकः असिद्धत्वात् जन्यभावत्वेन  
विनाशकल्पनमिति भावः ॥ ३६ ॥



## २ अध्याये २ आङ्गिकम् ।

२३६

सिद्धान्तिनः सूत्रान्तरम् । शब्दायमाने कांक्षादौ पाणिरूपनिमित्तस्य प्रक्षेपात् संयोगाच्छब्दाभावे उपलब्धमाने शब्दाभावकारणस्य नानुपलब्धिरिति यथा श्रुतानुयायिनः परेतु पाणिरूपनिमित्तस्य प्रक्षेपः सम्बन्धो यत्र स पाणिजः शब्दः अर्थात् उत्तरशब्दः ततः शब्दाभावे शब्दध्वंसे सति न विनाशकारणानुपलब्धिरित्यर्थ इत्याहुः अन्येतु पूर्वसूत्रे-शब्दस्य तावदेव गत्तकः संस्कारविशेषो हेतुस्तस्य तीव्रतीव्रतरमन्दमन्दरतत्वाच्छब्दोऽपि तादृशः तत्र चोत्तरोत्तरशब्दानां पूर्वपूर्वशब्दनाशकत्वं बलवत् इत्यर्थः ननु तादृशसंस्कारेण नास्तीत्यत्राह पाणीति नानुपलब्धिः संस्कारस्येति शेषः पाणेर्निमित्तस्य प्रक्षेपात् घटादिसंयोगात्संस्काररूपकारणाभावद्वारा शब्दाभावे शब्दानुत्पत्तौ नानुपलम्भः संस्कारस्येत्यर्थ इत्याहुः ॥ ३७ ॥

ननु घटादिपाणि संयोगस्य शब्दनिवर्तकत्वे घटाद्याश्रयएव शब्दः स्यादित्याशङ्कयामाह । उक्तः प्रतिषेधो न सम्भवति अस्पर्शत्वात् शब्दाश्रयस्येति शेषः शब्दोहि न स्पर्शवद्विशेषगुणः अग्निसंयोगासमवायिकारणकत्वाभाववदकारण गुणपूर्वककार्यत्वादित्याशयः ॥ ३६ ॥

एतदेव व्युत्पादयितुमाह । समासे स्पर्शादिसमुदाये साहित्येन शब्दो वर्तत इति न युक्तं विभक्त्यन्तरस्य विभागान्तरस्य तारमन्दादेरुपपत्तेः अयं मर्थः एकस्मिन्नेव शब्दादौ तारमन्दादि नानाशब्दा जायन्ते गन्धादयस्तु विनाग्निसंयोगं न परावर्त्तन्त इति भावः ॥ १०५ ॥ समाप्तं शब्दानित्यत्वप्रकरणम् ॥ ४० ॥

प्रसङ्गाच्छब्दपरिणामवादं दूषयितुं संशयं प्रदर्शयति । इकोयणचीत्यादिना इकारादेर्विकारो यकारादिति केचित् सारं वा व्याचक्षते परेतु इकारे प्रयोक्तव्ये यकारः प्रयोक्तव्य इत्यादेशमादिशन्ति अतश्च वर्णाविकारिणो न वेति संशयः विकारश्च स्वरूपस्य विनाशेऽविनाशे वा द्रव्यान्तरारम्भकत्वं यथा दुग्धादेर्द्व्यारम्भकत्वं बीजादेर्ब्रह्माद्यारम्भकत्वं च सुवर्णादेरपि लौहघातजन्यावयवसंयोगनाशदवयविनो नाशे सत्येव कुण्डलारम्भकत्वं कपालादेश्च स्वरूपाविनाशेन घटाद्यारम्भकत्वम् ॥ ४१ ॥

तत्र विकार निराकरणाय सूत्रम् । न वर्णाविकारिणस्तथा सति



तत्प्रकृतेरुपादानं त्वामितस्य विवृष्ट्या विकारस्यापि विवृष्ट्यापत्तेः सह-  
त्वावयवारव्यवयविनो सहदल्यत्ववत् ह्रस्वकारारव्यकारापेक्षया दीर्घ-  
कारारव्यकारस्य विवृष्टिः स्यादित्यर्थः तस्मादादेशपक्षः श्रेयानिति  
भावः ॥ ४२ ॥

आक्षिपति । उक्तो हेतुर्न युक्तः विकाराणां प्रकृत्यपेक्षयान्यूनत्वस्य  
समत्वस्याधिकस्य चोपपत्तेर्दर्शनात् यथा हलकपरिमाणपेक्षया तद्वि-  
कारस्तन्तुरल्पपरिमाणः यथा वा न्यग्रोधबीजादुत्कृष्टे न नारिकेलीबी-  
जेन न्यग्रोधादल्यो नारिकेलीतर्ज्जन्यते कनकादिसमपरिमाणं कटकादि  
च यथा वा न्यूनाधिकनारिकेलीबीजाभ्यां समौ वृक्षौ न्यूनपरिमाणञ्च  
वटबीजात् महान् वटतरुरिति ॥ ४३ ॥

समाधत्ते । नोक्तं समाधानं युक्तं अतुल्यप्रकृतीनां भिन्नप्रकृतीनां  
हि विकाराणां विकल्पः वैलक्षण्यं स्यादिति न हि बीजादेर्ह्रास-  
वृद्धादिना वृक्षादेर्ह्रासवृद्धादिकं प्रकृतान् सदुक्तवैलक्षण्यन्तु तत्प्राप्यस्ति तथा  
च त्वदुक्तमुपचारच्छलमिति भावः ॥ ४४ ॥

शङ्कते । द्रव्यत्वेन न्यग्रोधादिप्रकृतीनां तुल्यत्वेऽपि विकारवैषम्यं  
यथा एवमेव वर्णत्वेन तुल्ययोरपि ह्रस्वदीर्घयोर्द्वौ विकारोयकारस्तस्य  
अविकल्प ऐकरूप्यं नानुपपन्नमित्यर्थः ॥ ४५ ॥

समाधत्ते । नात्र द्रव्यविकारतुल्यता विकाराणां हि अयं धर्मो  
प्रकृत्यनुविधानं तज्ज्ञेदे भेद इति प्रकृते तदनुपपत्तिः ह्रस्वत्वदीर्घत्वादिना  
प्रकृतिभेदेऽपि कार्यभेदाभावात् ॥ ४६ ॥

इतश्च न विकार इत्याह । विकारप्राप्तस्य न पुनः प्रकृतिरूपता  
वृष्टा न खलु दधि चीरतां पुनरापद्यते इकारस्तु यकारतां प्राप्तः  
पुनरिक्कारतामापद्यते दध्यत्वेत्युक्ता पुनरपि दधि अत्वेत्युच्यते एवेति  
भावः ॥ ४७ ॥

आक्षिपति । उक्तो हेतुर्न युक्तः सुवर्णादिकं हि कटकीभावं वि-  
हाय कुण्डलतामापन्नं पुनः कटकतामापद्यत एवेति भावः ॥ ४८ ॥

निराकरोति । सुवर्णविकारस्यत्वे हि सुवर्णत्वादिना प्रकृतिता  
न तु कटकत्वादिना तत्रोभयमपि सुवर्णभावं न जहाति यदि हि सुव-



## २ अध्याये २ आङ्गिकम् ।

२४१

सुवर्णतामपहाय कटकतामापन्नं पुनः सुवर्णता तदा व्यभिचारः शक्येत  
न चैवं प्रकृते तु इकारतां हित्वा यकारतां प्राप्तस्याप्रोकारतापत्तिरस्ये-  
वेति दीपोदुःपरिहर इति भावः ॥ ४८ ॥

अविकारे मूलयुक्तिमाह । वर्णानां नित्यत्वे विकारासम्भवादनि-  
त्यत्वे चाधिरस्थायित्वेनेकारप्रत्यक्षानन्तरमिकारनाशाद्विकारानुपपत्ति-  
रित्यर्थः ॥ ५१ ॥

अत्र विकारवादी नित्यत्वमतमालम्ब्य परिहरति । विकाराणां  
प्रतिषेधो न युक्तः नित्यानां धर्मविकल्पाद्धर्मस्य नानाविधत्वादतीन्द्रिय-  
त्वात् चकारैषैन्द्रियकत्वं समुच्चीयते यथा हि नित्यानामाकाशादीनामती-  
न्द्रियत्वेऽपि गोत्वादीनां नित्यत्वमेवमन्येषां नित्यानामविकारित्वेऽपि  
वर्णानां विकारित्वं स्यादिति ॥ ५३ ॥

अनित्यत्वमालम्ब्य स साह । अनवस्थायित्वेऽपि वर्णानां यथाप्र-  
त्यक्षं भवत्येवं विकारोऽपि स्यादिति भावः ॥ ५४ ॥

उभयलोत्तरयति । उक्तः प्रतिषेधो न युक्तः विकारधर्मित्वे नित्य-  
त्वासम्भवात् विकारोल्लूत स्वरूपपरित्यागेन रूपान्तरापत्तिः तथात्वे च  
नित्यत्वविरोधात् न हि वृद्धादेः कपालाद्यपादेयत्ववत्प्रकृतेः सम्भवति  
यकारकाले इकारानुपलब्धेः अनित्यत्वपक्षेऽपि प्रतिषेधो न युक्तः प्रत्यक्षं  
हि वर्णस्य द्वितीयक्षणे युज्यते विकारस्तु कालान्तरोयो न युज्यते दधीति  
शब्दानन्तरमत्वेत्यादि शब्देन तस्य नाशादिति भावः ॥ ५५ ॥

इतश्च विकारानुपपत्तिरित्याह । विकाराणां हि प्रकृतिनियमो  
यथा क्षीरदध्नोः प्रकृति विकारभावो न तु वैपरीत्यं प्रकृतेतु दध्यत्वे-  
त्यादौ विकारो यकारप्रकृतिर्विध्यतीत्यादौ तु यकारइकारप्रकृतिरिति  
भावः ॥ ५६ ॥

अत्र छलवादी शङ्कते । अनियमो य उक्तः स न युक्तः कुतः अनियत-  
त्वस्य नियमादित्यर्थः ॥ ५७ ॥

समाधत्ते । अनियमे नियमात् यस्त्वया नियमप्रतिषेधः कृतः स न युक्तः



कुतः नियमानियमयोर्विरोधात् अनियमोहि नियमाभावस्तस्मिन्सति नि-  
यमासम्भवादिति भावः ॥ ५८ ॥

तदेवं वर्णानां प्रकृतिविकारभावं निरस्य स्वपक्षे विकारव्यवहार-  
सुपपादयति । त्वं शब्दः पुनरर्थे एतेभ्यः पुनर्जर्णविकारोपपत्तेर्वर्णविकारस्य  
एकवर्णप्रयोगेण वर्णान्तरप्रयोगस्य उपपत्तेर्वर्णविकार इति व्यवहियते  
तानेवाह गुणान्तरेति गुणान्तरापत्तिर्धर्मिणि सत्येव धर्मान्तरापत्तिः  
यथोदात्तेऽनुदात्तत्वं उपसर्गो धर्मि निवृत्तौ धर्म्यन्तरप्रयोगः यथास्ते-  
भूः ह्रासो दीर्घस्य ह्रस्वत्वं वृद्धिः ह्रस्वस्य दीर्घत्वं लेशः अल्पत्वं यथाऽस्ते-  
रकारलोपः श्लेष आगमः एतैः कारणैर्विकारव्यवहार इति ॥ ५९ ॥

समाप्तं शब्दपरिणामप्रकरणम् ॥ २२ ॥

शाब्दबोधे पदजन्यपदार्थोपस्थितेहेतुत्वात्तदुपपादनाय पदार्थे  
निरूपणीये पदमादौ निरूपयति । ते वर्णा विभक्त्यन्ताः पदं वृद्धत्वम-  
विवक्षितं विभक्त्येव सत्त्वमनपेक्षितं विभक्त्येव सुप्रिङ्ङरूपा वस्तुतस्तु नेदं  
पदं शाब्दबोधोपयोगि किन्विदमाकाङ्क्षास्वरूपमथ वा विभक्तिर्दत्तिरनः  
सम्बन्धस्तेन वृत्तिरुत्तमं पदत्वमिति इत्यञ्च पदं निरूप्य तदर्थनिरूपणं  
सङ्गच्छते यत्तु प्रसङ्गात् पदार्थनिरूपणमिति तन्न पदनिरूपणस्यासङ्ग-  
तत्वापत्तेः एक सूत्रस्य प्रकरणत्वाभावात् ॥ ६० ॥

तत्र पदे निरूपिते तद्वाच्यत्वं पदार्थत्वं निरूपितं तत्रापि धात्वाद्य-  
र्थस्य निर्विवादत्वाद्वादिपदार्थं निरूपयितुमाह । व्यक्तिर्गवादिः जातिः  
गोत्वादिराकृतिरवयवसंस्थानविशेषः तेषां सन्निधिः सामीप्यं मिलनं तत्र  
सति उपचारात् ज्ञानात् तथा च त्रयाणां युगपत्प्रत्ययात्किमेतेषां प्रत्येकं  
पदार्थ उत ससस्मिति संशयइत्यर्थः इदं भाष्यमिति केचित् वस्तुतस्तु  
दुर्बोधादिस्वरसात् सूत्रमेव तदर्थ इत्यंशस्तु भाष्यकतः पूरणमिति प्रति-  
भाति ॥ ६१ ॥

तत्र व्यक्तिशक्तिवादिनो मतमाह । पदार्थ इति शेषः उक्तानां उप-  
चारात् व्यवहारात् अनुबन्धः प्रजननं या गौर्गच्छतीत्यादि व्यवहारोव्य-  
क्तावेव जात्याकृत्योरमूर्त्तत्वात् एवं गवां समूहः गां ददाति गां प्रतिगद-



## २ अध्याये २ आह्निकम् ।

२४३

ह्राति दश गावः गौर्वर्द्धते कशा गौः कपिलः गौः गौर्लोहितं गौः प्रसूत-  
इत्यादिव्यवहाराणां व्यक्तावेव सम्भवात् समासः सस्यगासनं सस्यन्वो-  
ऽनुबन्धइत्यर्थे गौरास्तो गोर्मुखमित्युदाहरणीयम् ॥ ६२ ॥

तद्वृषयति । न व्यक्तौ शक्तिर्व्यक्तिमात्रस्यानवस्थानात् अव्यवस्था-  
नम् ॥ ६३ ॥

व्यक्तिमात्रस्य शक्यत्वे हि गवादिपदाद्यत्किञ्चिद्व्यक्तेरुपस्थितिः स्यादतो  
गोत्वविशिष्टाव्यक्तिर्वाच्या तथा च नाट्यहीत विशेषणान्यायात् जातावेव  
शक्तिरस्तु कथं तर्हि व्यक्तिबोध इत्यग्निमसूत्रम् । अतद्भावेऽपि तत्पदाश-  
क्यत्वेऽपि तदुपचारः तच्छब्दव्यपदेशो यथा सहचरणादितो ब्राह्मणादौ  
यज्यादिपदप्रयोगः सह चरणात्मयोगविशेषाद्यदि भोजयेत्यत्र यद्विध-  
ब्राह्मणे यद्विधश्च प्रयोग एवं स्थानान्मन्त्राः क्रोशन्तीति मन्त्रस्य पुरुषे ताद-  
व्यात्करोतीति कटाथकवीर्ये कटस्यासिद्धत्वेन कारकत्वायोगात् यमस्य  
वृत्तादनुशासनादितो राजनि यम इति मानात् आढकेन मिताः शक्तव  
आढकशक्तव इति धारणात्तुलया धृतं चन्दनं तुलाचन्दनमिति स. मोष्या-  
ङ्गगायां गावश्चरन्तीति कृष्णद्रव्ययोगात् शकटे कृष्णः शकट इत्युदाहर-  
णीयं प्राणसाधनादन्नं प्राणा इति आधिपत्याद्राजैवास्य कुलमिति कुला-  
धिपतिः प्रतीयते तथा च यथा गङ्गादिपदाङ्गातीरत्वादिना बोधस्तथा  
गोपदादितो गोत्वविशिष्टस्य लक्षणया बोध एतेन युगपद्वृत्तिद्वयविरोध  
एकपदार्थयोः परस्परानन्वयश्च प्रत्युक्तः गोत्वत्वेन रूपेण शक्तिपहात्तयै-  
वोपस्थितिरतो निष्कारकपदार्थोपस्थितिरपि नास्तीति मन्त्रव्यम् ॥ ६४ ॥

आकृतिरेव शक्येति मतमुपन्यस्यति । आकृतिः पदार्थः कुतः सत्त्वस्य  
प्राणिनो गवादेर्व्यवस्थानं सिद्धेर्व्यवस्थितत्वसिद्धे स्तदपेक्षत्वादाकृतपेक्षत्वा-  
दयमश्चौ गौरयमित्यादिव्यवहारस्याकृत्यपेक्षत्वादाकृतिरेव शक्येत्यर्थः ॥ ६५ ॥

फलतस्तद् वृषयति । ऋद्धवके व्यक्ताकृतियुक्तेऽपि प्रोक्षणादीनामप्रस-  
ङ्गादप्रसङ्गनाञ्जातिः पदार्थ इतरथा ऋद्धवकस्यापि व्यक्तित्वाद्वाकृति-  
सत्त्वाच्च वैध प्रोक्षणादिप्रसङ्गादिति भावः ॥ ६६ ॥

केवलव्यक्ताकृतिशक्तिपक्षं निराकृत्य केवलजातिपक्षं निराक-  
रोति । न जातिमात्रं पदार्थः जात्यभिव्यक्तेर्जातिशब्दबोधस्य आकृति-



व्यक्त्यपेक्षत्वादाकृतिव्यक्तिविषयकत्वनियमात्तयोरपि वाच्यत्वमावश्यकं शक्तिं  
विना तज्ज्ञानासम्भवात् न च गोत्वप्रकारकतादृशाकृतिविशिष्टशाब्द-  
त्वस्य कार्यतावच्छेदकत्वात्तद्ज्ञानमिति वाच्यं तथा सति गवादिपदस्य  
घटत्वादावपि शक्तिप्रसङ्गस्तस्मात्पदं स्ववाच्यमेवोपस्थापयति ॥ ६७ ॥

इत्यञ्च तयाणामपि वाच्यत्वं सिद्धमित्याह । तद्वदेनैकैकमात्रपदा-  
र्थत्वव्यवच्छेदः पदार्थ इत्येकवचनन्तु तिसृष्वप्येकैव शक्तिरिति सूचनाय  
विभिन्नशक्तौ कदाचित्कस्य चिदुपस्थितिः स्यात् शक्तेस्तुल्यत्वेऽपि व्यक्ते-  
र्विशेष्यत्वात् प्राधान्यं तथैव शक्तिग्रहात् नचाकृत्यादिसाधारणशक्त्यता-  
वच्छेदका भावान्न शक्त्यैक्यमिति वाच्यं तथा निवमे मानाभावात् इदं  
गवादिपदमभिप्रेत्य तेन पञ्चादिपदस्य जात्यवाचकत्वेऽपि न क्षतिः जाति-  
पदं वा धर्मपरं तथैव लक्षणस्य वक्ष्यमाणत्वात् ॥ ६८ ॥

तत्र के व्यक्तादय इत्याकाङ्क्षायामाह । यद्यपि जात्यादेरपि व्यक्ति-  
त्वात् प्रमेयत्वमेव व्यक्तित्वं तथापि जात्याकृतिशक्तिविषयव्यक्तिरिदं लक्षणं  
तथा च गुण विशेषो जात्याकृति समानाधिकरणो गुणः संख्यादिभिन्न-  
स्तदाश्रयः मूर्तिर्व्यक्तिरिति समानार्थकमित्यर्थः परे तु गुणा रूपा-  
दयः विशेषाविशेषकाः उत्तरेषां दयस्तेषां आश्रयोद्रव्यं तेन जात्याश्रयो-  
व्यक्तिरित्याशयः विशेषलक्षणमाह मूर्तिरिति मूर्तिः संस्थानविशेषस्त-  
द्धानित्याहुः अत्र च मध्यपदलोपी समास इत्याशयः अन्येतु व्यक्तेर्लक्षणं  
मूर्तिरिति सैव केत्याह गुणविशेषाश्रय इति गुणविशेषस्यावच्छिन्नपरि-  
माणस्याश्रय इत्यर्थ इत्याहुः ॥ ६९ ॥

आकृतिं लक्षयति । जातिलिङ्गमित्याख्या यस्याजातेर्गीत्वादेर्हि  
सास्नादि संस्थानविशेषोलिङ्गं तस्य च परम्परया द्रव्यवृत्तित्वं जातिर्द्रव्या-  
सम्भाविकारणतावच्छेदिका लिङ्गं धर्मोऽयस्याः सत्यर्थ इति कश्चित् ॥ ७० ॥

जातिं लक्षयति । समानः समानाकारकः प्रसवो बुद्धिजननं आत्मा  
स्वरूपं यस्या सा तथा च समानाकारबुद्धिजननयोग्यत्वमर्थः समानाका-  
रबुद्धिजननयोग्यधर्मविशेषो नित्यानेकसमवेतरूपार्थ इत्यपि वदन्ति  
इदन्तु बोध्यं एवं सत्याकृत्यविषयको गवादि पदात् न शाब्दबोधः  
अनुभवत्वेन तथैव कार्यकारणभावकल्पना दन्धयालाषवा ह्योपदस्य



## ३ अध्याय १ आह्निकम् ।

२४५

भोत्वविशिष्टे शक्तिरेव स्यादिति ॥ ७१ ॥ समाप्तं शब्दशक्तिरौचाप्र-  
करणम् ॥ २३ ॥

द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकञ्च ॥ २ ॥

विभागपरीक्षाद्वारकसाङ्गप्रमाणपरीक्षणं नाम । इति श्रीविश्व-  
नाथभट्टाचार्यकृता न्यायसूत्रवृत्तौ द्वितीयाध्याय-

वृत्तिः समाप्ता ॥ २ ॥

तत्प्रभृतितुल्यता भवति यत्कृपामन्तरा  
यदीयकरुणाकणान्नरति मोहजालं जनः ।  
विधाय हृदयाम्बुजे रुचिरवाक्प्रचाराय तां  
नमामि परदेवतां सततमेव वाणीमहम् ॥

अथावसरतः प्रमेयेषु परीक्षणीयेषु प्रथमोद्दिष्टमात्मादिषट्कं तृतीये  
परीक्षणीयं तेनात्मादिषट्कं परीक्षैवाध्यायार्थः तत्तात्मादिचतुष्क-  
परीक्षा प्रथमाह्निकार्थः तत्र च नवप्रकरणानि तत्तादाविन्द्रियभेदप्रक-  
रणं तत्तेन्द्रियं ज्ञानवन्न वेति संशये करणत्वेन सिद्धानामिन्द्रियाणां  
चैतन्यमस्तु लाघवात्तथा चात्मशब्दस्य नानार्थत्वादिन्द्रियानामभौतिक-  
त्वाद्वा न साङ्कर्यमितोन्द्रियचैतन्यवादिनस्तन्निराकरणाय सूत्रम् ।  
एकस्यैव दर्शनस्यर्शनाभ्यामर्थस्य ग्रहणात् दर्शनस्यर्शने ज्ञानविशेषौ  
तृतीया च प्रकारे तेन चाक्षुषस्यार्शनोभयवत्त्वेनैकस्य धर्मिणः प्रतिसम्वा-  
नादित्यर्थः तथा च योऽहं चक्षुःसद्रूपं सोऽहं सृष्टामीत्यनुभवादात्मे-  
न्द्रियव्यतिरिक्त एक इति ॥ १ ॥

अत्र शङ्कते । चक्षुस्त्वगादीनां रूपस्यर्शादिनियतविषयत्वाच्चक्षु-  
रादेश्चाक्षुषादिसंज्ञवायित्वमित्यज्ञाभेदप्रत्ययो भ्रान्त इति भावः ॥ २ ॥

समाधत्ते । उक्तप्रतिषेधो न युक्तः उक्तविषयव्यवस्थानादेवात्मसद-  
भावादतिरिक्तात्मकल्पनादित्यर्थः अयं भावः तत्तदिन्द्रियाणां तत्तद्विषयक



प्रत्यक्षं प्रति समवायित्वं वाच्यं न तु प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति अनुमित्यादि  
जनकत्वे तु विनिगमकाभावः तेन जन्यज्ञानत्वावच्छिन्नजनकतावच्छेदक-  
मात्मत्वं चक्षुरादेरनित्यत्वादात्मनश्च नित्यतायावच्छिन्नाण्यत्वाच्चक्षुरादिना-  
शेऽपि स्मरणाच्चक्षुरहमित्याद्यप्रतीतिश्च नेन्द्रियात्मवादो युज्यत इति ॥३॥

समाप्तमिन्द्रियभेदप्रकरणम् ॥ १४ ॥

ननु गौरोऽहं जानामीत्यादि प्रतीतेरस्तु शरीरमात्मेत्याशङ्क्य दूष-  
यति । पातकाभावात् पातकादेरभावप्रसङ्गात् तथा चोत्तरकालिकं दुःखा-  
दिकं न स्यादिति यद्वा दाहोनाशः तथा च शरीरनाशे कृते कर्त्तरि  
शरीरे विनष्टे पातकं न स्यादित्यर्थः । यद्यपि भूतचैतन्यवादिना पात-  
कादिकं नोपेयते तथापि तस्य प्रसाध्याङ्गकत्वादेकदेशिनः पूर्वपक्षित्वाद्वा  
न दोष इति भावः ॥ ४ ॥

तवापि तुल्यदोष इत्याशङ्कते । तदभाक् पातकाभावः सात्मकशरी-  
रस्य प्रदाहेऽपि प्रसक्तः तन्नित्यत्वात् तस्य आत्मनो नित्यत्वत् नित्यत्वेन  
निर्विकारत्वं तेन जन्यधर्मानामयत्वमभिमतमिति केचित् तन्नित्यत्वात्  
शरीरनाशे शरीरविशिष्टात्मनाशस्य नियतत्वादित्यपि कश्चित् किञ्च  
सात्मकशरीरनाशेऽपि हन्तुः पातकाभावं स्यात् तस्यात्मनो नित्यत्वेन  
तन्नाशकत्वाभावात् ॥ ५ ॥

परिहरति । कार्याश्रयस्य चेष्टाश्रयस्य कर्त्तुः कृत्यवच्छेदकस्य शरीर-  
स्येव नाशो न त्वात्मन इति न पातकाभावः यद्वा न हन्तुः पातकाभावः  
कार्याश्रयकर्त्तृवधात् शरीरस्य नाशात् ब्राह्मणत्वादेः शरीरवृत्तित्वात्त-  
न्नाशादेव पापोत्पत्तिरिति भावः वस्तुतस्तु पूर्वशरीरावच्छिन्न प्राणविना-  
शिनो बन्धनसुखनिरोधादेर्हि सात्त्वं न स्यात् पातकानभ्युपगन्तृचार्वाका-  
दिमते शरीरभेदसाधनन्त वक्ष्यमाणयुक्तिभिरिति ध्येयम् ॥ ६ ॥

समाप्तं देहभेदप्रकरणम् ॥ १५ ॥

प्रसङ्गाच्चक्षुरद्वैतप्रकरणमारभते । वाग्नेन चक्षुषा दृष्टस्य दक्षिणेन  
चक्षुषा प्रत्यभिज्ञानात् स्थिरात्मसिद्धिरिति केषाञ्चिन्मतं शिन्निराकरण्यायै  
तदुपन्यासः ॥ ७ ॥



## ३ अध्याये १ आह्निकम् ।

२४७

एतद्द्रूपयति । मध्यस्थसेतुना तडागस्येव नासास्यव्यवहितगोल-  
कान्तरावच्छिन्नतया द्वैतप्रत्ययो भ्रम इत्यर्थः ॥ ८ ॥

आक्षिपति । चक्षुरैक्ये एकचक्षुर्नाशेऽभ्युत्थं स्यादिति भावः ॥ ९ ॥

अत्रैकदेशो परिहरति । अवयवस्य शाखादेर्नाशेऽप्यवयविनो वृक्षस्य  
प्रत्यभिज्ञानान्नावयवनाशे सर्वत्रावयविनाशनियमस्तथा चैकनाशेऽपि  
नाभ्युत्थमिति ॥ १० ॥

एकदेशिमत्स्य पूर्वोक्ताच्चेपस्य च समाधानाय सिद्धान्तिनः सूत्रम् ।  
उक्तप्रतिषेधो न युक्तः वृष्टान्तस्य विरोधादयुक्तत्वात् न हि शाखाच्छेदे  
वृक्षस्तिष्ठति तथा सति वृक्षस्यानाशप्रत्यङ्गादतोऽवस्थितावयवैस्तत्र खण्ड-  
वृक्षोत्पत्तेर्नैकदेशिमत्तं युक्तम् एतेनैकनाशे द्वितीयाविनाशश्चेदसाधनमपि  
प्रत्युक्तं चक्षुर्नाशेऽपि गोलकान्तरावच्छिन्नावयवैः खण्डचक्षुः समवात्  
इत्यञ्च लाघवाच्चक्षुरद्वैतमिति टीकास्वरसमिद्धं परे तु चक्षुर्द्वैतमेव सू-  
त्रार्थं मन्यमाना व्याचक्षते सिद्धान्तिनः सूत्रं सव्येति शङ्कते नैकस्मिन्निति  
समाधत्ते एकेतिशङ्कते अवयवेति निराकरोति वृष्टान्तेति शाखानाशे वृक्ष-  
नाशावश्यकत्वात् वृष्टान्तो न युक्तः यद्वा वृष्टान्तस्य गोलकभेदविरोधाद-  
न्यथा अनुपपन्नत्वाद्दृष्टं हि मृतस्य चक्षुरधिष्ठानगोलकद्वयं भेदेनैवोपलभ्यत  
इति वदन्ति ॥ ११ ॥

आत्मन इन्द्रियभेदे युक्त्यन्तरमाह । चिरवित्ताद्यस्तद्द्रव्ये दृष्टे तद्-  
रसस्मरणाद्भूतोदकसंज्ञवरूपरसनेन्द्रियविकारादिन्द्रियव्यतिरिक्त आत्मा  
सिद्ध्यति ॥ १२ ॥

आक्षिपति । सृष्टिर्हि स्मर्तव्यविषयिणीति नियमस्तस्याश्च दर्शना-  
दिना सामानाधिकरण्ये सानाभावात् अस्तु वा विषयतयैव सामानाधि-  
करण्यमिति भावः ॥ १३ ॥

समाधत्ते । उक्तप्रतिषेधो न युक्तः धर्मिण्याहकमानेन सृष्टेरात्म-  
गुणत्वात्प्रतिषेधेणात्मगुणत्वसिद्धेरहं स्मरामीत्यनुभवात् विषयनिष्ठ कार्य-  
कारणभावे चैतच्छ्रुतानात्मैतस्य स्मरणपत्तेरिति भावः ॥ १४ ॥

विषयाणां स्मर्तव्यानां सृष्टिसमवायित्वं स्यादित्याशङ्क्य समाधत्ते ।  
अपरिसङ्ख्यानात् आनन्त्यात् तथा च लाघवादतिरिक्तात्मसिद्धिः इदं न



सूत्रं किन्तु भाष्यमिति केचित् ॥ १५ ॥ समाप्तं चतुरद्वैतप्रकरणम् ॥ १६ ॥

ननु मनसो नित्यत्वादात्मत्वमस्त्वित्याशङ्कते । नातिरिक्त आत्मा  
आत्मसाधकमानः न मनसार्थान्तरमिति भावः ॥ १६ ॥

समाधत्ते । यदि मनसो ज्ञातृत्वं तदा व्यासङ्गाद्युपपादनाय करणा-  
न्तरमवश्यं वाच्यं तथा चैको ज्ञाता ज्ञानसाधनं चैकं सिद्धं मन आत्म-  
स्त्विति संज्ञाभावं किञ्च व्यासङ्गोपपादकतया मनसोऽप्युत्वं सिद्धमात्मनश्च  
प्रत्यक्षोपपादकतया महत्त्वमिति भेद आवश्यक इति भावः ॥ १७ ॥

ननु रूपादिप्रत्यक्षं सकरणकमस्तु न तु सुखादिप्रत्यक्षं एवं पर-  
माख्यन्तरस्यातीन्द्रियत्वेऽपि मनसः प्रत्यक्षं स्यादताह । उक्तो नियम-  
विशेषो निरनुमानः निष्प्रमाणकः गौरवाद्द्वैपर्यत्ये च विनागमकाभावा-  
च्चेति भावः ॥ १८ ॥ समाप्तं मनोभेदप्रकरणम् ॥ १७ ॥

एवं साधितेऽपि देहादिभिन्ने आत्मनि विना तन्नित्यतां न पर-  
लोकार्थिनः प्रवृत्तिरत आत्मनित्यताप्रतिपादनाय सूत्रम् । जातस्य  
बालस्य एतज्जन्मानुभूतेष्वपि हर्षादिहेतुषु सत्सु हर्षादीनां सम्प्रति-  
पत्तिः उत्पत्तिस्तस्याः पूर्वपूर्वानुभवाधीन सृष्टिसम्बन्धादेव सम्भवात् इत्यं  
चेदानीन्तनस्यात्मनः पूर्वपूर्वसिद्धौ तस्यानादित्वमनादेश भावस्य न नाश  
इति नित्यत्वसिद्धिरिति भावः ॥ १९ ॥

अत्र शङ्कते । बालस्य हर्षादयोमुखविकासाद्यनुभेया न च तत्त्व-  
म्भवः पद्मादीनां प्रबोधादिवददृष्टविशेषाधीनक्रियावशादेव तदुपपत्तेरिति  
भावः ॥ २० ॥

सिद्धान्तसूत्रम् । उक्तं युक्तं यतः पञ्चात्मकानां पाञ्चभौतिकानां-  
पद्मादीनां ये विकारास्तेषां उष्णकालादिनिमित्तत्वात् मनुष्यादीनान्तु  
हर्षादिनिमित्तकामुखविकासादय इति न तुल्यतेति भावः ॥ २१ ॥

आत्मनित्यत्वे हेतुन्तरमाह । प्रेत्य मृत्वा जातमात्रस्य यः सन्ध्याभि-  
लाषः सतावदाहाराभ्यासजनितः जन्मान्तरीणाहारेष्टसाधनताधीजन्य-  
जीवनादृष्टोद्बोधितसंस्काराधीनेष्टसाधनतास्मरणेन हिंसाद्यः स्तन पाने-  
प्रवर्तत इत्यानादित्वमिति ॥ २२ ॥

शङ्कते । यद्ययस्मान्तमन्निहितस्य यसोऽयस्मान्नाभिमुखतयागमनं



तथैव वत्सखापि स्तनोपसर्पणं न त्विदसाधनताज्ञानाधीनप्रवृत्तिजन्यचेष्टे-  
यमित्यर्थः ॥ २३ ॥

समाधत्ते । स्तनपान एव बालः प्रवर्तते न त्वन्यत्वेति नियमः कथं  
स्यात् वस्तुतस्तु अन्यत्र अयसि प्रवृत्त्यभावात् प्रवृत्तिर्हि चेष्टानुमितालिङ्गं  
न तु क्रियासात्वमतो न व्यभिचार इति भावः ॥ २४ ॥

हेत्वन्तरमाह । वीतरागो रागशून्यस्तावन्मोक्षयतेऽपि तु सरा गस्तत्र  
च जन्मान्तरीयेदसाधनताज्ञानाधीनस्मरणं हेतुरिति पूर्व स्तन्याभिलाष-  
उक्तः सम्प्रति तु पतगादीनां कणादिभक्षणाभिलाषसाधारणं रागमात्र-  
मित्यपौनस्त्यम् ॥ २५ ॥

शङ्कते । द्रव्यस्य घटादेर्यथा सगुणस्य रूपादिविशिष्टस्योत्पत्तिर्यथा  
घटादिः स्वतएव रूपादिमान् भवति तथैवात्मापि स्वतएव सरागो भवती-  
त्यप्रयोजकत्वं त्वदीयहेतुत्वमिति भावः ॥ २६ ॥

समाधत्ते । सङ्कल्पोज्ञानमिदसाधनताज्ञानं इति यावत् तन्निमि-  
त्तका हि रागादयः स्तथाचेष्टसाधनताज्ञानत्वेनेच्छात्वादिना कार्यकारण-  
भावात् प्रवृत्तित्वेन चेष्टात्वेन च कार्यकारणभावाच्चाप्रयोजकत्वमिति  
भावः ॥ २७ ॥ समाप्तमनादिनिधेनप्रकरणम् ॥ २८ ॥

क्रमप्राप्ते शरीरपरीक्षणे मानुषादिशरीरं पाञ्चभौतिकमित्येके  
तत्र सिद्धान्तसूत्रम् । मानुषादिशरीरं पार्थिवं पृथिवीसमवायिकारणं कं  
गुणान्तरस्य गन्धनीलादिरूपकाठिन्यादेरुपलब्धेरिति ॥ २८ ॥

पार्थिवाप्यतैजसं तद्गुणोपलब्धेः ॥ क ॥

निश्वासोच्छ्वासोपलब्धेश्चातुर्भौतिकम् ॥ ख ॥

गन्धलोदपाकव्यूहावकाशदानेभ्यः पाञ्चभौतिकम् ॥ ग ॥

मतान्तराभिधानाय त्विसूत्रम् । तद्गुणाणां पृथिव्यग्रेजोगुणानां गन्ध-  
स्नेहोष्णस्पर्शानुपलब्धेः एतावता त्रिभौतिकत्वे सिद्धे निश्वासादित-  
श्चातुर्भौतिकत्वं निश्वासोच्छ्वासौ प्राणवायोव्यापारविशेषौ क्लेदोजलविशे-  
षौ जलविशिष्टपृथिवीवेद्यभयथापि जलभावश्यकं पाकस्य तैजः संयोगा-



धीनत्वात्तेजः सिद्धिर्व्यूहो निःश्वासादिः अवकाशदानं छिद्रं एतानि सतानि  
 सूत्रकृता तु च्छत्वान्न दूषितानि तथाहि एकस्मिन् शरीरे पृथिवीत्वा-  
 दिन्नानाजातेः सङ्करापत्तेरसम्भवात् नवा नानोपादानकत्वं विजा-  
 तीयानामनारम्भकत्वात् तथात्वे वा जलाद्यारब्धस्य न पृथिवीत्वं व्यभि-  
 चारात् नवाचित्वद्रव्यं गन्धवस्त्वविरोधात् गन्धादीनामानाशसनपायाच्च  
 पार्थिवत्वमित्युक्तप्रायं यद्वा पार्थिवत्वे कथं जलादिसम्बन्ध इत्याशङ्कायां  
 जलादिनिमित्तवशात् भौतिकत्वादिव्यपदेश इत्याशयेन निःसूत्री ॥ क ॥  
 ॥ ख ॥ ग ॥

पार्थिवत्वे युक्त्यन्तरमाह । सूर्यन्ते चक्षुः पश्योमीति मन्त्रान्ते पृथि-  
 व्यान्ते शरीरमित्यभिधानादेवं प्रकृतौ विकारस्य लयाभिधाने सूर्यन्ते  
 चक्षुर्गच्छतादि मन्त्रान्ते पृथिव्यान्तेशरीरमिति इमां चतुःसूत्रीं केचन  
 भाष्यतया वर्णयन्ति तन्न तथा सत्येकसूत्रस्य प्रकरणत्वानुपपत्तेः अतएव  
 चतुर्थं सूत्रमेवेत्यपरे अन्ये तत्तयैवानुपपत्त्या आप्यतैजसवायव्यानि लोका-  
 न्तरशरीराणि तेष्वपि भूत संयोगः पुरुषार्थतन्त्र इति भाष्यं सूत्रतया  
 वर्णयन्ति तदर्थस्तु आप्यादीनि लोकान्तरेषु वरुणं लोकादिषु प्रसिद्धानि  
 शरीराणि जलादिरूपत्वे कथमुपभोगक्षमतेत्यत्र तेव्यपीति भूतसंयोगः  
 पृथिव्युपलब्धः पुरुषार्थतन्त्र उपभोगसम्पादकः ॥ २६ ॥

समाप्तं शरीरपरीक्षाप्रकरणम् ॥ २६ ॥

अथेन्द्रियं परीक्षणीयं तत्र लक्षणसूत्रोक्त भौतिकत्वमिन्द्रियाणां  
 परोक्षित्वं संशयमाह कृष्णसारे चक्षुर्गोलके सति घटाद्युपलम्भाङ्गोलकस्ये  
 न्द्रियत्वमिति बौद्धाः व्यतिरिच्य विषयं प्राप्य उपलम्भात् उपलम्भजन-  
 नाङ्गोलकातिरिक्तानीत्यपरे तत्र इन्द्रियाणि गोलकातिरिक्तानि नवेति  
 संशयो गोलकातिरिक्तानीति नैयायिकादयः तत्राप्यभौतिकान्याहङ्कारि-  
 काणीति सांख्याः भौतिकानीत्यपरे ॥ ३० ॥

तत्र सांख्य मतेन बौद्धमतमुदस्यन्माह । गोलकं नेन्द्रियं अप्राप्यकारि-  
 त्वेऽति प्रसङ्गात् इत्यञ्च गोलकातिरिक्तं भौतिकमिति वाच्यं तदप्यसङ्गतं  
 चक्षुषाहि न्यूनपरिमाणं महत्परिमाणञ्च गृह्यते नच न्यूनं महतो व्या-



## ३ अध्याये १ आह्निकम् ।

२५१

पनं सम्भवति नवाऽ व्यप्यग्रहणमतोऽ भौतिकानीन्द्रियाण्याहङ्कारि-  
काणीति ॥ ३१ ॥

सांख्यं निरस्यति । रश्मिर्गोलकावच्छिन्नं तेजः तेजोऽर्थस्य घटादेर्यः  
सन्निकर्षविशेषः संयोगविशेषस्तस्मात् महदखोर्ग्रहणमुपपद्यते भौतिकेऽपि  
प्रदीपादौ महदणुप्रकाशकत्वं दृष्टं अभौतिकत्वे तु पुरः पश्चाद्वर्त्तिनं  
सर्वेषामेव ग्रहः स्यात् ॥ ३२ ॥

तैजसे चक्षुष्यनुपलब्धिबाधं बौद्धः शङ्कते । रश्मिर्प्रसन्निकर्षो न हेतु-  
गोलकातिरिक्तस्य रश्मिरेनुपलब्धेः ॥ ३३ ॥

समाधत्ते । रूपोपलब्धेः सकरणकत्वादिनानुमीयमानस्य प्रत्यक्षतोऽनु-  
पलब्धिर्नाभावनिर्णायिकेत्यर्थः ॥ ३४ ॥

कथं तर्हि नोपलब्ध इत्यत आह । द्रव्यस्य धर्मभेदो महत्त्वादिगुणस्य  
धर्मभेदः उद्भूतत्वं तदधीनत्वात् प्रत्यक्षस्य द्रव्यभावे उपलब्धेर्न नियमः  
यतोद्भूतरूप महत्त्वादिकं तस्य प्रत्यक्षं तदभावाच्चक्षुरादेरप्रत्यक्षम् ॥ ३५ ॥

चक्षुरादावुद्भूतरूपमेव न कुत इत्याशङ्कायां भाष्यम् । अदृष्टवि-  
शेषाधीन इन्द्रियाणां व्यूहोरचनाविशेष उपभोग साधनमिति सूत्रमेवेद-  
मिति केचित् ॥ ३७ ॥

महतो रूपवतोऽनुपलब्धौ दृष्टान्तमाह । महतो रूपवतश्चोल्का-  
प्रकाशस्य सौरालोकेनाभिभवान्मध्यन्दिनेऽनुपलब्धिवदनुद्भूतरूपवत्त्वा-  
च्चक्षुषोऽप्यनुपलब्धः सम्भवतीति भावः ॥ ३८ ॥

नन्वेवं घटादेरपि रश्मिः स्यात्सौरालोकेनाभिभवात्सुनरग्रह इत्य-  
त्राह । नेत्यस्य घटादौ रश्मिरिति शेषः ॥ ४० ॥

ननु उद्भूतरूपत्वाच्चक्षुषोऽनुपलब्धिर्न त्वभिभवादित्यत्र किं विनिगमक-  
मिति तदस्याशङ्कयामाह । अनभिव्यक्तितोऽनुद्भूतरूपवत्त्वाच्चक्षुषोऽनुप-  
लब्धिः कुतः बाह्यप्रकाशाद्युपग्राह्यत्वात् सौरालोकादिषाह्नित्वाद्विषयोपलब्धः  
तस्योद्भूतरूपत्वे बाह्यप्रकाशापेक्षा न स्यात् अभिभूतत्वे च तत्साहित्ये-  
नापि प्रत्यक्षजनकं न स्यादभिभूतस्य कार्याक्षमत्वादिति भावः ॥ ४१ ॥

ननु चक्षुषो नाभिभवः किन्तु तद्रूपस्य तस्य च प्रत्यक्षजनकत्वे माना-  
भावः किञ्चाभिभवात्तस्य न प्रत्यक्षमितरप्रत्यक्षजनने च विरोधाभाव



इत्याशङ्क्यामाह । रूपस्य अभिव्यक्तौ प्रत्यक्षे उद्भूतत्व इति यावत्  
उद्भूतरूपस्य प्रत्यक्षाभावे ह्यभिव्यक्त्यना नत्वेवं प्रकृते सुवर्णादिवत्सर्वदा-  
भिभावकद्रव्यान्तरकल्पनेच गौरवमिति भावः ॥ ४२ ॥

चक्षुषि प्रमाणान्तरमाह । नक्तञ्चराणां दृषदंशादीनां गोलके  
रश्मिदर्शनात् तद्दृष्टान्तेन परेषामपि रश्मिप्रनुमानमिति भावः अन्यथा  
तमसि तस्य प्रत्यक्षं न स्यादिति हृदयम् ॥ ४३ ॥

अप्राप्यकारित्वं चक्षुषः स्यादित्याशङ्कते ॥ ४४ ॥

समाधत्ते । परेत उक्तसूत्रस्य पूर्वपक्षपरत्वं मन्यमानस्य आप्यकार-  
स्यावनारणिका अप्राप्यग्रहणमिति वस्तुतः सिद्धान्तसूत्रमेव तत्प्रदीप-  
दृष्टान्तेन काचाद्यन्तरितप्रकाशकत्वेन तैजसत्वं सिध्यतीति नन्वप्राप्य-  
कारित्वं किं न स्यादन्ताह कुड्येति उक्तस्य तैजसत्वस्य प्रतिषेधो गोल-  
कात्मकत्वं न सम्भवति कुड्यान्तरितस्यानुपलब्धेरित्याहुः ॥ ४५ ॥

ननु कुड्यान्तरित इव काचान्तरितेऽपि सन्निकर्षो न सम्भवतीति कथं  
प्राप्यकारित्वमित्याशङ्क्यामाह । काचादिना स्वच्छद्रव्येणाप्रतिघाताद-  
प्रतिबन्धात्सन्निकर्ष उपपद्यत इति भावः ॥ ४६ ॥

तत्र दृष्टान्तमाह । दाह्य इति वस्तुमात्रोपलक्षणं परेत दाह्ये  
कपालादौ वज्रग्रादेरविघातपरं तदित्याहुः ॥ ४७ ॥

आक्षिपति । अप्रतिघातो न युक्त इतरस्य स्फटिकादेरितरस्य कुड्याते  
र्यो धर्मः प्रतिघातकत्वं तत्प्रसङ्गात् स्फटिकादिकमपि कुड्यादिवत्प्रति-  
बन्धकं भवेदित्यर्थः ॥ ४८ ॥

समाधत्ते । आदर्शे उदके च प्रसादस्वाभाव्यात्स्वच्छस्वभावत्वात् कृष्ण-  
दिरूपोपलब्धिर्न तु भित्तादावेवं स्फटिकाद्यन्तरितस्योपलब्धिर्न तु कुड्या-  
द्यन्तरितस्येति स्वाभाव्यान् दोषः एतेन वज्रग्रादेर्घटादिनाऽप्रतिघातव-  
च्चक्षुषोऽपि प्रतिघातो न स्यादिति प्रत्युक्तं वज्रग्राद्यप्रतिबन्धेऽपि दीपा-  
लोकादेः प्रतिबन्धवत्त्वम्भवादिति भावः ॥ ४९ ॥

चक्षुषस्तादृशत्वकल्पने किं मानमित्यन्ताह । हि यस्मात् दृष्टानामनु-  
मितानां वा पदार्थानां दृष्टेनानुमितानामिति वार्थः तेषामेवं भवितेति



## ३ अध्याये १ आह्निकम् ।

२५३

नियोग एवं सा भवितेति प्रतिषेधो वा नोपपद्यते युक्त्यनुसारिणी हि  
वक्ष्यतेति भावः ॥ ५० ॥ समाप्तमिन्द्रियपरीक्षाप्रकरणम् ॥ ३० ॥

दर्शनसंशयनाभ्यामित्यादिकमिन्द्रियनानात्वे युज्यते इत्युपोद्घातेने-  
न्द्रियनानात्वं परीक्षणीयं तत्र संशयमाह । स्थानान्यत्वे स्थानभेदे घट-  
पटादीनां नानात्वदर्शनाच्चानावयवस्थितस्यावयविन एकत्वदर्शनाच्च इन्द्रि-  
याणां नानात्वमेकत्वं वेति संशयः ॥ ५१ ॥

पूर्वपक्षसूत्रम् । सर्वेष्विन्द्रियप्रदेशेष्वव्यतिरेकात् सत्त्वात्त्वगेवैकमि-  
न्द्रियमस्तु ॥ ५२ ॥

उत्तरयति । युगपत् एकदा अर्थानां गन्धरूपादीनाम् अतुपलब्धेर्न  
त्वगेवैकमिन्द्रियं अन्यथा तस्य व्यापकत्वाच्चानुपादिकात्वे घ्राणजादिक-  
मपि स्यादिति भावः ॥ ५३ ॥

इन्द्रियाणां नानात्वे कार्यभेदमानमाह । इन्द्रियार्थानामिन्द्रिय-  
याह्याणां रूपादीनां पञ्चत्वात् पञ्चविधत्वात् रूपादीनां हि चक्षुराद्ये-  
कैकेन्द्रियमात्रयाह्यत्वाद्बैलक्षण्यः तच्चैकेन्द्रियपक्षे न सम्भवति अन्धादीनां  
रूपाद्युपलब्धिप्रसङ्गश्चेति भावः ॥ ५८ ॥

शङ्कते । इन्द्रियार्थानां नीलपीतादीनां वज्रत्वादिन्द्रियाणां बहु-  
तरत्वप्रसङ्गादिन्द्रियार्थपञ्चत्वादिन्द्रियभेदो न युक्तः ॥ ५९ ॥

समाधत्ते । उक्तप्रतिषेधो न गन्धादीनां सौरभादीनां गन्धत्वाद्यव्य-  
तिरेकाद्गन्धत्वादिसत्त्वात् तथा च विभाजकगन्धत्वावच्छिन्नग्राहकत्वमभि-  
प्रेतं नत्ववान्तरधर्मावच्छिन्नग्राहकत्वमिति भावः ॥ ६० ॥

यदि गन्धत्वादिना सुरभ्यादीनामैक्यं तदा विषयत्वेन गन्धरसादीना-  
मर्थैक्यादिन्द्रियैक्यं स्यादिति ।

शङ्कते । विषयत्वाव्यतिरेकाद्विषयत्वेनैक्यात् ॥ ६१ ॥

उत्तरयति । इन्द्रियाणामैक्यं न हेतुमाह बुद्धीत्यादि बुद्धेश्चानुपा-  
देर्यल्लक्षणं चानुपत्वादि तत्पञ्चत्वे न तदवच्छिन्नकरणानां पञ्चत्वं एवम-  
धिष्ठानं रूपादिविषयस्तत्पञ्चत्वात् गतिः दूरादौ गमनं इदं चक्षुरधि-  
कृत्य यद्वा गतिः प्रकारस्तथा च प्रकाराणां पञ्चत्वात् चक्षुर्हि गत्वा ग-  
च्छाति त्वग्देहावच्छेदेन श्रोत्रं कर्णावच्छेदेनेत्यादिप्रकारभेदात् आकृति-



गौलकानां संस्थानविशेषः जातिः पृथिवीत्वादि वस्तुतो जातिः धर्मस्तेन  
ओतत्वसंभ्रहः ॥ ६२ ॥

प्राणादेः पृथिवीत्वादि रसत्वे मानमाह । भूतानां पृथिव्यादीनां ये  
गुणविशेषा गन्धादयस्तदुपलभ्यकत्वात् कुङ्कुमगन्धाभिव्यञ्जकतादिदृष्टान्तेन  
पृथिवीत्वादि साधनमिति भावः ॥ ६३ ॥

समाप्तमिन्द्रियनानात्वप्रकरणम् ॥ ३१ ॥

क्रमप्राप्तार्थपरिच्छेदाय सिद्धान्तसूत्रम् । स्पर्शपर्यन्तेषु मध्ये पूर्व-  
पूर्वं त्वक्त्वा अग्नेजोवायूनां गुणः ज्ञातव्याः उत्तरः शब्द आकाशस्य गुणः  
तथा च स्पर्शान्ताः पृथिव्या रसरूपस्पर्शा जलस्य रूपस्पर्शा तेजसः स्पर्शो-  
वासोः शब्द आकाशस्य ॥ ६४ ॥

आक्षिपति । उक्तो गुणनियमो न युक्तः पृथिव्यादेर्गुणत्वाभिमतानां  
सर्वेषां प्राणादिग्राह्यत्वाभावान्न पार्थिवत्वादिकं प्राणेन पृथिव्या रसा-  
द्यग्रहणात् वहिरिन्द्रियाणां स्वप्रकृतिवृत्तियोग्याशेषगुणग्राहकत्वनि-  
यमो भज्येतेति भावः ॥ ६५ ॥

इत्यञ्च पृथिव्यादावुपलभ्यमानानां रसादीनां कागतिरित्यत्र स्म-  
मतमाह । उत्तरोत्तराणाम् अवादीनाम् एकैकस्यैव एकैकक्रमेण तदु-  
त्तरोत्तरगुणसङ्गावात् रसादिगुणसङ्गावात् तदनुपलब्धिस्तेषां रसादीनां  
प्राणादिनानुपलब्धिरित्यर्थः ॥ ६६ ॥

तर्हि कथं पृथिव्यादौ रसादिग्रहणं तत्राह । अपरं पृथिव्यादि-  
परेण जलादिना हि यस्मात् विष्टं सत्त्वं तथा च पृथिव्याद्यवच्छिन्न  
जलादिना रसनासंयोगाद्रसादिग्रह इति भावः ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

सिद्धान्तसूत्रम् । उक्तो गुणनियमो न युक्तः कतः पार्थिवस्यायस्य च  
द्रव्यस्य प्रत्यक्षत्वाद्रूपस्पर्शसिद्धेस्तस्य रूपस्पर्श शून्यत्वे चक्षुषा त्वचा च  
ग्रहणं न स्याद्रप्रादेश्च कचित्वाक्षात्स्वप्नेन कचिच्च परम्परया हेतुत्वे  
गौरवमिति भावः ॥ ६९ ॥

रसादेः पृथिव्यादिगुणत्वे प्राणादिनापि तदग्रहणप्रसङ्ग इत्यत्र निया-  
मकमाह । पूर्वपूर्वं प्राणादितत्प्रधानं गन्धादिप्रधानं प्राधान्ये बीजमाह



## ३ अध्याये १ आह्निकम् ।

२५५

शणोत्कर्षाद्गुणस्य गन्धादेरुत्कर्षात्तद्व्यवस्थापकत्वात् तथा च गन्धादिषु मध्ये  
स्वव्यवस्थापकगुणस्यैव ग्राहकत्वं घ्राणादीनामिति ॥ ७० ॥

ननु पृथिव्यन्तरस्यापि गन्धप्राधान्यात्किमिन्द्रियं किमनिन्द्रिय-  
मित्यत्राह । भूयस्त्वात् जलाद्यविशिष्टपृथिव्याद्व्यवस्थापकत्वात्तद्व्यवस्थानं  
घ्राणादीन्द्रियत्वव्यवस्थितिः ॥ ७१ ॥

घ्राणादीनां गन्धादिगुणवत्त्वे मानमाह । सगुणानां गन्धादिविशि-  
ष्टानां घ्राणादीनामिन्द्रियभावात् गन्धादिसाक्षात्कारकारणत्वात् कुङ्कुम-  
गन्धाभिव्यञ्जकघृतादौ तथैव दर्शनात् ॥ ७२ ॥

इत्यत्र गन्धादिसिद्धावप्रत्यक्षत्वादनुद्भूतत्ववत्त्वनमित्याशयेनाह ।  
तेन इन्द्रियेण तस्य सगुणस्येन्द्रियस्याग्रहणादनुद्भूतत्वकल्पनमिति ॥ ७३ ॥

नन्विन्द्रियगुणानामप्रत्यक्षत्वानियमो नेत्याशङ्कते । उक्तनियमो न युक्तः  
शब्दस्य श्रोत्रगुणस्योपलब्धेः ॥ ७४ ॥

समाधत्ते । द्रव्यगुणानां रूपशब्दादीनां परस्परं वैधर्म्याच्छब्दस्योप-  
लब्धिर्न चक्षुरूपादीनां शब्दाश्रयस्य लाघवेनैक्यसिद्धेरिति भावः ॥ ७५ ॥

समाप्तमर्थपरीक्षाप्रकरणम् ॥ ३२ ॥

इति तृतीयाध्यायस्याद्यमाह्निकं आत्मादिप्रमेयचतुष्कपरीक्षणं नाम ।

अथ क्रमप्राप्ततया बुद्धिर्मनश्च परीक्षा सप्तभिः प्रकरणैस्तत्परीक्षैव चा-  
ह्निकार्थः परेतु शरीरावच्छेदव्याप्यभोगानुकूलसम्बन्धवत्परीक्षा शरीरा-  
न्वर्त्तिप्रमेय परीक्षेवाह्निकार्थ इति तदसत् इन्द्रियपरीक्षायामतिव्याप्तेः  
तत्र च बुद्धिपरीक्षा पञ्चभिः प्रकरणैः तत्रादौ बुद्ध्यनित्यताप्रकरणं तत्र  
संशय दर्शनाय सूत्रम् । कर्मण आकाशस्य च साधर्म्यान्नि स्पर्शत्वादबुद्धि-  
पदार्थे नित्यत्वसंशयः बुद्धिपदं नित्यशक्तं नवेति संशयपर्यवसन्नः ॥ १ ॥

तत्र बुद्धिनित्यत्वं साध्यति । बुद्धिर्नित्येति शेषः खेऽहं घट-  
मूलाक्षंसोऽहं घटः स्पृशामीति प्रत्यभिज्ञानमेकं वृत्तिमन्तं विषयीकरोति



नचात्मा तथा तस्य जन्यधर्मानधिकरणस्य कूटस्यत्वात् तस्मादुत्तिमतो बुद्धिरेव वृत्तिस्तु तस्याः परिणामः बुद्धेरप्याविर्भावतिरोभावादेव न तस्यादविनाशाविति ॥ २ ॥

परिहरति । साध्यसमत्वात् असिद्धत्वात् प्रतिसम्भात्वं न हेतुः अहं जानामीत्यादिना आत्मनएव प्रतिसम्भात्प्रत्ययात् अनादिनिधनत्वमेव तस्य कौऽस्थं अद्यादृशं त्वसिद्धमिति भावः ॥ ३ ॥

बुद्धेरेव स्थायिन्या यथाविषयं ज्ञानात्मिका वृत्तयोवृत्तिमदभिज्ञा वज्जेरिव स्फुलिङ्गा निःसरन्तीति सांख्यमतं निरस्यति । वृत्तिवृत्तिमहोरभेदे वृत्तिमदवस्थित्या वृत्तेरयवस्थितिर्वाच्या तथा च सर्वपदार्थग्रहणं युगपत्स्यात् न चैवं तस्मान्नाभेद इति ॥ ४ ॥

अथ वृत्तीनामनवस्थायित्वमुच्यते तत्राह । अप्रत्यभिज्ञाने प्रत्यभिज्ञानस्य अभावे विनाशे वृत्तिमतोऽपि विनाशः स्यादतो न द्वयोरैक्यम् ॥ ५ ॥

अयुगपदग्रहणम् स्वमते व्युत्पादयति । मनस इत्यादि मनसोऽणुत्वादिन्द्रियैः सह क्रमेण सम्बन्धात् ज्ञानानां क्रमिकत्वं तथा च अविभु चैको मनः पर्यायेण उर्व्वेरिन्द्रियैः सम्बध्यते इत्यवतारभाष्यं तत्तदिन्द्रियमनः संयोगे सति ज्ञानमुपपद्यते ॥ ६ ॥

तद्व्यतिरेके ज्ञानाभावमुपपादयति । अप्रत्यभिज्ञानं तत्तदिन्द्रियज-ज्ञानाभावः विषयान्तरेण इन्द्रियान्तरेण मनसः सम्बन्धादित्यर्थः ॥ ७ ॥

त्वन्मते चेदन्नोपपद्यत इत्याह । त्वन्मते मनसः क्रमेणेन्द्रियसम्बन्धो न मनसो विभुत्वेन गत्यभावात् परेतु नकारेण सूत्रान्तर्गतः किन्तुविभुत्वे चान्तः करणस्य पर्यायेणेन्द्रियैः संयोगो नेति भाष्यावतारणिकायां इत्याहुः ॥ ८ ॥

वृत्तिवृत्तिमतोर्वस्तुतोऽभेदेऽपि भेदप्रत्ययप्रतिपादनाय शङ्कते । यथा जवाकुसुमादिसन्निधानादेकस्यापि स्फुटिकस्य तत्तद्रूपाभिमानस्तथावृत्तिमदभिज्ञापि वृत्तिस्तत्तद्विषयसन्निकर्षवशान्नानेव प्रतिभासत इति ॥ ९ ॥

दूषयति । अमत्वे साधकाभावान्नोक्तं युक्तमित्यर्थः केचित्तु न हेत्व-



## ३ अध्याय २ आह्निकम् ।

२५७

भावादिति भाष्यमिति टीकादर्शनाच्चेदं सूत्रं किन्तु ते चेतया सूत्र-  
कताऽद्रूपणानुन्यूनतापरिहाराय भाष्यकता तदुक्तमिति मन्यन्ते ॥ १० ॥

समाप्तं बुद्ध्यनित्यताप्रकरणम् ॥ १३ ॥

स्फटिके इव नानात्वभ्रम इत्यसहमानः सौगतः शङ्कते । स्फटिकाद्य-  
त्वाभिमानवदित्यहेतुः कुतः स्फटिकेऽप्यपरापरोत्पत्तेः विलक्षणविलक्षण-  
स्फटिकोत्पत्तेः तत्र मानमाह व्यक्तीनां भावानां क्षणिकत्वात् तत्साधनाय  
भाष्यं उच्यते पचयप्रवृत्तदर्शनाच्छरीरेषु प्रतिक्षणं शरीरेषूपचयापचय-  
दर्शनाच्चानात्वं नह्येकस्मिन्नवयविनि परिमाणद्वयसमावेश इति भावः  
इदं सूत्रमेवेति केचित् ॥ ११ ॥

सिद्धान्तसूत्रम् । पदार्थानां विनाशसामग्र्यवैशिष्ट्यनियमे मानाभा-  
वात् अभ्युपेत्याह यथा दर्शनमिति यदि कश्चिद्विनाशसामग्र्यवैशिष्ट्ये  
मानं स्यात्तदा क्षणिकत्वं तस्याभ्यनुज्ञायतएव यथाऽन्यथेष्ट इति ॥ १२ ॥

युक्तान्तरमाह । न स्फटिकादेः क्षणिकत्वं यत उत्पत्तिविनाशकारणा-  
न्युपलब्ध्या निर्णयितान्यवयवोपचयापचयादीनि न च स्फटिके विनाश-  
कारणमुपलभ्यते येन पूर्वविनाशोऽपरोत्पत्तिश्च स्यादिति भावः ॥ १३ ॥

आक्षिपति । दध्युत्पत्तिवद्ध्युत्पत्तिकारणानुपलब्धिवत् तदुपपत्तिः  
पूर्वस्फटिकविनाशकारणानुपलब्धे उत्तरस्फटिकोत्पत्तिकारणानुपलब्धे चो-  
पपत्तिः स्यादिति भावः ॥ १४ ॥

सिद्धान्तसूत्रम् । दध्नः क्षीरविनाशस्य च प्रत्यक्षसिद्धत्वात्तत्कारणं  
कल्प्यते न त्वेवं स्फटिकविनाशोत्पादादनुपलभ्येते येन तत्कारणकल्पनं ॥ १५ ॥

सौगतमते सांख्यद्रूपणमुपन्यस्यति । न क्षीरस्य नाशो दध्नोत्पत्तिः  
किन्तु क्षीरस्य परिणामः परिणामशब्दार्थे गुणान्तरप्रादुर्भावः विद्य-  
मानस्य क्षीरस्य पूर्ववत्तिरोभावोऽन्तरसात्मकगुणान्तरस्याविर्भावादि-  
त्यर्थः ॥ १६ ॥

एतन्निराकरोति सूत्रकारः । व्यूहान्तराद्वचनान्तरात् पूर्वावय-  
वसंयोगनाशो द्रव्यान्तरोत्पादश्चानुभविक इति भावः ॥ १७ ॥

दोषान्तराभिधानाय सिद्धान्तिनः सूत्रम् । क्वचिदुपलब्धेरनैकान्तः  
क्षीरदधिदृष्टान्तेन विनाशोत्पादावकारणकावेवेति न युक्तं घटादौ सका-



रणकत्वोपलब्धेर्व्यभिचारात् वस्तुतः चोरविनाशेऽन्तद्रव्यसंयोगस्य हेतु-  
त्वादन्तरसवत् परमाणुभिश्च दध्नश्च रम्भान्नाकारणकौ चोरविनाशदध्यु-  
त्पादाविति ॥ १८ ॥ समाप्तं क्षणभङ्गप्रकरणम् ॥ २४ ॥

बुद्धेरात्मगुणत्वं यद्यप्यात्मपरोक्षात्तएव सिद्धमायं तथापि विशिष्य  
व्युत्पादनाय बुद्ध्यात्मगुणत्वप्रकरणं तत्र चेन्द्रियार्थं सन्निकर्षाधीनत्वादिन्द्रि-  
यादिनिष्ठत्वमेवास्तु भेर्याकाशसंयोगाधीनशब्दस्याकाशनिष्ठत्ववदिति पूर्व-  
पक्षे सिद्धान्तसूत्रम् । बुद्धिर्नेन्द्रियस्य न वार्थस्य गुणस्तत्र शेऽपि ज्ञानस्य  
स्मरणस्यावस्थानात् उत्पत्तेः न ह्यनुभवितुरभावे स्मरणसुपपद्यतेऽति  
प्रसङ्गादिति भावः ॥ १९ ॥

मनोगुणत्वं निरस्यति । युगपज्ज्ञेयानुपलब्धेर्हेतोः सिद्धस्य मनसो न  
कहेत्वं धर्मिग्राहकभावेन कारणत्वेनैव सिद्धेः वस्तुनोयुगपज्ज्ञेयानुपल-  
ब्धेरित्यनेन मनसोऽणुत्वं सूचितं तथा च तद्वत्तत्तुखाद्यप्रत्यक्षता स्यात्  
एवं कायव्यूहे तत्तद्देहावच्छेदेन ज्ञानादिकं न स्यादिति ॥ २० ॥

शङ्कते । तस्या बुद्धेरात्मगुणत्वेऽपि ज्ञानयौगपद्यं तुल्यं आत्मनः सर्वे-  
न्द्रियसंयोगात्तया च सदोपस्तदवस्यएवेति कथं तथा युक्त्या मनःसिद्धि-  
रिति भावः ॥ २१ ॥

उत्तरयति । युगपन्नानेन्द्रियैः सह मनसः सन्निकर्षाभावात् युगप-  
न्नाना विषयोपलब्धिरिति भावः ॥ २२ ॥

आक्षिपति । बुद्धुत्पत्तौ कारणस्थानपदेशात् अकथनात् नात्मगुणो  
बुद्धिः आत्ममनः संयोगस्य कारणत्वे ज्ञानस्य सार्वदिकत्वप्रसङ्ग इति  
भावः ॥ २३ ॥

बुद्धेरात्मगुणत्वे दोषमप्याह । बुद्धेरात्मन्यवस्थाने विनाशकारण-  
स्याश्रयनाशादेरनुपलब्धेस्तस्या बुद्धेर्नित्यत प्रसङ्गः ॥ २४ ॥

उत्तरयति । बुद्धेरनित्यत्वस्य ग्रहणात् उत्पदनाशयोरानुभविक-  
त्वान्तकारणे कल्पनाये आत्ममनोयोगादेरुत्पदकत्वमनन्तरोत्पन्नबुद्धेः  
संस्कारादेर्नाशकत्वं कल्प्यते चरसबुद्धेस्तु अदृष्टनाशकालाद्वा नाशः  
बुद्धेर्बुद्ध्यान्तराश्रयत्वेऽनुद्वेपं दृष्टान्तमाह शब्दवदिति शब्दस्य यथा शब्दा-  
न्तराश्रयश्चरनशब्दस्य निमित्तताश्रयत्वं तथा प्रकृतेऽपीति भावः ॥ २५ ॥



## ३ अध्याये २ आह्निकम् ।

२५२

ननु बुद्धेरात्मगुणत्वे संस्कारात्मनोयोगयोः सत्त्वान् स्मृतीनां यौग-  
पद्यं स्यादत्रैकदेशिनः परिहारमाशङ्कते । ज्ञानं संस्कारकारणं समवेतं  
यदवच्छेदेन तदवच्छेदेन मनःसन्निकर्षस्य सृष्ट्युत्पादकत्वात्तस्य च क्रमि-  
कत्वात् सृष्टियौगपद्यमित्यर्थः ज्ञायतेऽनेनेति ध्युत्पत्त्या ज्ञानपदं संस्कार  
परमित्यन्ये ॥ २६ ॥

तत्तत्तं दूषयति । उक्तं न युक्तं मनसः अन्तःशरीरवृत्तित्वात् अन्तःश-  
रीरे वृत्तिर्ज्ञानजनकोभूतो व्यापारो यस्य तत्त्वात् शरीरातिरिक्तावच्छेदे-  
नात्मनोयोगस्य ज्ञानाहेतुत्वाच्चरीरावच्छिन्नस्य हेतुत्वे तद्दोषतादस्य प्र-  
मिति भावः ॥ २७ ॥

एकदेशी शङ्कते । शरीरावच्छिन्नात्मनोयोगेन हेतुः साध्यत्वात्  
असिद्धत्वात् साप्ताभावादिति भावः ॥ २८ ॥

सिद्धानसूत्रम् । उक्तप्रतिषेधेन युक्तं स्मरतः शरीरधारणरूपाया-  
उपपत्तेर्यत्तेरन्यथा मनसोवह्निभावे शरीरावच्छिन्नात्मनोयोगाभावेन  
प्रयत्नाभावे शरीरधारणं न स्यादिति भावः ॥ २९ ॥

पुनःशङ्कते । शरीराधारणं न मनसः आशुगतिवाच्छीघ्रमेव शरीरे  
परावृत्तेः ॥ ३० ॥

दूषयति । मनसः शीघ्रमागमनं न युक्तं स्मरणे कालनियमाभावात्  
कदाचिच्छीघ्रं स्मर्यते कदाचित्प्रणिधानाद्विलम्बेनापीति न च प्रणिधानं  
शरीरान्तःस्थितमनसएव वह्निर्निगमस्तु स्मरणव्यवहितपूर्वमेवेति वाच्यं  
वह्निर्निर्गमानन्तःप्रवेशानुकूल क्रियाविभागादिकालकलापं यावच्छरीरधा-  
रणं न स्यादिति भावः ॥ ३१ ॥

एकदेशिमतमन्य एकदेशी दूषयति । वह्निः प्रदेशविशेषे मनः संयो-  
गविशेषेन सम्भति स हि न सृष्ट्यर्थमात्मप्रेरणेन तस्य स्मरणीयज्ञान-  
पूर्वकतया प्रागेव सृष्ट्यापत्तेः नापि यद्वच्छया अस्मात् आकस्मिकत्वस्य  
निषेधात् नापि मनसोज्ञतया ज्ञाततया मनसोज्ञातत्वानभ्युपगमात् प्रे-  
रणयद्वच्छाजताभिः प्रयत्नेच्छाज्ञानैरित्यर्थ इति कश्चित्तत्र प्रदत्तेनैव चरि-  
ताद्यत्वापत्तेः ॥ ३२ ॥

एतन्निरातरोति । नृत्यादिकं पश्यतः कण्टकादिना पादव्यघनेन



तदवच्छेदेन मनः संयोगो यथा जायते तथैतदपीति भावः इतरथा तत्र मनः संयोगेऽप्युक्तदोषाः स्युः अष्टविशेषाधीनकर्मवशादभाविता चेत्तुल्यं प्रकृतेऽपीति भावः ॥ ३३ ॥

स्मरणायौगपद्यं स्वयमुपपादयति । प्रणिधानं चित्तैकाग्र्यं सुस्मर्येति यावत् लिङ्गज्ञानं उद्बोधकं उद्बोधकानामानन्त्यादादिपदं ज्ञानात्परतोयोजनीयं तस्य क्रमात् स्मरणक्रमः यदि च युगपदुद्बोधकानि तदा तावद्विषयकस्मरणमिष्यत एव यथा पदज्ञानादाविति सन्तव्यम् ॥ ३४ ॥

नन्विच्छादीनां मनोधर्मत्वात्तेषां ज्ञानजन्यत्वात् सामानाधिकरण्येन च तत्र कार्यकारणभावात्कथं ज्ञानस्यात्मगुणत्वमित्याशङ्कायां सिद्धान्तस्त्वम् । ज्ञस्य ज्ञानवत्त्वात्मन इच्छादयः हेतुमाह आरम्भनिवृत्त्योरिच्छाद्वेषनिमित्तत्वादिति प्रवृत्तिनिवृत्त्योरिच्छाद्वेषजन्यत्वात्तत्र सामानाधिकरण्येन ज्ञानस्य हेतुत्वमिति भावः यद्वा ज्ञस्य ज्ञानवतो यावदिच्छाद्वेषौ तच्चिन्मिन्नत्वादित्यर्थः तथा च ज्ञानेच्छाप्रयत्नानां सामानाधिकरण्यं नासिद्धम् ॥ ३६ ॥

नन्वस्तु तेषां सामानाधिकरण्यं परन्तु तेषामधिकरणं कायाकारः पार्थिवादिपरमाणुपुञ्जएवेति चार्वाकः शङ्कते । पार्थिवाद्येषु देहेषु ज्ञानादेर्न प्रतिषेधः कुतः इच्छाद्वेषयोस्तलिङ्गत्वादारम्भनिवृत्तिलिङ्गत्वात्तयोः चेष्टाविशेषलिङ्गकत्वाच्चेष्टायाश्च शरीरे प्रत्यक्षसिद्धत्वादिति भावः ॥ ३७ ॥

समाधितुः प्रतिवन्निमाह । आरम्भनिवृत्त्यनुभाषकक्रियाविशेषदर्शनात् परश्चादिषु ज्ञानादिसिद्धिप्रसङ्गः तस्मात्क्रियाविशेषाणां प्रयत्नादिजन्यत्वं सम्बन्धान्तरेण नतु समवायेन व्यभिचारादिति भावः ॥ ३८ ॥

स्वमते व्युत्पद्यति । तद्विशेषकौ तयोश्चेतनाचेतनयोर्विशेषकौ इतरव्यावर्त्तकौ नियमान्वितौ समवायेन जन्यतानियमतदभावौ समवायेन ज्ञानेच्छादीनां चेतनधर्मत्वादवच्छेदकतया च शरीरे तेषां जन्यजनकभावः परश्चादौ यत्रविषयतया क्रिया वस्तुतस्तु चेष्टैव परश्चादि क्रियाजनिका यत्रादेस्तद्भेदे तु मानाभावः ॥ ४० ॥

इच्छादीनां मनोगुणत्वाभावे युक्त्यन्तरमाह । इच्छादय इति शेषः



## २ अध्याये १ आह्निकम् ।

२६१

यथोक्तहेतुत्वात् ज्ञानेच्छादीनां सामानाधिकरण्येन कार्यकारणभावात्  
 पारतन्त्र्यात् मनस्येतन सहकारित्वाद्विच्छादयो न तदुणाः वस्तुतस्तु  
 इच्छादीनां पारतन्त्र्यात् पराधीनविषयताशालित्वात् इच्छादीनां हि  
 समानाधिकरणस्वजनकज्ञानविषयतैव विषयता ज्ञानवैयधिकरण्ये च तत्र  
 स्यादिति भावः स्वकृतात्स्वयंकृतात्कर्मणः अभ्यागमो भोगः स मनसोयत्ना-  
 दिसत्त्वेन स्यान्न ह्यन्यकृतात्कर्मणोभोगः नवा भोगोऽपि मनसः भोक्तुर्वन्वमो-  
 चादि भागिन एवात्मत्वात्तद्भिन्नः आत्मनि मानाभावात् आत्मनः सुखादि-  
 साक्षत्कारानुरोधान्महत्त्वं मनसश्च धर्मिग्राहकमनादणुत्वमतीऽपि नैक्यं  
 न च मनसः परमाणुत्वात्तादृशत्वं नित्यत्वं तन्मत्तं तथाचात्ममनसोर्नित्य-  
 त्वात्सदाज्ञानादिप्रसङ्गादनिर्मोक्षः स्यादतीऽन्तः करणस्यानित्यत्वं तन्नाशश्च  
 मोक्ष इति वाच्यं अष्टाद्यभावेन नित्ययोरपि वन्वयोरिव फलाजनकत्वात्  
 न च ज्ञानादिकं प्रकृत्य इत्येतत्सर्वं मन एवेति श्रुतेर्मनस एव ज्ञानादिकं  
 अभेदमुखेनोपादानोपादेयभावकथनादिति वाच्यं अन्नं वै प्राणा इत्यादौ  
 निमित्तेऽपि दर्शनात् कारणत्वभावे तात्पर्यादिति तत्त्वम् ॥ ४१ ॥

आत्मगुणत्वमुपसंहरति । इच्छादिकमात्मगुण इत्यादिः हेतुमाह  
 परिशेषात् शरीरादिहेतुनिरासौत् यथोक्तहेतुनां दर्शनसंशेनाभ्यामे-  
 कार्यग्रहणादित्यादीनां उपपत्तेः उपपन्नत्वात् ॥ ४२ ॥

स्मृतेरात्मगुणत्वमर्थसिद्धमपि शिष्यबुद्धिवैशद्याय पृथग्व्युत्पादयति ।

तदर्थं ज्ञेयाभावात् ज्ञानवत्स्वाभावात् ज्ञानत्वावच्छिन्नवत्त्वं  
 ह्यात्मनः स्वभातः स्मृतेश्च ज्ञानत्वावच्छिन्नत्वात्तद्वर्त्मत्वमर्थान्तिद्धं यद्वा  
 ज्ञेयाभावात् स्मृतिहेतुज्ञानस्यात्मवृत्तित्वे सिद्धः स्मृतेरात्मवृत्तित्वमपि  
 सिद्धं परे तु ज्ञानस्याशुविनाशित्वात्कथं स्मृतिहेतुनेत्यत्राह स्मरणमित्यादि  
 ज्ञानवतः स्वभावः संस्कारः तस्मादित्यर्थः इत्याहुः ॥ ४३ ॥

स्मृतेर्योगपद्यसमाधानाय प्रणिधानादीनामुद्बोधकानां क्रमो हेतु-  
 रक्तस्तत्र प्रणिधानादीनि दर्शयति । स्मरणमित्यनुवर्तते निमित्तशब्दस्य  
 इत्यात्मरं श्रुतस्य गुण्येकमभेदेनान्वयः प्रणिधानं मनसोविषयान्तरसंस्कारवा-  
 रणं निवन्धकमन्योपनिवन्धनं यथा प्रमाणेन प्रमेयादिस्मरणं अभ्यासः  
 संस्कारवाङ्मयं एतस्य यद्यपि नोद्बोधकत्वं तथापि तादृशे शीघ्रमुद्बो-  
 ध-



कसमवधानं स्यादित्याशयेन तदुपन्यासः अभ्यासो दृढतरसंस्कार उद्बोध-  
कत्वे नोक्त इति केचित् लिङ्गं व्याप्य व्यापकस्य स्मारकं लक्षणं यथा कपि-  
ध्वजादि वर्जनादेः सादृश्यं देहादेः परिग्रहः स्वीकारस्तस्य स्वस्वामिभा-  
वोऽर्थः तदेकतरेणान्यतरस्मरणं आश्रयाश्रितौ राजादितत्परिजनौ  
परस्परस्मारकौ सम्बन्धो गुरुशिष्यभावादिः गोष्ठपन्यासात् पृथगुक्तः  
आनन्तर्यं प्रोक्षणावघातादेः वियोगो यथा दारादेः एककार्या अन्तेवासि-  
प्रभृतयः परस्परस्मारकाः विरोधादहिनकुलादेरन्यतरेणापरस्मरणं  
अतिशयः संस्कारउपनयनादिराचार्यादिस्मारकः प्राप्तिर्धनादेर्गतां  
स्मारयति व्यवधानमावरणं यथा खड्गादेः कोषादि सुखदुःखयोरन्यतरे-  
णापरस्य ताभ्यां तत्प्रयोजकस्य वा स्मरणं इच्छाद्वेषौ यद्विषयकतया  
गृहीतौ तस्य स्मारकौ भयं मरणदेर्भयहेतोर्वा स्मारकं अर्थित्वं दातुः  
शाखादेः क्रिया वायुदेरागात्प्रीतिः पुत्रादेः स्मरणं धर्माधर्माभ्यां जन्मा-  
न्तरातुभूतसुखदुःखसाधनयोः प्रागनुभूतसुखादेश्च स्मरणमिति उक्तेषु च  
किञ्चित्संख्यरूपसत्किञ्चित् ज्ञातमुद्बोधकं शिष्यव्युत्पादनाय चायं प्रपञ्चः  
॥ ४४ ॥ समामं बुद्ध्यात्मगुणत्वप्रकरणम् ॥ ३५ ॥

बुद्धेर्बुद्धन्तरादिनाशउक्तः स च तृतीयक्षणावर्तिध्वंसप्रतियोगित्व-  
सिद्धौ स्यादतो बुद्धेरुत्पन्नापवर्गित्वं व्युत्पादनीयं तत्तत्सिद्धान्तसूत्रम् । शरी-  
रादिकर्मधाराया अनवस्थायिन्याः प्रत्यक्षधारापि वाच्या न चाद्यबुद्धेरु-  
त्तरोत्तरग्राहकत्वं विरम्य व्यापाराभावात् पूर्वपूर्वस्य च परपरतो-  
ऽननुभवादिनाशसिद्धिः वाश्रयनाशादेरभावादिरोधिगुणस्यैव नाशकत्वमिति  
कर्मवद्बुद्धे रनवस्थायित्वग्रहणादिति वार्थः ॥ ४५ ॥

शङ्कते । बुद्धिर्यद्याशुविनाशिनी स्याद्योग्यशेषविशेष धर्मविशिष्ट  
धर्मिग्राहिणी न स्याद्विद्युत्सम्पातकालीनवस्तुग्रहणवत् न चैवं तस्मान्न  
तथेत्यर्थः ॥ ४७ ॥

उत्तरयति । प्रतिषेद्धव्यस्य बुद्धेराशुविनाशित्वस्याभ्यनुज्ञा त्वया कृता  
विद्युत्सम्पातदृष्टान्तरूपस्य हेतोः साधकस्योपादानात् तथा चांशतो-  
बाध इति भावः ॥ ४८ ॥

अस्तु तर्हि तद्दृष्टान्तेन न्यासां बुद्धीनामनवस्थायित्वमित्याह । यथा



## ३ अध्याये २ आङ्गिकम् ।

२६३

प्रदीपार्चिषां सन्तन्यमानानामनवस्यायित्वेऽप्यभिव्यक्तग्रहणं तथान्यत्वापि  
स्यात् विद्युत्सम्पातस्यले या बुद्धिरुत्पन्ना सा स्वविषये व्यक्तैवेति भावः ॥  
॥ ४६ ॥ समाप्तं बुद्धेरुत्पन्नापवर्गित्वप्रकरणम् ॥ ३६ ॥

अथ बुद्धेः शरीरगुणत्वाभावप्रकरणं न च प्रागेव तत्सिद्धेरनारम्भ-  
णोपमेतत् गौरोऽहं जानामीत्याद्यनुभवेन तत्साधकानामाभासीकरणा-  
दतोविशिष्य तद्भुत्यादनाय संशयबीजमाह । द्रव्ये चन्दनादौ स्वगुणस्य  
रूपादेः परगुणस्य शैत्यादेश्च यद्वादेवं शरीरे रूपादेरौष्ण्यस्य च यद्वाह-  
बुद्ध्यादिः शरीरगुणो न वेति संशयः ॥ ५० ॥

तत्र सिद्धान्तसूत्रम् । न शरीरगुणचेतनेति आदौ भाष्यकृतः पूरणं  
न शरीरविशेषगुणइत्यर्थः अयं तर्काकारः बुद्ध्यादिकं शरीरविशेषगुणः  
स्याद्यावच्छरीरभावि स्यात् रूपादिवत् तत्परिष्कार्यं चातुमानं बुद्ध्यादिकं  
न शरीरविशेषगुणः अथावद्द्रव्यभावित्वात् शब्दवत् व्यतिरेके रूपवद्वा  
अथावद्द्रव्यभावित्वञ्च आश्रयत्वाभिमतकालीननाशप्रतियोगित्वम् ॥ ५१ ॥

पिठरपाकमते व्यभिचारमाशङ्कते । शरीरे पाकाधीनरूपादिना  
व्यभिचारान्नोक्तं साधनं युक्तमित्यर्थः परे तु सिद्धान्तसूत्रमेवेदं तथा हि  
पाकजरूपेण व्यभिचारः शङ्कनीयः पाकजगुणान्तरस्य रूपान्तरस्योत्पत्तेः  
तथा च स्वसमानाधिकरणस्वसमानजातीयासमानकालीनत्वं पूर्वोक्त-  
हेतौ नाशप्रतियोगित्वे विशेषणीयमित्यर्थ इत्याहुः ॥ ५२ ॥

सिद्धान्तसूत्रम् पाकजानां प्रतिद्वन्दिनि पूर्वशरीरप्रतिरूपके शरी-  
रान्तरे सिद्धेः घटादौ पाकजरूपसम्भवेऽपि शरीरे न तत्सम्भवः शरीरा-  
वयवानाञ्चर्मादीनामग्निसंयोगविशेषेण नाशवश्यकत्वात् परेतु पाक-  
जानां प्रतिद्वन्दिनोऽग्निसंयोगात्सिद्धेः तथा च ताऽशाग्निसंयोगासमा-  
नाधिकरणत्वमर्थस्ते नाग्निसंयोग नाशेऽग्निसंयोगजन्ये च न व्यभिचार-  
इत्याहुः अन्ये तु शरीरगुणत्वाभावे हेत्वन्तरमाह प्रतिद्वन्दीति पाकजानां  
पूर्वरूपादिकं प्रतिद्वन्दिं विरोधि एकस्मिन् रूपे विद्यमाने रूपान्तराभावात्  
प्रकृते त्वेकस्मिन् ज्ञाने सत्यपि द्वितीयचरणे ज्ञानान्तरोत्पत्तेर्ज्ञानादिकं न  
शरीरविशेषगुण इत्यर्थ इत्याहुः ॥ ५३ ॥

हेत्वन्तरमाह । शरीरविशेषगुणानामिति शेषः ज्ञानसुखादिकन्तु



न शरीरव्यापकं हृदयाद्यवच्छेदेन तदानुभविकत्वादिति भावः ॥ ५४ ॥

हेययति । शरीररूपादेराश्रयव्यापकत्वं न शरीरस्य गौररूप-  
स्पर्शादेः केशनखादावनुपलब्धेरित्यर्थः ॥ ५५ ॥

दूषयति । स्पष्टं अन्ये तु चेतना न शरीरगुणः शरीरव्यापित्वात्  
शरीरे तदवयवेषु सर्वेष्वेकेन सम्बन्धेन सत्त्वात् शरीरगुणस्तु न स्वाव-  
यववृत्तिः शङ्कते न केशेति चैतन्यस्यानुपलब्धेः समाधत्तेत्वगिती-  
त्याहुः ॥ ५६ ॥

हेत्वन्तरमाह । बुद्धिर्न शरीरगुणः शरीरगुणवैधर्म्यात् वहिरिन्द्रि-  
यावेद्यत्वे सति वेद्यत्वात् ॥ ५७ ॥

आक्षिपति । नोक्तं युक्तं रूपादीनां परस्परवैधर्म्यात् तथाच तद्वि-  
त्या स्पर्शादीनां शरीरगुणत्वं न स्यादचाक्षुषत्वात्तथाचोक्तमप्रयोजकमिति  
भवः ॥ ५८ ॥

समाधत्ते । रूपादीनां न शरीरगुणत्वप्रतिषेधः कुतः ऐन्द्रियकत्वात्  
तत्तदिन्द्रियाप्राप्त्यलक्षणतत्तद्गुणवैधर्म्येऽपि शरीरगुणत्वावच्छिन्नवैध-  
र्म्यस्य वहिरिन्द्रियाप्राप्त्यलक्षणे सति प्राप्त्यलक्षणाभावः । बुद्धौ च तत्सत्त्वा-  
दिति भावः ॥ ५९ ॥ समाप्तं बुद्धेशरीर-गणभेद प्रकरणम् ॥ ३७ ॥

अथ क्रमप्राप्ता मनःपरीक्षा तत्र प्रतिशरीरमेकं मनश्चक्षुरादिसह-  
कारितया मनःपञ्चकं वेति संशये मनःपञ्चकमेवोचितं तेन च प्रत्येकं  
सकलमनःसम्बन्धाद्यासङ्गयौगपद्यो उपपद्यते इति पूर्वपक्षे सिद्धान्तसूत्रम् ।  
प्रतिशरीरं मनो नानात्वे व्यासङ्गस्यलेऽपि यौगपद्यं स्यादतो न मनो ना-  
नात्वमिति भावः ॥ ६० ॥

दीर्घशृङ्गुलीभक्षणादौ ज्ञानयौगपद्यान्नानात्वं स्यादित्याशङ्कते ।  
न एकं मनः अनेकक्रियाणां अनेकज्ञानानामनुपलब्धेरित्यर्थः ॥ ६१ ॥

समाधत्ते । क्रमिकेऽपि तदुपलब्धिर्यौगपद्योपलब्धिराशुसञ्चारात्  
शीघ्रसञ्चारात्मकदोषात् यथा अलातचक्रे वेगातिशयेन आस्यमाणे क्रिया-  
सन्तानस्य भेदेनानुपलब्धिरिति ॥ ६२ ॥

ननु यौगपद्योपपादकतया मनसो वैभवं स्यादत आह । मन इति



## ३ अध्याये २ आङ्गिकम् ।

२६५

शेषः यथोक्तस्य ज्ञानायौगपद्यस्य हेतुत्वान्ननोऽणुत्वसाधकत्वादित्यर्थः ॥

॥ ६३ ॥ समाप्तं मनःपरीक्षःप्रकरणम् ॥ ३८ ॥

अथ प्रसङ्गाच्छरीरस्य तत्तत्पुरुषादृष्टनिष्पाद्यताप्रकरणम् अथवा एकत्रैव शरीरे मनसः सर्वैरात्मभिः सह संयोगात् सर्वत्रैव मनसा ज्ञानं जन्यतामृतस्तददृष्टजन्यताप्रतिपादनप्रकरणं तत्र शरीरं तत्तत्पुरुषसम-वेतादृष्टनिमित्तकं न वेति विप्रतिपत्तौ निषेधकोटिस्तेषां अदृष्टाभावात् तस्य शरीरहेतुत्वाभावात् अदृष्टस्य पुरुषसमवायाभावाद्वा तत्राद्यं पक्षं निरस्यति । पूर्वोक्तस्य यागदानहिंसादेः फलस्य धर्माधर्मरूपस्य अनु-बन्धात् सहकारिभावात्तस्य शरीरस्योत्पत्तिः ॥ ६४ ॥

आक्षिपति । भूतेभ्य इति सावधारणं तथावादृष्टनिरपेक्षेभ्यो भूतेभ्यः परमाणुभ्यो मूर्तेर्मृदादेरुपादानमारम्भो यथा तथैव तस्य शरीरस्य उपा-दानमारम्भः परमाणुभ्योऽदृष्टनिरपेक्षेभ्य इत्यर्थः ॥ ६५ ॥

समाधत्ते । नोक्तं युक्तं दृष्टान्तस्य साध्यसमत्वात् पक्षसमत्वात् मृदा-देरप्यदृष्टसापेक्षपरमाणुभ्य एवेत्यत्तेरुपगमात्तदजन्यत्वस्य तत्रासिद्धेरिति भावः ॥ ६६ ॥

न मृदादिसाम्यमित्याह सूत्राभ्याम् । शरीरे न मृदादिसाम्यं मातापितरौ कर्मणः शरीरोत्पत्तिनिमित्तत्वात् पुत्रदर्शनादिजन्यसुखा-नुभावकादृष्टस्य देवाराधनादिजन्यस्य पुत्रादिनिमित्तत्वात् एवं माता-पितरौराहारस्य शरीरोत्पत्तिनिमित्तत्वाददृष्टसहकारेणाराहारस्य शुक्र-शोणितादिद्वारा कललादिजनकत्वात् आहारस्य पितामहपिण्डभोज-नादेरदृष्टद्वारा पुत्रजनकत्वादित्यर्थ इत्यन्ये ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

आहारस्यादृष्टसहकारित्वे विपक्षे बाधकमाह । प्राप्नो दम्पत्योः सम्प्रयोगे तु गर्भधारणस्य यतो न नियमस्ततोऽदृष्टस्य सहकारित्वमावश्य-कमिति भावः ॥ ६८ ॥

नन्वादृष्टनिरपेक्षैरेव भूतैः कैश्चित् स्वभावविशेषाच्छरीरं जन्यतां स्वभावानभ्युपगमे च शरीरस्य सर्वात्मसंयुक्तत्वात् साधारण्यापत्तिरत आह । अयमर्थः शरीरस्य सर्वात्मसंयुक्तत्वेऽपि संयोगविशेषोऽवच्छेदक-तालक्षणो येनात्मना सह तदीयं तच्छरीरं संयोगविशेष एव कुत इत्यत आह



२६६

## न्यायसूत्रवृत्तौ ।

संयोगेति संयोगविशेषोत्पत्तौ कर्म अदृष्टविशेषो निमित्तं यथा शरीरोत्पत्तावदृष्टविशेषो निमित्तमिति संयोगे विशेषस्तदात्मज्ञानजनननियामको जातिविशेष एव संयोगः शरीरावयवसंस्थानविशेष इति कश्चित् ॥ ७० ॥

अथ शरीरं नादृष्टजन्यं प्रकृतेरारम्भस्वभावत्वादेव तदुपपत्तेः प्रतिबन्धकपूर्वशरीरापगमस्तद्वहाधीनः जलस्य निम्नानुसरणस्वभावस्येव बन्धापगमाधीनत्वम् इति द्वितीयपक्षं सांख्यसम्मतं निरस्यति । एतेन अदृष्टहेतुकत्वव्यवस्थापनेन अनियमस्तु आत्मनः कदाचिन्मानुषशरीरसम्बन्धः कदाचिदन्यादृशः किञ्चिच्च शरीरं सकलावयवं किञ्चिच्च विकलावयवमित्यादि अदृष्टहेतुत्वानभ्युपगमे त्वयमनियमो न त्वस्मन्मते किञ्चादृष्टनिरपेक्षप्रकृतिमात्रारब्धत्वे सर्वात्मसाधारण्यं शरीरस्य स्यात् इति भावः अन्ये तु अदृष्टमन्यनियतं स्यादित्यत्राह एतेनेति तत्राप्यदृष्टान्तरमित्यनादित्वमेवेति भाव इत्याहुः ॥ ७१ ॥

आर्हतास्तु मनःपरमाणुगुणमदृष्टं मन्यन्ते तथाहि पार्थिवाः परमाणवः सहिताः स्वादृष्टवशाच्छरीरमारभन्ते मनश्च स्वादृष्टप्रयुक्तं शरीरमाविशति तच्चादृष्टं स्वभावादेव पुद्गलस्य सुखदुःखे साधयतीति ततोत्तरमाह । तत्तदात्मादृष्टोपपन्नं विनैव तत्तदात्मोपभोगाय परमाणवश्चेच्छरीरमारभन्ते सुक्तेऽपि तदात्मनि तद्भोगाय शरीरमारभेरन् अपवर्ग इत्युपलक्षणं संसारिणामपि नरकरितुरगादिशरीरोपपन्ने विनिगमकं न स्यादिति भावः ॥ ७२ ॥

अदृष्टस्य मनोगुणत्वमपि दूषयति । संयोगस्य शरीरारम्भकस्य ज्ञानादिजनकस्य च उच्छेदो न स्यात् कुतः मनसो यत्कर्म अदृष्टं तन्निमित्तत्वात् तस्य नित्यत्वाच्चादृष्टसंयोगधारा नोच्छिद्येत तस्यानित्यत्वेऽपि व्यधिकरणभोगस्य तन्नाशकत्वेऽपि प्रसङ्ग इति भावः ॥ ७५ ॥

संयोगानुच्छेदे का क्षतिरत आह । तथा सति प्रापणस्य मरणस्यानुपपत्तेः शरीरादेर्नित्यत्वस्याविनाशित्वस्य प्रसङ्गः ॥ ७६ ॥

आक्षिपति । यथा परमाणोः श्यामता नित्यापि निवर्तते तथा शरीरादिकमपि निवर्तते यद्वा तथैव परमाणुनिष्ठं नित्यमप्यदृष्टं निवर्तते तदभावाच्च नापवर्गे शरीरमिति ॥ ७७ ॥



## ३ अध्याये २ आह्निकम् ।

२६७

सिद्धान्तसूत्रम् । अकृतस्य प्रमाणाविषयस्य अभ्यागमः स्वीकारस्तत्र-  
सङ्गादित्यर्थः न हि परमाणुनिष्ठादृष्टस्य कारणस्य सत्त्वे शरीरोच्छेदः  
स्यादेवमणुश्यामता नित्यत्वस्यापि प्रमाणागोचरस्य स्वीकारः स्यात्तथा च  
दृष्टान्तासिद्धिः न वाऽनादेर्भावस्य नाशः सम्भवति जन्यभावत्वेन तद्वेत-  
त्वात् यदा नित्यादृष्टाच्छरीरसम्बन्धोपगमे अकृतात् स्वयमजनितात्कर्म-  
णोऽभ्यागमः फलसम्बन्धः स्यात्तथा च स्वाकृतत्वाविशेषात् किं शरीरं कस्य  
भविष्यतीत्यत्र नियामकाभाव इति भावः ॥ ७८ ॥

समाप्तं शरीरस्यादृष्टनिष्पाद्यताप्रकरणम् ॥ ३६ ॥

समाप्तञ्च तृतीयाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ॥ १ ॥

इति श्रीविश्वनाथभट्टाचार्यकृतायां न्यायसूत्रवृत्तौ तृतीयाध्याय-  
वृत्तिः समाप्ता ॥ ३ ॥

सूरकोटिविजयप्रभाभरं योगिमानसवरं परं महः ।

श्यामलं किमपि धाम कामदं कामकोटिकमनीयमाश्रये ॥

तृतीये तावदत्मादिप्रमेयषट्कं कारणरूपं परीक्षितमथ कार्यरूपं  
प्रवृत्त्यादिप्रमेयषट्कमवसरतो हेतुसङ्गावेन च परीक्षणीयं यद्यपि प्रथमा-  
ह्निके षट्कं परीक्षणीयं द्वितीयाह्निके तु तत्त्वज्ञानं तथापि तस्यापवर्गहे-  
तुत्वादुपोद्घातेन च परीक्षणीयत्वादपवर्गपरीक्षान्तःपातितया षट्कपरी-  
क्षायाध्यायार्थः तत्र चोद्दिष्टधर्मवृत्तया षट्कपरीक्षा प्रथमाह्निकार्थः तत्र  
प्रथमाह्निके चतुर्दशप्रकरणानि तत्र चोक्तरूपवृत्तयः प्रवृत्तिदोषयोः  
परीक्षा प्रथमप्रकरणार्थः न चाथेभेदात् प्रकरणभेदः यथा तथेति परस्पर-  
रसाकाङ्क्षाभ्यामवयवभ्यामुक्तं रूपवत्त्वलक्षणैकार्थवत्त्वकथनात् प्रवृत्ति-  
परीक्षायामाकाङ्क्षितायां सूत्रम् । अत्र तथेवेति शेषं पूरयन्ति तदयुक्तं  
तथा सत्यत्वेन यथा शब्दस्याकाङ्क्षाशान्तावधिमसूत्रस्य तथाशब्देऽपि यथाश-  
ब्दान्तरस्य पूरणीयतया प्रकरणभेदापत्तेस्तस्मादधिमसूत्रस्य तथाशब्दे-



नान्वयो युक्तः प्रवृत्तिर्यथा उक्तलक्षणवती तथा दोषा अयुक्तलक्षणवन्-  
इत्यपि सूत्रसम्बलितोऽर्थः प्रवृत्तिर्वाग्वुद्भिर्शरीरारम्भ इत्युक्तलक्षणस-  
त्त्वात्सिद्धं लक्षणमिति भावः प्रवृत्तिस्तु द्वयी कारणरूपा कार्यरूपा च द्वे  
अव्याक्तसमवेने तत्वाद्या जन्यत्वेनावशिष्टा विशिष्टा वा यत्नत्वजातिमती  
प्रत्यक्षसिद्धा द्वितीया तु धर्माधर्मरूपा यागादेरगम्यागमनादेश  
चिरध्वस्तस्य व्यापारतया कर्मनाशजलस्यर्थादेः प्रायश्चित्तादेश नाशयतया  
सिध्यतीति ॥ १ ॥

दोषपरीक्षायां प्राप्त्यामाह । तथा दोषा अपि प्रवृत्तना लक्षणा  
इत्युक्तलक्षणवन् एवेति नासिद्धिरिति भावः ॥ २ ॥

समाप्तं प्रवृत्तिदोषसामान्यपरीक्षाप्रकरणम् ॥ ४० ॥

अथ त्वैराशयेन विशेषेण दोषपरीक्षणाय तत्त्वैराशयप्रकरणं तत्र  
सिद्धान्तसूत्रम् । तेषां दोषाणां त्रयो राशयः त्रयः पक्षा न तु रागद्वेष-  
मोहानामेकैकत्वं तेषामर्थान्तरभावात् अवान्तरभेदवत्त्वात् तथा च भय-  
शोकमानादीनाप्रेष्वेवान्तर्भावात् विभागन्यूनत्वं इच्छात्वद्वेषत्वमिच्छाज्ञान-  
त्वहृदयविरुद्धधर्मवत्त्वात् विभागाधिक्यम् इच्छात्वादिकन्तु रागादावनुभव-  
सिद्धं तत्र रागपक्षः कामो मत्सरः स्मृहा तृष्णा लोभो माया दम्भ इति  
कामो रिरंसा रतिश्च विजातीयः संयोगः नारीगताभिलाष इति तु न  
युक्तं स्त्रियाः कामेऽव्याप्तेः मत्सरः स्वप्रयोजनप्रतिसम्भानं विना पराभि-  
मतनिवारणेच्छा यथा राजकीयादुदपानान्नोदकं पेयं इत्यादि एवं पर-  
गुणनिवारणेच्छाऽपि स्मृहा धर्माविरोधेन प्राप्तीच्छा तृष्णा इदं मे न  
जीयतामितीच्छा उचितव्यशकरणेनापि धनरक्षणेच्छारूपं कार्पण्यमपि  
तृष्णाभेद एव धर्मविरोधेन परद्रव्येच्छा लोभः परवञ्चनेच्छा माया कपटेन  
धार्मिकत्वादिना स्वोत्कर्षख्यापनेच्छा दम्भः । द्वेषपक्षः क्रोध ईर्ष्याऽस्तूया  
द्रोहोऽमर्षोऽभिमान इति क्रोधो नेत्रलौहित्यादिहेतुर्दोषविशेषः ईर्ष्या  
साधारणे वस्तुनि परस्वत्वात्तदुपहीतरि द्वेषः यथा दुरन्तदायादानाम्  
अस्तूया परगुणादौ द्वेषः द्रोहो नाशाय द्वेषः हिंसा तु द्रोहजन्या परे तु  
ताम्रोहं मन्यते अमर्षः कृतापराधे असमर्थस्य द्वेषः अभिमानोऽपकारिण्य-  
किञ्चित्करस्यात्मनि द्वेषः । मोहपक्षः विपर्ययसंशयतर्कमानप्रमादभय-



श्रीकाः विपर्ययो मित्याज्ञानापरपर्यायोऽवयवार्थनिश्चयः एकधर्मिकविरुद्ध-  
भावाभावज्ञानं संशयः स एव विचिकित्सेत्युच्यते व्याप्यारोपाद्यापकप्रस-  
ङ्गनं तर्कः आत्मन्यविद्यमानगुणारोपेणोत्कर्षधीर्मानः गुणवति निर्गुणत्व-  
धीरूपस्योऽपि मातेऽन्तर्भवति प्रमादः पूर्वकर्तव्यतया निश्चितेऽप्यकर्त-  
व्यताधिः एवं वैपरीत्येऽपि भयमनिष्टहेतुपनिपाते तत्परित्यागानर्हता  
ज्ञानं शोक इष्टविद्योगे तल्लाभानर्हताज्ञानम् ॥ ३ ॥

शङ्कते । रागादीनां भेदो न एकप्रत्यनीकभावात् एकस्मिन् प्रत्य-  
नीकभावे विरोधित्वं यस्य तत्तथा तेनैकनाश्वत्वादित्यर्थः एकं हि तत्त्व-  
ज्ञानमेषां विरोधि ॥ ४ ॥

समाधत्ते । एकविरोधित्वं भेदनिषेधेन हेतुर्व्यभिचारात् एकाग्नि-  
संयोगनाश्वत्वेऽपि रूपादीनां भेदात् ॥ ५ ॥

किञ्च नैतेषामेकनिवर्त्यत्वं तत्त्वज्ञानस्य मोहनिवर्तकत्वात्तन्निश्चया  
रागादिनिवृत्तेरित्याशयेनाह । यद्यपि बहूनां निर्द्धारणे इष्टनः तमयोर्वा  
विधानात् पापतमः पापिष्ठ इति वा युक्तं तथापि द्वौ द्वावधिकृत्य निर्धा-  
रणं द्वयोर्निर्धारणे द्वयसुनो विधानात्तेन रागमोहयोर्द्वेषमोहयोर्वा मोहः  
पापीयाननर्थमूलं बलवद्द्वेष इति यावत् हेतुमाह नामूढस्य मोहशून्यस्य  
रागद्वेषयोरभावादित्यर्थः न च तत्त्वज्ञानिनोऽपि हितहितगोचरप्र-  
वृत्तिनिवृत्ती रागद्वेषाधीने इति तत्र व्यभिचार इति वाच्यं धर्मधर्मप्रयो-  
जकरागद्वेषयोर्दोषत्वेन विवक्षितत्वात् एतदभिप्रयक्तमेवासक्तो द्विपञ्च  
सुक्त इत्यादिकमपीति भावः ॥ ६ ॥

शङ्कते । दोषनिमित्तत्वान्मोहस्य दोषभिन्नत्वं स्यादभेदेन कार्य-  
कारणभावाभावात् दोषेभ्य इत्यान्तर्गणिकभेद इच्छवचनं प्राप्तस्तर्हीत्यशस्तु  
न ह्येवं किन्तु साध्यकतः पूरणमित्यपि वदन्ति ॥ ७ ॥

निराकरोति । मोहस्य दोषलक्षणसत्त्वाद्दोषत्वं व्यक्तिभेदाच्च हेतु-  
हेतुमद्भावो न विरुध्यत इति भावः ॥ ८ ॥

अप्रयोजकसङ्काऽनैकान्तिकत्वमप्याह । एकजातीययोरपि द्रव्ययो-  
र्गुणयोश्च निमित्तनैमित्तिकोपपत्तेर्हेतुहेतुमद्भावास्वीकारात्तुल्यजातीयत्व-  
प्रतिषेधो न युक्त इति ॥ ९ ॥ समाप्तं दोषपरीक्षाप्रकरणम् ॥ ४१ ॥



क्रमप्राप्तया प्रेत्यभावे परीक्षणीये प्रेत्यभावः शरीरस्य बुद्धेरात्मनी-  
वेति संशये पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभाव इति लक्षणसूत्राद्विनष्टस्योत्पादः प्रती-  
यते न चासौ नित्यस्यात्मनः सम्भवतीति शरीरादेः स्यात् न च मृतस्य  
शरीरादेरुत्पत्तिविरोधान्नैदं युक्तमिति वाच्यं प्रेत्यभाव इत्यस्य सुखं  
व्यादाय स्वपितीतिवत् व्यत्ययेन भूत्वा प्रापणमित्यर्थादत्र सिद्धान्तसूत्रम् ।  
आत्मनः पूर्वोक्तयुक्त्या नित्यत्वे प्रेत्यभावस्तस्य सिध्यति एकजातीयशरी-  
राद्यसम्बन्धचरमसम्बन्धनाशयोक्त्यादप्रापणयोरालम्बनः सम्भवात् सम्बन्ध-  
स्त्वच्छेद्यावच्छेदकभावलक्षणः स च स्वहृदयसम्बन्धविशेषोऽतिरिक्तो  
वेत्यन्यदेतत् लक्षणसूत्रे पुनरुत्पत्तिरित्यत्र पुनः पदञ्च प्रेत्यभावप्रवाहस्या-  
नादित्वज्ञापनाय तज्ज्ञानञ्च वैराग्य उपयुज्यत इति ॥ १० ॥

ननु प्रेत्यभाव उत्पत्तिरिच्छः सा च न सजातीयाद्विजातीयाद्वा  
सम्भवति व्याप्यपृथिव्यादौ व्यभिचारात्तन्नित्यत्वे मानाभावादतः प्रेत्य-  
भावोऽसिद्ध इत्युपोद्घातात् प्रसङ्गाद्वात्पत्तिप्रकारं दर्शयति । व्यक्ताना-  
रुत्पत्तिरिति शेषः व्यक्ताद्युक्तजातीयात् पृथिव्यादितः व्यक्तानां व्यक्त-  
जातीयानां जन्यपृथिव्यादीनामुत्पत्तिः इत्यञ्च पृथिव्यादेः पृथिव्यादितो  
रूपवदादितश्च रूपवदादीनामुत्पत्तेः प्रत्यक्षसिद्धत्वात्परमापुरपि कल्पते  
तत्रसरेणोरपकटमहत्त्वेन सावयवावयवत्वसिद्धेस्तस्य लाघवाच्चित्यत्वमिति  
भावः ॥ ११ ॥

अबुद्धा शङ्कते । विशेषकार्यकारणभावाभावे सामान्यतोऽपि न  
तथेति भावः ॥ १२ ॥

विशेषतो व्यभिचारो न विरोधी सामान्यतस्तु नास्त्येवेत्याशयवान्  
समाधत्ते । सजातीयात्सजातीयोत्पत्तेर्न प्रतिषेधः पृथिवीजातीयात्  
कपालादितो घटादिनिष्पत्तेः उक्तापादनं चाप्रयोजकमिति भावः ॥ १३ ॥

समाप्तं प्रेत्यभावपरीक्षाप्रकरणम् ॥ ४२ ॥

अथात्राष्टौ प्रकरणानि प्रसङ्गाद्युक्तानामित्येतत्सिद्ध्यर्थमुपोद्घाताद्वा  
तत्रादौ न्यून्यतोपादानप्रकरणं तत्र पूर्वपक्षसूत्रम् । कार्याणां भावाना-  
रुत्पत्तिर्यतोऽङ्गरादेर्वीजादिकमनुपपद्य प्रादुर्भावाभावात् तथा च  
वीजादिविनाशोऽङ्गुराद्युपादानमिति ॥ १४ ॥



## ४ अध्याय १ आह्निकम् ।

२७१

अत्रेत्तरम् । उपमृद्य प्रादुर्भवतीति न युक्तः प्रयोगव्याघातात्  
उपमर्दकस्य पूर्वमसत्त्वे उपमर्दकत्वायोगात् पूर्वं सत्त्वे च परतः प्रादु-  
र्भावायोगात् ॥ १५ ॥

पूर्वपक्षी दूषयति । नायुक्तः प्रयोगः अतीतेऽनागते च कारकशब्द-  
प्रयोगात् कर्तृकर्मादिवोधकशब्दप्रयोगात् यथा जनिष्यते पुत्रः जनिष्य-  
माणं पुत्रमभिनन्दति अभूत्कृष्णोभिन्नं कुम्भमनुशोचति ॥ १६ ॥

नन्वास्तामौपचारिकः प्रयोगस्तथापि किं बीजादेर्विनष्टस्योपादानत्वं  
मन्यसे बीजादिविनाशस्य वा अन्येऽपि तस्योपादानत्वं निमित्तत्वं वा  
तत्वादौ उत्तरम् । विनष्टानां बीजादीनामुपादानत्वायोगादत एव  
न द्वितीयस्तत्र विनष्टं विनाशस्ततो नोत्पत्तिर्द्रव्यत्वस्य भावकार्यसमवायि-  
कारणतावच्छेदकत्वात् ॥ १७ ॥

ततोयेत्वाह । अभावस्य कारणत्वं न प्रतिषिध्यते प्रतिबन्धकाभावस्य  
हेतुत्वोपगमादित्याह क्रमेति बीजे विनष्टेऽङ्कुरो जायत इति प्रत्ययाद्-  
बीजस्य प्रतिबन्धकस्याभावः कारणं बीजे विनष्टे हि तदवयवैर्जालमि-  
पिक्तभूम्यवयवसहितैरङ्कुर आरभ्यते अभावमात्रस्य कारणत्वे चूर्णी-  
कृतादपि बीजादङ्कुरोत्पत्तिः स्वीदभावस्य निर्विशेषत्वादिति भावः ॥ १८ ॥

समाप्तं अन्यतोपादाननिराकरणप्रकरणम् ॥ ४३ ॥

मतान्तरमाह । अनेन ब्रह्मपरिणामवादो ब्रह्मविवर्त्तवादो वा  
दर्शित इति वदन्ति तथ हि ब्रह्मैव नामरूपप्रपञ्चभेदेन विपरिणमते  
सृत्तिकेवोदञ्चनादिभावेन अत एव प्राकतरूपस्य सत्त्वस्यापरित्यागः प्रप-  
ञ्चेषु उदञ्चनादाविव सृत्तिकात्वस्येति परिणामवादः ब्रह्मैव चानाद्य-  
निर्धेयनीयाऽविद्यावशान्नानारूपेण विवर्त्तते सुखमिव तत्तज्जल द्यालम्बन-  
भेदादिति विवर्त्तवादः ननु पुरुषकर्मैव कारणमस्तु किमोच्चरस्य कारण-  
त्वेनेत्यत आह पुरुषेति पुरुषकर्मणो हि वैफल्यमपि दृश्यते सहकार्यन्तर-  
मवश्यं वाच्यं तथाचिच्च एव यथा यथेच्छति तथा जगद्विपरिवर्त्तत इत्ये-  
वास्तु किं पुरुषकर्मणेति भावः वस्तुतस्तु केवलेच्चरकारणतापरं प्रकरणं  
तदुपादानतापरत्वे तु न किमपि मानमाकलयाम इति ॥ १९ ॥

समाधत्ते । केवलब्रह्मण एव हेतुत्वे तदिच्छाया अप्यतिरिक्तायास्त-



द्विषयतायाश्चानभ्युपगमादभ्युपगमे द्वैतः पत्तिरतः सर्वं सर्वदा स्यान्न स्याच्च  
कार्यवैचित्त्यमिति पुरुषकर्मणोऽपि सहकारितावश्यकौ ब्रह्मण उपा-  
दानत्वन्तु न सम्भवति अस्मवायिकारणासम्भवात्तस्य कारणतामात्रं त्वि-  
ष्यत एवेति भावः ॥ २० ॥

नन्वेवं पुरुषव्यापारस्य फले व्यभिचारो न स्यादिति चेदत्राह ।  
फलाभावस्य पुरुषकर्मभावकारितत्वात् पुरुषस्य कर्म अदृष्टान्तद्भावा-  
धीनत्वात्पुरुषकारः अहेतुः फलानुपधायकः नन्वीश्वर एव क इत्यत्र भाष्यं  
गुणविशिष्टमात्मानरमीश्वरः गुणैर्निर्णयज्ञानेच्छाप्रयत्नैः सामान्यगुणैश्च सं-  
योगादिभिर्विशिष्टमात्मानरं जीवेश्यो भिन्न आत्मा जगदाराध्यः  
सृष्ट्यादिकर्त्ता वेदद्वारा हिताहितोपदेशको जगतः पितेति परेतु प्रसङ्गा-  
दीश्वरप्रतिपादनयतात्तिस्त्वली तथाहि ईश्वरः कारणम् अर्थाज्जन्यजातस्य  
अनुमानन्तु चित्यादिकं सकर्त्तकं कार्यत्वाद्दृष्टवदित्यूह्यं ननु जीवानामेव  
कर्त्तृत्वं स्यादत्राह पुरुषेति पुरुषकर्मणां वैफल्यं दृश्यते तथा च विफले  
कर्मणि प्रवर्त्तमानत्वादज्ञत्वं जीवानां यतः उपादानगोचरापरोक्षज्ञाना-  
दिमतो हि कर्त्तृत्वं न च चित्याद्युपादानगोचरज्ञानं जीवानामिति भावः  
नन्वदृष्टद्वारा जीवानां कर्त्तृत्वमस्त्वित्युच्यते न पुरुषेति फलस्य कार्यस्य  
कर्मभावोऽनिष्पत्तेः तत्तत्पुरुषोपभोगसाधनत्वात्तत्कर्मजन्यत्वमिति स्फोर-  
णाय पुरुषेति समाधत्ते तदिति कर्मणोऽपि तत्कारितत्वादीश्वरकारि-  
तत्वाद्चेतनस्य चेतनाधिष्ठितस्यैव जनकत्वादिति भावः ॥ २१ ॥

समाप्नोमीश्वरोपादानताप्रकरणम् ॥ ४४ ॥

यदि च कार्याणामाकस्मिकत्वं तदा न परमाखादीनाम्युपादानत्वं  
नवेश्वरस्य निमित्तत्वमत आकस्मिकत्वनिराकरणप्रकरणमारभते तत्र  
पूर्वपक्षसूत्रम् । अनिमित्तत इति प्रथमान्तात्तन्निष् अनिमित्तभावोत्प-  
त्तिरित्यर्थः भावेति स्पष्टार्थं घटाद्युत्पत्तिर्न कारणनियस्या उत्पत्तित्वात्  
कण्टकतैक्ष्णप्राद्युत्पत्तिवत् यद्वा घटादिकं न सकारणं भावत्वात्कण्टक-  
तैक्ष्णप्रादिवत् तैक्ष्ण्यं संस्थानविशेषः आदिपदन्त्यूरुचित्वादिपरिग्रहः  
तदकारणकमेवेत्याशयः ॥ २२ ॥



एकदेशी भ्रान्तो दूषयति । अनिमित्तत इति हेतुपञ्चमीनिर्देशाद-  
निमित्तस्यैव निमित्तत्वात् कथमनिमित्तत इति ॥ २३ ॥

दूषयति । अनिमित्तस्य निमित्तस्य च अर्थान्तरभावात् भेदात् उक्तः  
प्रतिषेधो न युक्तः अनिमित्तस्य निमित्तासम्भवात् शरीरस्याकर्म्मनिमि-  
त्तत्वदूषणेनैव च तद्दूषितप्रायमित्याशयेन नात्र दूषितमिति नव्यास्तु  
सूत्रद्वयीमेवं व्याचक्षते समाधत्ते अनिमित्तेति अनिमित्तस्य अनिमित्तत्व-  
सूत्रकस्य निमित्तत्वादनिमित्तत्वानुमित्तिजनकत्वादनिमित्तत इति व्या-  
हृतम् अनिमित्तत्वानुमिति जनकानभ्युपगमेऽनिमित्तत्वं न सिध्येदिति  
कष्टकतैच्छणादिकमपि नानिमित्तकं अदृष्टविशेषसहकृतैरणुमित्तदुत्पाद-  
नादिति हृदयं दोषान्तरमाह निमित्तेति इदमत्र निमित्तमिदमनिमित्त-  
मिति प्रतीत्या तयोर्भेदसिद्धेर्निमित्तप्रतिषेधो न युक्तः इतरथा च सार्व-  
लौकिकी प्रतीतिर्नोपपद्येतेति भावः ॥ २४ ॥

समाप्तमाकस्मिकत्वप्रकरणम् ॥ ४५ ॥

सर्वस्यैवानित्यत्वे नात्मादेरपि नित्यत्वं स्यादतः सर्वानित्यत्वनिराक-  
रणप्रकरणं तत्र प्रमेयत्वं अनित्यत्वव्याप्यं नवेति संशये पूर्वपक्षसूत्रम् ।  
अनित्यं विनाशि उत्पत्तिमतो विनाशधर्मकत्वात् उत्पत्तिमत्वज्ञाकाशादेरपि  
मेयत्वात् सिद्धमिति भावः तेन परमते तत्र नासिद्धिः यद्वा उत्पत्तिवि-  
नाशधर्मकत्वात् उत्पत्तिविनाशधर्मकाणां मानसिद्धत्वात्तद्विन्नमप्रमाणक-  
मिति हृदयं परे तु अनित्यत्वं कादाचित्कत्वं उत्पत्तिधर्मकत्वाद्दिनाशधर्म-  
कत्वादिति हेतुद्वये तात्पर्यमित्याहुः ॥ २५ ॥

दूषयति । उत्पत्तिमत्त्वं न विनाशित्वसाधकं अनित्यताया ध्वंसस्य  
नित्यत्वाद्विनाशित्वात्तत्र व्यभिचारात् ॥ २६ ॥

आक्षिपति । तस्या अनित्यताया अप्यनित्यत्वं यथाग्निर्दाह्यस्येत्वन-  
देर्विनाशानन्तरं स्वयमपि नश्यति न तु दाह्योन्मज्जनं तथा घटादेरपि-  
नाशो नश्यति न घटाद्योन्मज्जनं ध्वंसध्वंसस्यापि प्रतियोगिध्वंसत्वात् ध्वंस-  
प्रागभावानाधारकालस्य प्रतियोग्यधिकरणत्वमिति व्याप्तेरप्रयोजकत्वा-  
न्नोन्मज्जनमित्यन्ये ॥ २७ ॥

समाधत्ते । नित्यस्य नित्यत्वविशिष्टस्य नित्यत्वस्य न प्रत्याख्यानमिति



फलितं यथोपलब्धि उपलब्धनतिक्रमेण तथा च धर्मिणाहकमानेन लाभ-  
वसहकृतेनाकाशादेर्नित्यत्वव्यवस्थापनादिति ॥ २८ ॥

समाप्तं सर्वानित्यत्वनिराकरणप्रकरणम् ॥ ४६ ॥

सर्वनित्यत्वे न प्रेत्यभावादिसिद्धिरतस्तन्निराकरणप्रकरणं तत्वात्ते-  
पसूत्रम् । सर्वं नित्यं भूतत्वान्मयत्वाद्वा तत्र दृष्टान्तप्रदर्शनाय पञ्चभूत-  
नित्यत्वादित्युक्तं तेन परमाणाकाशदृष्टान्तता लभ्यते ॥ २९ ॥

समाधत्ते । सर्वनित्यत्वं न युक्तं घटादीनां उत्पत्तिविनाशकारणानां  
कपालसंयोगमुद्गरपातादीनां उपलब्धेस्तथाचोत्पादविनाशावावश्यकविति  
॥ ३० ॥

पुनः साङ्ख्य आह । उक्तप्रतिषेधो न नित्यस्य परमत्वादेर्यत्तत्त्वं भूत-  
त्वादि घटादौ तदवरोधात् तत्त्वत्तथाचोत्पादादिप्रत्ययो भ्रान्त इति  
भावः ॥ ३१ ॥

दूषयति । अनित्यत्वनिषेधो न युक्तः उत्पत्तेस्तत्कारणात्तद्व्यपकादु-  
पलब्धेः तथाचोत्पादविनाशप्रतीतिः प्रामाणिकत्वान्नतन्निषेध इतरथा  
कादाचित्कत्वप्रतीत्यनुपपत्तेः नचाविर्भावात्तदुपपत्तिस्तस्यैवानित्यत्वे सर्व-  
नित्यत्वव्याघातात् । विवेचयिष्यते चेदं स्थितरसुपरिष्ठात् ॥ ३२ ॥

उत्पादविनाशप्रत्ययस्य भ्रान्तत्वं स्यादित्याशङ्क्याह । सार्वलौकिक-  
प्रमात्वे न सिद्धस्यापि भ्रमत्वशङ्कायां प्रमासम्बन्धव्यवहारविलोपः स्यादित्यर्थः  
॥ ३३ ॥ समाप्तं सर्वानित्यत्वनिराकरणप्रकरणम् ॥ ४७ ॥

अथ प्रसङ्गात्सर्वपृथक्त्वप्रकरणं तत्र पूर्वपक्षसूत्रम् । सर्वं वस्तु पृथक्  
नाना लक्ष्यतेऽनेनेति लक्षणं समाख्या तस्याः पृथक्त्वं पृथगर्थकत्वं तथा च  
प्रयोगः घटादिः समूहरूपः वाच्यत्वात् सेनावनादिवत् अतीन्द्रिये गग-  
नादौ मानाभावादात्मनः शरीरानतिरेकाद्गुणकर्मणोराश्रयाभेदाद्वि-  
शेषसमवाययोर्मानाभावादभावस्य तच्छत्वान्न व्यभिचारः यद्वा घटादिकं  
स्वस्मादपि पृथग्भावलक्षणानां गन्धरसादीनां तत्तद्विषयवादीनाञ्च पृथ-  
क्त्वात् घटादेश्च तदभेदादिति भावः ॥ ३४ ॥

समाधत्ते । अनेकलक्षणैरनेकस्वरूपैरूपरसादिभिस्तत्तद्विषयवैश्व विशि-  
ष्टस्यैकस्यैव भावस्य निष्पत्तेरित्येतिरित्यर्थः तथाचैकस्य धर्मिणः प्रत्य-



## ४ अध्याये । आह्निकम् ।

२७५

ज्ञादिप्रमाणसिद्धत्वात् तस्य च चाक्षुषत्वरासनत्वादिविरुद्धधर्माध्यस्त-  
रूपरसाद्यात्मकत्वाभावादवयवानाञ्च कारणत्वात् कार्यकारणयोरभेदास-  
म्भावञ्च न तत्तदात्मकत्वं घटादेः सम्भवतीति भावः ॥ ३५ ॥

हेतुमाह । लक्षणस्य अर्थाङ्गावानां घटपटादीनां व्यवस्थानाद्यवस्थित-  
त्वादेवाप्रतिषेधः पृथक्त्वव्यवस्थापनं नेत्यर्थः कपालमवेतद्रव्यत्वादिकं-  
हि घटादेर्लक्षणं कपाले घट इत्यादिप्रतीतिसिद्धं न चेदं समूहात्मकत्वे  
सम्भवति एवं लक्षणस्य घटादिस्वरूपस्य यमहमद्राक्षं स्पृशामीति प्रत्यक्षेण  
व्यवस्थितत्वात् परमाणोश्चाप्रत्यक्षत्वाच्च तत्सम्भवः किञ्च समूहलक्षणव्यव-  
स्थितेरेव नोक्तं युक्तं समूहो हि नानाव्यक्तिसमुदायः स च नैकव्यक्तेरन-  
भ्युपगमे सिध्यतीति भावः ॥ ३६ ॥

समाप्तं सर्वपृथक्त्वनिराकरणप्रकरणम् ॥ ४८ ॥

सर्वशून्यत्वेन कार्यकारणभावासम्भव इति तन्निराकरणप्रकरणमार-  
भते तत्र ज्ञानविषयत्वसमावत्त्वव्याप्त्यं न वेति संशये पूर्वपक्षसूत्रम् । सर्वं  
विवादपदसमावस्तुच्छं तत्र प्रत्यक्षं मानमाह भावेष्विति भावत्वाभिमतेषु  
घटादिषु अभावत्वसिद्धेः घटः पटो नेत्यादि प्रतीत्या सर्वप्राप्तभावत्वसिद्धेः  
॥ ३७ ॥

सिद्धान्तसूत्रम् । भावानां पृथिव्यादीनां स्वभावस्य गन्नादेः सत्त्वा-  
देश्च सिद्धेः न हि तच्छस्य गन्धरूपादिकंसत्त्वेन प्रतीतिर्वा सम्भवति ॥ ३८ ॥

पुनः शङ्कते । न हि सर्वेषां भावानामेकः स्वभावः सम्भवति आपे-  
क्षिकत्वात् भिन्नत्वात् भिन्नस्य स्वभावत्वे स्वस्मादपि भेदापत्तेः यद्वा इत-  
रसापेक्षत्वात् एतदपेक्षयाऽयं नीलतर एतदपेक्षया ह्रस्व इति प्रतीतेः यच्च  
सापेक्षानन्दवस्तु यथा जवासापेक्षं स्फटिकारुण्यम् ॥ ३९ ॥

समाधत्ते । सापेक्षत्वस्य तच्छत्वव्याप्तेर्व्याहृतत्वादसिद्धत्वात् न वा घटादेः  
सापेक्षत्वं सम्भवति किञ्च सापेक्षत्वं सापेक्षं न वा व्याप्ये तस्य तच्छत्वाच्च  
साधकत्वं अन्ये तस्यैकसत्यत्वात् कुतः सर्वशून्यत्वमिति भावः ॥ ४० ॥

समाप्तं सर्वशून्यतानिराकरणप्रकरणम् ॥ ४९ ॥

अथ संख्यैकान्तवादनिराकरणप्रकरणं तत्र भाष्यं अथेमे संख्यैका-  
नवादाः सर्वमेकं सदविशेषात् सर्वं द्वेधानित्यानित्यभेदात् सर्वं तेषां



ज्ञाता ज्ञेयं ज्ञानमिति सर्वं चतुर्धा प्रमाता प्रमाणं प्रमेयं प्रमितिरिति एवं यथासम्भवमन्येऽपि तत्र यथा नित्यत्वानित्यत्वलक्षणधर्माभ्यां द्वैधं तथा रुत्वेनैकमिति स्पष्टोऽर्थः परेत्वेवं व्याचक्षते एकमित्यद्वैतवादस्तथा च ब्रह्मैकं निर्विशेषं सत्यं सर्वमन्यन्मिथ्या यद्वा सर्वं प्रपञ्चजातं एकं द्वैत-  
शून्यं सदविशेषान् घटः सन् पटः सन्निति प्रतीतेः घटाभिन्नसदभिन्न-  
पटस्य घटाभेदसिद्धेः श्रुतिरपि एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्च-  
नेत्यादि अन्येऽपीत्यनेन रूपसंज्ञासंस्कारवेदानुभवाः पञ्चस्तन्वा इति  
सौत्वान्तिका इत्यादिसमुच्चयः एतेष्वाम्येषु सिद्धान्तसूत्रम् । सङ्ख्यैकान्तानां  
न सिध्यन्ति कारणस्य प्रमाणस्यानुपपत्तेः उपपत्तौ वा न सङ्ख्यैकान्तः  
साधनस्य साध्यातिरिक्तस्यापेक्षितत्वात् ॥ ४१ ॥

व्याप्तिरिति । न सङ्ख्यैकान्तस्यासिद्धिः कारणस्य प्रमाणस्यावयवभा-  
वात् उक्तस्यैकदेशत्वादवयववयविनोश्च भेदाभावः ॥ ४२ ॥

दूषयति । उक्तो हेतुर्न युक्तः सर्वस्येव पक्षत्वेनावशिष्टस्याभावा-  
त्पक्षैकदेशस्य हेतुत्वासम्भवादिति भावः श्रुतिस्तु ब्रह्मैक्यपरिति एतच्च  
नास्मभ्यं रोचते रुत्वेनैक्यस्य नित्यानित्यभेदाद्वैविध्यादेवाभ्युपगतत्वादनित्य-  
स्याप्यनुमानस्य नित्यानित्यसाधकत्वे विरोधाभावात् कथमितरथा षट्प-  
दार्थी सप्तपदार्थी च सिध्येदिति तस्मादद्वैतवादनिराकरणपरत्व एव प्रक-  
रणं सङ्गच्छत इति संचेपः ॥ ४३ ॥

समाप्तं संख्येक वादप्रकरणम् ॥ ५० ॥

अथावसरतः फले परीक्षणीये संशयमाह । पाकादिक्रियायाः सद्यः  
फलकत्वस्य कष्टादेः कालान्तरफलकत्वस्य दर्शनादग्निहोतृहवनादेर्हिं-  
सादेर्वा फलं साद्यस्तं कालान्तरीयं वेति संशयः ॥ ४४ ॥

तत्रैहिककीर्त्य कीर्त्यादीनामेव फलत्वसम्भवे नाहृष्टादिकल्पनमिति  
पूर्वपक्षे सिद्धान्तसूत्रम् । कालान्तरप्राप्त्येन प्रतिपादनादित्यर्थः  
स्वर्गो हि फलं श्रूयते स च दुःखासम्भिन्नसुखं न चेहिकं सुखं तथा एवं  
हिंसादेस्तत्तन्नरकोपभोगः फलं श्रूयते न चेह तत्सम्भव इति भावः ॥ ४५ ॥

शङ्कते । कालान्तरेण तत्तत्कर्मणः फलं न सम्भवति हेतोस्तत्कर्मणो  
विनाशात् ॥ ४६ ॥



## ४ अध्याये । आह्निकम् ।

२७७

समाधत्ते । स्वर्गादिनिष्पत्तेः प्राक् तद्वारं स्यात् दृष्टान्तमाह वृक्ष-  
फलवत् यथा मूलसेकादिनाशेऽपि तदधीनावयवोपचयादिद्वारबलेन फलो-  
त्पत्तिस्तथा प्रकृतेऽपि यागादिनाशेऽपि तज्जन्यादृष्टरूपद्वारसत्त्वाच्च स्वर्गा-  
द्युत्पत्तिविरोधः ॥ ४७ ॥

ननु कार्यकारणभाव एव न विचारसह इत्याशङ्कते । प्राङ्नि-  
ष्पत्तेरित्यनुवर्त्तते फलमित्यध्याहर्त्तव्यं तथा चोत्पत्तेः प्राक् फलं नास्ति  
असत् उत्पत्तौ शशशृङ्गादेरप्युत्पत्तिः स्यात् स्याच्च सिकतादावपि तैलं  
नवावत् सत् उत्पत्तिविरोधात् अतएव न सदसत्सदसतोः सत्त्वासत्त्व-  
लक्षणवैधर्म्यात् ॥ ४८ ॥

## प्रागुत्पत्तेरुत्पत्तिधर्मकमसदित्यङ्गा उत्पादव्यय- दर्शनान् ॥ ४९ ॥

समाधत्ते । उत्पत्तिधर्मकं उत्पत्तिधर्मकत्वेनोपलभ्यमानं पटादिक-  
सत्पत्तेः प्रागसदिति अङ्गा तत्त्वम् उत्पादनाशयोः प्रमितत्वात् इदानीं  
षट् उत्पन्न इदानीं षटोविनष्ट इति प्रत्ययात् सतस्तु नोत्पत्तिसम्भव उत्-  
पन्नपुनरुत्पादप्रसङ्गात् यद्यपि नाशस्य तत्र हेतुत्वं तथाप्यनुत्पन्नभावस्य  
नाशयोगादुत्पादसाधकत्वेन नाश उक्तः ॥ ४९ ॥

असत् उत्पत्तौ नियमो न स्यादित्यत्राह । तत्कार्यम् असत् प्राग-  
भावप्रतियोगिवृद्धिसिद्धं वृद्ध्या विषयीकृतं तथा हि इह तन्नुषु पटो  
भविष्यतीति ज्ञात्वा कुविन्दः प्रवर्त्तते नतु पटोऽस्तीति ज्ञात्वा तथा सति  
सिद्धत्वेन ज्ञात इच्छाऽभावात् प्रवृत्त्यनुपपत्तेः सिकतादौ पटो भविष्य-  
तीति न ज्ञायते किन्तु न भविष्यतीति ज्ञायत एव कुत इति चेदनु-  
भवमपृच्छः किञ्च त्वन्मतेऽपि कुतो न ज्ञायते तत्र पटाभावादिति चेत्  
कथमिदं निरणायि पटात्पूर्वं तन्तुसिकतयोस्तुल्यत्वात् तन्तुत्वेनाश्रयतेति  
चेत्तन्तुत्वेन कारणतेत्येवं स्यात् प्रवृत्त्यनुरोधात् ॥ ५० ॥

नन्वस्तु हेतुफलभावस्तथापि वृक्षफलवदिति दृष्टान्तवैषम्याद्वादृष्ट-  
सिद्धिरित्याशयेन शङ्कते । प्राङ्निष्पत्तेर्दृष्टफलवदित्यहेतुः कुतः आश्रय-



२७८

## न्यायसूत्रवृत्तौ ।

व्यतिरेकात् येन कायेन कर्मकृतं तस्य नाशात् वृक्षस्थले तु तस्य वृक्षस्य  
रुत्वात् शलिलसेकादिकं परिकर्मोपयुज्यत इत्यभिमानः ॥ ५१ ॥

समाधत्ते । आश्रयव्यतिरेकादिति हेतुर्न युक्तः प्रीतेः सुखस्य  
स्वर्गशरीरावच्छेदेन जायमानस्यात्मवृत्तित्वाद्यागादिसामानाधिकर-  
ण्यादित्यर्थः ॥ ५२ ॥

कचित्सामानाधिकरण्यसम्भवेऽपि सर्वत्र न तथेति शङ्कते । पुत्रा-  
दीनां फलनिर्देशात् सामानाधिकरण्यं न सम्भवतीति भावः ॥ ५३ ॥

यद्यपि पुत्रादीनामैहिकफलत्वात्तत्वाश्रयव्यतिरेकाभावात् शङ्कैव  
न तथापि यत्र जन्मान्तरोयधनादिकमपि फलं स्यात्तत्वापि नानुपपत्ति-  
रित्याशयेनाह । तत्त्वस्वभावात्पुत्रादिसम्बन्धात्फलनिष्पत्तेः प्रीत्युत्पत्तेः  
तेषु पुत्रादिषु फलवदुपचारः फलत्वेन व्यपदेशः यथाऽन्नं वैप्राणिनां प्राणा  
इति ॥ ५४ ॥ समाप्तं फलपरीक्षाप्रकरणम् ॥ ५० ॥

अथ क्रमप्राप्तं दुःखं परीक्षणीयं तत्र च बाधनालक्षणं दुःखमित्युक्तं  
तदर्थंस्तु दुःखत्वजातिरुत्त्वमित्युक्तं तच्च शरीरादौ दुःखेऽव्याप्तमित्याश-  
ङ्क्याह । जननयोगाज्जनशरीरादिकं तदुत्पत्तिस्तत्त्वस्वभावः विविधबाधना-  
योगात् दुःखमिति व्यपदिश्यते न तु वास्तवमेव तत् दुःखं तथा च विविध-  
दुःखानुपपत्ततया हेयत्वार्थं दुःखमिति भावनीयमुपदिश्यते ॥ ५५ ॥

ननु दुःखभावेनेन किं सुखं प्रत्याख्यायते न चैतच्छक्यमत आह ।  
दुःखानां मध्ये सुखस्याप्युत्पत्तेस्तत्प्रत्याख्यानस्याशक्यत्वात् ॥ ५६ ॥

ननु सुखदुःखसम्बन्धाविशेषात् सुखभावनमेव किं नेष्यत इत्यत्राह ।  
दुःखभावनस्य न प्रतिषेधः वेदयतः सुखसाधनत्वं जानतः पर्येषण दोषात्  
पर्येषणे सुखार्थप्रवर्त्तने दोषात् सुखार्थप्रवर्त्तमानो हि अर्जनपालनादौ  
विविधाभिर्वाधनाभिरुपतप्यतेऽतोऽदुःखभावनं वैराग्यहेतुतयोपदिश्यते ॥ ५७ ॥

ननु दुःखमनुभवतः स्वत एव निवृत्तिसम्भवात् दुःखभावनोपदेशो  
व्यर्थ इत्यत्र आह । दुःखस्य विविधः कल्पो यत्र तादृशे प्रतिषिद्धिर्हिंसा-  
भोजनमैथुनादौ प्रवृत्तिर्माभूदित्ययमुपदेश इति भावः ॥ ५८ ॥

समाप्तं दुःखपरीक्षाप्रकरणम् ॥ ५१ ॥

अथ क्रमप्राप्ततयाऽपवर्गः परीक्षणीयः तत्र च तदर्थकप्रवृत्तिकाला-



## ४ अध्याये १ आह्निकम् ।

२७६

भावात्तदभाव इति पूर्वपक्षयति । ऋणाद्यनुवन्नादपवर्गानुष्ठानकाला-  
भावादपवर्गभावः स्यात् तथा च श्रूयते जायमानो ह वै ब्राह्मणस्त्रिभिः  
ऋणवान् जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यः यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य इति  
इति ऋषिभ्यः ऋष्युण्येभ्यो ब्रह्मचर्येण सुच्यते देवेभ्यः देवर्षेभ्यः यज्ञेन  
सुच्यते प्रजया अपत्येन पितृण्येभ्यो सुच्यते ऋणापाकरणेनैव च जीवनाप-  
गमः तथा च श्रूयते तत्सत्त्वं यदग्निहोत्रं दर्शपौर्णमासौ च जरयाहवा  
एष तस्माद्वि सुच्यते मृत्युना चेति ऋणापाकरणमन्तरेण च न तत्र प्रवृत्तिः  
तथा च स्मर्यते ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनोमोक्षे निवेशयेत् । अनपा-  
कृत्य मोक्षन्तु सेवमानो ब्रजत्ययः एवं क्लेशानुवन्नादपि पुरुषो हि रागा-  
दिभिस्तत्तत्कर्मागारभमाणः क्लेशानुविज एव दृश्यते तत्कथमपवर्गः एवं  
प्रवृत्त्यनुवन्नादपि पुरुषो हि वाग्वुद्दिशरीरैस्तत्तत्कर्मागारभमाणो धर्मा-  
धर्मो यावज्जीवसुपार्जयन् कथमपवृज्यतामिति ॥ ५६ ॥

समाधत्ते । जायमान इत्याद्यनुवादो हि प्रधानशब्दः न हि जाय-  
मानः कर्मण्यधिक्रियते तथा च भाष्यं यदा तु मातृजो जायते कुमारको  
न तदा कर्मभिरधिक्रियते अग्निः शक्तस्य चाधिकारादिति जायमान  
इत्यनेन कोवा व्यावर्त्तनीयः न ह्यजातस्य प्रसक्तिरस्ति येनासौ व्यावर्त्त-  
नीयः तत्र भाष्यं जायमान इति गुणशब्दो विपर्ययेऽनधिकारादिति  
तथा च जायमान इत्यनेनोपनीत उच्यते तस्य ब्रह्मचर्यादावधिकारात्  
अग्निहोत्रादौ गृहस्थस्याधिकारः चौमे वसानो बाधीयतामिति श्रुतेः  
एवमृणशब्दोऽपि न मुख्यः न ह्यत्र प्रत्यादेयं कश्चन ददाति परन्तु ऋणा-  
पाकरणवदावश्यकत्वात्प्रापनं य तथोक्तं लान्छणिकशब्दप्रयोगे बीजमाह  
निन्दाप्रशंसोपपत्तेः ऋणानपाकरणतदपाकरणाभ्यामिवाग्निहोत्राद्यक-  
रणतत्करणाभ्यां निन्दाप्रशंसे उपपद्यते न चानुष्ठानकालाभावः जरया-  
विसृज्यत इत्युक्तेः न च जरयाऽशक्तिरुपलक्ष्यते अन्ते वासी वा जुहुयात्  
ब्रह्मणा हि स परिचीण इत्यादिनाऽशक्तस्यापि विधानात् तस्मादायुप-  
सर्तुर्भागो जरेत्युच्यते किञ्च जरामर्थवादः कामनाभिप्रायेण तथा च  
भाष्यम् अर्थित्वस्य चापरिणामे नरामर्थवादेोपपत्तेरिति अर्थित्वं का-



मना तदपरिणामं तदनाशे कर्मकरणाभिप्रायेण जरामर्थवाद उप-  
पद्यते ॥६०॥

यनु कास्यानां कामनाविरहेण त्यागसम्भवेऽपि नित्यानां कथं त्यागः  
श्रूयते हि यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयादिति तत्वाह । अपवर्गप्रतिषेधो  
न युक्तः अग्नीनामात्मनि समारोपविधानात् श्रूयते प्राजापत्याभिष्टिं  
निरूप्य तस्यां सर्ववेदस्य दत्वात्मन्यग्नीन् समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेदिति  
अतएव चत्वारः पद्यगोदेवधाना इति चातुराश्रम्यश्रुतिरपि सङ्गच्छते ॥ ६१

## पात्रवमान्तानुपपत्तेश्च फलाभावः ॥ क ॥

नवग्निहोत्रस्याप्रतिबन्धकत्वेऽपि तत्फलस्वर्ग एवापवर्गप्रतिबन्धकः  
स्यादत्वाह । ज्ञानिनः फलस्य स्वर्गस्याभावः अग्निहोत्रं हि पात्र चयानं  
पात्राग्न्यग्निहोत्रपात्राणि तेषाञ्चयः प्रसीतस्य यजमानस्याङ्गेषु विन्यासः  
सुखे हतपूर्णं शुचिमिति क्रमेण भिक्षोस्तदनुपपत्तेः तेन तत्परित्यागात्  
अग्निहोत्रफलाभावेऽपि ज्योतिष्टोमगङ्गास्नानादिहिंसादिफलानां प्रति-  
बन्धकत्वं स्यादतो हेत्वन्तरसमुच्चयाय चकार उपन्यस्तस्तथा च प्रारब्धाति-  
रिक्तकर्मणां ज्ञानादेव क्षय इत्याशयः श्रूयते हि तथा विद्वान् पुण्यपापे  
विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति एवं क्षीयते चास्य कर्माणि तस्मिन्  
दृष्टे परावरे । स्मर्यते ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथेति  
इत्यञ्च कामनाशून्यस्य प्रजानुत्पादोऽपि नापवर्गविरोधी तथा च श्रूयते  
एतदुहस्म वै पूर्वं ब्राह्मणा अनूचानाविद्वांसः प्रजां न कामयन्ते किं  
प्रजया करिष्यामो येषां नायमात्मा लोक इति ते हस्म पुत्रैषणायाश्च  
वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थाय भिक्षाचर्यं चरन्तीति अन्ये तु  
फलाभावः फलस्य समुच्चून् प्रति अग्निहोत्रादौ प्रयोजकत्वाभावस्तथा सति  
भिक्षूणामपि पात्र चयानं स्यादित्यर्थ इत्याहुः ॥ क ॥

क्षेशानुबन्धं दूषयति । स्वप्नादर्शनकाले सुषुप्तस्य यूथा हेत्वभावेन  
दुःखाभावस्तथाऽपवर्गोऽपि रागाद्यभावेन दुःखाभावः स्यात् ॥ ६२ ॥

प्रवृत्त्यनुबन्धादपवर्गाभावं दूषयति । क्लिश्यन्नेतेनेति क्षेयोररागादिः



## ४ अध्याये । आह्निकम् ।

२८१

तद्विरहिणो या प्रवृत्तिः सा प्रतिसन्धानाय प्रतिबन्धाय न भवति धर्मा-  
धर्मो न जनयतीत्यर्थः ॥ ६४ ॥

क्लेशाभावमसहमानः शङ्कते । क्लेशसन्ततेरुच्छेदो न युक्तः स्वाभा-  
विकत्वात् ॥ ६५ ॥

एकदेशी ससाधत्ते । प्रागुत्पत्तेरभावानित्यत्ववत्प्रागभावानित्यत्व-  
वत् अनादेः परमाणुश्यामतायाविनाशवद्वा विनाशः ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

अनित्यत्वं विनाशिभावत्वं न च तत्प्रागभावे त्वऽणुश्यामतादिर-  
नादिस्तथा च भाष्यम् अनादिरणुश्यामतेति हेत्वभावादयुक्तमित्यतो मत-  
द्वयमुपेक्ष्य सिद्धान्तमाह । नोक्तं युक्तं कुतो रागादीनां सङ्कल्पनिमित्तत्वात्  
सङ्कल्पो मिथ्याज्ञानं निमित्तं येषां तथा च तत्त्वज्ञानेन मिथ्याज्ञाननिवृत्तौ  
रागादिनिवृत्तिर्युज्यत एवेति भावः ॥ ६८ ॥

समाप्तमपवर्गपरीक्षाप्रकरणम् ॥ ५२ ॥

समाप्तं चतुर्थाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥ १ ॥

अथ शास्त्रस्य परमं प्रयोजनमपवर्गः स चोद्दिष्टो लक्षितः परीक्षितो-  
ऽप्यकिञ्चित्करः कारणानिरूपणात् नन्वभिहितमेव दुःखादिस्तत्वे कारण-  
नाशक्रमेण दुःखाभावोऽपवर्गः कृतीति चेत् त्वं मिथ्याज्ञानापगमहेतुर्ना-  
भिहितः तत्त्वज्ञानं तत्र हेतुरिति चेत् कस्य तत्त्वं ज्ञातव्यमित्यभिधानीय-  
मित्याशयेन तत्त्वज्ञानपरीक्षा सैव चाह्निकार्थः तत्र च षट्प्रकरणानि  
आदौ तत्त्वज्ञानोत्पत्तिप्रकरणम् अन्यानि च यथायथं वक्ष्यन्ते तत्र  
सिद्धान्तस्तवम् । अहङ्कारोऽहमित्यभिमानः स च शरीरादिविषयको  
मिथ्याज्ञानमुच्यते तच्च दोषनिमित्तानां शरीरादीनां तत्त्वस्य अनात्मत्वस्य  
ज्ञानान्निवर्तते आत्मत्वेन हि शरीरादौ सृष्ट्यन् रञ्जनीयत्वात् रज्यति  
कोपनीयेषु कृत्प्रति केचित्तु दोषनिमित्तानां रागादीनां तत्त्वज्ञानाद्वलवद-  
निष्टानुबन्धित्वज्ञानादहङ्कारस्याभिजापस्य निवृत्तिरित्यर्थः इत्याहुः ॥ १ ॥

ननु के तावदनु रञ्जनीया विषयाः येषु रज्यन् संसरतीत्यतो विवे-



काय तानुपदिशति । सङ्कल्पः समीचीनत्वेन भावनं तद्विषयोक्तारूपपादयः  
दोषस्य ० रागादेर्निमित्तं सुन्दरीयमिति जानन् रज्यति शत्रुरयमिति  
द्वेष्टि तं रूपपादयो हेयत्वेन भावनीयाः प्रथमं ततः शरीरात्मविवेकः ॥१॥

ननु सौन्दर्यादिकं पश्यतो रागादिर्ब्रह्मणोऽपि दुष्परिहरः तदुक्तं  
चञ्चलं हि ननः कृष्णप्रभाथिवलवद्दृढमित्यतो रागादिनिवृत्त्युपायं दर्श-  
यिष्यन्नाह । अवयविनि तरुण्यादिशरीरे अभिमानः सपरिष्कारबुद्धि-  
स्तन्निमित्तं रागादिनिमित्तं तथा च सा बुद्धिर्हेया अतएव भाष्यादौ  
परिष्कारबुद्धिरनुरज्जनसंज्ञा सा हेया दोषदर्शनस्युभसंज्ञा सा भावनी-  
येति अनुरज्जनसंज्ञाय यथा खेलत्खज्जननयना परिणतविस्वाधरा पृथु-  
श्रोणी । कसैलसुकुलस्तनीयं पूर्णेन्दुसुखी सुखाय मे भवितेति असुभ-  
संज्ञा यथा चर्मनिर्मितपात्रीयं मांसासृक् पृथूपूरिता अस्यां रज्यति यो  
मूढः पिशाचः कस्ततोऽधिकः । स्वशरीरादौ अथशुभसंज्ञैव भावनीया  
एवं कोपनीयेऽपि शुभसंज्ञा । मां द्वेष्ट्यसौ दुराचार इष्टादिषु यथेष्टतः ।  
कण्ठपीठं कुठारेण छित्वास्य स्यां सुखी कदा । असुभसंज्ञा तु मांवा-  
सृक्कीकसमयो देहः किं मेऽपराध्यति पतस्मादपरः कर्त्ता कर्त्तनीयः कथं  
मयेति ॥ ७० ॥ समाप्तं तत्त्वज्ञानोत्पत्तिप्रकरणम् ॥ ३ ॥

अथ प्रसङ्गादवयविप्रकरणं वस्तुतस्तु शरीरे धर्मद्वयस्य सम्बन्धेऽपि  
एकं ध्येयमपरं हेयमिति निर्युक्तिकम् अतोऽवयवी नास्ति किन्तु परमा-  
णुपुञ्ज इति तत्त्वं तदेव तन्मुञ्जुभिर्भावनीयं परमाणुपुञ्ज इत्यप्यापाततः  
परमाणोरप्यग्रे निराकरिष्यमाणत्वादिति सौगतशङ्कासमाकर्तुमयमारम्भः  
यद्यपि द्वितीयाध्याये व्यवस्थापित एवावयवी तथापि स्वयुक्तिदार्ढ्येन  
सौत्वान्तिकस्य वैभाषिकस्य चात्र प्रत्यवस्थानमिति तत्र संशयप्रदर्शनाय  
सूत्रम् । संशय इत्यस्य अवयविनीत्यादिः अवयविनः प्रत्यक्षसिद्धत्वात्  
तदपलापो दुःशक्य इत्यत उक्तं विद्येति प्रमात्रमभेदेन ज्ञानद्वैविध्यात्  
ज्ञानत्वलक्षणसाधारणधर्मदर्शनात् ज्ञाने प्रामाण्यसंशयादवयविनि संशय  
इत्यर्थः ॥ ४ ॥

समाधत्ते । तत्रावयविनि न संशयः पूर्वहेतुप्रसिद्धत्वात् द्विती-  
याध्यायोक्तयुक्तिभिरवयविनः प्रकर्षेण सिद्धत्वात् ॥ ५ ॥



## ४ अध्याये २ आङ्गिकम् ।

२८३

अवयविनि बाधकं शङ्कते । अपिरवधारणे तर्हि संशयानुपपत्तिवृत्त्यनुपपत्तितोऽवयव्यभावादेव स्यादित्यर्थः । वृत्त्यनुपपत्तिं विवृणोति भाष्यकारः कृत्स्नैकदेशवृत्तित्वादवयवानामवयव्यभावः अवयवीहि एकैकावयवे कात्स्न्येन एकदेशेन वा नाद्यः विषमपरिमाणत्वात् अन्येऽपि तेनैवावयवेनान्येन वा नाद्यः स्वस्मिन्वृत्तिविरोधात् नान्यः अवयवान्तरस्यावयवान्तरावृत्तेः तथापि कथमवयव्यभाव इत्यत्र भाष्यं तेषु चावृत्तेरवयव्यभावः तेषु अवयवेषु पूर्वोक्तयुक्त्या अभावादवयवी नास्ति नह्यसावृत्तिस्त्वयाऽभ्युपेयत इति भावः सूत्रमेवेदमित्यपि वदन्ति ॥ ६ ॥

नन्वास्तामवृत्तिरेवावयवीति शङ्कायां पूर्वपक्षिसूत्रम् अवयवेभ्यः पृथक् अवयवी नास्तीति शेषः तेषु चावृत्तेरित्यस्य सूत्रत्वे अवयव्यभाव इत्यनुवर्तते कुतः अवृत्तेः वृत्त्यभावेऽवयविनो नित्यत्वप्रसङ्गः न च नित्योऽवयव्युपलभ्यते ततो न स्यादावयवीति भावः यद्वा कृत्स्नैकदेशाभ्यामवयवी न वर्तते किन्तु स्वरूपेणैवेति शङ्कायां पूर्वपक्षिणः सूत्रं पृथगिति अवयवेभ्यः पृथगावयवी नास्ति कुतः अवृत्तेः अवृत्तित्वप्रसङ्गात् तथा सति नित्यं स्यादिति भावः कश्चित्तु अवयवातिरिक्तेऽवयवी वर्त्ततामित्यत्र पूर्वपक्षिणः सूत्रं पृथगिति पूर्वोक्तयुक्त्याऽवयवेभ्यः पृथगवृत्तेः ॥ ६ ॥

नन्ववयवावयविनोक्तादात्म्यमेव सम्बन्धः स्यादत्राह । नहि तन्तुः पटस्तम्भोऽहमिति किञ्चित्प्रत्येति नवाऽभेदेनाधारधेयभाव उपपद्यते ॥ १० ॥

सिद्धान्तसूत्रम् । अवयवी कात्स्न्येन एकदेशेन वा वर्त्तत इति प्रश्नो न युक्तः एकस्मिन्नवयविनि भेदाभावाद्भेदनियतशब्दप्रयोगस्यायुक्तत्वात् अनेकस्याशेषता हि कात्स्न्येन ससुदायिनां किञ्चित्त्वमेकदेशत्वं नचैकस्य तत्सम्भव इति भावः ॥ ११ ॥

इतश्च वृत्तिविकल्पो न युक्त इत्याह । अवयवी स्वावयवेषु नैकदेशेन वर्त्तते अवयवान्तराभावादिति यः परेषां हेतुः स न युक्तः कुतः अवयवान्तरभावेऽप्यवृत्तेः अवयवान्तरसत्त्वेऽपि तस्यैव परं वृत्तिरायाति न त्ववयविनोऽपीति यद्वा अवृत्तेर्वर्त्तनाभावस्य कृत्स्नैकदेशविकल्पो न हेतुः कुतः अवयवान्तरस्य अवयविभिन्नस्य अवयवस्य भावेऽपि सत्त्वेऽपि सम्भवात्



षट्त्वादिवत् स्वरूपेणैवावयविनो वृत्तेः सम्भवात् वृत्तेः कृत्स्नैकदेशान्य-  
तरनिधमोषट्त्वादौ व्यभिचार्यप्रयोजक इति भावः ॥ १२ ॥

तदसंशयः पूर्वहेतुप्रसिद्धत्वादित्यनेन सर्वाग्रहणमवयव्यसिद्धेरिति  
पूर्वोक्तयुक्तिः स्मारिता पूर्वपक्षी तां दूषयितुमुपक्रमते । यथा तैमिरि-  
कस्य तिमिरग्रस्तवक्षुषो नैकः केशः प्रत्यक्षः किन्तु तत्समूहः एवमेकः पर-  
माणुरप्रत्यक्षः तत्समूहरूपो व टादिः प्रत्यक्षः स्यात् ॥ १३ ॥

उत्तरयति । इन्द्रियाणां पाटवे विषयग्रहणस्य पाटवं प्रकर्षः  
इन्द्रियाणां मान्द्ये तद्ग्रहणस्य मान्द्यमपकर्षः न तु पटुतरं चक्षुः शब्दं  
गृह्णाति तदिदमुक्तं स्वविषयानतिक्रमेणेति फलितार्थमाह नाविषये  
वृत्तिरिति तथा च स्वाविषयं परमाणुं समूहत्वापन्न मपि कथं चक्षुर्गृह्णी-  
यादिति भावः ॥ १४ ॥

दोषान्तराभिधानाय सूत्रम् एवमुक्तप्रकारेण वृत्तिविकल्पोऽव-  
यवित्यवयवे च प्ररुक्तः आप्रलयात् प्रलयोऽभावस्तथा च सर्वाभावएव  
स्यान्न कस्यापि ग्रहणमिति साधूक्तं सर्वाग्रहणमवयव्यसिद्धेरिति ॥ १५ ॥

अस्तु सर्वाभावइत्यत्राह । आश्रयनाशायभावेन परमाणोर्नाश-  
भावेन तत्सम्भवात् यद्वा नन्ववयवावयविप्रवाहस्त्वया प्रलयमर्थ्यन्तं स्वीकार्यः  
प्रलये च निखिलपृथिव्यादिनाशात्पुनः सर्गो न स्यादित्याशयेन शङ्कते  
अवयवेति समाधत्ते नेति न सकलपृथिव्यादिनाशः परमाणुसङ्घावादि-  
त्यर्थः ॥ १६ ॥

परमाणुरेव क इत्यत्राह । त्रुटेः परं यदतिस्ूक्ष्मं तत्परमाणुः  
वाय्वोऽवधारणे अथ वा त्रुटेरवयवस्तदवयवोवा परमाणुरिति विवक्षा-  
र्थो वाशब्दः यद्वा त्रुटेः परं सूक्ष्मं परमाणुः त्रुटावेव वा विश्राम इति  
विवक्त्योऽभिमतः ॥ १७ ॥ समाप्तमवयवावयविप्रकरणम् ॥ ५४ ॥

अथ विश्वस्य शून्यत्वात् क परमाणुसम्भावेनेति सतनिराकरणाय  
निरवयवप्रकरणं तत् पूर्वपक्षसूत्रम् । तस्य निरवयवस्याणोरनुपपत्तिः कुतः  
आकाशयतिभेदात् अन्तर्विहिताकाशसमावेशात् तथा च सावयवस्तत्त्वा-  
नित्य इति ॥ १८ ॥



## ४ अध्याये २ आह्निकम् ।

२८५

अथ नाकाशव्यतिभेदसिद्धिं आकाशमसर्वगतं स्यादित्याह । स्यादिति शेषः ॥ १६ ॥

समाधत्ते । अन्तःशब्देर्वहःशब्दस्य कार्यद्रव्यसावयवविशेषवाची न चाकार्येऽवयवसम्भवइत्यर्थः वहिरिति दृष्टान्तार्थम् ॥ २० ॥

आकाशस्यासर्वगतत्वं स्यादित्यत्राह । शब्दस्य संयोगस्य च यो विभवः अथ वा शब्दजनकसंयोगस्य यो विभवः सार्वत्रिकत्वं तस्मात्पुनः सर्वगतं आकाशमिति शेषः सर्वदेशे शब्दोत्पत्त्या तज्जनकसंयोगानुमानात् सर्वमूर्तिसंयोगित्वरूपसर्वगतत्वं तस्य सिद्धम् ॥ २१ ॥

आकाशस्य सर्वसंयोगित्वे व्यूहनविटम्भौ स्यातामत्याह । व्यूहः प्रतिष्ठितस्य परावर्त्तनं विटम्भोत्तरदेशगतिप्रतिबन्धः आकाशे तयोरेभावः निष्पन्नत्वात् विभक्त्यं सर्वगतत्वं यद्येते सूत्रे शून्यतावादिमते न संगच्छेते आकाशादेस्तैरेनभ्युपगमात्तथापि त्वन्मत इति पूरयित्वा व्याख्येये ॥ २२ ॥

पूर्वपक्षो युक्त्यन्तरमाशङ्कते । परमाणोरिति शेषः हेतुमाह संस्थानोपपत्तेः संस्थानवत्त्वात् परमाणुर्हि परिमण्डलकारः संस्थानवत्त्वे मानं भङ्गा वदति मूर्त्तिमतामिति मूर्त्तित्वात्संस्थानवत्त्वमित्यर्थः चः पूर्वोक्तहेतुं समुच्चिनोति पूर्वोक्तहेतुं समुच्चिनोति मूर्त्तत्वस्य हेतुत्वसमुच्चयार्थो वा चकारः ॥ २३ ॥

युक्त्यन्तरमाह । अवयवसङ्गावइत्यनुवर्त्तते संयोगवत्त्वादिति हेत्वर्थः संयोगवत्त्वात् कथं सावयवत्वमिति चेत् इत्यसंयोगस्याव्याप्यवृत्तित्वादव्याप्यवृत्तित्वञ्चावच्छेदकभेदं विना नोपपद्यते अवच्छेदकज्ञावयव इति ननु परमाणवयवेष्वयं दोषः स्यात्तथावानवस्थितपरम्पराप्रसङ्ग इति चेत् त्वज तर्हि परमाणुव्यसनं स्वीकुर्व शून्यतावादं निरवयवमाकाशादिकमपि नास्तीति भावः ॥ २४ ॥

समाधत्ते । पूर्वोक्तयुक्त्या परमाणोर्निरवयवत्वप्रतिषेधेन युक्तः कुत अनवस्थाकारित्वात् प्रामाणिकीयमनवस्था स्यादत आह अनवस्थानुपपत्तेरिति सर्वेषामनवस्थितावयवत्वे सेरुसर्गपयोस्तुल्य परिमाणत्वपत्तिरित्यत्र तसंयोगावच्छेकादिग्विभागा न वा शून्यतायुक्ता निष्प्रमाणत्वात्



भाणसत्त्वे शून्यत्वविरोधात् निष्प्रमाणकशून्यताऽभ्युपगमे किमपरान्तं  
पूर्णतयेति दिक् ॥ १५ ॥ समाप्तं निरवयवप्रकरणम् ॥ ५५ ॥

ननु बाह्यार्थाभावात् कुतोऽवयवावयविव्यवस्थेति मतसंपाकत्तुं  
बाह्यार्थभङ्गनिराकरणमारभते प्रमेयत्वं ज्ञानत्वव्याप्यं नवेति संशयः तत्र  
पूर्वपक्षसूत्रम् । तः प्रकरणविक्षेपार्थः भावानां बुद्ध्या विवेचनादभेदो-  
क्तेखात् याथात्म्यस्य ज्ञानभेदलक्षणस्यानुपलब्धिरनुपपत्तिः घट इति ज्ञानं  
भ्रम जातमिति ह्यनुभूयते तत्र घट इति ज्ञानं मित्यनेन ज्ञानघटयोरभेद-  
उल्लिख्यते ततो ज्ञानातिरिक्तो विषयः यथा पटे विविच्यमाने वस्तुभावे-  
वापकषेणादावतिरिक्तं न वस्तु एवं तन्तुरपि नांशुव्यतिरिक्त इति घट-  
त्वादिसु ज्ञानस्यैवाकारविशेष इति भावः ॥ १६ ॥

समाधत्ते । उक्तो हेतुर्न युक्तः व्याहृतत्वात् न हि बुद्ध्या विवेचने  
पटस्य तन्तु रूपता सिध्यति तन्तुतः पट इति हि प्रतीयते न तु तन्तुः  
पट इति एवं पटेन प्रावरणं न तु तन्तुभिः किञ्च तन्तुपटविवेचनादेव-  
बाह्यार्थसिद्धिः ज्ञानेन तु स्वस्मिन् पटाभेदो नोल्लिख्यते स्वाविषयकत्वा-  
दनुव्यवसायेन तु पटविषयकत्वं व्यवसाये समुल्लिख्यते ॥ १७ ॥

ननु तन्तु प्रयोर्भेदे पार्थक्येन गृहणं स्यादित्यत्राह । पृथग्गृहणं  
यदि तन्त्वविषयकप्रत्यक्षविषयत्वं पटस्यापाद्यते तत्रोत्तरं तदाश्रयत्वादिति  
पटो हि तन्त्वाश्रितः तेन सामग्रीरुत्त्वात्पटप्रत्यक्षस्य तन्तु विषयकत्वं  
यदि च भेदप्रत्यय आपाद्यते तदा भवत्येवेति भावः ॥ १८ ॥

ननु ज्ञानस्योभयवादिसिद्धत्वात्तन्नात्र पदार्थकल्पने लाघवात्तदति-  
रिक्तपदार्थाभावसिद्धिः स्यादित्यत्र आह । पूर्वोक्तहेतुं समुच्चिनोति च-  
कारः अर्थस्य घटादेः प्रतिपत्तेः प्रमाणाधीनत्वात् तथा च प्रामाणिकेऽर्थे  
गौरवं न बाधकमिति भावः अन्यथा ज्ञानमपि न सिध्येत्तौरवादि शून्य-  
तापत्तिः ॥ १९ ॥

न वा बाह्यार्थाभावसाधनं सम्भवतीत्याह । व्याघातान्न बाह्याभाव  
इति शेषः बाह्यं नास्तीत्यत्र यदि प्रमाणमस्ति तदा प्रमाणस्य बाह्यस्य  
सत्त्वान्न बाह्याभावः अथ नास्ति तदा निष्प्रमाणकत्वाच्च तत्त्वद्विरित्यर्थः  
किञ्च घटादौ यदि प्रमाणमस्ति तदा तत एव बाह्यार्थसिद्धिः अथाप्रमाणं



## ४ अध्याय २ आह्निकम् ।

२८७

तदा कथं घट इति ज्ञानस्य घटाकारत्वं सत्यसे ज्ञानस्यैवानुत्पत्तेरिति ॥३०॥

ननु प्रमाणप्रमेयव्यवहारो न पारमार्थिकः परन्तु विज्ञानानि तत् तदाकारणानि वासनापरिपाकवशादेव स्वाप्नप्रत्ययवदेन्द्रजालिकप्रतीति-  
वच्चाविर्भवन्तीत्याशयेन शङ्कते सूत्राभ्यां स्पष्टम् ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

समाधत्ते । बाह्याभावस्यासिद्धिः हेतुभावात् प्रमाणाभावात् अ-  
थवा हेतोश्चक्षुरादेरनभ्युपगमे घटोऽयमित्यादिज्ञानानामसिद्धिरित्यर्थः  
न च वासनावशात्स्यादिति वाच्यं वासनाया अतिरिक्तत्वाह्योपगम-  
प्रसङ्गात् वासनायाः सन्तन्यमानतया चाक्षुषादेरपि सन्तानापत्तिरिति  
दिक् ॥ ३३ ॥

नन्वसद्विषया अहेतुका अपि स्वाप्नप्रत्यया इव भावना प्रत्यया इव  
परोऽपि प्रत्ययाभवेयुरित्यत आह । पूर्वोपलब्धविषय इति शेषः सङ्कल्प-  
उपनीतभानं यथा स्मृत्यादिः पूर्वोपलब्धविषयकः तथा स्वाप्नप्रत्ययोऽपीति  
न निर्विषयकः न च स्वप्ने स्वमपि खादति निजशिरः खण्डनमपि  
पश्यति नत्विदं पूर्वोपलब्धमिति वाच्यं स्वस्य खादनस्य च निजशिरस-  
खण्डनस्य च पूर्वोपलब्धत्वात्सर्गभानस्य च भ्रान्तत्वात् नवाऽहेतुकत्वं  
स्मृत्यादिदृष्टान्तेन संस्कारस्य स्मृतेस्त्वस्मृतौ विशिष्ट बुद्धौ च हेतुत्वस्या-  
भिमतत्वात् तत्र भ्रमे दोषः कालविशेषोऽदृष्टविशेषोद्बोधोवेत्यन्यदेतत् ॥३४॥

ननु भ्रमस्यापि सद्विषयकत्वे तत्प्रतिरोधः कथं स्यादित्याशङ्काह ।  
मिथ्योपलब्धेर्मायागन्धर्वनगरादिज्ञानस्य तत्त्वज्ञानादनारोपितवस्तुप्रत्यया-  
दिनाशः प्रतिरोधः भ्रमत्वज्ञानं वा एवं स्वप्नप्रत्ययस्यापि दर्पणसुखविभ्र-  
मस्य तत्त्वज्ञानेनाप्रतिरोधेऽपि भ्रमत्वज्ञानं भवत्येवेति भावः ॥ ३५ ॥

माध्यमिकस्तु बाह्यासत्त्वं प्रसाध्यते तदृष्टान्तेन बुद्धेरप्य सत्त्वं  
साधयति तं प्रत्याह । एवं बाह्यबहुद्धेरपि न प्रतिषेधः निमित्तसङ्गावो-  
पलम्भात् सहेतुकत्वस्य प्रमितत्वात् न ह्यलीकं सहेतुकं सम्भवति अहेतुकत्वे  
च कादाचित्कत्वव्याकोपः केचित्तु भ्रमस्य सद्विषयत्वे प्रमात्वं स्यादित्यत्राह  
बुद्धेरिति एवं प्रमात्वं निमित्तस्य प्रकारस्य सङ्गावः सत्त्वं यत्र तथा च  
शक्तिरजतयोः सत्यत्वेऽपि शुक्तौ रजतत्ववैशिष्ट्याभावाच्च तद्बुद्धे प्रमा-  
त्वमिति भाव इत्याहुः अत्र चोपलम्भ पदमनतिप्रयोजनकम् ॥ ३६ ॥



न वा मिथ्याबुद्धिदृष्टान्तेन ज्ञानमात्रस्यासम्भवात्विषयकत्वं सद्भिष-  
यकत्वाभावोवा सम्भवतीत्याह । तत्त्वं धर्मस्वरूप प्रधानं आरोप्यं तथाच  
भ्रमे धर्मप्रशे प्रमात्वमारोप्यरजतत्वाद्यं च भ्रमत्वमिति दृष्टान्तासिद्धि-  
रिति भावः केचित्तु प्रमात्वाप्रमावयोर्विरोधान्नैकत्व समावेश इत्यत आह  
तत्त्वेति तथा च विषयभेदान्न विरोध इति भावः इत्याहुः ॥ ३७ ॥

समाप्तं बाह्यार्थभङ्गनिराकरणप्रकरणम् ॥ ५६ ॥

ननु शास्त्राधीनं तत्त्वज्ञानं क्षणिकमतस्तद्विशेषे मिथ्याज्ञानं स्यादेव  
नहि तादृशं किञ्चिदेव ज्ञानं दृढभूमिसवासनमिथ्याज्ञानसमुद्भूतलक्षम-  
तस्तत्त्वज्ञानविट्द्विप्रकरणमारभते तत्त्वज्ञानविट्द्विस्तत्त्वज्ञानवासना  
ततश्चात्यन्तिकोमिथ्याज्ञान नाशः तत्र तत्त्वज्ञानविट्द्वौ हेतुमाह । समाधिः  
चित्तस्याभिसतविषयनिष्ठत्वं तस्य प्रकर्षौविषयान्तरानभिप्रेतलक्षणस्तस्या-  
भ्यासात् पौनःपुन्यात् तत्त्वज्ञान विट्द्विः तदेव च निदिध्यासनमामनन्ति  
तत्त्वज्ञानविट्द्वौ च मिथ्याज्ञानवासनातिरोभावस्तथा च योगसूत्रं तच्चः  
संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी प्रतिबन्धः कार्याक्षमतासम्पादनं विना-  
शोवा ॥ ३८ ॥

ननु रागादिभिः प्रतिबन्धात् समाधिरेव नीदेतीत्याक्षिपति सूत्रा-  
भ्याम् । अर्थविशेषस्य तनयवनितादिरागस्य प्रावल्याच्चिरकालानुब-  
न्धात्तदनुसन्धानमवर्जनीयमिति तदभावः स्याच्च घनगर्जितादिज्ञानेन  
प्रतिबन्धः एवं क्षुत्तृष्णाभयादिभिः प्रतिकृद् स्तदुपशमाय प्रयतेत  
॥ ३९ ॥ ४० ॥

परिहरति । जन्मान्तरकृतसमाधिजन्यसंस्कारवशात् समाधिसिद्धिरि-  
त्यर्थः अतएव चानेकजन्मसंसिद्धइत्यादि सङ्गच्छते वयन्तु पूर्वकृतस्य प्रथमतः  
कृतस्वैश्वराराधनस्य फलं धर्मविशेषस्तत्सम्बन्धादित्यर्थः तथा च योगसूत्रं  
समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् सूत्रान्तरञ्च तत्रैव ततः प्रत्यक्चेतनाधि-  
गमोऽप्यनराधाभावश्च तत ईश्वरप्रणिधानात् विषयप्रातिकूल्येन चित्ता-  
वस्थानं प्रत्यूहाभावश्चेत्यर्थः ॥ ४१ ॥

योगाभ्यासस्थानमुपदिशति । तत्र स्थिरचित्तता स्यादिति भावः इदं  
न सूत्रं भाष्यमिति केचित् ॥ ४२ ॥



## ४ अध्याये २ आह्निकम् ।

२८

तदस्य शङ्कते । एवं प्रसङ्गः अर्थविशेषमावल्याद्विषयावभासप्रसङ्गः ॥४३॥  
समाधत्ते । निष्प्रवृत्त्य शरीरादेः अवश्यमावित्वात् कादणत्वात् ज्ञा-  
नादिष्विति शेषः ॥ ४४ ॥

ननु किमेतावतेत्यत आह । तस्य शरीरादेरभावः तदारम्भकधर्मा-  
धर्मविरहादिति भावः ॥ ४५ ॥

ननु समाधिमात्रादेव निष्प्रवृत्तौऽपवर्गः स्यात् साधनान्तरं वाऽपे-  
क्षणीयमत आह यद्वा समाधिसाधनान्याह । तदर्थमपवर्गार्थमिति भाष्यादौ  
तदर्थं समाध्यर्थमिति वा यमानाह योगसूत्रं अहिंसासत्यास्तेयव्रतचर्याप-  
रिग्रहा यमाः नियमानाह शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नि-  
यमाः स्वाध्यायः स्वाभिमतमन्त्रजपः निषिद्धानाचरणतत्तदाश्रमविहिताच-  
रणे यमनियमा इत्यन्ये आत्मसंस्कारः आत्मनोऽपवर्गाधिगमक्षमता ननु य-  
मनियमवैव साधने उताहो अन्यदस्तीत्यत आह योगादिति आत्मविधिः  
आत्मसाक्षात्कारविधायकवाक्यं आत्मा वा अरे द्रष्टव्य आत्मानं चेद्वि-  
जानीयादित्यादि योगादिति प्रतिपाद्यत्वं पञ्चमर्थः तथाच योगशास्त्रो-  
क्तात्मतत्त्वाधिगमसाधनैश्चात्मसंस्कारः कर्तव्य इत्यर्थः तथाच योगसूत्रं यो-  
गसूत्रं योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिचये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः तदर्थश्च यो-  
गाङ्गानां यमनियमादीनां अनुष्ठानाच्चित्तस्याशुद्धेरविद्यादिरूपस्य जये  
सति ज्ञानस्य दीप्तिः प्रकर्षः स च विवेकख्यातिपर्यन्तो जायते सा च सत्त्व-  
पुरुषान्यतासाक्षात्कारः अस्मन्दते तु देहादिभिन्नात्मसाक्षात्कारः स च  
नेदानीमविद्याप्रतिबन्धाद्देहात्मनोर्म्मनश्चक्षुराद्ययोग्यत्वाच्च भवति चासौ  
योगजधर्मात् योगाङ्गानि ततोक्तानि यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार-  
धारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि आसनं पद्मासनादि कुशासनादि च चै-  
लाजिनकुशोत्तरमिति भगवद्भचनात् प्राणायाममाह योगसूत्रं तस्मिन्  
सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः तस्मिन् आसनस्यैव प्रा-  
णवायोरेव निर्गमप्रवेशरूपक्रियाविशेषात् श्वासप्रश्वासव्यपदेशः वहिरि-  
न्द्रियाणां स्वस्वविषयवैसृष्ट्येनावस्थानं प्रत्याहारः धारणा माह योग-  
सूत्रं देशबन्धाच्चित्तस्य धारणा देशे नाभिचक्रादौ चित्तस्य बन्धविषयान्त-  
रवैसृष्ट्येनावस्थानं ध्यानमाह तत्प्रत्ययैकतानताध्यानं धारणैव धारावा-



हिनी ध्यानमित्यर्थः समाधिमाह तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपमन्यमिव  
समाधिः अर्थस्य धर्मो ज्ञानस्वरूपञ्च यदि ध्याने न भासते तदा समाधिरि-  
त्यर्थः सूत्रान्तरं त्वयमन्तरङ्गं पूर्वोक्तैः चरमतयं साक्षादुपकारकमित्यर्थः ॥४६॥

नन्वेवं किमान्नीचिकेत्यत आह । तदर्थमित्यनुवर्तते ज्ञायतेऽनेनेति  
ज्ञानं शास्त्रं प्रकृतं तस्य ग्रहणमध्ययनधारणे तत्राभ्यासो दृढतरसंस्कारः  
तद्विद्यैस्तदभियुक्तैः संवादः स्वातन्त्र्यवदाद्याय न हि योगाङ्गज्ञानाय तत्सा-  
मेक्षत्वेन न प्रकृतशास्त्रवैफल्यं ध्येयस्वरूपवैलक्षण्येणात् ॥ ४७ ॥

संवादप्रकारं वा दर्शयितुमाह । तं तद्विद्यं सन्नद्धाचारी सहाभ्यायो  
विशिष्टः प्रकटज्ञानवान् श्रेयोऽर्थी सुसुक्ष्मः विशिष्टः पूर्वोक्तभिन्न इत्यर्थः  
इति कश्चित् विजिगीषुष्यादित्यर्थं अनसूयिभिरिति ॥ ४८ ॥

संवादप्रकारमाह । वाशब्दो निश्चयार्थः अर्थित्वे तत्त्वबुभुक्षायां  
सत्यां प्रयोजनार्थं तत्त्वनिर्णयार्थं प्रतिपक्षहीनं प्रतिकूलपक्षहीनं यथा  
स्यात्तथाऽभ्युपेयात् तथा च भाष्यं स्वपक्षमनवस्थाय स्वदर्शनं परिशोधये-  
दिति तत्त्वनिर्णीषुतया न पक्षपात इति भावः ॥ ४९ ॥

समाप्तं तत्त्वज्ञानविट्प्रकरणम् ॥ ५० ॥

तद्विद्यैः सह संवाद इत्यत्र त्वयीवाह्यैः सह संवादः कर्तव्य इति  
भ्रमो माभूदिति तत्त्वज्ञानपरिपालनप्रकरणमारभते । तत्त्वाध्यवसा-  
यस्य तत्त्वनिर्णयस्य संरक्षणं परोक्तदूषणास्तन्दनेनाप्रामाण्यशङ्काविषटनं  
तदर्थं जल्पवितण्डे पूर्वोक्तौ इति शेषः ॥ ५० ॥

## ताभ्यां विगृह्य कथनं ॥ क ॥

ननु ताभ्यां किङ्कार्थमित्यत आह । अयमर्थः त्वयीवाह्यैः तद्दर्श-  
नाभ्यासाहितकुत्रानैरपरैर्वा यदि स्वपक्ष आक्षिप्यते तदा ताभ्यां जल्पवि-  
तण्डाभ्यां सावधारणं चैतत् त्वयऽन्तःपातिनामाक्षेपे तु वादजल्पवित-  
ण्डाभिर्यथेच्छङ्कथयेदिति भावः वस्तुतस्तु सुसुक्ष्मोर्न तादृशैः सह संवादो  
वीतरागवान्नाहि शास्त्रपरिपालनमपि तदुद्देश्यं नवा तदुपेक्षयैव शास्त्रं  
गच्छति किन्तु शास्त्रमभ्यस्येतेति तत्त्वमिति ॥ क ॥

समाप्तं तत्त्वज्ञानपरिपालनप्रकरणम् ॥ ५१ ॥

समाप्तं चतुर्थीध्यायस्य त्रितीयमाह्निकम् ॥ २ ॥



## ४ अध्याये २ आह्निकम् ।

२६१

इति महामहोपाध्यायश्रीमद्विद्यानिवासभट्टाचार्यात्मज श्रीविश्वनाथ  
सिद्धान्तपञ्चाननभट्टाचार्यकृतायां न्यायसूत्रवृत्तौ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

नत्वा शङ्करचरणं शरणं दीनस्य दुर्गमे तरणम् ।

सम्प्रति निरूपयामः पञ्चममध्यायमतिगहनम् ।

अथ जातिनिग्रहस्थानयोरुद्दिष्टयोर्लक्षितयोर्वैकल्यं तद्विकल्पाज्जा-  
तिनिग्रहस्थानवच्छत्वमित्यनेन सूचितं बलवच्छिष्यजिज्ञासासुसारिप्रमा-  
णादिपरीक्षयाऽनुरितं सम्प्रत्यवसरतः प्रपञ्चनीयं तत्र जातिपरीक्षा-  
सहितजातिनिग्रहस्थानविशेषलक्षणमध्यायार्थः जातिपरीक्षासहित-  
जातिविशेषलक्षणं प्रथमाह्निकार्थः सप्तदेशं चोक्तं प्रकरणानि तत्रादौ  
सम्प्रतिपक्षदेशनाभासाप्रकरणम् अन्यानि च यथास्थानं वक्ष्यन्ते तत्र च  
विशेषलक्षणार्थं जातिं विभजते ।

अत्र च साधर्म्यादीनां कार्यान्तानां द्वन्द्वे तैः समा इत्यर्थात् साधर्म्य-  
समादयश्चतुर्विंशतिजातय इत्यर्थः अत्र च जातेर्विशेष्यत्वात् समाशब्दं म-  
न्यन्ते भाष्यवार्त्तिकादौ समाशब्दः अपिसूत्रेषु तु समशब्दो निर्विवाद-  
एव तत्र जातिशब्दस्य स्त्रीलिङ्गतया यद्यपि नान्वयस्तथापि प्रतिषेधो वि-  
शेष्य इति भाष्यादयः वयन्तु तद्विकल्पादिति सूत्रस्यविकल्पस्यैव विशेष्यत्वं  
विविधः कल्पः प्रकारो विकल्पः तथा चैते साधर्म्यसमादयो जातिवि-  
कल्पा एवमपिसूत्रेष्वपि इत्यञ्च जातेर्विशेष्यत्वे साधर्म्यसमेत्यपीति  
ब्रूमः समीकरणार्थं प्रयोगः समइति वार्त्तिकं यद्यपि नैतावता समीकरणं  
तथापि समीकरणोद्देश्यकत्वमसूत्रेव अथवा साधर्म्यमेव समं यत्र स साध-  
र्म्यसमः एकत्वव्याप्तेराधिक्येऽपि साधर्म्यं सममेवेति भावः ॥ १ ॥

साधर्म्यवैधर्म्यसमौ लक्षयति । उपसंहारे साध्यस्योपसंहरणे वादिना कृते  
तद्वर्त्मस्य साध्यरूपधर्मस्य यो विपर्ययो व्यतिरेकस्तस्य साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां  
केवलाभ्यां व्याख्यानपेक्षाभ्यां यदुपपादनं ततो हेतोः साधर्म्यवैधर्म्यसमावु-  
च्येते तदयमर्थः वादिना अन्वयेन व्यतिरेकेण वा साध्ये साधिते प्रतिवा-  
दिना साधर्म्यमात्रप्रवृत्तहेतुना तदभावापादनं साधर्म्यसमावैधर्म्यमात्र-



प्रवृत्तहेतुना तदभावापादनं वैधर्म्यसमा तत्र साधर्म्यसमा यथा शब्दोऽनित्यः  
 कृतकत्वादुपघटवत् व्यतिरेकेण वा व्योमवदित्युपसंहृते नैतदेवं यद्यनित्यघट-  
 साधर्म्यान्नित्याकाशवैधर्म्याद्वाऽनित्यः स्यान्नित्याकाशसाधर्म्यादमूर्त्तत्वान्नित्यः  
 स्याद्विशेषो वा वक्तव्यः वैधर्म्यसमा यथा शब्दोऽनित्यः कृतकत्वाद्दुपघटवत् चा-  
 काशवद्देति स्थापनायाम् अनित्यघटवैधर्म्यादमूर्त्तत्वान्नित्यः स्याद्विशेषो वा  
 वक्तव्य इति अत्र सामर्थ्यत्वमात्रं वैधर्म्यत्वमात्रं वा गमकतौपयिकमित्यभि-  
 मानात् सत्प्रतिपक्षदेशनाभासे चेमे अन्यैकान्तिकदेशनाभासेति वार्त्तिके  
 त्वनैकान्तिकपदं योगात्प्रतिपक्षपरं एकान्ततः साध्यसाधवत्त्वभा-  
 वात् ॥ २ ॥

अनयोरसदुत्तरत्वे बीजमाह । गोत्वात् गोसिद्धिर्गोव्यवहार इति  
 सम्प्रदायः वयन्त गोत्वाद्भवेतरासमवेतत्वे सति गोसमवेतात्माज्ञादितः एतेन  
 व्याप्तिपक्षधर्मत्वे दर्शिते गोर्गोत्वस्य तादात्म्येन गोरेव वा सिद्धिर्यथा  
 तथैव कृतकत्वादपि व्याप्तिपक्षधर्मतासहितादनित्यत्वसिद्धिर्नित्य व्याप्तिपक्ष-  
 धर्मतारहितात् साधर्म्यमात्रात् तथा सति अदूषकसाधर्म्यात्प्रमेयत्वादित-  
 स्त्वद्वचनस्यदूषकं स्यादित्ययं विशेषः ॥ ३ ॥

इति सत्प्रतिपक्षदेशनाभासाप्रकरणम् ॥ ५६ ॥

क्रमप्राप्तं जातिषट्कं निरूपयति । उत्कर्षेण सम उत्कर्षसम एवमप-  
 कर्षसमोऽपि वग्यवर्ण्यसाध्येति भावप्रधानो निर्देशः वर्ण्यत्वादिना समो  
 वर्ण्यसमादिः अविवक्षितधर्मरूप उत्कर्षः विद्यमानधर्मोपचयोऽपकर्षः  
 वर्ण्यत्वं वर्णनीयत्वं तच्च सन्दिग्धसाध्यकत्वादिति तदभावोऽवर्ण्यत्वं विवक्ष्यो-  
 द्वैविध्यं साध्यत्वं पञ्चावयवसाधनीयत्वं साध्यदृष्टान्तयोधर्मविकल्पादिति  
 पञ्चानामुत्थानबीजं उभयसाध्यत्वादिति पक्षस्य तदयमर्थः साध्यतेऽत्रेति  
 साध्यं पक्षः तथा च साध्यदृष्टान्तयोरित्यस्य पक्षदृष्टान्तयोरन्यतरस्मि-  
 न्नित्यर्थः धर्मविवक्ष्यो धर्मस्य वैदित्यं तच्च कचिद्वत्त्वं कचिदसत्त्वं प्रकृते  
 साध्यसाधनान्यतररूपस्य धर्मस्य विकल्पात्त्वत्वाद्योऽविवक्षितधर्मरूपः  
 स उत्कर्षसमः व्याप्तिमपुरुषस्य पक्षदृष्टान्तान्यतरस्मिन् साध्यसाधनान्य-  
 तरेणाविवक्षितधर्मप्रसङ्गान् उत्कर्षसम इति फलितार्थः यथाशब्दोऽनित्यः  
 कृतकत्वादिति स्थापनायां अनित्यत्वं कृतकत्वं घटे रूपसङ्घचरितसत्तः



## ५ अध्याये १ आह्निकम् ।

२८३

शब्दोऽपि रूपवान् स्यात् तथा च विवक्षितविपरीतसाधनाद्विशेषविरु-  
द्धो हेतुस्तद्देशनाभासाच्चेयम् एवं आवणशब्दसाधस्यात्कृतकत्वाद्द्वयोऽपि  
आवणः स्यादविशेषात् वस्तुतस्तु घटे आवणत्वापादनेऽर्थान्तरमतउक्तलक्षणे  
दृष्टान्तपदं साध्यपदञ्च न देयम् अपकर्षसमायान्त धर्माविकल्पः धर्मस्य  
सहचरितधर्मस्य विवक्ष्योऽस्त्वं ततः अपकर्षः साध्यसाधनन्यतरस्याभाव-  
प्रसञ्जनं तथा च पक्षदृष्टान्तान्यतरस्मिन् व्याप्तिमपुरस्कृत्य सहचरित-  
धर्माभावेन हेतुसाध्यान्यतराभाव प्रसञ्जनमपकर्षसमा यथाशब्दोऽनित्यः  
कृतकत्वादित्यत्र यद्यनित्यसहचरितघटधर्मात् कृतकत्वादनित्यः शब्द-  
स्तदा कृतकत्वानित्यत्वसहचरितघटधर्मरूपवत्त्वव्यावृत्त्या शब्दे कृतकत्व-  
स्यानित्यत्वस्य च व्यावृत्तिः स्यात् आद्येऽसिद्धिदेशना द्वितीये बाधदेशना  
एवं शब्दे कृतकत्वसहचरितआवणत्वस्य संयोगादावनित्यत्वकृतकत्वसह-  
चरितगुणत्वस्य च व्यावृत्त्या घटेऽनित्यत्वं कृतकत्वञ्चव्यावर्त्तेतेति दृष्टान्ते  
साध्यसाधनवैकल्यदेशनाभासाऽपीयं यत्तु वार्तिके शब्दोनीरूप इति घटो-  
ऽपि नीरूपः स्यादित्यपकर्ष इति तदस्त् घटे नीरूपत्वापादनसार्थान्तर-  
त्वात् आचार्यस्वरसोऽप्येवं यत्तु वैधर्म्यसमाया अत्रैवान्तर्भावः स्यादिति  
तत्र उपधेयसङ्करेऽप्युपाधेरसङ्करात् वर्यसमायान्त साध्यः सिद्धभाववान्  
सन्दिग्धसाध्यकादिर्वा तस्य धर्मः सन्दिग्धसाध्यकादिर्वात्तिहेतुस्तस्य  
विवक्ष्यत्वात् दृष्टान्ते वर्यत्वस्य सन्दिग्धसाध्यत्वस्यापादनं वर्यसमा  
तदयमर्थः पक्षवृत्तिहेतुर्हि गमकः पक्षञ्च सन्दिग्धसाध्यकस्तथा च सन्दि-  
ग्धसाध्यकवृत्तिहेतुस्त्वया दृष्टान्तेऽपि स्वीकार्यः तथा च दृष्टान्तस्यापि  
सन्दिग्धसाध्यकत्वात्पक्षवृत्तित्वानिश्चयादसाधारण्यो हेतुस्तद्देशनाभासा  
च्चेयं हेतुः सन्दिग्धसाध्यकवृत्तिर्यादि न दृष्टान्ते तदा गमकहेत्वभावात्  
साधनविवक्ष्योदृष्टान्तः स्यादिति भावः अवर्ण्यसमायान्त दृष्टान्ते सिद्ध-  
साध्यके यो धर्मो हेतुस्तस्य स्त्वं पक्षे शब्दादीवसन्दिग्धसाध्यकत्वापा-  
दनमवर्ण्यसमा दृष्टान्ते हेतोर्यादृशत्वं तादृशो हेतुरेव गमक इत्यभिमानेन  
एवमापादनं दृष्टान्ते यो हेतुः सिद्धसाध्यकवृत्तिः स चेन्न पक्षे तदा गमकहे-  
त्वभावात् स्वरूपासिद्धिः स्यादतस्तादृशो हेतुरवश्यं पक्षत्वाभिमाने स्वीकार्यः  
तथा च सन्दिग्धसाध्यकत्वलक्षणपक्षत्वाभावादाश्रयासिद्धिः असिद्धिदेशना-



भासा चेयं विवक्ष्यमानायान्तु पक्षे दृष्टान्ते च यो धर्म्मस्तस्य विवक्ष्यो विरुद्धः  
 कल्पो व्यभिचारित्वम् उपलक्षणं चैतत् अन्यवृत्तिधर्मस्यापि बोध्यं व्यभि-  
 चारोऽपि हेतोर्धर्म्मान्तरं प्रति धर्म्मान्तरस्य साध्यं प्रति धर्म्मान्तरस्य धर्म्मा-  
 न्तरं प्रति वा तथा च कस्यचिद्धर्मस्य क्वचिद्व्यभिचारदर्शनेन धर्म्मावि-  
 शेषात् प्रकृतहेतोः प्रकृतसाध्यं प्रति व्यभिचारापादनं विवक्ष्यमाना यथा  
 शब्दोऽनित्यं कृतकत्वादित्यत्र कृतकत्वस्य गुरुत्वव्यभिचारदर्शनाद्गुरुत्वस्या-  
 नित्यत्वव्यभिचारदर्शनादनित्यत्वस्य मूर्तत्वव्यभिचारदर्शनाद्धर्मत्वादिशे-  
 पात् कृतकत्वमयनित्यत्वं व्यभिचरेदित्यनैकान्तिकदेशनाभासा चेयं पक्ष-  
 दृष्टान्तादेः प्रकृतसाध्यतुल्यतापादनं साध्यसमा तत्तायसांशयः एतत्प्रयो-  
 गसाध्यस्यैवानुमितिविषयत्वं तथा च पक्षादेरनुमितिविषयत्वात् साध्य-  
 वदेतत्प्रयोगसाध्यत्वम् अतः साध्यसमा तथा हि पक्षादेः पूर्वं सिद्धत्वे एतत्  
 प्रयोगसाध्यत्वाभावाद्गुमितिविषयत्वं पूर्वमसिद्धत्वे पक्षादेरज्ञानादा-  
 श्रया सिद्धादवस्तुदेशनाभासा चेयं सूतार्थस्तु उभयसाध्यत्वात् उभयं पक्ष-  
 दृष्टान्तौ तद्धर्म्मा हेत्वादिः तत्साध्यत्वं तदधीनानुमितिविषयत्वं साध्यस्यैव  
 पक्षादेरपीति तुल्यतापादनमिति लिङ्गोपहितमानमते लिङ्गस्याप्यनुमिति-  
 विषयत्वात् साध्यसमत्वं हेतोश्च साध्यत्वे हेतुसान्द्रदृष्टान्तोऽपि साध्य-  
 इत्याशयः ॥ ४ ॥

एतां सामसदुत्तरत्वे बीजमाह । किञ्चित्साधर्म्यात् साधर्म्यविशेषात्  
 व्याप्तिरहितत्वात् उपसंहारसिद्धेः साध्यसिद्धेः वैधर्म्यादेतद्विपरीतात्  
 व्याप्तिरपेक्षात् साधर्म्यमात्रात् भवता कृतः प्रतिषेधो न रुम्भवतीत्यर्थः  
 अन्यथा प्रमेयत्वरूपसाधकसाधर्म्यात् तद्द्रूपणमप्यस्यक् स्यादिति भावः  
 तथा चायं क्रमः अनित्यत्वव्याप्यात् कृतकत्वात् शब्दोऽनित्यत्वमुपसंहारमौ-  
 नतु कृतकत्वरूपस्यापि व्याप्यं येन ततो रूपमधारादनीयं शब्दे एवं अनि-  
 त्यत्वं न रूपव्यप्यं येन रूपमात्रादनित्यत्वभावः शब्दे स्यात् एवं वर्य-  
 मनेऽपि किञ्चित्साधर्म्यात् व्याप्यतावच्छेदकावच्छिन्नाद्धेतोः साध्य-  
 सिद्धिः तादृशहेतुमत्त्वञ्च दृष्टान्ताप्रयोजकं न तु पक्षे यावद्विशेषणाव-  
 च्छिन्नो हेतुस्तावदवच्छिन्नहेतुमत्त्वं अन्यथा त्वयाऽपि दूषणोचो दृष्टा-  
 न्तो कर्तव्यः सोऽपि न स्यात् एवमवरणसमेऽपि व्याप्यतावच्छेदकावच्छि-



## ५ अध्याये १ आह्निकम् ।

२८५

नस्य दृष्टान्तदृष्टस्य पक्षे सत्त्वात्साध्यसिद्धिर्न तु दृष्टान्तदृष्टियावद्भस्मावच्छि-  
न्नस्य पक्षे सत्त्वम् एवं निकल्पसमेऽपि प्रकृतसाध्यव्याप्यात् प्रकृतहेतोः  
साध्यसिद्धिस्तद्वैधर्म्यात् यत्किञ्चिद्व्यभिचारात् कृतः प्रतिषेधो न सम्भवति  
नहि यत्किञ्चिद्व्यभिचारादेव प्रकृतहेतोः प्रकृतसाध्यासाधकत्वमतिप्रसङ्गात्  
एवं साध्यसमेऽपि व्याप्याद्धेतोः सिद्धे पक्षे साध्यसिद्धिर्न तु पक्षदृष्टान्ता-  
दयोऽप्यनेन साध्यने तथा सति कचिदपि साध्यसिद्धिर्न स्यात् त्वदी-  
यदूपायमपि विलीयेत ॥ ५ ॥

वर्ण्यावर्ण्यसाध्यसमासु समाध्यन्तरमप्याह । दृष्टान्तोपपत्तिर्दृष्टान्तो-  
पपत्तिः साध्यातिदेशात् दृष्टान्ते हि साध्यमतिदिश्यते तावतैव दृष्टा-  
न्तत्वमुपपद्यते नत्वशेषो धर्मः पक्षदृष्टान्तयोरभेदापत्तेः पक्षादेरपि  
साध्यसमत्वनेतेन प्रत्युक्तं दृष्टोऽन्तो दृष्टान्तः पक्षः तस्माद्वह्निमानित्यतः  
पक्षोक्त्यातिनात्तया च साध्यस्यातिदेशात् साधनात् पक्ष इत्युच्यते न तु  
पक्षोऽपि साध्यतेऽतिप्रसङ्गादिति भावः ॥ ६ ॥

समः प्राप्तुजातिषट्कप्रकरणम् ॥ ६ ॥

क्रमप्राप्तौ प्राप्तप्राप्तिप्रसमौ लक्षयति । हेतोरिति साधकत्वमिति  
शेष प्राप्त्यपक्षे दोषमाह प्रात्याऽविशिष्टत्वादिति द्वयोरपि प्राप्तत्वावि-  
शेषात् किङ्कर साधकं अप्राप्तिपक्षे दोषमाह अप्राप्तेरिति अप्राप्तस्य साध-  
कत्वेऽतिप्रसङ्गात् साधकत्वज्ञात कारकज्ञापकसाधारणम् एवञ्च कार-  
कज्ञापकलक्षणं साधनं कार्यज्ञाप्यलक्षणेन साध्येन सम्बद्धं सत्साधकं  
चेत्तदा सत्त्व विशेष न कार्यकारणभावः तत्सम्बन्धस्य प्रागेव ज्ञातत्वाच्च  
ज्ञाप्यज्ञापकभावः प्राप्तयोर्न जन्यजनकभावः प्राप्तत्वेन लवणोदकयोरिवा-  
भेदादित्याशय इत्यन्ये तथा च प्रात्याऽविशेषादनिष्टापादनेन प्रत्यवस्थानं  
प्राप्तिप्रसमा यदि चाप्राप्तं लिङ्गं साध्यबुद्धिं जनयति साध्य भावबुद्धिमेव  
किल्बेन न जनयेत् अप्राप्तत्वाविशेषात् तथा चाप्राप्त्या साधकत्वादनि-  
ष्टापादनमप्राप्तिप्रसमा प्रतिकूलतर्कदेशनाभासे चेमे ॥ ७ ॥

अनयोरसदुत्तरत्वे बीजमाह । दण्डादितो घटादिनिष्पत्तेर्दर्शनात्  
सर्वलोकप्रत्यक्षसिद्धत्वादभिचारात् श्येनादितः शत्रुपीडने च व्यभिचा-  
राच्च लिङ्गतः प्रतिषेधः सम्भवति न हि कारणं दण्डादि प्रागेव घटा-



दिना सम्बद्धमपि तु सदादिना श्येनादिरप्युद्देश्यतया पीडां जनयति  
अन्यथा लोकवेदसिद्धकार्यकारणभावोच्छेदे तदुक्तो हेतुरप्यसाधकं  
स्यादिति ॥ ८ ॥ प्राप्तप्रमाप्तिरसमजातिद्वयप्रकरणम् ॥ ६१ ॥

क्रमप्राप्ते प्रसङ्गप्रतिवृत्तान्तसमे जाती लक्षयति । वृत्तान्तस्य कारणं  
प्रमाणं तदनपदेशेऽनभिधानम् अभिधानं चानतिप्रयोजनकं तथा च  
वृत्तान्तस्य साध्यवत्त्वे प्रमाणाभावात् प्रत्यवस्थानमर्थः यद्यपीदं सदुत्तर-  
मेव तथापि वृत्तान्तं प्रमाणं वाच्यं तत्रापि प्रमाणान्तरमित्यनवस्था  
प्रत्यवस्थाने तात्पर्यं तदुक्तमाचार्यैरनवस्थाभासप्रसङ्गः प्रसङ्गसम इति  
एतन्मते हेतोर्हेतुन्तरमित्यनवस्थाऽपि प्रसङ्गसम एव पूर्वमते तु हेतुनव-  
स्थादिकं वक्ष्यमाणाकृतिगोचरानभूतमिति विशेषः अनवस्थादेशनाभासा  
चेयं प्रतिवृत्तान्तसमः प्रत्येतव्यः प्रतिवृत्तान्तेन प्रत्यवस्थानात् प्रति-  
वृत्तान्तसमः एतच्च सावधारणं तेन प्रतिवृत्तान्तमात्रबलेन प्रत्यवस्थाना-  
मर्थः तेन साध्यसिद्धान्त्युदासः यदि घटवृत्तान्तबलेनानित्यः शब्दः तदा-  
काशवृत्तान्तबलेनानित्यः शब्दः तदाकाशवृत्तान्तबलेन नित्य एव स्यात्  
नित्यः किं न स्यादिति बाधः प्रतिरोधोवापत्तनीयः हेतुरनङ्गं वृत्तान्त-  
मात्रबलदेव साध्यसिद्धिरित्यभिमानः बाधप्रतिरोधन्यतरदेशनाभासा  
चेयम् ॥ ९ ॥

प्रसङ्गसमे प्रत्युत्तरमाह । वृत्तान्तो हि निदर्शनस्यासत्त्वेन साध्य-  
निश्चयार्थमेवेक्ष्यते न तु वृत्तान्तावृत्तान्ताद्यनवस्थितपरम्परा लोकसिद्धा  
युक्तिसिद्धा वा अन्यथा घटादिप्रत्यक्षाय प्रदीप इव प्रदीपप्रत्ययार्थमन-  
वस्थितप्रदीपपरम्परा प्रवृज्येत त्वदीयसाधनमपि व्याहृत्येत ॥ १० ॥

प्रतिवृत्तान्तसमे प्रत्युत्तरमाह । अत्रायमुत्तरक्रमः प्रतिवृत्तान्त-  
स्वया किमर्थमुपादीयते मदीयहेतोर्वाधार्थं सत्प्रतिपक्षितत्वार्थं वा  
नाद्यः यतः प्रतिवृत्तान्तस्य हेतुत्वे स्वार्थसाधकत्वे मदीयो वृत्तान्तो ना-  
हेतुः न साधकस्तथा च तत्त्वबलत्वाच्च बाधः न वा द्वितीयोऽपि यतः प्रति-  
वृत्तान्तस्य स्वार्थसाधकत्वे उच्यमाने नाहेतुवृत्तान्तः मदीयो वृत्तान्तस्तु सहे-  
तुकत्वादधिकबलः वस्तुतो हेतुं विना वृत्तान्तमात्रेण न सत्प्रतिपक्षसम्भा-



## ५ अध्याय १ आह्निकम् ।

२६७

वना तदभावव्याप्यवत्तानाभावात् हेतुपादाने तु सदुत्तरत्वमेवेति भावः इति ॥ ११ ॥ इति प्रसङ्गसमप्रतिदृष्टान्तसमप्रकरणम् ॥ ६१ ॥

क्रमप्र. प्रमनुत्पत्तिसमं लक्षयति । प्रागुत्पत्तेरिति साधनाङ्गस्येति शेषः कारणाभावात् हेत्वभावात् तथा च साधनाङ्गपक्षहेतुदृष्टान्ताभासत्पत्तेः प्राक् हेत्वभाव इत्यनुत्पत्त्या प्रत्यवस्थानमनुत्पत्तिसमः यथा घटो रूपवान् गन्धात् पटवदित्युक्ते घटोत्पत्तेर्गन्धोत्पत्तेश्च पूर्वं हेत्वभावादसिद्धिः पटे च गन्धोत्पत्तेः पूर्वं हेत्वभावेन दृष्टान्तसिद्धिः एवं आद्यक्षणे रूपाभावाद्द्विधस्य अनुत्पत्त्या प्रत्यवस्थानस्य तत्रापि रक्तात् उत्पत्तेः पूर्वं हेत्वाद्यभावेन प्रत्यवस्थानस्यैव लक्षणत्वात् जातित्वे सतीति च विशेषणीयं तेनोत्पत्तिकालावच्छिन्नो घटो गन्धानित्यत्र बाधेन प्रत्यवस्थाने नातिव्याप्तिः असिद्धादिदेशनाभासा चेयम् ॥ १२ ॥

अतोत्तरमाह । उत्पन्नस्य तथा भावात् घटाद्यात्मकत्वात् तत्र कारणस्य हेतोरूपपत्तेः सत्त्वात् कथं कारणप्रतिषेधः व्यमाशयः पक्षे हेत्वभावोऽसिद्धिः नत्वनुत्पत्तेः हेत्वभावः सम्भवति अधिकरणाभावात् न हि हेत्वभावमात्रासिद्धिः त्वदीयहेतोरपि कचिदभावसत्त्वादेतेन दृष्टान्तसिद्धिर्याख्याता यदा कदाचिद्धेतुत्वे नैव दृष्टान्तत्वोपपत्तेः एवं हेत्वादीनां यदा कदाचित्पक्षे सत्त्वदेव हेत्वादिभावो न तु सार्वत्रिकी तदपेक्षेति ॥ १३ ॥

इत्यनुत्पत्तिसमप्रकरणम् ॥ ६३ ॥

क्रमप्राप्तं संशयसमं लक्षयति । नित्यानित्यसाधस्यादिति संशयकारणोपलक्षणं तेन समानधर्मदर्शनादियत्किञ्चित् संशयकारणवत्त्वात् संशयेन प्रत्यवस्थानं संशयसमः अधिकन्तूदाहरणपरं तथा हि शब्दोऽनित्यः कार्यत्वाद्दृष्टवदित्युक्ते सामान्ये गोत्वादौ दृष्टान्ते घटे ऐन्द्रियकत्वं तल्यं तथा कार्यत्वान्निर्णायकादनित्यत्वं निर्णीयते तथा ऐन्द्रियकत्वात्संशयकारणादनित्यत्वं सन्दिह्यतां एवं शब्दत्वाद्यसाधर्मदर्शनादपि संशयो बोध्यः तथा च हेतुत्वादेऽप्राप्तसाध्यशङ्काधानद्वारा साध्यसंशयात् सत्प्रतिपक्षदेशनाभासेयम् ॥ १४ ॥

अतोत्तरम् । साधस्यात्साधर्म्यदर्शनात् संशय आपाद्यमानेऽपि न संशयो वैधर्म्याद्वैधर्म्यदर्शनात् यदि च कार्यत्वरूपविशेषदर्शनेऽपि संशयस्त-



दाऽत्यन्तसंशयप्रसङ्गः संशयानुच्छेदप्रसङ्गः न च तथाऽभ्युपगन्तुं शक्यमि-  
त्याह नित्यत्वेति सामान्यस्य समनधर्मदर्शनस्य नित्यत्वानभ्युपगमात् नि-  
त्यसंशयजनकत्वानभ्युपगमात्तथा सति त्वदीयहेतुरपि न परपक्षप्रतिषेधकः  
स्यादिति भावः सामान्यस्य गोत्वादेर्नित्यत्वानभ्युपगमात् नित्यत्वानभ्युप-  
गमप्रसङ्गात् तत्रापि साधारणधर्मप्रमेयत्वादिना संशय एव स्यादिति  
केचित् ॥ १५ ॥ इति संशयसमप्रकरणम् ॥ ६५ ॥

क्रमप्राप्तं प्रकरणसमं लक्षयति । उभयसाधर्म्यात् अन्वयसहचारा-  
द्यातिरेकसहचाराद्वा प्रक्रियाप्रकर्षेण क्रियासाधनं विपरीतसाधनमिति  
फलितायेः तत्सिद्धेस्तस्य पूर्वमेव सिद्धेः तथाचाधिकवृत्तेनारोपितप्रमाणा-  
न्तरेण बाधेन प्रत्यवस्थानं प्रकरणसमः यथाशब्देऽनित्यः कृतकत्वमदित्युक्तोः  
नैतदेवं श्रावणत्वेन नित्यत्वसाधकेन बाधात् बाधदेशनाभासश्चेयम् ॥ १६ ॥

अत्रोत्तरमाह । प्रतिपक्षाद्विपरीतसाध्यसाधकत्वेनाभिसताच्छ्रावण-  
त्वादितः प्रकरणसिद्धिद्वारा मदीयसाध्यस्य यः प्रतिषेधः त्वया क्रियते तः  
स्यानुपपत्तिः कुतः प्रतिपक्षोपपत्तेः त्वत्पक्षापेक्षया प्रतिपक्षस्य मदीयपक्ष-  
स्योपपत्तेः साधनात् अयमाशयः श्रावणत्वेन पूर्वं नित्यत्वस्य साधनादो  
बाध उच्यते स नोपपद्यते पूर्वं साधितस्य बलवत्त्वाभावात् कदाचित्कृतक-  
त्वेनानित्यत्वस्यापि पूर्वं साधनादिति त्वत्पक्षप्रतिषेधोऽपि स्यात् ॥ १७ ॥

इति प्रकरणसमप्रकरणम् ॥ ६५ ॥

क्रमप्राप्तमहेतुसमं लक्षयति । त्रैकाल्यं कार्यकालतत्पूर्वापरकालाः  
तेन हेतोरसिद्धः हेतुत्वासिद्धेः अयमर्थः दण्डदिकं घटादेर्न पूर्ववर्त्ति-  
तया कारणं तदानीं घटादेरभावात् कस्य कारणं स्यत् अत एव न घटा-  
द्युत्तरकालवर्त्तितयाऽपि नवा समानकालवर्त्तितया तुल्यकालवर्त्तिनोः स-  
व्येतरविषाणयोरिवाविनिगमनापत्तेः तथा च कालसम्बन्धखण्डनेनाहे-  
तुतया प्रत्यवस्थानमहेतुसमः कारणमात्रखण्डनेन तन्निहेतोरपि खण्ड-  
नान्न तदसंग्रहः प्रतिकूलतर्कदेशनाभासा चेयम् ॥ १८ ॥

अत्रोत्तरमाह । त्रैकाल्यासिद्धिस्तैकाल्येन याऽसिद्धिरुक्ता सा न  
कुतः हेतुतः साध्यसिद्धेः त्वयाऽभ्युपगमात् ॥ १९ ॥



## ५ अध्याये १ आह्निकम् ।

२१६

पूर्ववर्तितामात्रेणैव हेतुतासम्भवात् अन्यथा त्वदीयहेतोरपि  
साध्यं न सिध्येदित्याह । हेतुफलभावखण्डने प्रतिषेधस्याप्यनुपपत्तेः  
प्रतिषेधव्यस्य परकीयहेतोर्न प्रतिषेध इत्यर्थः ॥ २० ॥

इति अहेतुसमप्रकरणम् ॥ ६६ ॥

क्रमप्राप्तमर्थापत्तिसमं लक्षयति । अर्थापत्तिरर्थापत्त्याभासः तथा चा-  
र्थापत्त्याभासेन प्रतिपक्षसाधनाय प्रत्यवस्थानमर्थापत्तिसमः व्युत्पत्तिः अ-  
र्थापत्तिर्हि उक्ते नानुक्तमाक्षिपति यथा शब्दोऽनित्य इत्युक्ते ऽर्थादापद्यतेऽ-  
न्यत् नित्यं तथा च दृष्टान्तासिद्धिः विरोधश्च कृतकत्वादनित्य इत्युक्ते ऽ-  
र्थादापन्नम् अन्यस्याद्वेतोर्बाधः सत्यतिपक्षो वा अनुमानादनित्य इत्युक्ते  
प्रत्यक्षान्नित्य इति च बाधः विशेषविधेः शेष निषेधफलकत्वमित्यभिमानः  
सर्वदोषदेशनाभासा चेयम् ॥ २१ ॥

अत्रोत्तरम् । किमुक्तेन अनुक्तं यत्किञ्चिदेवार्थादापद्यते उक्तोपपा-  
दकं वा आद्ये त्वत्पक्षहानिरप्यापाद्यतां त्वयानुक्तत्वात् अन्ये अस्या अर्था-  
पत्तेरनैकान्तिकत्वम् एकान्तिकत्वम् एकपक्षसाधकत्वं बलं तन्नास्ति न हि  
अनित्य इत्यस्योपपादकं नित्यत्वमिति न हि विशेषविधिसात् शेषनिषेध-  
फलकमपि तु सति तात्पर्यं क्वचित् न हि नीलोषट् इत्युक्ते सर्वमन्यदनी-  
लमिति क्वचित्प्रतिपद्यते ॥ २२ ॥

इति अर्थापत्तिसमप्रकरणम् ॥ ६७ ॥

अविशेषसमं लक्षयति । एकस्य धर्मस्य कृतकत्वादेः शब्दे घटे चोप-  
पत्तेः सत्त्वात् यदि शब्दघटयोरनित्यत्वेनाविशेषः उच्यते तदा सर्वेषाम-  
विशेषप्रसङ्गः कुतः सङ्गावोपपत्तेः सतः सन्मात्रस्य ये भावाधर्माः सत्त्वप्रमेय-  
त्वादयस्ते पाशुपपत्तेः सत्त्वात् तथा च सर्वेषामभेदे पक्षाद्विभागः सर्वे-  
षामेकजातीयत्वेऽवान्तरजात्युच्छेदः सर्वेषामनित्यत्वे जात्यादिविलय  
इत्यादि तथा च सन्मात्रवृत्तिधर्मेणाविशेषापादनमविशेषसमेति फलि-  
तम् अत्र वाविशेषसम इति लक्ष्यनिर्देशः सङ्गावोपपत्तेः सर्वाविशेषप्रस-  
ङ्गादिति लक्षणं शेषं व्युत्पादकं प्रतिकूलतर्कदेशनाभासा चेयम् ॥ २३ ॥

अत्रोत्तरमाह । तद्वर्त्मस्तस्य हेतोर्धर्मो व्याख्यादिस्तस्य क्वचित् क-



तत्त्वत्तदौ उपपत्तेः सत्त्वात् कचित्सत्त्वदौ अनुपपत्तेः अभावात् त्वदुक्तस्य  
प्रतिषेधस्याभावोऽसम्भव इत्यर्थः ॥ २४ ॥

इति अविशेषसमप्रकरणम् ॥ ६८ ॥

उपपत्तिसमं लक्षयति । उभयं पक्षगतिपक्षौ तयोः कारणस्य प्रमा-  
णस्य उपपत्तेः सत्त्वत् तथा च व्याप्तिमपुरस्कृत्य यत्किञ्चिद्वर्मेण परपक्ष-  
दृष्टान्तेन स्वपक्षसाधनेन प्रत्यवस्थानम् उपपत्तिसमः यथा शब्दोऽनित्यः  
कृतकत्वादित्युक्ते यथा त्वत्पक्षेऽनित्यत्वे प्रमाणमस्ति तथा मत्पक्षोऽपि सप्र-  
माणकः त्वत्पक्षमत्पक्षान्यतरत्वात् त्वत्पक्षवत् तथा व बाधः प्रतिरोधो वा त-  
द्देशनाभासा चेयम् ॥ २५ ॥

अत्रोत्तरमाह । अयं त्वदुक्तप्रतिषेधो न सम्भवति कुतः मत्पक्षे उप-  
पत्तिकारणस्य मत्पक्षसाधकप्रमाणस्य त्वयाऽभ्यनुज्ञानात् त्वयाहि मत्पक्षस्य  
दृष्टान्तीकरणेन सप्रमाणकत्वमनुज्ञातमतः कथं तत्प्रतिषेधः शक्यते कर्तुम्  
अनुज्ञातस्यापि प्रतिषेधे स्वपक्ष एव किं न प्रतिषिध्यते ॥ २६ ॥

इति उपपत्तिसमप्रकरणम् ॥ ६९ ॥

उपलब्धिसमं लक्षयति । वादिना निर्दिष्टस्य कारणस्य साधनस्या-  
भावेऽपि साध्यस्योपलब्ध्यात् प्रत्यवस्थानरूपलब्धिसम इत्यर्थः तथाहि पर्वतो  
वज्रिमान् धूमादित्यादिकं वज्रावधारणार्थमुच्यते न च तत्सम्भवति धूमं  
विना आलोकादितोऽपि वज्रसिद्धेः तथा च न तस्य साधकत्वमिति प्रति-  
कूलतर्कः न वा धूमाद्वज्रिमानेवेत्यवधारणं द्रव्यत्वादेरपि धूमेन साधनात्  
न वा पर्वत एव वज्रिमानेवेत्यादिकम् अवधारयितुं शक्यते महानसादेरपि  
वज्रिमत्त्वादित्यादृष्टान्तासिद्धिः स्यात् एवं वज्रिभूत्यपर्वतस्यापि सत्त्वा-  
द्बाध इत्यादि तद्देशनाभासा चेयम् ॥ २७ ॥

अत्रोत्तरमाह । कारणान्तरात् साधनान्तरादालोकादितोऽपि तस्य  
धर्मस्य साध्यस्योपलब्धेस्त्वदुक्तः प्रतिषेधो न सम्भवति अयमाशयः नहि वय-  
मवधारणार्थं वज्रिमान् धूमादित्यादिकं प्रयुज्यमहे अपि तु सन्दि-  
ग्धस्य वज्रेः सिद्ध्यर्थं अन्यथा त्वदुक्तमसाधकतासाधनमपि न स्यादसाध-  
कतासाधकान्तरस्यापि सत्त्वत् ॥ २८ ॥ इति उपलब्धिप्रकरणम् ॥ ७० ॥



## ५ अध्याये १ आह्निकम् ।

३०१

अनुपलब्धिसमं लक्षयति । यद्यपि चेयं द्वितीयाध्याये दर्शिता दू-  
 षिता च तथाप्यनुपलब्धिसमजातिरेवमिति तत्वावृत्तेरत्र क्रमप्राप्तऽभि-  
 धीयते तत्वायं क्रमः नैयायिकैस्तावच्छब्दानित्यत्वमेव साध्यते यदि शब्दो  
 नित्यः स्यादुच्चारणात् प्राक्कुतो नोपलभ्यते न हि घटाद्यावरणं कुद्या-  
 दिवच्छब्दावरणमस्ति तदनुपलब्धेरिति तत्रैवं जातिवादो प्रत्यवति-  
 षते यद्यावरणानुपलब्धेरावरणभावः सिध्यति तदा आहरणानुपलब्धे-  
 रप्यनुपलब्धादावरणानुपलब्धेरप्यभावः सिध्येत् तथाचावरणानुपल-  
 ष्टिप्रमाणक आवरणाभावो न स्यादपित्वावरणोपपत्तिरेव स्यादिति  
 शब्दनित्यत्वेनोक्तं बाधकं युक्तं नन्वनुपलब्धेरनुपलब्ध्यन्तरानपेक्षणात्  
 कथमेवमिति चेत् इत्यनुपलब्धेरनुपलब्ध्यन्तरानपेक्षणे स्वयमेव स्वस्मि-  
 न्ननुपलब्धिरूपेति वाच्यं तथा च तयैवानुपलब्ध्यानुपलब्धत्वसम्भवात्तदभा-  
 वसिद्धेः स्वात्मन्यनुपलब्धिरूपत्वाभावेऽनुपलब्धित्वमेव न स्यात् अनुप-  
 लब्धेरनुपलब्ध्यन्तरानपेक्षणेऽनवस्था सप्तैव इत्यत्रैवंरूपेण प्रत्यवस्थान-  
 मनुपलब्धिसम इत्यर्थः प्रतिकूलतर्कदेशनाभासा चेयम् ॥ ३८ ॥

अत्रोत्तरमाह । अनुपलब्धिः आत्मन्यनुपलब्धिरिति कोऽर्थः स्वय-  
 मनुपलब्धिरूपेति चेद्भवत्येव स्वविषयिण्यनुपलब्धिरिति चेत्तदं प्रसक्तं  
 अनुपलब्धेरनुपलब्धात्मकत्वात् उपलब्धाभावात्मकत्वात् अभावस्य च निर्वि-  
 षयकत्वात् स्वात्मन्यनुपलब्धित्वाभावेऽनुपलब्धित्वमेव कथमस्या इति चेत्  
 कतमोविरोधः नहि घटः स्वविषयो न भवतीति नायं घटः आवरणाभावः  
 कथमनुपलब्धिविषय इति चेत् क एवमाह किन्वनुपलब्धिसहकृतेन्द्रिय-  
 ग्राह्यत्वादनुपलब्धिराह्य इत्युपचर्यते अतस्तदनुपलब्धेरनुपलब्धादित्या-  
 दिकमहेतुः अन्यथा तत्साधनमपि दोषानुपलब्धेरनुपलब्धात् सदोप-  
 मेव स्यादिति ॥ ३० ॥

नन्वनुपलब्धेः स्वस्मिन्ननुपलब्धित्वाभावेऽनुपलब्धिरपि केन सिध्येद-  
 तत्राह । अध्यात्मं आत्मन्यधि ज्ञानविकल्पानां ज्ञानविशेषाणां भावाभाव-  
 योर्मनसा सम्बेदनात् घटं साक्षात्करोमि वज्रमनुमिनोमि नानुमिनोमी-  
 त्वेवं ज्ञानविशेषतदभावानां मनसैव सुग्रहत्वादिति भावः ॥ ३१ ॥

इति अनुपलब्धिसम प्रकरणम् ॥ ३२ ॥

२६



अनित्यसमं लक्षयति । यदि दृष्टान्तघटसाधर्म्यात् कृतकत्वात्तेन सह तुल्यधर्मातोपपद्यत इत्यतः शब्देऽनित्यत्वं साध्यते तदा सर्वस्यैवानित्यत्वं स्यात् सत्त्वादिरूपसाधर्म्यसम्भवात् नचेदमर्थान्तरग्रस्तमिति वाच्यं सर्वस्यानित्यत्वे व्यतिरेकाग्रहादनुमानदूषणे तात्पर्यात् परस्मान्वयव्यतिरेकिण एवानुमानत्वादित्याशयः तथा च व्यभिन्नपुरस्कृत्य यत्किञ्चिद्दृष्टान्तसाधर्म्येण सर्वस्य साध्यवत्त्वापादनमनित्यसमा साध्यपदादविशेषसमाऽतो व्यवच्छेदस्तत्र सर्वाविशेष एवापाद्यते नतु सर्वस्य साध्यवत्त्वं यत्तु अनित्यत्वेन समाऽनित्यसमेति भावप्रधानो निर्देशस्तथा च अन्यर्थलक्षणेव लक्षणमिति तन्न वङ्गिमान् धूमादित्यादौ महानससाधर्म्यात् सत्त्वात्सर्वस्य वङ्गिमत्त्वं स्यादित्यस्य जात्यन्तरत्वापत्तेः आचर्यास्तु साधर्म्यं वैधर्म्यस्याप्युपलक्षकं यथाकाशवैधर्म्यात् कृतकत्वाच्छब्देऽनित्यस्तथाकाशवैधर्म्यादान् काशभिन्नत्वादितः सर्वमेवानित्यं स्यादित्यत्र लक्षणे यत्किञ्चिद्धर्मणेत्येव वाच्यमित्याहुः अत्र च वैधर्म्यस्य विपक्षावृत्तित्वान्न सर्वस्य साध्यवत्त्वापादनं किन्वात्मादीनामनित्यत्वं स्यादिति तत्र चार्थान्तरमित्यवधेयं प्रतिकूलतर्कदेशनाभासा चेयम् ॥ ३२ ॥

अतोत्तरमाह । यदि यत्किञ्चित्साधर्म्यात्सर्वस्य साध्यवत्त्वमापादयतस्तत्र साधर्म्यस्यासाधकत्वमभिमतं तदा तत्कृतप्रतिषेधस्याप्यसिद्धिः तस्यापि प्रतिषेध्यसाधर्म्येण प्रवृत्तत्वात् त्वया ह्येवं साध्यते कृतकत्वं न साधकं दृष्टान्तसाधर्म्यरूपत्वात्सत्त्वादिवत् अत्र च त्वदीयहेतुस्त्वप्रतिषेधेन मदीयहेतुना कृतकत्वेन सत्त्वेन च सह साधर्म्यरूपस्तथाचायमपि न साधकः स्यात् ॥ ३३ ॥

यदि च साधर्म्यभावं न साधकमपि तु व्याप्तिरहितमित्यभिमतं तदा कृतकत्वे तदस्ति नतु सत्त्वइति विशेष इत्याह । साध्यसाधनभावेन व्याप्यव्यापकभावेन दृष्टान्ते प्रज्ञातस्य प्रमितस्य तस्य हेतुत्वात्साधकत्वात् तस्य हेतुत्वस्य उभयथा अन्यथेन व्यतिरेकेण च भावात् मदीयहेतौ सत्त्वात् सत्त्वादिनाऽविशेष इति यदुक्तं तन्न भवति ॥ ३४ ॥

इत्यनित्यसमप्रकरणम् ॥ ७२ ॥

नित्यसमं लक्षयति । अनित्यस्य भावः अनित्यत्वं तस्य नित्यं सर्व-



## ५ अध्याये १ आह्निकम् ।

३०३

कालं स्वीकारे अनित्ये शब्दे नित्यत्वं स्यादित्यापादनं नित्यसमा अयमा-  
शयः अनित्यस्य नित्यमस्वीकारेऽनित्यत्वाभावदशायां तस्यानित्यत्वं न त-  
स्यापि नित्यत्वापत्तिः नहि दण्डाभावदशायां दण्डोत्पद्यते अतोऽनि-  
त्यत्वं नित्यमेवस्वीकार इत्यभ्युपगन्तव्यं तथा च शब्दस्यापि नित्यत्वापत्तिः  
तेन बाधः सप्रतिपक्षो वा तद्देशनाभासा चेयं एवमनित्यत्वं यदि नित्यं कथं  
शब्दस्यानित्यतां कुर्यात् नहि रक्तं महारजनं परस्य नीलतां सम्पादयति  
अथाऽनित्यं तदा तदभावदशायां अनित्यत्वं न स्यादित्यादिकं मूह्यं एतद-  
नुसारेण लक्षणमपि कार्यमित्याचार्याः वदन्तु अनित्यस्य भावो धर्मस्तस्य  
नित्यमभ्युपगमेऽनित्यत्वेनाभ्युपगतस्य नित्यत्वं स्यात् यथा क्षितिः  
सकलं केवलम् अनित्यचित्तेर्धर्मः सकलं कलं त्वया चित्तौ नित्यमुपेयते  
नवा नचेत् तदा साध्याभावादंशतोबाधः अथ चित्तौ नित्यमेव सकलं-  
कलं विरुद्धं दद्देशनाभासा चेयं मिति ब्रूमः ॥ ३५ ॥

अत्रोत्तरमाह । प्रतिषेधे सत्यत्वे शब्दे सर्वदा अनित्यभावात्  
अनित्यत्वात् अनित्ये शब्दे अनित्यत्वमुपपद्यते नहि सम्भवति अनि-  
त्यत्वं नित्यमस्ति अथ च तन्नित्यमिति व्याघातात् नच नित्यमिति सर्व-  
कालमित्यर्थः तथा च शब्दस्यानित्यत्वे कथं सर्वकालमनित्यत्वसम्बन्ध इति  
वाच्यं सर्वकालनित्यस्य यावत्सत्त्वमित्यर्थात् अतः त्यक्तृ तः प्रतिषेधो न  
सम्भवति सतान्तरे तु अनित्येऽनित्यत्वोपपन्ने हेतोस्तथायः प्रतिषेधः  
कृतः स न सम्भवतीत्यर्थः ॥ ३६ ॥

इति नित्यसमप्रकरणम् ॥ ७३ ॥

कार्यसमं लक्षयति । प्रयत्नकार्यस्य प्रयत्नसम्पादनीयस्यानेकत्वात्  
अनेकविषयत्वात् अयमर्थः शब्दोऽनित्यः प्रयत्नानन्तरीयकत्वादित्युक्ते  
प्रयत्नानन्तरीयकत्वं प्रयत्नकार्ये घटादौ प्रयत्नानन्तरोपलभ्यमाने कीलका-  
दावपि दृष्टन्तव द्वितीयं न तज्जन्यत्वसाधकं आद्ये तु असिद्धं तथा च  
सामान्यत उक्ते हेतोरनभिमतविशेष निराकरणेन प्रत्यवस्थानं कार्य-  
समा असिद्धदेशनाभासा चेयं अथवा प्रयत्नकार्याणां प्रयत्नकर्तव्यानां  
कर्तव्यप्रयत्नानामिति यावत् तादृशानां अनेकविधत्वादुक्तान्यस्य व्याघा-  
तकमुत्तरं कार्यसमा तथा चास्या आकृतिगणत्वात्पक्षवानुदर्शिताना-



सपि परिग्रहः यथा त्वत्पक्षे किञ्चिद्गुणं भविष्यतीति शङ्काऽपि शङ्कीसमा-  
कार्यकारणभावस्योपकारनियतत्वेऽनवस्थेत्यनुपकारसमा इत्यादि ॥ ३७ ॥

अत्रोत्तरम् । शब्दस्य कार्यान्त्यत्वेऽकार्यत्वे प्रयत्नस्य वक्तृप्रयत्नस्य  
अहेतुत्वं अकारणत्वं इदञ्च तदा स्यात् यद्यनुपलब्धिकारणमावरणादि  
कस्यपदपद्यते न च तच्छब्देऽस्तीत्यर्थः आकृतिगणपक्षे तु कार्याणां ज्ञाती-  
नामन्यत्वे नाभाविधत्वे इदमुत्तरं प्रयत्नस्य त्वदीयद्रूपप्रयत्नस्य अहेतुत्वं  
असाधकतासाधकत्वाभावः उपलब्धेः कारणस्य प्रमाणस्य निर्दोषवा-  
क्यस्य या उपपत्तिः निर्दोषवाक्याधीनोपपादनं तद्भावात् तद्वाक्यस्य  
स्वव्याघात कत्वादित्यर्थः ॥ ३८ ॥

इति कार्यसमप्रकरणम् ॥ ७४ ॥

कार्यसमप्रकरणस्य एवं तावज्जातिवृत्तिदिनं प्रति शिर्वत् सदुत्त-  
रेणैवाद्धारः कार्यद्रव्यभिहितं तदेवाभिमतं तन्ननिर्णयविजयफलकत्वं  
कथायां सम्पद्यते असदुत्तरोद्भावने तु बन्धकोः संप्रयोगवन्नाभिमतक-  
लासिद्धिरिति व्युत्पादयितुं कथाभासरूपां षट्पक्षीं शिष्यशिष्यायै प्रद-  
र्शयति । प्रयत्नानन्तरोपकत्वं न शब्दोऽनित्यत्वं साधयति अनैकान्तिक-  
कत्वादिति योदीपः स त्वत्पक्षेऽपि तुल्यः प्रयत्नाभिव्यक्तत्वस्याप्यसाधक-  
त्वात् अथवा अनैकान्तिकत्वादसाधक इति त्वया प्रतिषेधः कृतः तत्वाप्ययं  
दोषः समानः न ह्यनैकान्तिकत्वं सर्वस्यैवासाधकत्वं साधयति स्वस्यैवा-  
साधकत्वासाधनत्वात् ॥ ३९ ॥

सैयं सतानुज्ञा किं कार्यसमायाभेव नेत्याह । एवंविधमसदुत्तरं  
सर्वत्रैव जातौ सम्भवतीत्यर्थः यथा शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्यत्र नित्या-  
काशसाधर्म्यादमूर्त्तत्वाच्चित्त्यः स्यादिति साधर्म्यसमायां आकाशधर्म्यमि-  
त्यत्वे आकाशवच्छब्दे परमहृत्त्वं स्यादित्युत्कर्षसमा एव मन्यताप्युह्यं  
यद्यप्ययमतिदेशः षट्पक्ष्यनन्तरमेव कर्तुमुचितस्तथापि त्रिपक्ष्यादिक-  
सपि सूचयितुमर्हतीति उभयासुत्तवबोधफला हि षट्पक्षी त्रिपक्ष्या-  
दावपि तत्फलकत्वं तुल्यमिति भावः तर्हि त्रिपक्ष्यमेव मध्यस्थेन  
पर्यनुयोज्योपेक्षणस्योद्भावने कथासमाप्तौ कुतः षट्पक्षीति चेत् पुंसां  
स्फुरणवैचित्र्येण तत्सम्भवात् ॥ ४० ॥



तुल्यबलविरोधोविप्रतिषेधः तथा च प्रतिषेधस्य यो विप्रतिषेध-  
स्तत्र प्रतिषेधदोषवद्दोष इत्यर्थः तथाहि शब्दोऽनित्यः प्रयत्नानन्तरी-  
यकत्वादिति स्थापनावादिनः प्रथमः पक्षः प्रयत्नकार्यानेकत्वात् कार्यसम-  
इति प्रतिवादिनो द्वितीयः पक्षः प्रतिषेधाप्रतिषेधेऽप्यनैकान्तिकत्वं तु-  
ल्यमिति वादिनस्तृतीयः पक्षः विप्रतिषेधस्तत्रापि तथैवानैकान्तिकत्वं  
तत्समानदोषोद्भावनं वा चतुर्थः पक्षः ॥ ४१ ॥

पञ्चमं पक्षमाह प्रतिषेधं द्वितीयं पक्षं सदोषसम्युपेत्य तत्र सदुक्तं दोष  
मनुजुत्य प्रतिषेधविप्रतिषेधे सदीयपक्षे तृतीये समानं दोषं प्रसज्यतस्तत्र  
मतानुष्ठानात्मकं नियहस्थानमित्यर्थः ॥ ४२ ॥

षष्ठं पक्षमाह । स्वपक्षः स्थापनारूपः प्रथमः पक्षः तं लक्ष्यित्य  
प्रवृत्तोद्वितीयपक्षः स्वपक्षलक्षणस्तस्यापेक्षा समादरः तत्र दोषानुद्भावमिति  
फलितार्थः तथा च सदीयपक्षे दोषमनुद्भाव्यैव स्वपक्षोपपादनं कर्तुं यस्त-  
था हेतुर्निर्दिष्टः प्रतिषेधेऽपि समानोदोष इति तावता तत्रापि मतानुज्ञा  
वृत्तेवेत्यर्थः तदेवं षट्पक्ष्यामुभयोरप्युक्तवादित्वादयोऽसिद्धिः यदि तु स्था-  
पनावादो जातिवादिनं सदुत्तरेणैव दूषयति तदा षट्पक्षी न प्रवर्तत-  
इति ॥ ४३ ॥ इति कथाभासप्रकरणम् ॥ ७५ ॥

इति श्रीविश्वनाथभट्टाचार्यकृतायां न्यायसूत्रवृत्तौ पञ्चमाध्य-  
याद्यमाह्निकम् ॥ १ ॥

अथेदीनीं नियहस्थानविशेषलक्षणाभिधानं तदेव चाह्निकार्थः सप्त  
सैह प्रकरणानि तत्र चाद्यं प्रतिज्ञाहेत्वन्तराश्रित नियहस्थानपञ्चक-  
विशेषलक्षणप्रकरणम् अन्यानि च यथास्थानं वक्ष्यन्ते तत्र विशेषलक्षणा-  
र्थमादौ विभज्यते । अत्र चत्वर्ये तेन एतानि तु नियहस्थानानि न पुन-  
रपस्मारादिनाऽननुभाषणादिकं न वा श्रुतिस्मरणेन तिरोहिता च  
वाणीत्यर्थोऽलभ्यत इति प्राञ्चः नव्यस्तु चकारोऽनुक्तसमुच्चये तेन द-  
ष्टान्ते साधनवैकल्यादीनां परिरुहः ॥ १ ॥

तत्र क्रमेण प्रतिज्ञाहान्यादीनां लक्षणेषु वक्तव्येषु प्रथमोद्दिष्टां  
प्रतिज्ञाहानिं लक्षयति । प्रतिज्ञाहानौ दृष्टान्तो यत्र स प्रतिदृष्टान्तः परपक्षः



स्वः स्वीयः दृष्टान्तो यत्र स स्वदृष्टान्तः स्वपक्षः तथा च स्वपक्षे परपक्षधर्मा-  
भ्यनुज्ञा, प्रतिज्ञाहानिः स्वयं विशिष्याभिहितपरित्याग इति फलि-  
तार्थः सिद्धान्तस्तु स्वयं विशिष्य नाभिधीयत इति नापसिद्धान्तसाङ्ख्यं सेयं  
पक्षहेतुदृष्टान्तसाध्यतदन्यहानिभेदात् पञ्चधा भवति यथाशब्दोऽनित्यः  
कृतकत्वादित्युक्ते प्रत्यभिज्ञया बाधितविषयोऽयमित्युत्तरिते अस्तु तर्हि  
घटएव पक्ष इति एवं तत्रैव ऐन्द्रियकत्वादिति हेतोरनैकान्तिकत्वमिति  
प्रत्युक्ते अस्तु कृतकत्वदिति हेतुरिति एवं पर्वतो वज्रिमाभूमादयोगोल-  
कवादित्युक्ते दृष्टान्तः साधनविकल इति प्रत्युक्ते अस्तु तर्हि महानसर्वदिति  
एवं अत्रैव सिद्धसाधने च प्रत्युक्ते अस्तु तर्हि इन्धनवानिति अन्यहानिस्तु  
विशेषणहान्यादिः यथा तत्रैव नीलधूमादित्युक्ते ऽसमर्थविशेषणत्वेन प्र-  
त्युक्ते अस्तु तर्हि धूमादिति हेतुरित्यादि ॥ २ ॥

प्रतिज्ञान्तरं लक्षयति । प्रतिज्ञातस्वार्थस्य प्रतिषेधे कृते त दूषणोद्दि-  
धीर्षया धर्मस्य धर्मान्तरस्य विशिष्टः कल्पोविकल्पः तस्माद्विशेषणान्तर  
विशिष्टतया प्रतिज्ञातार्थस्य कथनमिति फलितार्थः प्रतिषेध इत्यनेन भ-  
टिति सस्वरणे विलम्बेनापि स्वयं दूषणं विभाव्य विशेषणे न दोषइत्युक्तं  
प्रतिज्ञातार्थस्येत्युपलक्षणं हेत्वतिरिक्तार्थस्येति तत्त्वं तेन उदाहरणा-  
न्तरसुपनयान्तरञ्च प्रतिज्ञान्तरत्वेन संगृहीतं भवति इदञ्च पक्षसाध्य-  
विशेषणभेदात् प्रत्येकं द्विविधं यथा शब्दोऽनित्य इत्युक्ते ध्वनौ बाधेन परेण  
प्रत्युक्ते वर्णात्मकः शब्दः पक्ष इति प्रतिज्ञान्तरं चेदमर्थान्तरं प्रकृतोप-  
योगात् नचेयं प्रतिज्ञाहानिः पूर्वोक्तस्यापरित्यागात् एवं पर्वतोवज्रि-  
मान् सुरभिमलिनधूमवत्त्वादित्युक्ते असमर्थविशेषणत्वेन च परेण प्रत्युक्ते  
क्षणागुरुप्रभववज्रिमानित्यत्र एवं तादृशवज्रौ साध्ये यः सुरभिमलिन-  
धूमवान् स वज्रिमानित्युदाहरणे न्यूनत्वेन प्रत्युक्ते स तादृशवज्रिमानि-  
त्यत्र एवमन्यदप्युह्यम् ॥ २ ॥

प्रतिज्ञाविरोधं लक्षयति । अत्र च प्रतिज्ञाहेतुपदे कथाकालीनवा-  
क्यपरे तथा च कथायां स्ववचनार्थविरोधः प्रतिज्ञाविरोधः यद्यपि  
काञ्चनमयः पर्वतोवज्रिमान् पर्वतः काञ्चनमयवज्रिमान् हृदोवज्रिमान्  
हृदत्वात् पर्वतोवज्रिम् न काञ्चनमयधूमादित्यादौ हेत्वाभासान्तरसाङ्ख्यं



तथाप्युपधेयसङ्करेऽप्युपाधेरसाङ्कर्यान् दोषः न चासङ्कीर्णस्यलाभावः  
 सर्वतोवर्जमान् धर्मात् योयो धर्मवान् स निरग्निरित्युदाहरणे निर-  
 ग्नित्वायमित्युपनये च तत्त्वत्वात् एवं निगमनेऽपि बोध्यम् ॥ ४७ ॥

प्रतिज्ञासन्ध्यासं लक्षयति । पक्षस्य स्वाभिहितस्य परेण प्रतिषेधे कृते  
 सति तत्परिजिहीर्षया प्रतिज्ञातार्थस्यापनयनमपलाप इत्यर्थः यथा शब्दो-  
 ऽनित्य ऐन्द्रियकत्वादित्युक्ते सामान्ये व्यभिचारेण परेण प्रत्युक्ते क एव-  
 माह शब्दोऽनित्य इति ॥ ५ ॥

हेत्वन्तरं लक्षयति । अत्र च हेतावित्यनेन हेत्ववयवांशो न विवक्षि-  
 तोऽपि तु साधकांशः स च हेत्ववयस्य उदाहरणादिस्थोवाव्यभिषेपोक्त इति  
 पूर्वोक्तव्यर्थं विशेषमिच्छत इति साभिप्रायं तेन परोक्तदूषणोद्दि-  
 धीर्षया तत्रैव हेतौ विशेषणान्तरप्रज्ञेपोऽन्यहेतुकरणं वा द्वयमपि हेत्व-  
 न्तरं तथा च परोक्तदूषणोद्दिधीर्षया तत्रैव हेतौ पूर्वोक्तहेतुतावच्छेदका-  
 तिरिक्तहेतुतावच्छेदकविशिष्ट वचनं हेत्वन्तरं हेतौ विशेषणदानएव  
 हेत्वन्तरमिति प्राञ्चः पूर्वोक्तत्वं हेत्ववयवे उदाहरणादौ वा यथा शब्दो-  
 ऽनित्यः बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वादित्युक्ते सामान्येऽनैकान्तिकत्वेन च प्रत्युक्ते  
 सामान्यवत्त्वे सतीति विशेषणं एवं विशिष्टहेतुसङ्ख्या यद्बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षं  
 तदनित्यमित्युदाहरणे न्यूनत्वेन प्रत्युक्ते विशिष्टोक्तौ एवमुपनयविशेष-  
 णेऽपि ॥ ६ ॥ समाप्तं प्रतिज्ञाहेत्वन्यतराश्रितनिग्रहपञ्चकविशेषपञ्चण-  
 प्रकरणम् ॥ ७ ॥

अर्थान्तरं लक्षयति । प्रकृताप्रकृतोपयुक्तात् ल्यब्लोपे पञ्चमी तेन  
 प्रकृतोपयुक्त मर्थसुपेक्ष्यासम्बद्धार्याभिधानं अर्थान्तरं प्रकृतानाकाङ्क्षिता-  
 भिधानमिति फलितार्थः यथा शब्दोऽनित्यः कृतकत्वादित्युक्ता शब्दोगुणः  
 सच काशस्थेत्यादि ॥ ७ ॥

निरर्थकं लक्षयति । वर्णानां क्रमेण निर्देशोजवगतेत्यादिप्रयोगस्त-  
 तु ल्योनिर्देशोनिरर्थकं निग्रहस्थानं अवाचकपदप्रयोग इति फलितार्थः  
 वाचकत्वं शङ्क्या निरूढलक्षणया शास्त्रपरिभाषया वा बोध्यं समयव-  
 न्नव्यतिरेकेणेति विशेषणीयं तेन यत्रापक्षेन विचारः कर्तव्य इति



समयसम्बन्धस्तत्वापक्षे न दोषः भट्टिति सम्बरणे तु न दोष इत्युक्तपाथं  
अस्य सम्भवः प्रमादादित्यवधेयम् ॥ ८ ॥

अविज्ञातार्थं लक्षयति । त्रिरभिहितं वादिनेति शेषः त्रिरभिधानं चान-  
वधानादिनाऽबोधनिरासाय परिपत्तिवादन्यतरेण विज्ञाते तु नावि-  
ज्ञातार्थमिति भावः तथा च अवहिताविकलव्युत्पन्नपरिपत्तिवादि-  
बोधानुकूलोपस्थित्यजनकवाचकवाक्यप्रयोगोऽविज्ञातार्थमिति वाचकेत्य-  
नेन निरर्थकपार्थक्यदुदासः अत्र च पराज्ञानापादनेन सम जयो भ-  
विष्यतीति भ्रमादुक्तसम्भवः न च यथाकथञ्चित्परो जेतव्य इत्यज्ञानापरदनं  
न्याय्यमेवेति वाच्यं तथासति भङ्गकाले परसद्वर्धयत्किञ्चिदभिधानेनैव  
सर्वत्र जयसम्भवात् एतस्य त्रैधासम्भवः असाधारणतन्त्रमात्र प्रसिद्धं यथा  
पञ्चस्तम्भाद्योबोधानान्तत्वं रूपादयः पञ्चेन्द्रियाणि च रूपस्तम्भः सवि-  
कल्पकं संज्ञास्तम्भः रागद्वेषाभिनिवेशाः संस्कारस्तम्भः सुषुप्त्योः वेदना-  
स्तम्भः निर्विकल्पकं ज्ञानस्तम्भः द्वितीयसति प्रसक्तयोगमनपेक्षितरूढिकं  
यथाकथं पतनयति हेतुरयं त्रिनयनसमानभाषधेयवान् तत्केतुसत्त्वा-  
दित्यादि तृतीयं स्थितं यथा श्वेतो धावतीत्यादि एवं अतिद्रुतोच्चरितादि-  
कमपीति भाष्यं अत्र नाद्यस्य सम्भव उभय तन्त्राभिज्ञानमध्यस्थे सति उभय-  
तन्त्राभिज्ञयोरेव विचारसम्भवादिति चेत् सत्यं तथापि यत्र नैयायिक-  
मीमांसकयोर्विचारेऽन्यतरो बौद्धतन्त्रादिपरिभाषया वदति तत्र निग्रह-  
इत्याशयः तत्रापि चेत् यथा कयाचित् परिभाषयोच्यतामिति परः प्रौढ्या  
वदतिन तत्राद्यस्योपादानमिति उत्तरयोस्तु न सर्वथैवेति ॥ ९ ॥

अपार्थक्यं लक्षयति । पौर्वापर्यं कार्यकारणभावस्तस्यायोगादस-  
म्भवात् शाब्दबोधजनकाकाङ्क्षाज्ञानाद्यभावादिति फलितार्थः अप्रतिसम्ब-  
द्धोऽसम्बद्धेऽर्थः प्रयोजनं शाब्दबोधरूपं यत् यद्यपि दशदाडिमानि षड्पू-  
पाः कुण्डलमञ्जिनिमित्यादावबालरवाक्यार्थबोधरूपादव्याप्तिरति-  
व्याप्तिश्च निरर्थको तथाप्यभिसतवः कथार्थबोधानुकूलाकाङ्क्षादिभूतबोध-  
जनकपदत्वं तत् अविज्ञातार्थं तु स्वस्य बोधोभवत्येवेति नातिव्याप्तिः  
उदाहरणान्त अयोग्यानासन्नानाकाङ्क्षावाक्यम् ॥ १० ॥ समाप्तमभिसतवा-  
क्यार्थमिति पादकमिग्रहस्यानुचतुष्टय प्रकरणम् ॥ ७५ ॥



## ५ अध्याये २ आह्निकम् ।

३०२

अप्राप्तकालं लक्षयति । अवयवस्य कथैकदेशस्य विपर्ययो वैपरीत्यं  
तथा च समयवन्धविषयीभूतकथाक्रमविपरीतक्रमेणामिधानं पर्यवसन्नं  
तत्रायं क्रमः वादिना साधनसङ्गा सामान्यतो हेत्वाभासोद्धरणीयाद्-  
त्येकः पादः प्रतिवादिनश्च तत्रोपालम्भोद्वितीयः पादः प्रतिवादिनः स्वपक्ष-  
साधनं तत्र हेत्वाभासोद्धरणीञ्चेति तृतीयः पादः जयपराजयव्यवस्था चतुर्थः  
पादः एवं प्रतिज्ञा हेत्वादीनां क्रमः तत्र सभाचोभयामोहादिना व्यत्यस्ता-  
मिधानमप्राप्तकालमिति ॥ ११ ॥

न्यूनं लक्षयति ॥ अवयवेन स्वशास्त्रसिद्धेन तेन सौगतस्य व्यववा-  
भिधानेऽपि न न्यूनत्वं नन्ववयवहीनत्वं अवयवत्वावच्छिन्नाभावः तथा चा  
कथनमेव स्यादतथाहान्यतमेनापीति, तथा च यत्किञ्चिदवयवभूत्या-  
वयवाभिधानं फलितं नचायमपसिद्धान्तः सिद्धान्तविरुद्धानभ्युपगमात्  
अपि तु सभाचोभयदिनाऽनभिधानात् ॥ १२ ॥

अधिकं लक्षयति । हेतूदाहरणेत्युपलक्षणं दूषणाद्यधिकमपि बोध्यं  
तथा च कृतकर्तव्यापुनरुक्ताभिधानमिति फलितम् अनुवादस्तु न कृतक-  
र्तव्यः साभिप्रायत्वात् प्रतिज्ञाभिक्यञ्च पुनरुक्तं धूमादालोकात् महानस-  
वञ्चत्वरवदित्यादिकन्तु विना सप्रयवन्धं दार्ढ्यादिभ्रमादुक्तमधिकं यथा म-  
हानसं महानसवदिति तु नाधिकं किन्तु पुनरुक्तम् ॥ १३ ॥ समग्रं स्वसि-  
द्धान्तानुरूपप्रयोगाभासनिग्रहस्थानतिक्रमप्रकरणम् ॥ ७६ ॥

पुनरुक्तं लक्षयति । पुनर्वचनं पुनरुक्तं तस्य विभागार्थं शब्दार्थयोरिति  
तेन शब्दपुनरुक्तमर्थपुनरुक्तञ्च लभ्यते अनुवादेऽतिव्याप्तिवारणायान्यतानु-  
वादादिति अनुवादान्यत्वे सतीत्यर्थः निष्प्रयोजनं पुनरभिधानं हि  
पुनरुक्तं अनुवादस्तु व्याख्यारूपः सप्रयोजनक एवेति भावः तथा च  
समानार्थकपूर्वानुपूर्वीकं शब्दप्रयोगः शब्दपुनरुक्तं समानार्थकमिद्वानु-  
पूर्वीकं शब्दस्य निष्प्रयोजनं पुनरभिधानमर्थपुनरुक्तं आद्यं यथा घटो घट  
इति द्वितीयं तथा घटः कलस इति एतस्य प्रमादादिना सम्भवः ॥ १४ ॥

पुनरुक्तप्रभेदानन्तरमाह । पुनरुक्तमित्यनुवर्तते यस्मिन्नुक्ते यस्या-  
र्थस्यौत्सर्गिको प्रतिपत्तिर्भवति तस्य तेन रूपेण पुनरभिधानं पुनरुक्तं  
इदमेव च अर्थपुनरुक्तमिति गीयते यथा वङ्गिरुण इति पूर्वपदाच्चिह्नो



क्तिरियं उष्णीवङ्गिरिति उत्तरपदाक्षिप्रोक्तिः एवं बहिरस्ति गेहे ना-  
स्तीति विध्याक्षिप्रोक्तिः जीवन् गेहे नास्ति बहिरस्तीति निषेधाक्षि-  
प्रोक्तिः पुनरुक्तत्वे विध्यञ्जेदन्माष्यादिसम्मतं अन्ये तु शब्दपुनरुक्तं द्विविधं  
तस्यैव शब्दस्य पुनरभिधानं पर्यायेणाभिधानं अन्यत्पुनरर्थपुनरुक्तमि-  
त्याहुः ॥ १६ ॥

अननुभाषणं लक्षयति । परिषदा विज्ञातस्य विशिष्य बुद्ध्यर्थस्य वा-  
दिना त्विभिरभिहितस्य तथा च प्रथमवचनेऽननुभाषणे वादिना वारत्तयं  
वाक्यमिति दर्शितं तथा च त्विभिरभिधानेऽपि यत्प्राप्तुं भाषणविरोधी  
व्यापारः तत्प्राप्तुं भाषणं नियमहस्यानमित्यर्थः अज्ञान साङ्ख्यनिरा-  
सायाज्ञानमनाविष्कृत्येति विज्ञेयसाङ्ख्यनिरासाय कथामविच्छिन्दतेति च  
निशेषणीयमित्याचार्याः न चाप्रतिभासाङ्ख्यं उत्तरप्रतिपत्तावपि स-  
भाक्षोभादिनाऽननुभाषणसम्भवात् तदिदं चतुर्धा एकदेशानुवादादिप-  
रीतानुवादात् केवलदूषणोक्त्या स्तम्भेन वेति सर्वनामपदेनानुवादात् पञ्च-  
ममित्याचार्याः क्वचिदज्ञानाप्रतिभाऽननुभाषणासाङ्ख्यं यन्निश्चेतुं श-  
क्यते तदेवोद्भाव्यम् ॥ १७ ॥

अज्ञानं लक्षयति । भावे क्तः चकारञ्च परिषदा विज्ञातस्येत्याद्यनु-  
कर्षणार्थस्तथाच परिषदा विज्ञातस्य वादिना त्विरभिहितस्याप्यविज्ञा-  
नमित्यर्थः इदञ्च किंवदसि बुध्यतएव नेत्याध्याविष्करणेन ज्ञातुं शक्यत-  
इति ॥ १८ ॥

अप्रतिभां लक्षयति । उत्तरार्हे परोक्तं बुद्धेऽपि यत्नोत्तरसमये  
उत्तरं न प्रतिपद्यते तत्प्राप्तुं भाषणं नियमहस्यानं नचाज्ञाननुभाषणस्याव-  
श्यकत्वात् तदेव दूषणमस्त्विति वाच्यं परोक्ताऽननुवादे हि तत् यत्न  
परोक्तमनूद्यापि नोत्तरं प्रतिपद्यते तत्प्राप्ताङ्ख्यात् स्वसूचनं श्लोकपाठा-  
द्युक्तेषां चेयम् ॥ १९ ॥

विज्ञेयं लक्षयति । कार्यव्यासङ्गात्कार्यव्यासङ्गसङ्गाव्येत्यर्थः ल्यबुोपे  
पञ्चमौ कार्यव्यासङ्गश्चमन्त्रवाक्यान्तरकत्वेनारोपितः तेन तादृशकथा-  
विच्छेदोविज्ञेयः तेन राजपुरुषादिभिराकारणे गृहजननादिभिर्वावश्य-  
ककार्यार्थमाकारणे स्वगृहदाहादिकं प्रश्यतो गमने वा शिरोरोगादिना



## ५ अध्याये २ व्याङ्गिकम् ।

३११

प्रतिबन्धे वा न विक्षेपः ननु कार्यव्यासङ्गोद्भावनं कुतः सभाजोभादिना चेदननुभाषणमेव उत्तराप्रतिपत्त्या चेदप्रतिभैवेति चेन्न उत्तरावसराभावात् वस्तुतस्तुत्तरस्फूर्त्तावपि तदपणसम्भावनाया विक्षेपसम्भवात् यथा क्षितिः सकर्तृका कार्यत्वादित्युक्तम् अत्राङ्गुरे व्यभिचारस्तावन्मया उद्भाव्यस्तत्र चेदयं पक्षसमत्वं ब्रूयात् तदा मे किमुत्तरमतोऽयं महार्णवलिखितं मया च विचारितं किञ्चित्कार्यमुद्भाव्य गृहे गत्वा दृश्यत इत्येवं विक्षेपसम्भवात् ॥ ६२ ॥

मतानुज्ञां लक्षयति । दोषाभ्युपगमात् दोषमनुद्धृत्येत्यर्थः यथ शब्दोनित्यः आवणत्वादित्युक्ते ध्वनावनैकान्तिकत्वेन हेत्वाभासोऽयमित्युक्तौ शब्दोऽनित्यः कृतकत्वादिति साधिते ध्वनेरपि पक्षत्वान्न दोष इत्युक्तौ असिद्धत्वात् तवापि हेत्वाभासोऽयमित्युक्तौ सोऽयं मतानुज्ञया निगृहीतः स्यादप्रतिपिङ्गमनुज्ञतं भवतीति स्वपक्षे दोषाभ्युपगमात् ॥ ६३ ॥

पर्यनुयोज्योपेक्षणं लक्षयति । निग्रहस्थानं प्राप्तवतोऽनिग्रहः निग्रहस्थानानुद्भावनमित्यर्थः यत्र त्वनेकनिग्रहस्थानपाते एकतरोद्भावनां तत्र न पर्यनुयोज्योपेक्षणं अवसरे निग्रहस्थानोद्भावनत्वावच्छिन्नाभावस्यैव तत्त्वात् ननु वादिना कथमिदमुद्भाव्यं स्वकोपीनविवरणस्यायुक्तत्वादिति चेत् सत्यं मध्यस्थेनैवेदमुद्भाव्यं वादे च स्वयमुद्भावनेऽयदोषः ॥ ६४ ॥

निरनुयोज्यानुयोगं लक्षयति । अवसरे यथार्थनिग्रहस्थानोद्भावनातिरिक्तं यन्निग्रहस्थानोद्भावनं तदित्यर्थः एतेनावसरे निग्रहस्थानोद्भावने एकनिग्रहस्थाने निग्रहस्थानान्तरोद्भावने च नातिव्याप्तिः सोऽयं चतुर्धा च्छलं जातिराभासोऽनवसरग्रहणञ्च आभासो व्यभिचारादावसिद्धाद्युद्भावनम् अनवसरग्रहणञ्चाकाले एवोद्भावनं यथा त्यक्तमि चेत् प्रतिज्ञाहानिः विशेषयसि चेत् हेत्वन्तरं एवमवसरमतीत्य कथनमपि यथा उच्यमानग्राह्यापशब्दादेः परिसमाप्तौ एवमनुक्तग्राह्याज्ञानाद्यननुभाषणावसरेऽनुद्भाव्यबोधाविष्करणानुभाषणप्रवृत्ते वादिनि तदुद्भावनमित्यादिकमूह्यम् ॥ ६५ ॥

असिद्धान्तं लक्षयति । सिद्धान्तं स्वशास्त्रकाराभ्युपगतमर्थं स्वीकृत्य



नियमान्तन्त्रियमप्रत्यवात् कथाप्रसङ्ग इति तथा च कथायां स्वीकृतसिद्धान्त-  
प्रत्यवोऽपसिद्धान्तः तथा च साङ्ख्यमतेनाहं वदिष्यामीत्यभ्युपेत्यारम्भायां  
कथायां आविर्भावस्याविर्भावाभ्युपगमेऽनवस्थेति दूषणोद्धारायाविर्भा-  
वस्यासत्तः उत्पत्तिं यद्यभ्युपैति तदाऽपसिद्धान्तः यस्त्वेकदेशिमतेन कथा-  
सारमते तस्य शास्त्रकाराभ्युपगमविरोधे नापसिद्धान्त इति विवक्षयितु-  
मभ्युपेत्येत्युक्तं सौगतास्त्वपसिद्धान्तं दूषणं न मन्यत इत्यन्यदेतत् ॥ ६६ ॥

क्रमप्राप्तहेत्वाभासलक्षणे वक्तव्ये तदकथनबीजमाह । च पुनरर्थे  
हेत्वाभासाः पुनर्यथा येन रूपेण पूर्वसत्ताः तेनैव रूपेण तेषां निमित्त-  
स्यानत्वमिति न लक्षणान्तरमपेक्षितमिति अत्र चकारस्य दृष्टान्ते साधन-  
वैकल्यादिसमुच्चयकत्वमिति केचित् तन्न यथोक्ता इत्यस्याननयापत्ते-  
रिति ॥ ६७ ॥

समाप्तं निमित्तहस्यानविशेषलक्षणम् ।

समाप्तं पञ्चमस्य द्वितीयाङ्गिकम् ।

एषा मुनिप्रवरगोतमसूत्रवृत्तिः श्रीविश्वनाथकृतिना सुगमालम्बवर्णा ।

श्रीकृष्णचन्द्रचरणाश्वजपञ्चरीकश्रीमच्छिरोमणिवचः प्रचयैरकारि ॥

इति श्रीमहामहोपाध्याय श्रीविद्यानिवासभट्टाचार्यात्मज श्रीवि-  
श्वनाथभट्टाचार्यकृतायां न्यायसूत्रवृत्तौ पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥

Gurukul  
Kangri  
Library



|    |  |       |     |
|----|--|-------|-----|
| ३३ | भाषापरिच्छेद मुक्तावलीसहित                         | ...   | १   |
| ३४ | बज्जविवाहवाद                                       | ..    | १०  |
| ३५ | दशकुमारचरित—सटीक                                   | ...   | १॥० |
| ३६ | परिभाषेन्दुशेखर                                    | ....  | १॥० |
| ३७ | कविकल्पद्रुम (वोपदेवव्रत)                          | ...   | १॥० |
| ३८ | चक्रदत्त (वैद्यक)                                  |       | १॥० |
| ३९ | उणादिसूत्रसटीक                                     | ...   | २   |
| ४० | मेदिनी कोष   | ...   | १   |
| ४१ | पञ्चतन्त्रम् [श्रीविष्णु-शर्मा-सङ्कलितम्]          | ..    | २॥० |
| ४२ | विश्वमीरतरङ्गिणी (चम्पूकाव्य)                      | ...   | १॥० |
| ४३ | माधवचम्पू  |       | १ = |
| ४४ | तर्कसंग्रह (इंगराजी अनुवाद सहित)                   |       | १॥० |
| ४५ | प्रसन्नराघव नाटक (श्रीजयदेव कविरचित)               |       | १   |
| ४६ | विवेक चूड़ामणि [ श्रीमत् शङ्कराचार्य विरचित]       |       | १ = |
| ४७ | काव्यसंग्रह [ सम्पूर्ण ]                           | ...   | ५   |
| ४८ | लिङ्गानुशासन—सटीक                                  | ...   | १०  |
| ४९ | ऋतुसंहार—सटीक                                      | ...   | १ = |
| ५० | विक्रमोर्वशी—सटीक                                  | ...   | १॥  |
| ५१ | वसन्ततिलकभाष्य                                     | ...   | १ = |
| ५२ | गायत्री  | ...   | १॥० |
| ५३ | सांख्यदर्शन ( भाष्य सहित ) सांख्य प्रवचन भाष्य     |       | २   |
| ५४ | भोजप्रबन्ध   | ...   | १॥० |
| ५५ | नलोदय—सटीक   | ...   | १ = |
| ५६ | ईश केन कठ, प्रश्न मुण्ड, माण्डूक्य, [सटीक स भाष्य] |       | ५   |
| ५७ | कान्दोग्य (उपनिषद्) सभाष्य-सटीक ]                  |       | ५   |
| ५८ | तैत्तिरीय ऐतरेय श्वेताश्वतर (उपनिषद्) सभाष्य       |       |     |
|    | सटीक   | ...   | २   |
| ५९ | वृहदारण्यक (उपनिषद्) [भाष्य सहित]                  |       | १०  |
| ६० | सुश्रुत  | ...   | ४   |
| ६१ | शार्ङ्गधर [वैद्यक]                                 | ...   | १   |
| ६२ | वेतालपञ्चविंशति                                    | ...   | १॥० |
| ६३ | पातञ्जल दर्शन [सभाष्य-सटीक]                        | ..... | ४   |
| ६४ | आत्मतत्त्वविवेक [वैद्याधिकार]                      | ...   | २   |
| ६५ | मुक्तिकोपनिषद्                                     |       | —   |



24 JUL 1968

20918 (D)















